DEPARTMENT OF INDIA

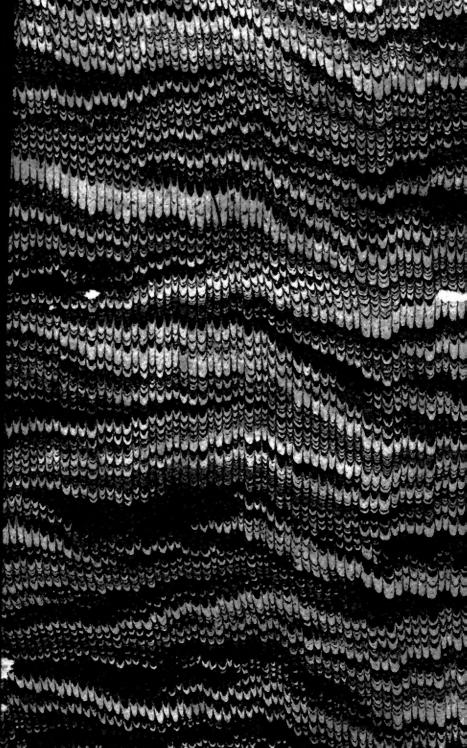
DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY

CENTRAL ARCHÆOLOGICAL

LIBRARY

CALL No. Sa 35/Gad/Mis ACC. No. 14288

D.G.A. 79.
GIPN—S1—2D. G. Arch. N. D./57.—25-9 58—1,00,000.





### BIBLIOTHECA INDICA:

### COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

New Series, No. 966, 981, 994, 1026, 1033, 1049, 1088.

14230

### GADADHARA-PADDHATAU

(PRATHAMAM KHANDAM)

KALASARAH

BY

GADĀDHARA RĀJAGURU

EDITED BY

PANDIT SADĀŠIVA MIŠRA

Sa3S God/Mis

New Der

LIDRARY REGI NO CALCUTTA:

MINTED AT THE BAPTIST MISSION RESS,

ASIATIC SOCIETY, 57, PARK STREET. 1904.



# कालसारस्याग्रुडिगुडि-निर्घण्टः।

#### \*\*\*

| चग्रविः ।            | ग्रुविः ।                 | प्रहादः । | पञ्चाक्षः । |  |
|----------------------|---------------------------|-----------|-------------|--|
| नुषाग्रीवंग्राव्     | तुषसीवंग्रात्             |           | &           |  |
| सिद्धान्तिभ्रिरमणी   | <b>चिद्धान्तश्चिरोमणी</b> | 82        | १८          |  |
| ध्याद्र              | मध्याद्र                  | . 89      | २२          |  |
| सहः                  | सइ                        | . 8c      | १0          |  |
| पुर्व्यं             | पुष्यं                    | . 44      | ٠ و         |  |
| শুব্রনি              | স্থখনি                    | . 48      | 28          |  |
| व्रतान्तकं           | व्रतान्तरं                | . YY      | 9           |  |
| मुख्यकाच             | मुख्यकाचा                 | Ne        | e           |  |
| पालकैः               | यानकैः                    | 308       | (           |  |
| षराज्ञात्मक          | चरान्दातमक                | 988       | २१          |  |
| स्यैः                | <b>स्</b> केः             | 299       | १३          |  |
| विश्वामित्रः         | खनावश्वकोऽयमत्र           | १२०       | 94          |  |
| क्लाकाष्ठ            | कलाकास्ता इति             | १२८       | ع۶          |  |
| मद्दीनं              | सहिनं                     | . 280     | १8          |  |
| द्वादधी              | दादश्यां                  | 24.       | ₹           |  |
| चिमुद्धर्त्तेखाप्तेव | चिमुह्यत्तेषास्यैव        | १५६       | ۲۰          |  |
| धन्तवेध              | खन्तवेधः                  | ñ.        | २२          |  |
| धुना                 | यूत्रा                    |           | ११          |  |
| चतुर्दश्ययमानास्या   | चतुर्दश्यमावास्या         | १८२       | १६          |  |
| गरिष्ठचा             | गुरिद्धचा                 |           | 9.          |  |

| चग्रुदिः ।               |                    | ग्रुविः ।               |      | प्रसाद्धः । | पङ्कारहः । |      |
|--------------------------|--------------------|-------------------------|------|-------------|------------|------|
| दोलयात्रा                | •••                | दोलाग्राचा              |      | 3 - 5       | •••        | 25   |
| <b>याडभू</b> क्          | •••                | माडभुक्                 | •••  | 254         | •••        | 2    |
| मबदेशस्यः                | •••                | मगदेशस्य:               | •••  | 200         | •••        | 23   |
| चापिटसस्य                | •••                | चापिटकस्य               |      | 200         | •••        | २२   |
| विद्यराष्ट्र             |                    | विषुराष्ट्र             | •••  | 208         | •••        | 9    |
| दुर्वाभिः                | •••                | दूर्वाभिः               | •••  | 2.0         | •••        | 22   |
| दुर्वा                   | •••                | दूर्वा                  |      | 2.0         | ****       | 94   |
| <b>ग्र</b> विमत्वार्भ्या | <b>डिसुब्</b> इत्य | न्तं चानावप्रयक्तोद्ध्य | सत्र | २०इ         | •••        | \$ 8 |
| द्वादग्रेच्              | •••                | द्रादग्रेऽचति           |      | २१=         | •••        | 99   |
| वरानेन्द्र               |                    | रानेन्द्र               |      | 25 %        | •••        | 38   |
| स्यह्या                  | •••                | भ्याद्या                | •••  | २२२         | •••        | 24   |
| दिच्यात्य                | •••                | दान्तिगात्य             |      | २२8         |            | २२   |
| प्रतिप्रसवाङ्मू          | खं                 | प्रतिप्रसववाङ्मूखं      | •••  | २२६         | •••        | 22   |
| दिखेवेत्य                | •••                | दित्यवेत्य              | •••  | <b>२३</b> ३ | ••• .      | 60   |
| दित्वेवेत्य              | •••                | दित्यवेत्य              | •••  | <b>२</b> इ  | •••        | 22   |
| <u>इत्ययः</u>            | •••                | इत्यर्थः                | •••  | <b>२</b> इई | •••        | 8=   |
| <b>केवलाधिमास</b>        | ¥ ·                | क्वित्वाधिमासवर्षे      | •••  | 239         |            | ~    |
| वन्यविन्यानि             | •••                | वन्धविन्धीय             |      | 550         | •••        | 3.9  |
| विस्तलाः                 | •••                | निष्यत्वाः              | .,,  | 280         | •••        | 8    |
| तब्बारतो                 | •••                | तस्त्ररतो               | •••  | 285         | •••        | R    |
| च्चेतिवचनेन              | •••                | च्योतिर्वच तेन          |      | 286         | •••        | €    |
| माख्य                    | •••                | माराष्ट्रय              | •••  | 282         | •••        | 8 8  |
| ग्यात्राज्               |                    | गयात्राङ                | •••  | २५०         | ,          | 22   |
| <b>म</b> छाच             | •••                | षष्ठा                   | •••  | २६९         | •••        | A    |
| या ज्यव ल्ली य           | •••                | याज्ञवस्कीय             | •••  | २६३         | •••        | £    |

· mediant by

| त्रग्रुविः ।      |       | ग्रुविः ।                | ग्रुविः । |               | प्रसादः। पङ्क |     |
|-------------------|-------|--------------------------|-----------|---------------|---------------|-----|
| प्रयान            |       | प्रेयान्                 |           | २८३           |               | 22  |
| विवावं            |       | विरावं                   |           | २८६           | •••           | €   |
| <b>दिवसेः</b>     |       | दिवसैः                   | •••       | 3.5           |               | 9   |
| <b>चिराचोशीचं</b> |       | <b>चिराचाणी</b> च        | ***       | \$6.          | •••           | R.  |
| याच्यवसकाः        | •••   | या ज व वक्यः             |           | 575           |               | 23  |
| दुखिकिकै          |       | दुस्थिकिसै               |           | 810           | •••           | 19  |
| धानादि .          | •••   | धनादि                    | • • •     | ३२०           |               | 3.2 |
| यमायमादीनां       | •••   | यमार्थमादीनां            |           | ₹ € 8         | ,             | 20  |
| प्रतियहीलऽपि      | · · · | प्रतिसृष्टी हल्ले ऽपि    |           | <b>३</b> ६५   | •••           | 22  |
| स्रपराहः          | •••   | चपराष्ट्रः               | •••       | \$ <b>C</b> • | •••           | 33  |
| वाधित्वा          |       | वाधित्वा                 | ***       | 308           | •••           | 22  |
| तदुनुष्ठेयं       | •••   | तदनुष्ठेयं               | 711       | ₹5€           | •••           | 2.  |
| यत्क्रमाधं        | ***   | यत्कर्मार्थं             | •••       | 8 . 5         | •••           | RR  |
| व्याह्नितासिं     | •••   | चाचितामः                 | •••       | 8.4           | •••           | RR  |
| प्रतिभावमापः      | π     | <b>घेतभावमाप</b> ज्ञा    | •••       | 8.0           | •••           | 3   |
| इष्ठं             | •••   | इष्टं                    | •••       | 8२६           | •••           | 4   |
| सिपछीकरणावचारः    |       | सपियङ्गीकरणविचारः        |           | 8 २ ह         | •••           | 10  |
| <b>अश्वमेधपन</b>  | •••   | व्यक्षमेधपतं             | •••       | 84.           | •••           | . 4 |
| संविश्रेषं        | •••   | सविश्रेषं                |           | 8 28          | •••           | 34  |
| चात्रक्यं         | •••   | श्रत्यन्तं               | ***       | 8\$=          | •••           |     |
| इासस्यादस्यत      | ात्   | <b>ज्ञासस्यास्य</b> लात् | • • • •   | 850           |               | 38  |
| इत्युत्तो         | •••   | इत्युक्तेः               | •••       | 588           | •••           | 33  |
| पश्चयद्भिक        | •••   | पाञ्चयिञ्जक              | •••       | 860           | •••           | 88  |
| प्रदापयत्         | •••   | प्रदापयेव्               | •••       | 8€⊂           | •••           | 34  |
| क्षयंचनन          | •••   | कथञ्चन                   | •••       | 808           | •••           | 99  |

=

| चग्रविः।      | 1   | ग्रुद्धिः ।   |       |     | प्रसादः ।    | पञ्ज | विकास |
|---------------|-----|---------------|-------|-----|--------------|------|-------|
| मध्याक्रे     | ••• | मधाङ्गे       | •••   | ••• | 920          |      | 28    |
| प्रमाखिकोत्ते | i   | प्रामाणिक     | क्तिः |     | 854          | •••  | 22    |
| प्रतिषिद्धाते |     | प्रतिषिध्यते  | r     |     | N.=          | •••  | 28    |
| दानेवी        | ••• | दानवौ         | •••   | ••• | प्रद         | •••  | 3)    |
| <b>हतं</b>    | ••• | रुवं          |       | ••• | प्रह         | •••  | 20    |
| सौगाग्यो      | ••• | सौभाग्ये      | •••   | ••• | 4.RE         | •••  | 8 9   |
| प्राव्य       | ••• | म्बद्धः       | •••   | ••• | ४३१ .        |      | 93    |
| मधूरलात्      | ••• | मधुरतात्      | •••   | ••• | 488          | •••  | ¢     |
| तथ            | ••• | तथा           | •••   | ••• | <b>५</b> ,8२ | •••  | 90    |
| प्राणिन       | ••• | पाखिना        | •••   | ••• | 288          | •••  | 2     |
| विद्याद       | ••• | विद्याद       |       | ••• | 444          | •••  | 20    |
| ग्रान्तिकाध्य | ाय  | ग्रान्तिकार   | यायं  | ••• | प्रहर        | •••  | 2     |
| प्रदं         | ••• | श्राद्धं      | •••   | ••• | <b>४</b> ६8  | •••  | 20    |
| वध्यस्य       | ••• | वैश्यस्य      | •••   | ••• | ¥0\$         | •••  | 8     |
| तिष्णु        | *** | विष्णु        | •••   | ••• | 408          | •••  | 20    |
| खन्दति        | ••• | स्पन्दति      | •••   | ••• | 304          | •••  | 2     |
| उद्धें        | ••• | ক্ৰ           | •••   | ••• | 400          | •••  | 8     |
| पर चिनस्य     |     | पर्दिनस्य     | •••   | ••• | 46.          | •••  | *     |
| उभयाचा        | *** | उभयधा         | •••   | ••• | ñc.          | •••  | 20    |
| चन्द्रक्यहण   | ••• | चन्द्रार्कयङ् | मो    |     | 450          | •••  | 0     |
| प्रतिपन्मिश्र | ,   | प्रतियन्मिश्र | T     | ••• | €-8          | •••  | १३    |
| युद्धत        | ••• | प्युद्धृत     | •••   | ••• | ६१२          | •••  | १२    |
|               |     |               |       |     |              |      |       |

### श्रीश्रीजगन्नायः ग्ररणम् ।

## गदाधरपद्वती—

कालसारः।

## श्रीगरोशाय नमः।

खविञ्चमस्तु ।

त्रशेषवर्णात्रमधर्मग्रहये

गरीरिमाचस्य च गीप्रमुक्तये।

निजालये श्रीपुरुषोत्तमाइये

द्धदपुर्दारुमयं मदः श्रये ॥

रचितजनिकायाभीष्टदानैकद्चः

चपयतु विमलाया दीनपचः कटाचः।

स्पतिनिकरगभीरामोधिमधार्थरतानयनक्रतिविधाने नूत्रयत्नेऽन्तरायम्॥

हण्णात् कौणिकवाजपेयि-तुल्लीवंग्राद् स्हत्पण्डितान्नीतिग्रन्थकतः स रायगुरुरित्यासीद् वदान्याग्रणीः।

पुतः ग्रारद्वाजपेयमस्कद् विद्वान् हरेकण्यस्नायश्रीमहिषीगुरुर्चलधराभिस्थोऽग्रजो ग्रामकत्॥

वेदानादिषमसाग्रास्त्रनिसयो नीसाम्बराखोऽनुज सास सार्त्तवरोऽतिदैवविदश्रसाहित्यविद्यार्णवः । मद्वैयाकरण्य नीतिनिषुणः श्रीनी लगेले गित्-र्मञ्चलानमुखोत्सवान(V)वयवस्तोचं च योऽवर्णयत्॥ धीरेगान् खवितीर्णदापितमहासत्प्रासनेषूत्तमान् मंखाणाध्वरिणो विधाय धनदप्रखान् दिजांसान् वधात्। प्राज्यं प्राप चतुर्मुखादिकमद्रायज्ञेषु मन्तोषयन् विप्रादीनपि राजसूयजनितं यौधिष्ठिरं यो यगः॥ यो नी साम्बर्रा न गुर्विभिधया खातः चितौ श्री हरे-कृष्णाखाचितिपेश्वरेभपतिना शिखेण समानितः। मौवणींदुचतुष्टयाच्युतंपदाभोजाद्वहणातप-त्राणेन दिपचामरप्रसृतिभिञ्चात्मीयचिक्नैः परैः॥ यज्वा यचरमो यमेश्वर इति भ्राता वहत्पण्डित-सं नीलामरनामकं च पितरं श्रीजानकीं मातरम्। नला राजगुर्गदाधरसधीसं कालमाराभिधं ग्रन्थं प्रार्भते विलोका यमिमं निःसंग्रयाः स्यू र्जनाः॥ कालो दिविधः, नित्यो जन्यस्थेति। तत्र कालकालापरनामा देखर एव नित्यकासः। म विश्वक्षद्विश्ववेदात्मा योऽभिजः कास-कालो गुणी पर्वविद्यः प्रधानचेत्रमिति निर्गुणः संसारमोष्टिखिति-वसहेतुरिति श्रुतेः।

<sup>(</sup>१) मच्चानमुखोत्सवाद्यवयवस्तोत्रं च योऽवर्धयत्।

कोर्बेऽपि,-

श्रनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽचयः परः । मर्व्वगलात् खतन्त्रलात् मर्व्वात्मलान्महेश्वरः ॥ पुनस्तत्र,—

परं ब्रह्म च भूतानि वासुदेवोऽपि ग्रद्धरः। कालेनैव हि सृज्यन्ते ष एव ग्रस्ते पुनः॥ ज्योतिः ग्रास्तेऽपि,—

भृतानामन्तकत्कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः ।
तस्मात् जन्यस्य कालस्य वासुदेवादीनामपि कलनात् कालकालः
परमेश्वरः तस्य मर्व्वकर्मार्भे सार्त्त्रेयवात् तिल्रह्मणमण्पेचितम् ।
तथाच सारन्ति,—

मर्जेषु कालेषु समम्तदेशेष्वशेषकार्येषु तथेश्वरेश्वरः ।
सर्वेः खरूपेर्भगवाननादिर्ममास्तु माङ्गल्यविद्यद्वये हरिः ॥
यस्य स्रत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञित्रयादिकम् ।
नूनं समूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥
वामनपुराणे,—

सर्वमङ्गलमङ्गलां वरेषां वरदं ग्रुमं।
नारायणं नमक्तत्य सर्वकर्माणि कारयेत् ॥ इति
परमेश्वरस्य निर्गुणलात् कयं तत्स्वरणिमति चेत्, उच्चते,—
नित्यो जन्यस्य कालो दौ तयोराद्यः परेश्वरः।
सोऽवाङ्मानसगम्योऽपि<sup>(१)</sup> देही भक्तानुकम्पया ॥ इति

<sup>(</sup>१) खवाङ्मनसगम्बोऽपि।

तस्य देरवत्त्वाच विरोधः। तथाच वाग्रिष्टरामायले,—

खड्गपायधरः श्रीमान् कुण्डली कवचान्तिः।

ऋत्यद्गमयोदार्वक्रयद्गममन्तिः॥

मामदाद्यकाद्दामभुजदाद्यकोद्गटः।

स्वाकार्यमया वङ्गा दृतः किङ्गर्यनया॥ इति

कासस्क्षं यदायस्ति तथापि भक्तानुजिष्टचया स्त्रीकृतनाना-मूर्त्तीस्त्रस्य नानामूर्त्तिसर्णम् ।

तथाच भगवद्गीतायाम्,-

यो यो यां यां तत्रं भक्ता श्रद्धयार्चित् मिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विद्धाम्यहम् ॥
स तया श्रद्धया युक्त सास्याराधनमीहते।
सभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हितान्॥

तथा, → १४७ विक्रास्थित विक्रास

यजन्ते मालिका देवान् यचरचां मि राजमाः । प्रेतान् भूतगणां यान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥

श्रतएव जोनेव्याविदिदा गोपां मर्व्वेऽपि खेच्छ्या एनेनां देव-तामुपांगते। एवं च मायाया श्रपि ईश्वरात्मकतात् नानाविध-श्राक्तिमयी मा जनवति काजतलमेवादौ।

भाविभवद्भूतमयं कस्त्रयति जगदेष कास्रोऽत दति । भोजराज्यवागमधङ्गाकोकाविष जन्यकासस्य भायाकार्य्यतं सङ्ग-च्छते। भाविभवद्भृतमयमित्येकं पदं खार्यं मयट्प्रत्ययः। श्रार्भ दव कर्मणोऽन्तेऽपि ईश्वरस्मरणं कर्त्त्रयम् ।

यत्करोषि यदश्रामि यच्चुहोषि ददामि यत् ।

यत् तपस्रमि कौन्तेय तत् कुरुष्य मदर्पणम् ॥

दिति भगवद्कीः ।

पूर्ववदत्रापि यो यां यां देवतां ममुपास्ते म तत्र ममर्पयेत् चेत् न कश्चित् विरोधः। देवीपूजादौ श्रिष्टा श्रिप तथा एव श्राचरिन्त<sup>(१)</sup>। ईश्वरद्धपात् नित्यकालात् जन्यकालोत्पत्ति-सौत्तिरीयणाखायां नारायणीये श्रूयते।

सर्वे निमेषा जित्तरे विद्युतः पुरुषादिधि ।
कत्ताः काष्टा सुहर्त्ताय अहोराचाय<sup>(२)</sup> सर्वेगः ॥
अर्द्धमासा मासा स्टतवः संवत्सराय कत्त्यान्ता दति ।

मनुर्पि,—

कालं कालिनिक्तीय नचनाणि यहांसाया।
स्टिष्टं मधर्ज चैनेमां सष्टुमिच्छिनाः प्रजाः॥ इति।
तच निमेषादिपरार्द्धान्तेषु जन्यकालेषु संतत्सरः प्रधानस्तः,
अन्ये गुणस्ताः।

मोऽकामयत, दितीयो मम त्रात्मा जायेत दति मनमा वार्ष मिथुनः समभवत् तदात्रितः समभवदिति त्रुतेः । एवं नानासमुत्यानाः कालाः संवत्यरात्रिताः । त्रुणुत्रस्य महत्त्वस्य सर्वे समवयन्ति तम् ॥ दति श्रुतेस्र।

<sup>(</sup>१) कार्थं।

<sup>(</sup>२) तथाचरिनत ।

<sup>. (</sup>३) बहोरात्रस सर्वग्रः।

कालस्य जन्यलपचे चिर्चिप्रप्रत्ययोपाधिदारेण कलयत्याचिप-तीत्यर्थः दति युत्पत्तिः । तथाच जन्यकालेष्ट्यादौ संवत्वरो नाम मासायनाद्यवयवयुक्ते। श्रवयवौ कालविशेषः, सम्यग् वसन्यसिन-यन नुमासादय दति युत्पत्तेः । स च दादशमासात्मकः दादशमासाः संवत्यर दति श्रुतेः । स पञ्चविधः, तथाच ज्योतिःशास्त्रे,—

सौरो वर्षः पञ्चषश्च त्तरिश्च तत्वासरैः ।
वार्ष्यत्य एकषश्च त्तरिश्च त्वासरैः ॥
सावनोऽब्दः षश्चधिक निश्च तेर्वासरैभवेत् ।
चतः पञ्चाश्चरिधक निश्च त्वाद्दिनः ॥
नाचनोऽब्द सत्विंशत्यधिक स्विश्वतिर्दिनः ।
पञ्चत्यब्दाः सौर-जैव-सावनैन्दव-तार्काः ॥
तार्काणामयं तार्को नाचन दत्यर्थः । तन्न,
सौर्भावनचान्द्राणां त्रौतसार्त्तेषु कर्मस् ।
उपयोगोऽथ नाचनसायुद्धिऽधिवत्सरे ॥
वार्ष्यत्यसोपयोग द्ति वर्षेषु पञ्चस् ॥
तथाच माधवाचार्याः,—

त्रब्दे पञ्चविधे चान्हो वतादौ तिसकादिके।
सुजन्मादिवते सौरो गोसचादिषु सावनः॥
चयोऽष्याचार्य्यसेवादौ विकल्प्यनो निजेच्छया।
त्रायुद्धि हि नाचचो बाईसात्योऽधिवत्सरे॥
चान्हाणां प्रभवादौनां पञ्चके पञ्चके युगे।
सम्परौदान्विदित्येतत् ग्रब्दपूर्व्यास्त वत्सराः॥

तिलं यवो वस्त्रधान्ये रजतं दीयतेऽच तु । तत् स्पुटं विष्णुधर्मीत्तरे,—

संवत्तरे तु दादृषां तिलदानं महाफलम् ।
परिपूर्वे तथादानं यवानां दिजमत्तम ॥
ददापूर्वे तु वस्ताणां धान्यानां चानुपूर्वके ।
दत्पूर्वे रजतस्यापि दानं दत्तं महाफलम् ॥
दित संवत्तरिनिर्णयः ॥

त्रथ त्रथनम् । त्रयगतावितिधातोर्निष्यन्तं, त्रथते यात्यनेन स्रत्वयेण सूर्यो द्विणात्रामुत्तरात्रां चेति, ऋतुवयमयनम्। तच दिविधं, द्विणायनमुत्तरायणं चेति।

यान् षएमासान् दिचणादित्य एति यान् षएमासान् उदगा-दित्य एतौति श्रुतेः।

त्रयनप्रकरणे, मौरमानमधिकत्य ऋत् त्रयं सादिति विष्णुधर्मा-त्तरोक्तेस । एतेन त्रयनदयं मौरमानेनैवेति सिद्धम् ।

तच मत्यव्रतः,—

्द्वेतारामवाषादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ । दचिणाप्रामुखे कुर्वन् न तत्-फलमवाप्रुयात्॥ भविष्योत्तरे,—

पुष्णानि यानि कर्माणि वर्ज्ञयेद्चिणायने । उग्रदेवतानां तु प्रतिष्ठा ऋत्रैव<sup>(१)</sup> कार्य्या । तथाच वैश्वानर्मं-चितायाम्,—

<sup>(</sup>१) अनापि।

माद्रभैरववाराष्ठनार सिंच चिविक्रमाः ।

मिच्च सुरच्नी च खाया वै दिचिणायने ॥

एतासां देवतानां ग्रेडप्रासादादिकमयच कार्य्यम् ।

यस्य देवस्य यः कालः प्रतिष्ठाध्वजरोपणे ।

गर्कापूरिश्रालान्यासे स कालः परिकीर्क्तिः ॥ इति देवीपुराणोक्रोः ।

येषां येषां कर्मणां यच यच श्रयने उन्नेखः, तच तच तानि कार्य्याणि। दिचिणायने कार्य्याकार्य्यविचारो य स्त्रन्यः, म चातुर्मास्य प्रकरणे वाचाः । द्रत्ययननिर्णयः ॥

त्रथ चतुः। स च चगतावित्यसाद्धातोर्निष्यत्रः। इयक्तिं गच्छति
त्रत्रोकपुष्पाद्यसाधारणिक क्रिमिति वसनादिकालविष्रेषः चतुः।
स षड्विधः, वसनायी प्रवर्षा प्रदूमना प्रिणिरभेदादिति, (१) षड्वा
चतवः इति श्रुतेः। यनु, दादणमासाः पञ्चन्ते हेमना श्रिणिरयोः
समासेनेति श्रुतावुक्तम्। तदनुमन्त्रणीयस्य षष्ठस्य प्रयाजस्य त्रभावात् प्रयाजानुमन्त्रणार्थम्। न तु च्हुत्नां पञ्चलप्रतिपादनार्थमिति श्रेयम्। ते च च्हतवः (१) चेनवे प्राखायां वसना दत्यादि
मासाभ्यां मासाभ्यां भवन्ति। तथाच काण्वप्राखायां, इष्टकोपाधानमन्त्रेषु पर्यते, मधुद्य माधवस्य वासन्तिका च्ह्न, ग्रुकस्य ग्रुपिस्य
येगा च्ह्न, नभस्य नभस्यस्य वार्षिका च्ह्न, इण्योर्ज्यस्य ग्रारदा च्ह्न,
सहस्य सहस्य हैमन्तिका च्ह्न, तपस्य तपस्यस्य ग्रेणिरा च्ह्न इति,
तत्र वसनाः प्रयमः। सुखं वा एष च्ह्ननां यद्वसन्त इति श्रुतेः।

<sup>(</sup>१) श्रिश्चिरा इति।

<sup>(</sup>२) ते च विश्रेषा ऋतवः।

ते च प्रत्येकं दिविधाः, चान्ताः सौराश्चेति। चैत्राद्यात्मकानां वसन्ता-दीनां चन्द्रगतिकस्पितलात्, चन्द्रमाः सद्दोताषड् स्टूट्रन् कत्त्यवती-ति श्रुतेश्व। नत् स्टूट्रनां मासदयात्मकलमेवेत्युकं श्रिधमासपाते चान्द्रनीं कयं निर्वाद् दित चेत् उत्यते। ययोर्मासयोर्मध्ये मस्त्रमा-सपातः (१) तयो यों मास उत्तरः तसिंस्तस्थान्तर्भावः, तथासौ षष्टिदि-नात्मको मस्तिनग्रद्धभागदयात्मक दति न का प्यतुपपत्तः। तस्त्र मस्त्रमासविचारे स्पष्टी (१) भविष्यति। सौरेषु स्रत्यु मीनादिलं मेषादिलञ्च वैकस्थिकम्।

तदाच खद्भगार्यः,—

मीनमेषौ र्विर्यावत् वमन्तसद्देव हि । विश्वष्टः,-

यावन्त्रेषष्ट्षौ भानु वंसन्तमावदिखते। इति

जभयोर्विकन्यः, तदनुसारेण ग्रीमादयोऽपि यथायथं विक-स्यन्ते । स्टह्नां विनियोगस्त श्रुत्याद्यवगतः, तथात श्रुतिः, वसन्ते ब्राह्मणः श्रमीनादधीत, (२) ग्रीमो राजन्य श्रादधीत, प्ररदि वैश्व श्रादधीतेत्यादि । स्टितस्त, वसन्ते ब्राह्मणसुपनयीत ग्रीमो राजन्यं श्ररदि वैश्वमित्यादि ।

विष्णुधर्मात्तरे,-

षण्मूर्त्तिवते षट्स वमनावृत्यु प्रथक् प्रथक् पूजाविशेषा उक्ताः। तथा वसनो सानानुलेपनादि दानं, एवमन्यनायुदासार्य्यम्। इत्यृतुनिर्णयः॥

<sup>(</sup>१) मलमासी दृश्यते। (२) स्मुटी। (१) अमीं खादधीत।

श्रय माधाः। माधिति सानां चन्द्रवाचकं प्रातिपदिकं तस्वायमिति सन्नन्धार्थे श्रण्<sup>(१)</sup> माधः, एवं सित चान्द्र एव माधो सुख्यः, श्रन्यच गौणः, सर्वेषां साधार्ष्याय श्रयांन्तरसुच्यते, मधी परिमाणे दति धातोर्निष्यक्षोऽयं मासग्रन्दः, माखेते परिमीयेते यावता कालेन चन्द्रदक्षिचयौ, स चान्द्रमाधः, चन्द्रदक्षिचयाभां खयं मस्त दति वा माधः। तथाच

(१) सिद्धान्तित्ररोमणी,—

माखन्ते परिमीयन्ते खकाखदिह्न्हानितः । तस्तादेते स्तता मासा चिंग्रत्तियिसमित्तताः ॥ सूर्यंख राग्निगतिर्यंच परिमीयते स सौरो मासः । श्रहोरा-

तथाच ब्रह्मसिद्धान्ते,—

पान्द्रः ग्रुक्तादिदर्भान्तः सावनिक्तंत्रता दिनैः। एकराभौ रविर्यावतकालं मासः स भास्करः॥

चाणां चिंगत्मङ्खा यच परिमीयते स सावनो मासः।

भास्त्ररस्थायमिति भास्त्ररः सौरः। नचनाणां सप्तविंग्रतिसङ्घा परिमौयतेऽनेनेति नाचनो मासः।

तद्त्रं विष्णुधर्मीत्तरे,-

सर्वर्वपरिवर्त्तेम् नाचनो मास उचाते।
तथाच चान्द्रमौरसावननाचनाञ्चतुर्विधा मासाः। तच सौरमा-

<sup>(</sup>१) खया मासः। (२) तर्कसिद्धान्तश्चिरीमयौ।

यस त्राचन्तो नेषादिराशीनामाद्यनाभ्यां व्यवस्थितः। यावनेषु पुरुष्टिविधान्तः। यावनेषु पुरुष्टिविधान्तः पूर्णिमान्तयेति। दर्शान्तले सघ्हारीतः,—

द्राग्नी यत्र इयेते मामादिः म प्रकीर्त्तिः।
त्रिमोमी स्रती मध्ये ममाप्ती पित्रमोमकौ। द्रित
दर्भपौर्णमामयाजिना ग्रुक्तप्रतिपदि दर्गिष्टिदैवते दन्द्राग्नी इयेते,
पौर्णमासे त्रिग्नोमौ दृष्टिदैवते (१) इयेते। दर्ग पिष्डपित्रयश्चे
पित्रमोमकौ देवौ दित दर्गान्तो मामः।

पूर्णिमानाले तु महालयप्रकरणे सार्थते,—

श्रम्ययुक्तप्णपचे तु श्राद्धं कार्यं दिने दिने । इति

दर्भानाले तु भाद्रक्षणपच इत्युक्तं स्थात् । तस्मात् दर्भाना

पौर्णमास्थनालयोः समो विकस्यः । श्रनुष्ठानन्तु कुचित् वचनविभेषात् भ्रिष्टाचारादा व्यवस्थितम् ।

यत्तु ब्रह्मसिद्धान्ते,—

श्रमावास्थापरिक्कि माधः स्थात् ब्राह्मणस्य तु । सङ्क्रान्तिपौर्णमासीभ्यां तपैव नृपवैष्ययोः ॥

इत्युक्तं तत्कर्मविशेषे बोध्यं।

यथा विष्णुपुराषे,—

माघासिते पञ्चदशी कदाचित् उपैति योगं यदि वार्योन। दिति शतिभवायुक्तमाघदर्शे यत् आद्धं विचितं तद् ब्राह्मणस्थाधिक-

<sup>(</sup>१) नाचाने नचानं नियामकं। (२) देवते।

फलद्मिति। एवं चवित्रोः सौरपौर्णमास्यन्तमासयोद्दाहार्यम् । तेन सर्ववर्षम् सामान्यतः सर्ववामपि पौर्णमास्यन्तमासो पाद्यः। तस्य सुख्यलादाचाराद्यः। चान्द्रमासानां चैवादिसंद्र्या नचवप्रयुक्ता। तथाच, चिवायुक्ता पौर्णमासौ चैवी सास्मिन् मासे ऋस्ति इति चैवो मासः। दर्भाना-चान्द्रेऽपि मध्ये तादृभपौर्णमासीसन्तात् चैवादि-संज्ञाप्यविद्द्या, एवं वैभाखादिष्क्रयम्। तच चित्राविभाखादि-योगस्थोपज्ञचण्यतात् तत्प्रत्यासम्बद्धात्यनुराधादियोगोऽप्यविदद्धः। तदुक्तं,

च्योतिः ग्रास्त्रे,—

विचादि चितयं चैचत्रावणानेषु पश्चसः ।

वास्णादिचयं भाद्रेऽयात्रिने रेवती चिकम् ॥

कर्मादिमाघान्तेषु स्थात् कत्तिका रोहिणी तथा ।

फास्गुने पूर्वकास्गुन्यादिचयन्तु प्रयोजकम् (१) ॥

तत्र सामान्यतः कर्त्त्रं वानि । श्रुतेः, मासि-मासि वोऽप्रनं वा पित्वणाम् ।

तथा स्कान्दे,-

एकभक्तेन यो देवि मासं मार्गं चिपेश्वरः ।
द्वादि वतानि, एवं माघमासादिषु तिचदानादीनि विष्णुधर्मीत्तराद्युकानि । कर्मविशेषेषु मासविशेषाणां प्राश्रस्यं, यथा,—
क्राभुद्ये रवेर्मानं चन्द्रस्य पिष्टकर्मणि ।

यत्रे सावनमित्याङ क्चम्हचनतेषु च ॥

<sup>(</sup>१) प्रयोजनं ।

त्राभ्युद्ये विवाहादौ । पाद्मे,—

देवव्रत-द्रषोत्सर्ग-चूड़ाकरण-सेखलाः। सौरमानेन कर्त्तवा त्रभिषेकसायाब्दिकः॥ व्यासः.—

स्तकादिपरिच्छेदो दिनमासान्दगास्तथा।

मध्यमग्रहभुतिश्च सावनेन प्रकीर्त्तिता ॥ दत्यादि

दति ग्रुद्धमासनिर्णयः। मस्तनिर्णयसु अग्रुद्धकासप्रकरणे लेखाः।

त्रथ मासकत्यानि। यद्यपि महाभारतादिषु मार्गग्रीर्षादिलेन

तत्कत्यानि सिखितानि तथापि चैचस्य स्व्यादिप्रवत्तत्वात् तमा
रभ्य सिख्यते।

तथाच ब्राह्मे,—

चैचे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽइनि ।

श्रक्तपचे समयन्तु तथा सूर्योदिये सति ॥

प्रवर्त्तयामास तदा कालस्य गणनामपि ।

श्रहान् नागानृद्धन् मासान् वस्तरान् वस्तराधिपान् ॥ इति ।
चैचमासकृत्यं, महाभारते,—

चैवन्तु नियतो मासमेकभन्नेन यः चिपेत्।

सुवर्णमणिमुक्ताको कुले महित जायते ॥

मासनतादिकमसादेशे पूर्णिमान्त (१) एव कुर्वन्ति।

<sup>ः(</sup>१) पूर्विमान्तमास एव।

बाह्ये कार्त्तिकपूर्णिमान्तसुक्ता,-

मार्गशीर्षस्य मामस्य प्रारम्भे प्रतिपद्यपि । नववर्षसमारम्भो देवै: इतयुगे छतः ॥ इति ।

पूर्णिमान्तस्य मामस्य<sup>(१)</sup> मुख्यलेन कस्पितलादिति दिक् । तच वच्चमाणे मध्याक्रक्ष्पैकभक्तकाले मामादिप्रतिपत्तिये**रभय**दिन-गामिले उत्तरदिने वतारमः कार्यः<sup>(१)</sup> ।

तथाच स्रतिः,-

मासि संवत्तरे चैव तिथिदैधं यदा भवेत्।
तचोत्तरोत्तमा याच्चा पूर्वा तु स्थात् मिलस्तुचः॥
मासादितिथेर्वर्षादितिथेय दैधे यत् कसीर्भं तत्कर्मयुक्तकासस्य दिनदये सभवे दत्यर्थः। सर्वकर्मार्भो सङ्कल्य त्रावस्यकः।
तथाच भवियो,—

मद्भार्थन विना विष्र यत्किश्चित् सुर्ते नरः ।
फस्तश्चार्थात्यकं तस्य धर्मस्यार्द्धचयो भवेत् ॥
ग्रह्मिगङ्खामारसीय कांस्थरूपादिभिस्तया ।
मद्भार्थो नैव कर्मयो स्वयये च कदाचन ॥
ग्रहीत्वौदुम्बरं पाचं वारिपूणं गुणान्वितम् ।
दर्भवयं मायमूलं फसपुप्पाचतान्वितम् ॥
जन्नाग्रयारामकूपे मद्भार्ये पूर्विहिस्सुखः ।
माधार्णे चोत्तरास्थे ऐशान्यां निचिपेत्ययः ॥

<sup>(</sup>१) पूर्विमान्तमासस्य।

तासपात्रस्य त्रत्यन्तासभवे जन्मानं(१) ग्रहीला तत्करणम् । ग्टहीलौदुमरं पाचं वारिपूणं गुणान्वितम्। खपवासन्तु ग्रह्मीयात् यदा वार्य्येव धारयेत् ॥ इति वारा-ष्ठोत्रे:।

पौर्णमास्यूलेखेन श्रुक्तपचीको वैवर्थ्याप मासपचितयीनाञ्च निमित्तानाञ्च सर्वेगः। उन्नेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग् भवेत्॥ इति भवि-योक्तेः पचोत्तेखः कार्य्य एव ।

एवं कृष्णपचामावाखयोर्षेखः।

वतमारभ्यासमापने दोषः ।

परिग्टश्च व्रतं सम्यगेकादम्यादिकं नरः।

न समापयते तस्य गतिः पापीयसी भवेत् ॥ इति विष्णु-रइक्षोक्तेः(१)। श्रापदि तु जलादीनां न व्रतप्रलं।

> श्रष्टौ तान्यवतन्नानि श्रापो मूलं पत्तं पय:। इवि ब्रीह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥ इतिप्रास्तात्। सर्वभृतभयं वाधिः प्रमादो गुरुपासनम्। त्रवतप्रानि चोच्यने यहदेतानि ग्रास्ततः ॥ इति भवि-

खोत्रेख।

त्रय वैत्राखमासकत्यम्।

भारते,-

निस्तरेदेकभक्तेन वैज्ञाखं यो जितेन्द्रियः।

नरो वा यदि वा नारी ज्ञातीनां श्रेष्ठतां व्रजेत् ॥ स्कान्दे धनदलमणुक्रम् ।

पाद्मे च,-

यः परित्यच्य वैशाखं व्रतमन्यदुपाचरेत् । स्वकरस्यं महारत्नं हिला कोष्टं हि याचते ॥ श्रवैशास्त्री भवेत्पापी विशः श्रौतपरोऽपि च ।

ंतथाच,—

वच्छमाणसंयोगपृचक्तन्यायेनेदं व्रतं नित्यं काम्यस् । पुनः पाद्मे,—

वैणाखं मकतं मामं नित्यसायौ जितेन्द्रियः। जपन् इविष्यभुग् दान्तः मर्व्वपापैः प्रमुख्यते॥ तौर्ये चानुदिते स्नानमिति च।

तथा,-

वैशाखे पुष्पसवणे वर्जियलाय गोप्रदः ।

श्वला विष्णुपदे कच्यं स्थिला राजा भवेदि ॥

गोदानं मामान्ते । पुष्पसवणवर्जनस्य निषेधक्रपलात् "निषेधः
कासमाचने" इत्युक्तेः वैशाखमामप्रवेशमारभीव कार्य्यलं । इदं पुष्पवर्जनं देवार्चनकासीननिर्मास्त्रपुष्पेतरपरं, तद्ग्रहणस्य पूजाङ्गलेन
विहितलात् ।

तत्त्रानमन्तः। पाद्मे,—

वैशाखं सक्तं मासं सेवसङ्क्षमणे रवेः । प्रातः सुनियतः स्ताखे गीयतां मधुखदनः ॥ मधुहन्तुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात् । निर्विष्ठमस्त मे पुष्यं वैशाखस्तानमन्त्रहम् ॥ माधवे मेषगे भानौ सुरारे मधुसूदन । प्रातःस्तानेन मे नाथ फल्लदो भव पापहा॥

एतत् काम्यप्रातः स्वानं नित्यप्रातः स्वानोत्तरं मन्ध्यातः पूर्वमेव कार्यम् । प्रातः स्वाची ऋरणिकरणयसां प्राचीमवकोका स्वाया-दिति विष्णुस्रतौ सर्व्यमधारण्वेन काम्यनित्यस्वानोद्देशेनारणो-दयकास्वविधानात् (१) । प्रातः स्वानस्य दे स्याद्धिद्वारा कर्माधिकार-प्रम्यादकलात् काम्यस्य स्वानान्तरस्य प्रातः स्वानानन्तरमेव कास्व दित कास्तमेदमभवास न नित्यकाम्ययोस्वन्त्रेणानुष्ठानम् ॥

नतु मन्ध्याया त्रकरणे मर्व्यक्षमानिईलात् मन्ध्योत्तरं काम्यं प्रातःस्वानिमिति चेत् न । मन्ध्यायाः सूर्योदयावधिकलात् सूर्यो-दयोत्तरकासीनकर्मणामेव गन्ध्योत्तरलाधिकारमणादकलात् ॥

ननु सूर्यीद्यात् पूर्वं मन्धां समाय काम्यं स्नानं कर्त्ते श्र-मिति चेन्न । सूर्यीद्यावधिजगह्रपमन्धावाधापत्तेः सन्ध्यावसाने काम्यपातःस्नानं कार्यमिति वाकाभावाद्य ॥

ननु "न वासोभिः सहाजसम्" दति श्रजसस्तानस्य मनुना

<sup>(</sup>१) काम्यनियपातःसानोद्देशेनावयोदयकालविधानात्।

निषिद्धलात् कयं वक्कसानमिति चेत् न। तस्य यादृष्टिकसान-लेन निर्णयादित्यसमितिविस्तरेण<sup>(१)</sup>। एवं माघादिकास्यप्रातःसाने-व्यपि बोध्यम्॥ यन्तु,—

तुलायां मकरे मेथे प्रातः स्नानं तिलेः यह।
हिवयं ब्रह्मचर्यञ्च महापातकना श्रनम् ॥
दिति भारते उक्तम्। तिल्लिमहितस्नानपूर्वकं काम्यं व्रतान्तरम्॥
यस्, पाद्मे नारदेनोक्तम्,—

मधुमायस्य ग्रज्ञायानेकाद्यसामुपोषितः।
पञ्चद्यसञ्च भो वीर नेषमंक्रमणेऽपि च॥
वैशाखसाननियमं ब्राह्मणानामनुज्ञया।
मधुस्रदनमभार्च्य कुर्यात् मङ्गन्यपूर्वकम्॥

दति। तच व्यवखितो विकन्यः। तथाच, वैष्णवानां कार्त्तिकवत-वच्चेचग्रक्षेकादग्रामारमपचः। खस्य वैष्णवलादादौ तदुद्देगः कतः। व्रतस्थास्य वैष्णवानामावग्रकलिमिति हरिभिक्तिविलासादौ किखितम्। चिष्याणां मंकमणाद्यारभः। तेषां मौरमामेऽधिकप्रलग्नाष्ट्रप्रकेः। ब्राह्मणानां वैग्यानाञ्च चान्द्रमाम एवाधिकारात् पौर्णमास्यादिपचः। ग्राद्राणामण्यं पचः। "ग्रद्रा वाज्यनेथिनः" दति त्रापस्तम्बोक्ष्या तेषां मर्व्वकर्मस् वाज्यनेथिसमाचरणात् दति व्यवस्था।

नतु वच्छमाणचातुमां स्ववतवत् श्रवापि एकादकादिपचाणां सर्वमाधारस्यमसु दति चेन्न। तच सर्विषासेव पचाणां "दादक्यासेव

<sup>(</sup>१) विसारेण तन।

पारणम्'' दति सर्वमाधारण्यस्य वाचकलात् तथाचारात्। श्रच तु तादृगवाक्याभावात् तथाचाराभावाच ॥

त्रवास्मत्वित्वरणाः, चैवपौर्णमास्युपादानमपि त्रस्य व्रतस्य पौर्णमास्यन्तमासाभिव्यञ्जनम्, व्रतन्तु वैत्राखक्षस्पप्रतिपदाद्येवेत्याज्ञः॥

नेचिनु, पौर्षमाखुपादानं मद्भल्परिमित, तदिप युक्तम्। प्रातः प्रतिपदि मन्धातः पूर्वं कर्म्यखनिधकारात् मद्भल्पकर्णसानु-चितलात्। मन्ध्योत्तरं मद्भल्पकर्णे तु "वैग्राखं मकत्तं मामम्" दत्युक्तस्य साकत्त्रस्य वाधापित्तिरिति। श्रतो मामादितिये देधे उत्तरविद्धाया ग्राञ्चलेऽपि एतदचनवत्तात् पूर्वविद्धा ग्राञ्चा। एवं माधादिमासेऽपि() बोध्यम्॥ मद्भल्पवाक्ये तु श्रद्य चैत्रपौर्णमास्था-मित्यायुक्ता श्रः प्रातरारभ्य वैग्राखपौर्णमासीपर्य्यन्तं वैग्राखन्तमसं करिये दिति विग्रेषः। नेवलस्नानपचे तु वैग्राखसानमसं करिये दिति॥

श्रव जपस्तिति सामान्येनोक्ततात् सङ्घानुकौ गतं सहस्रमयुतं वेति सिद्धान्तितलात् ग्रतमंख्यकजपेनापि पापचयात् ग्रतजपेऽपि व्रतसिद्धिः। ग्रकौ तु प्रत्यदं सहस्रजपोऽत्यन्ताग्रकौ मासेन सचजपः कार्यः। जपोऽयं विद्वजपविधिना कार्यः। स जपविधिरसात्कते श्राचारसारे द्रष्टयः॥ स्त्रीश्रद्रयोस्तु स्नानम्,—

> ब्रह्मचनविशाश्चेव मन्त्रवत् द्वानिमयते । तुःषोभेव हि श्रृद्रस्य स्तीषाञ्च कुरुनन्दन॥

<sup>(</sup>१) माघमासेऽपि।

द्ति महाभारतोक्तरमन्त्रकमचापीति न गद्धनीयम्। श्रव मन्त्रग्रव्यस्य वैदिक्तमन्त्रपरलात्। प्रकृते तु मन्त्रग्रव्यस्य पौराणि-कलेन सार्त्तलात् स्त्रीशुद्राणामणधिकारः। श्राचारोऽपि तथैव। एतदिचारः श्राद्धप्रकरणे वच्छते ॥

श्रथ इविष्यद्रवाणि। भविष्योत्तरे,—
हैमिन्तकं सितास्त्रिः धान्यमुद्रास्तिला यवाः।
कालायकन्द्रनीवारा वास्तकं हीडमोचिका॥
कालेयं कालगाकञ्च मूलकं केवुकेतरत्।
कन्दं सैन्धवमामुद्रे लवणे दिधमपिषी॥
पयोऽनुष्टतमारञ्च पनमाम्बहरीतकी।
पिष्पली जोरकञ्चेव नागरं तिन्तिङ्गीफलम्॥
कदली लवली धाची फलान्यगुड्मैचवम्।
श्रतेलपकं मुनयो हविष्याणि प्रच्चते॥
कन्दोगपरिगिष्टे,—

स्विष्येषु यवा मुख्याखदत्तु नीह्यः स्तताः।

माषकोद्रवगौरादीन् मर्व्याखामेऽपि वर्ष्णयेत्॥

मात्ये कलायायणका मुद्रा मियुनानां हवीषि च।

एतेभ्योऽन्यानि नाश्रीयात् मियुनानामनापदि॥

श्रमस्यमहितायाम्,—

नारिकेसप्तसञ्चेत कदली सवली तथा। श्राममामस्त्रश्चेत पनसञ्च हरीतकीम्॥ व्रतान्तरे प्रशस्तञ्च हिवयं मन्यते वृधः॥ हैमिनितं हेमन्तपकं गाल्यपरनामकं। सुद्राः स्थूलसुद्रस्यिति-रिकाः, स्थूलसुद्रानां सामान्यतोऽयभच्यलात्। "निष्पावा त्राढ़का सुद्रा" दित वच्छमाणस्कान्दोक्तौ सुद्रस्य हविस्थलाभावोऽपि स्थूल-सुद्रपर एव। त्रन्यया वज्जवाक्यप्रतिपादितं सुद्रहविस्थलं स्थाहतं स्थात्। कालेयं तिक्षणकविग्रेष दित रुद्धाः। कन्दं शूर्णादि। पयोद्धिरुतानि गयान्येव।

> त्रमाहियं तथा यर्पिर्दधिचीरमथापि वा। एतद्वतं<sup>(१)</sup> मतं विप्रा मैथुनस्र विपर्ययः॥

दति विष्णुधर्मीत्तरोतेः। पनमं दांचिणात्यप्रसिद्धस्पोतपाननं पनमयतिरिक्तम्। हरीतकी वन्येव। स्प्रशेतपानकपनस्य ग्रास्य-हरीतक्याय सामान्यतोऽप्यभच्यावात्। जीरकमप्पव<sup>(१)</sup> ग्रुक्तजीरकं, कृष्णजीरकस्य श्राद्धेऽपि निषेधात्। नागरं ग्रुप्छी तस्य श्रार्ट्रक-प्रकृतिकलात् श्रार्ट्रकस्य हिस्यलमिति श्राचार्याः। ऐचवपदेन दसुरस एव ग्राह्यः। खण्डादीनां ग्रुडप्रकृतिकलात् ग्रुडलम् दत्य-स्मत्पितामह-कृष्ण्यहत्पण्डितादीनामाग्रहः॥ वस्ततस्य यथा दनु-रसस्य पाने ग्रुडलं तथा ग्रुडस्य पुनःपानेन खण्डादिलमिति हिन्यलमेव। ग्रिष्टाचारोऽपि तथेव दृश्यते। ब्रीस्थः ग्रुर्प्यक्षधान्यम्। गौराः श्रेतसर्पपः। "मुख्यालाभे प्रतिनिधिरपि ग्रास्तार्थः" दित प्रतिनिधिकरणन्यायेन प्राप्तान् माषकोद्धवगौरादीन् वर्ष्णयेदित्यर्थः। मिथुनानां दिदलानां मध्ये कलायचणकाः खुडि-

<sup>(</sup>२) जीरकमच।

याचणा इति प्रसिद्धा हिवियाः। हिवियानिषेधं प्रक्रत्य "वर्तुं ला-यणकाश्चापि" इति स्कान्दोक्तेः, वृह्चणकादीनां निषेध इति केचित्। बहवः स्यूष्ठकलायचणकयोः<sup>(१)</sup> पार्थक्यं। चणकम्कोला इति देप्रान्तरीयः। कलायो वर्त्तुं लक्तलायः इति नानाविध-संप्रयात् श्रसादेशचणकवाष्ट्यानां देशान्तरवाष्ट्यकोलानामणुभयो नैव हविय्वतमिति वदन्ति। इति परिगणनपचो वज्जयस्यकाराणां सम्पतः॥ हविर्योग्यं हविय्यमिति विज्ञानेश्वरः<sup>(१)</sup>। कत्यतह-कारास्तु मधुमाषमांचेतरश्राद्धदेयं हविय्यमित्याद्धः। तदनुया-यिनस्तु हविय्यदेथेव्यपि<sup>(१)</sup> विविच्यागणयन्। तथाच वेशवार-हिङ्गमरीचादीनां व्यञ्जनसंस्कारकलेनोपात्तलात् न तेषां हवि-यालम्॥ भविय्योत्तरादिगणितद्रयोभ्योऽधिकहविय्याणि, यथा,—

गोधूमण्यामाकि । यान्यानि । सुखाणिकास्यक्ति भेद-पटोक्तिन्दुक्खर्जूरामातककर्मरणा दति प्रसिद्धफललकुच्टहददरी-वैकद्धतदादिम्टहतीफलानि । मध्यानुक्यालूकक्षेक्विदारीणता-वरीतालम्बीफलालूयितिरिक्षम्बीलुभेददीर्घमूस्कानीति मूसानि । पालद्भायदिरतुक्षमीतण्डुकीयक्षम्पपिप्पकीकुषाण्डवात्तांकु (४)काक-जङ्गाकुम्भस्रमृणक्षकेनुवर्जितानि ग्राकानि । मर्व्वगयविकाराः । वेबाद्धरं कर्पूरं लाजास्विति ॥ एतद्व्याणां हिवस्ववादिविवेकः त्राद्ध-प्रकरणे लेखः ॥

<sup>(</sup>१) यद्यः कलायचयक्योः।

<sup>(</sup>२) इवियोग्यं इविष्यं स्वात्।

<sup>(</sup>३) श्राद्धदेयेष्वपि।

<sup>(</sup>४) वार्त्ताकी।

नतु मधुमायमां श्राद्धदेयलेन इविखलिमिति चेन । मायमसूरमधुमां पराक्षमे धुनानि व्रत्येऽइनि वर्जयेदिति वाक्यात्, मायस्य इविखप्रतिनिधिलिनिषेधाः ॥

यदा वैगाखपौर्णमामी परिदने जपादिकालयापिनी तदा परिदने जपादिमामकत्यं (१) कार्यम्, "कर्मणो यस्य यः कालः" दिति रुद्धयाज्ञवरक्योक्तेः । इतिस्थमोजनस्य तु इतिस्थितरभोजननिरुक्तिक्षपत्वात् । "निषेधः कालमावने । निषेधसु निरुक्तात्मा कालमावमपेचते" ॥ दति रुद्धगार्योक्तेः । एकभक्तकाले पौर्णमास्यभावात् इतिस्थाकरणेऽपि न व्रतहानिः ॥ एवं कार्त्तिकार्यकभक्तादिषु बोध्यम् ॥

त्रय जोष्टमामकत्यम्।

भारते, चिष्ठाम् जन्तु यो मासमे कभक्तेन सङ्घिषेत्।
ऐश्वर्यमतु जं श्रेष्ठां पुमान् स्ती वाभिविन्दते॥
श्रेष्ठ्यमिति भादिणामिति ग्रेषः "भादिणां भवति श्रेष्ठः" दति
स्कान्दोक्तेः।

त्रय त्राषाढ्मासकत्यम्।
भारते, - त्राषाढ्मेकभक्तेन खिला मासमतन्द्रितः।
बद्धधान्यो बद्धधनो बद्धपुत्रय जायते।

<sup>(</sup>१) तदा जपादिवैधाखमासक्तयं कार्यम्।

त्रय त्रावणमासकत्यम्।

भारते, - श्रावणं नियतो मासमेकभक्तेन यः चिपेत्।

यत्र तत्राभिषेकेण पूज्यते ज्ञातिवर्द्धनः॥

श्रय भाद्रमायकत्यम् ।
भारते, पौष्ठपदं तु यो मायसेकाश्वरो भवेत्ररः ।

ग्रावाद्यं स्कीतमतुलसैय्थ्यं प्रतिपद्यते ॥

एकाद्वार दति एकभक्ताणी ।

श्रथ त्राश्विनमामकत्यम् । भारते, - श्रथैवाश्ययुजं मामसेकमकेन यः चिपेत् । स्जावान् वाह्याळाश्य बद्धपुंचश्च जायते ॥ स्जा ग्रद्धिः॥

त्रय कार्त्तिकमामकत्यम् ।
भारते, — कार्त्तिकन्तु नरो मामं यः कुर्यादिकभोजनम् ।
श्रद्य वज्जभाग्यय कीर्त्तिमांसैव जायते ॥
स्कान्दे, त्रयमेधकलप्राप्तिर्विक्तिकोककलप्राप्तियोक्ता ।
नारदीयपुराणे, —

" एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।

एकभक्तन नक्तन तथवायाचितन च।

हते व्रते धराप्राप्तिर्जायते दीपमालिनी॥

दति केवलेकभक्तादिके फलम्॥

सुपुष्ये कार्त्तिके मामि देविषिपित्वसेविते। कियमाणे वते नृषां खल्पेऽपि च महाफलम्॥ दति विणुर्द्रस्ये यत्किञ्चित्वतमाचेऽपि फलम्। अवतेन चिपेद्यस मासं दामोदर्भियम्। तिर्यग्योनिमवाप्नोति सर्वधर्मवहिष्कृतः॥ इति नारदीयोक्तः यत्किञ्चित्वताकरणे दोषः॥ नारदीये, - न कार्त्तिकममो मामः न क्रतेन ममं युगम्। न वेदेन समं गास्तं न तीर्थं गङ्गया समम्॥ तथा,— मांग्रामिनोऽपि भूपाला श्रह्यथं(१) सगयारताः। ते मांगं कार्त्तिके त्यक्षा गता विष्णासयं ग्रभम्॥ तथा, - न सात्यं भवयेत् मांधं न कौषीं नान्यदेव हि । चण्डाको जायते राजन् कार्त्तिके मांमभचणात्॥ स्कान्दे, - दुष्पायं प्राय मानुयं कार्त्तिकोकञ्चरेत्र दि। धमा धर्मास्तां श्रेष्ठ म मार्हिपहरा(१) भवेत्॥ य ब्रह्महा म गोन्नस स्वर्णसेयी मदानृती। न करोति मुनिश्रेष्ठ यो नरः कार्त्तिके व्रतम्॥ विधवा च विशेषेण व्रतं यदि न कार्त्तिके (१)। करोति सुनिजाहूल नरकं याति दार्णम्॥ तथा, - यतिश्व विधवा चेव विशेषेण वनाश्रमी।

<sup>(</sup>१) कायन्तम्।

<sup>(</sup>२) माहपिह्यातकः।

<sup>(</sup>३) व्रतं या न तु कार्त्तिके।

सार्त्ति नरकं यान्ति श्रक्तवा वेष्णवं व्रतम्॥

एवं ग्टब्ख्खायन्ये वद्वशेषा श्रकरणे उक्ताः॥

तथा,— न ग्टहे कार्त्तिकं कुर्यात् विग्रेषेण तु कार्त्तिकौम्।

चेत्रे तु<sup>(१)</sup> कार्त्तिकौं कुर्यात् सर्व्यक्षेन भाविनि॥

नन्दीपुराणे,—यो नरः कार्त्तिकं मामं मामं तु परिवर्ज्ञयेत्।

मंबस्यरस्य सभते पुण्टं मामस्य वर्जनात्॥

श्रमामर्थ्ये गुक्तपचेऽपि मामं वर्ज्यम्।

कौ सुदंतु विशेषेण शुक्तपचं नराधिप। वर्जयेत् मर्व्यमां सानि धर्मी द्यात्र विधीयते॥ इति वाक्यात्। कौ सुदं कार्त्तिकम्।

तवाष्यसामर्थे भीषापञ्चने मत्स्यमांसादिनं वर्ण्यम्। तेनाव मांसवर्जनं नित्यं नाम्यस्॥

नार्दीये, - कार्त्तिके वर्जये नैसं, कार्त्तिके वर्जये काधु।

कार्त्तिके वर्जयेत् कांस्यं, कार्त्तिके ग्रुक्ति मन्धितम्॥ कार्त्तिके वर्जयेत् स्तियमिति कचित् चतुर्थपादे पाठः। मन्धितं त्रामवादि।

काणीखर्छ,- कर्ज यवासमश्रीयादेकासमयवा पुनः।

वन्तानं ग्ररणं चैव शुक्तभिम्बी च वर्जयेत्॥

ग्रुरणं श्रोन्न इति खातम्। नारदीये,- श्रामिषं भैयुनचैव कार्त्तिके यसु वर्जयेत्।

<sup>(</sup>१) तीर्थेष।

सर्वेकासक्तं पापं दुष्कृतं वापि नम्मति॥

विष्णुः,— कार्त्तिकोऽग्निदैवत्योऽग्निय देवागां सुखं तस्नात् कार्त्तिके सासि विश्वःसायी गायत्रीजपनिरतः सक्तदेव द्विष्याभी संवत्सरकतात् पापात् सुक्षो भवति ॥ पुनः स एव,—

कार्त्तिकं सकसं मासं विहःसायी जितेन्द्रियः। जपन् इवियभुग्दानाः सर्वेपापैः प्रमुच्यते ॥ दति।

श्रव कन्यतर्काराः श्रावश्यक क्रात्यान्तरविजिते काले कार्त्तिके विद्यानं प्रातः कालेतरकालेऽपि प्रकरणान्तराधिकरणन्यायेन काम्यं स्वानान्तरम्। यत्तु, "प्रातः कालो सुहर्त्तां स्वीन्" दति मात्यादावुकं, तच्छाद्धादिविषयमिति। श्रतण्व, शिष्टास्तदनुसारेण दिवसे यदा कदापि कार्त्तिकव्रतकाम्यस्तानं कुर्त्विन्तः। विद्यायी प्रातः स्वानादि दित्यर्थापयन्ति। एतदेव विधिवाक्यमित्यपि वदन्ति। विद्यादाविति के चित्॥

कार्त्तिकं सकलं सामसित्युक्तेमीमादितिथिः पूर्वेविद्धापि ग्राह्मा। तसात् पूर्वेदिवसमारभ्य व्रतस्थारभाव प्रातःकाले काम्य-स्नानप्राप्तिः॥

ननु, - कार्त्तिकं इं करियामि प्रातः स्नानं जनार्दन। प्रीत्यधं तव देवेण दामोदर भया सह॥

दित मन्त्र सिक्षान्य प्राप्तः स्वानस्य प्राप्ति रित चेन्न । वैग्राख-माघयोस्त प्राप्तः स्वानस्यावस्य कता भिष्ठा थेषेव चैनपौर्णमास्यां पुय्व-पौर्णमास्यां च सङ्कल्पस्थो किनांच तथो केः । वेग्राखे वाक्यसुक्तम् । माघे वच्छते ॥ नतु, मन्त्रे प्रातः प्रब्दस्य का गतिरिति चेत् उचाते। "श्चारं सार्यं त्र्यारं प्रातः" इति प्राजापत्यक्तच्छ्रादाविव प्रातः प्रब्दस्य दिवस-परलमित्यभियुक्ताः।

यदी चहे दिपुलान् भोगान् चन्द्रसूर्यग्रहोपमान्।
ं कार्त्तिके सकते मासि प्रातः सायी भवेन्नरः॥
इति वाकास्य केवलस्वानपचे सावकाणलिमिति केचित्। तथा-

चार् ख दंग्रेनात्। मन्त्रे मयेति खत्त्या यह ॥ नितुः — तुंचामकरमेषेषु प्रातः खानं प्रग्रखते।

इविंखं ब्रह्मचर्यञ्च महापातकनागनम्॥

देति राजमार्त्तग्छोकोः का गतिरिति चेदुच्यते । तत्<sup>(१)</sup> सौर-मासंचयात्मकमन्यदेव व्रतमिति पूर्वाचार्याः ॥

नन्, एतदपि न साधु। सासचयस्य संहतलविवनायां "श्राकामा वैषु यत्त्वानम्" दत्यादाविष पौर्णमामीचत्रष्टयकान्नीनप्रकृष्णान-विधानापितः (१)। न तत् केषाध्वदपीष्टं। भौरमामीपादानं तुनादिपदोपादानादिति चेत् वाच्यम्। तर्षः "कन्यां गते सवि-ति" दत्यादौ सौरमामोपादानादाश्विनमासि महान्नयश्चाद्धं क्यां स्वादिति चेत् सत्यं। राजमार्त्तण्डोक्तौ यत्पातःस्वानसुकं तत् केवल-स्वानमभिप्रेत्येव। श्वत एव प्रश्रस्तत दत्युक्तम्। "हविष्यं ब्रह्मचर्यः द्वित" पुनर्यदुकं तत् यत्किश्चिद्वताभिप्रायेण दति वाक्यदयं तत्॥ श्वेत्रंप्व,— तुनामकरमेषेषु प्रातःस्वायी भवेन्नरः।

<sup>(</sup>१) एतत्। (२) खानापत्तिः।

इविष्यभुक् ब्रह्मचारी मर्व्वपापैः प्रमुच्चते ॥ इत्यार्चनाकान्तरेऽपि प्रयक्तियादयमुक्तम् ॥

किञ्च कार्त्तिक वता सभावे यद्गी भपञ्च समुक्तम्, तत्र आतः खानमुद्धा पुनः खानान्तरं तर्पणान्तरमुक्तिमिति दिवसे पदा कदापि
काम्यं खानान्तरमिति सिद्धम्॥ श्रस्य खानस्य काम्यता (१) तीर्ये
करणम्॥ तदसभावे खकारिते पिल्लारिते वा जलाभये श्रत्यन्तासभावे तु पञ्चिपिष्डोद्धारणादिपूर्वकं परजला गयेऽपि कार्यम्॥
जलवर्द्धिणुरोगवता तु,—

श्रापः खभावतो सेध्याः किं पुनर्वक्रिमंयुताः। तेन मनाः प्रशंमन्ति स्नानमुख्येन वारिणा ॥

इति षट्विंग्रनातोकेरणज्ञज्ञेनापि स्नातयं। असा नित्य-काम्यलाद् यणकयश्चिर्त्विविद्यलात्। एतसर्वेमस्रात्नते आचारसारे द्रष्ट्यम् ॥ स्नानोत्तरमर्घदानम्। तत्र मन्तः,—

त्रितनः कार्त्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्तमः ।

ग्रहाणार्थं मया दत्तं दत्तजेन्द्रनिस्द्रनः ॥

नित्यनैमित्तिके छण्ण कार्त्तिके पापनाग्रने ।

ग्रहाणार्थं मया दत्तं राध्या सहितो भवान् ॥

दति मन्तं ससुचार्यं योऽष्यं मद्यं प्रयक्किति ।

स यूपपूर्णपृथिवीदानस्य फलमञ्जते ॥

त्रव गायचीजपसंख्याया अनुक्ताविष सर्व्यपापसुक्त्ययं सन्तजप-

<sup>(</sup>१) नित्यकाम्यलाव्।

स्रोत्तत्वात्तकाचे लचजपः कार्यः। "सर्व्यपिः प्रमुच्यते" दति सच-जपं प्रकृत्य विष्णुस्रतेः। तचामामर्थ्ये प्रत्यच्चं महस्रजपः कार्यः॥

> महस्रक्रतस्त्रभ्यस्य विहरितिक्षितं दिजः। महतोऽप्येनमो मामाल्चेवाहिर्विमुचते॥

दति मनूकेः। चिकं प्रणवयाचित्रायचात्वाकास्। श्रव "गायची-जयनिरत" दति निरतपदोपादानात् सहस्र जपाद्यूनजपो न कार्यः॥ विदर्शमादिहिरिति वहवः। श्रमभवे तु,—

जलान्ते चाम्यगारे च जले देवालयेऽपि वा ।
गवां गोष्ठे पुष्णतीर्थे मिद्धचेनेऽथवा गरहे ॥
दिख्युकोरनावते गरहैकदेशेऽपि शिष्टा जपन्ति ॥
स्कान्दे,—गवामयुतदानेन यत्फलं लगते खग।

तुस्ति प्रविद्याणि सुनिपुष्पेण ने प्रवस्। विद्याय सर्वेषुष्पाणि सुनिपुष्पेण ने प्रवस्। कार्त्तिने योऽर्चयेद्वस्था वाजपेयपसं सभेत्॥

सायंसन्ध्याकालारको त्राकाणदीपदानम्। विष्णुधर्मीत्तरे,-

श्राश्ययुज्यामतीतायां यावद्राजेन्द्र कार्त्तिकौ।
तावत् दीपप्रदस्थोकं फलं राजेन्द्र ग्राश्वतम् ॥
तावत्कालं प्रयन्क्षन्त चे तु दीपं सदा निश्चि।
तुक्ते देग्रे विस्तिषां सहत्पुष्प्रफलं भवेत् ॥
श्राष्ट्रस्थकारे गहने प्राकाश्चे तेन जायते।
प्राकाश्चाद यदगाईल तेन यान्ति तथा सख्य ॥

प्राकाकाद् यदुशाईल तेन यान्ति तथा सुखम्॥ मुद्धाण्डे,—तुजायां तिज्ञतैलेन सायंसन्ध्यासमागमे।

त्राकागदीपं यो द्धानाममेकं निर्न्तरम्। मश्रीकाय श्रीपतये म श्रिया न वियुज्यते॥ दीपदानमन्तः, ग्रतानन्दमङ्गरे,— दामोदराय नभि तुलायां लोलया मह। प्रदीपन्ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे॥ इति मन्त्रेण यो दद्यात् प्रदीपं मर्पिरादिना। श्राकाशमण्डले वापि स चाचयप्रसं सभेत्॥ सोसया सत्स्या। एवच तिसतेसम्थान्ययोदीं पदाने विकस्य:॥ बाह्मे तु,-श्रव्यचैदीपमाकाणं यो दद्यात् कार्त्तिके निशि। मप्रजन्मकतं पापं चिभिर्वपैर्व्यपोद्दति ॥ चतुष्पयेषु रथासु बाह्मणावसयेषु च। वचमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च॥ विष्णुवेकानि यो द्यात् कार्त्तिने मासि दीपकम्। त्रशिष्टोममहस्रख पसं प्राप्तोति मानवः॥०॥ श्रय भीषापञ्चतम्।

भवियोत्तरे, — कार्त्तिके ग्रुक्तपच्य ग्रुणु धर्में पुरातनम्।
एकाद्यां समार्भ्य विज्ञेयं भीक्षपञ्चकम्॥
तथा, — भाकाहारेण सुन्यत्तेः क्रुणार्चनपरेनरेः।
स्त्रीभिर्वा भत्तृंवाकोन कर्त्त्यं सुखबर्द्धनम्॥
विधवाभिय कर्त्त्यं पुत्रपौत्रविद्धये।
सर्वकाममस्द्र्ययं मोचार्यमिष पार्थिव॥
दत्यादि विधिमानेव द्रष्ट्यः॥

विष्णुरहस्ते,—भीभेषेतत् यतः प्राप्तं वतं पञ्चदिनात्मकम् ।

सकाणादासुदेवस्य तेनोकं भीभपञ्चकम् ॥

तथा,— व्रतस्यास्य ग्रणान् वक्तं कः ग्रकः केणवादृते ।

तथा,— कार्त्तिकस्यामले पचे स्नाला सम्यग्यतवतः ।

एकादग्यां तु ग्रह्मीयाद्भतं पञ्चदिनात्मकम् ॥

प्रातः स्नाला विधानेन मध्याञ्चे च तथा व्रती ।

नद्यां निर्द्यरगर्ते वा समास्य च गोमयम् ॥

यवविद्यतिस्यः सम्यक् प्रकुर्य्यात्तर्पणं क्रमात् ॥ दत्यादि ।

वाद्यो,— एकादग्रीं समारम्य राका यावत् प्रवोधने ।

वकीऽपि तच नाश्रीयान्मत्यं मांसञ्च किष्टन ॥

तेन मत्यादिकं सर्वया न भच्यम् ॥ श्रतएव वक्षपञ्चकमिति प्रसिद्धिः ॥ दति कार्त्तिकवर्तं श्रव्यवायायुकेः फलश्रवणाच नित्यकाम्यम् । तचान्द्रमानेनैव ।

कार्त्तिकस्य तु यत् स्नानं माघे मामि विशेषतः।

हास्त्रादिनियमानाञ्च चान्द्रमानं प्रशस्तते ॥ इति पितामहोक्तेः॥
चैतन्यदेवानुयायिगौड्वेष्णवैस्तु श्राश्चिनग्रक्तेकादस्थामारभ्य का∽
चिंकग्रक्तेकादशौँ यावद् व्रतमाचरिन तत्र ग्रक्तदादस्थां पार्षे

सम्यक् प्रमाणं न दृश्यते। इति तत्पचेऽपि पूर्णिमाविध व्रताचर्णं

समीचीनम्। तथाचारस्य श्रीपुरुषोत्तमचेत्रे श्रीजगन्नायप्रामादे

दर्शनात्। इति कार्त्तिकव्रतिवचारः॥

<sup>(</sup>१) इदं कार्त्तिक व्रतम्।

# त्रयं चातुर्मास्वतम्।...

भारते, — त्रावाद्य शिते पर्च एकाद्यासुपोषितः । ...

चात्रमीस्त्रतं सुर्याद् यत्किञ्चित्रियतो नरः ॥ ...

वाराहे, — त्रावाद्यक्षिकाद्यां पौर्णमास्यामयापि वा । ...

चातुर्मास्त्रतारमं सुर्यात् कर्यट्यंक्रमे ॥ ...

त्रभावेऽपि तुलार्केऽपि मन्तेण नियमं नती । ...

कार्त्तिके ग्रक्षदाद्यां विधिवत्तत् समापयेत् ॥ ...

चतुर्धापि हि तत् चौणे चातुर्मास्त्रतं नरः ।

तुलार्के कार्त्तिके। चौणे गृह्यकेरिति श्रेषः। "चतुर्धा गृह्यके-

तुसार्के कार्त्तिके। चीण ग्रद्धकेरिति ग्रेषः। "चतुर्धा ग्रद्धके स्वीर्णं"मिति भारतोत्तेः। नारदीये,—

एकभनेन ननेन तथैवायांचितेन च। ... ... ... ... छते वर्ते धराप्राप्तिजीयते दीपमाणिनी (.... भिविष्ये, — यस्तु सप्ते चयीकेंग्रे नन्नमाचरते वती। वस्तयुगां नरो दला विष्णुक्तोकञ्च गच्छति॥ मात्स्ये, — श्राषादादिचतुर्मां प्रातःस्त्रायी भवेश्वरः। ... वाराहे, — चातुर्मास्थवतं सुर्योत्तरः किञ्चिनाहीपते।

नान्यथा लाब्दिकं पापं विनिष्ठन्यप्रयस्ततुः॥ 🕮 📝

पचचतुष्टयागृत्तौ तु स्कान्दे,—

त्रग्रतः कार्त्ति मासि वतं खुर्यात् पुरोदितस् । त्रापि चेद्ग्रतः खाङ्गीयपञ्चकसुत्तमम् ॥ पुरोदितं चातुर्माखोकस् । एतेन चातुर्माखवतस्य नित्यलम् ॥ तस्यारभामको विष्णुरदस्ये,—

इदं व्रतं मया देव ग्रहीतं पुरतसाव। विविद्रं सिद्धिमायातः प्रस्के लिय केशव॥ ग्रहीतेऽस्मिन् व्रते देव यद्यपूर्णे सियाम्यहम्। तको भवतः समूर्णे लत्मसादात् जनाईन॥ उद्यापनमन्त्रोऽपि तचैव,—

द्दं व्रतं मया देव क्रतं प्रौत्यै तव प्रभो। नूनं समूर्णतां यात ललमादाळनाईन॥ चातुर्माखनियमाः स्कान्दे,—

मस्खद्गादिशयनं वर्जयेद्गितासम् । श्रमृतौ न जनेद्गायीं मांचं मधु परौदनम् ॥ पटोलं मूलकश्चेव वार्त्ताकीं नैव भचयेत् । श्रमद्धं वर्जयेत् दूरानाधुरं चित्रपर्षपम् ॥ राजमाचान् कुषुव्यांसायणुधान्यश्च वर्जयेत् । श्राकं दिध पयो माचान् श्रावणादौ क्रमादिमान् ॥ राज-गोप-यतौं स्वक्षा नारो हेचर्मपादुके । तैशाभ्यकं दिवासप्तं स्ववावादश्च वर्जयेत् ॥ नाच नृपगोपासयतीनां चर्मपादुकारोष्टणं न निविद्

एतेनाच नृपगोपासयतीनां चर्मपादुकारोष्टणं न निविद्धम्। इविद्यस्थापि दीर्घमूसकस्थाच वर्जनम्, साचान्त्रिवेधात्। केवाञ्च-काते पटोस्नस्थापि तथा॥ मात्स्थेऽच काम्यनियमाः,—

चतुरो वार्षिकान् मामान् देवस्रोत्थापनाविध । ...मंधुस्तरो भवेत्रित्यं नरो ग्रुड्विवर्जनात् ॥ तेसस्य वर्जनादेव सन्दराङ्गः प्रमायते । प्रा स्ति सन्ति दीधी स्वासीपाकमभस्यम्॥
सदा सुनिः सदा योगी मधुमांसस्य वर्जनात्।
निर्व्याधि नीं रुगोजस्वी विष्णुभक्तस्य जायते॥
एकान्तरोपवासेन विष्णुक्तोकमवापुर्यात्।
धारणास्रखकोसां वे गङ्गास्तानं दिने दिने॥
नमो नारायणायिति जप्ताऽनप्रनजं फक्तम्।
पादादिवन्दनादिष्णोर्जभेद् गोदानजं फक्तम्॥
एवमादिवतेः पार्थं तुष्टिमायाति केप्रवः॥
नाच कासग्रद्धापेचा। तथाच गार्ग्यः,—
न प्रैणवं नैव मौद्धां ग्रुक्तगुर्वी नं वा तिथेः।
स्वष्डलं चिन्तयेद्यातुर्मास्वनतिधी नरः॥
एवस सति,—

श्रुला च ग्रा श्रुक वाले चर्छे मिलमुचे।

उद्यापनसुपारकं व्रतानां नैव कारयेत्॥

इति चर्डुगार्ग्यवाक्यं सामान्यलादितरव्रतविषयम्॥

याम्यायने चरौ सुप्ते सर्वकसाणि वर्जयेत्।

इत्यपि विचितेतरविषयम्॥ तथाचाच कर्ज्ञव्याकर्णयविषये

त्रमालतः हिमारकारिका साता इचर्यव्याख्या च त्रग्रह्मकासम्बर्षे बेख्याः ॥ तच त्रीभुवनेश्वरचेचे निवासमसं प्रिवपुराणे,—

चातुर्माखं नरस्तव क्रता भिवपरायणः। राजसूयसङ्ख्यः फलं प्राप्तोति नान्यथा॥ तच एकासचेने श्रीपुरूषोत्तमचेने। तच निवासफलं ब्राह्मो,— वार्षिकां खत्रों मामान् यस्ति हेत् पुरुषोत्तमे । विष्ठाय सर्व्यापानि विष्णुकोकं स गक्कति ॥ पृथियां यानि तीर्थानि चेत्राष्णायतनानि च । तिष्ठनित चत्रों मामान् चेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ पुष्करिष्णाञ्च नद्याञ्च वाष्यां कूपे परिस्तु च । तिष्ठनित सर्वतीर्थानि प्रयमोत्यापने हरे:॥

स्कान्दे, — काम्यी बड्युंगे वासा चियमत्रतमं स्थिते: ।

पतं यदुकं तिद्दात् चेचे श्रीपुरुषोत्तमे ॥

चातुर्मास्थे निवसतिः चेचे श्रीपुरुषोत्तमे ।

साचात् दृष्टिभगवतस्तद्भयं मोचसाधनम् ॥

दिने दिने महाप्रस्थं मर्वचेचनिवासजम् ॥

दस्यादि बडफलानि विस्तरभयान्न लिखितानि॥

यतीनां तु एकसानावस्थानादित्रातुर्मास्त्रधमाः आवणादि-माषद्य एव । ऊर्ड्ड वार्षिकाभां माषास्थां नैकस्थानवायः स्थादिति तद्भीषु प्रद्वाकेः॥

एकराचं वर्षद्वासे नगरे पश्चराचकम् । किंद्री वर्षेत्॥ वर्षाय चतुरी वर्षेत्॥ किंद्री काकग्रह्ममत्यन्तामकविषयम्॥

श्रय मार्गशीर्षमासकत्यम् । भारते, — मार्गशीर्षम्तु, यो माससेनभक्तेन सङ्घिपेत् । - ्रभोजयेनु दिजान् भन्याः स सुच्येद्याधिकि विषेः ॥ सर्वक्छाणसम्पन्नः सर्वेषिधसमन्तितः। उपोय्य व्याधिर्षितो वीर्य्यवानभिजायते॥ कृषिभागी बद्धधनो बद्धधान्यस्य जायते॥

श्रय पौषमासकत्यम् । भारते, पौषमासन्तु कौन्तेय भक्तेनेकेन यः चिपेत्। सभगो दर्शनीयस यशोभागी च जायते॥

भारते,— पित्नभक्तो मघाखेवं चिपेद्यख्वेकभोजनः।
श्रीमत्कुले जातिमांद्य<sup>(१)</sup> समद्यंखेव जायते॥
मघास मघायुक्तपौर्णमामीके माघ दत्यर्थः। भवियोक्तरे,—
दुर्लभो माघमासस्य वैष्णवानामतिप्रियः।
देवतानास्विणाञ्च सुनीनां सुरनायक॥
तथा,— माघमासे रटन्यापः किञ्चिद्रभृदिते रवौ।
ब्रह्मन्नं वा सुरापं वा कम्यतन्तं पुनीमदे॥
किञ्चद्रभृदित रति प्रातःकालावधिष्ठपम्।
मकरस्ये रवौ माघ प्रातःकाले तथामले।
गोय्यदेऽपि जले खानं मोचदं पापिनामिष ॥
रति पाद्योक्तेः॥ भविय्योक्तरे,—
यो माघमास्युषि सूर्य्यकराभितास्रे

<sup>(</sup>१) जातिमतिं स मइलं प्रप्यते ।

स्नानं समाचरित चार्निदीप्रवाहे। उद्भृत्य सप्त पुरुषान् पित्नमात्वंगान् स्वगं प्रयात्यमरदेषधरो नरोऽसौ॥

श्रव सूर्यकराभिताच दित जर्म न तु सूर्याभिताच दित ।
तथा,— दारिद्रापापदीर्भाग्यपापप्रजालमाय वै ।

माधज्ञानाज चान्योऽस्ति जपायो नरमत्तम ॥

श्रविसुक्ते प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे ।

यत्फलं दमभिर्वर्षेः प्रायते नियतं नरेः ॥

तत्फलं लभते माघे रुइस्नानाज संग्रयः ।

श्रद्याचा देमचारी च सुरापो गुरुतन्त्रगः ॥

माधसायी विपापः स्थात् तत्संसर्गी तु पञ्चमः ।

श्रायुर्वित्तकलवादिसम्पदः प्रभवन्ति च ॥

तथा,— कामादिकञ्च यत्पापं ज्ञानाज्ञानकतञ्च यत्। ज्ञानमाचेण नथेलु मकरस्थे दिवाकरे॥

पाद्मे, सम्माप्ते मकरादित्ये पुष्णे पुष्पप्रदे सदा।
कर्त्त्रव्यो नियमः किस्मद्भतक्ष्पी नरोत्तमेः॥
फालातिभयद्देतो वै किस्मिद्भोज्यं त्यनेदुधः।
दरेरची तु वैभाखे तपः पूजा तु कार्त्तिने॥
तपोऽभ्यर्चा तथा दानं त्रयं माघे विभिन्यते। दति॥

माघत्रतं यद्यपि नित्यकाम्यम् तथापि वज्जवाक्येषु द्वाने वज्ज-फलोकोः केवलद्वानमावश्यकम् ॥ ब्रह्माण्डे,—माघे प्रतिदिनं प्रातः द्वानाश्रकौ तु पर्वणि । स्नातयं यद्गतो धीरेरवयं देवपूजनम् ॥ श्राचे चान्ते च मध्ये च द्यादं च स्नानमाचरेत्।

यस्नवान् पुरुषो नित्यं वास्त्रद्भातुरैर्विना ॥

नारदीये, माधप्रातःस्नाने जस्नोिकः,—

पुनीमः सर्वपापानि चिविधानि न संग्रयः॥ . . . . .

तथा,— माघमाचे वरारोहे ग्रसं वै निमगाजसम्। ... ... अत्र तदभावे तु च स्नायात् कूपे भाष्डात्रिते तथा॥

तथा,— सरितामणभावे तु नवकुक्षस्थितं जलम् । वायुना ताडितं रात्री गङ्गास्नानममं विदुः॥

तथा, - न विक्तं सेवयेत् स्नातो नास्नातो वा वरानने ।
. होमार्थं सेवयेदिकं न श्रीतार्थं कदाचन ॥

भैवे,— भाषमाचे नरो यस्त स्नायात् भौतेन वारिणा। हा का स याति ब्रह्मणः सदा ब्रह्मस्त्यायुतोऽपि सन्॥ यचातिभौतनं तोयं पुष्णं तचाधिकं भवेत्॥

त्रत्यनागती तु पाद्मे,—

तप्तेन वारिणा स्नानं यद्ग्टहे क्रियते नरैः। यडव्दफसदं तद्धि मकरस्थे दिवाकरे ॥ ं ...

श्रव विक्रिप्रज्वसनादिकं वस्तादिदानं (१)च श्रक्षात्कतदानमारे

द्रष्ट्यम्॥

<sup>(</sup>१) वस्त्रादिदानश्च सर्वम् ।

विष्युः, - दर्शं वा पौर्षमासीं वा प्रारम्य स्नानमाचरेत् । पिंग्रहिनानि पुष्पानि मकरस्ये दिवाकरे॥ तत्र चोत्याय नियमं राष्ट्रीयादिधिपूर्वकम्। माघमायमिमं पूर्णं सास्रेऽइं देव माधव ॥ रत्यादि । श्रव व्रतारमाः पुर्व्यपौर्णमास्त्रामिति न भ्रमः कार्यः। "द्रौं वा पौर्णमासीं वा" इति दिविधचान्द्रमासखैवाद्रो न मासा-न्तराणामित्यभिप्रायात्। पौर्णमास्यार्भो तु "विंगद्शानीति" विरोधः स्थात्, तसानाचक्रणपितपद्येवार्याः ॥ साष्टं स्कान्दे,-पौयां तु समतीतायां यावद्भवति पूर्णिमा । मार्घमायस्य राजेन्द्र विष्णोः पूजा विधीयते ॥ इति पूर्णिमाक्यनं मद्भल्पपर्मिति नारायणोपाध्यायाः॥ त्रव दर्शान्तपची(Usम्बहेशे नाचर्यते ॥ माघमुपक्रम्य स्कान्दे;— मात्रणां दिवतानाञ्च मूलकं नैव दापयेत् । द्दान्नरकमाप्नोति भुज्जीत ब्राह्मणो यदि ॥ ब्राह्मणो मूलकं भुद्धा चरेचान्द्रायणं वतम्। भ्रन्यथा यान्ति नरकं चचविंट्श्र्ट्र एव हि ॥ : वर्जनीयं प्रयत्नेन मूलकं यदि वागममिति । 💚

्र जानमन्त्रो नारदीय,-

सवितुः प्रसवस्थेह परं धाम जले मम । अहार हा है वित्र वित्र प्रस्ति हो पापं चातु सहस्रधा ॥ अहार हा है है है

<sup>(</sup>१) दर्शान्तमासपची ।

दिवांकर जगन्नाय प्रभाकर नमीऽन्त ते।

परिपूर्ण कुरुष्टें माघन्नानं ममान्यत ॥

इमं मन्त्रं सर्वे पठिन्त ॥ पाद्मे तु,—

मकरेश्चे देवी माघे गोविन्दान्युत माघव ।

स्वानेनानेन देवेग्न यथोक्तंपन्तदो भव ॥

यथा नारायणः सूर्यो यथा नारायणो जन्नम् ।

यथा नारायणो माघ न्त्रथा पापं विनग्नतु ॥

इति मन्त्रान्तरं तद्पि पठिन्त ॥ माघन्नानं प्रयागेऽधिकपन्नम् ।

महाभारते,—

सितासिते च यैः स्नातं माघमा से युधि हिर्।
न तेषां पुनराष्ट्रितः करणको टिमतेरिप ॥
मात्स्ये,— षष्टितीर्थम स्माणि षष्टितीर्थम तानि स ।
माघमा से गमिय्यन्ति गङ्गायमुन सङ्ग्रमे ॥
गवां प्रतम स्माण्य सम्मग्दलस्य यत् फलम् ।
प्रयागे माघमा सस्य सम्मग्दलस्य तत् फलम् ॥
माघसानमन्त्रे स्ती गृह्यो रणधिकारः पौराणिकता दिति पूर्व-

श्रय पान्गुनमायकत्यम् । 💛 💯 🔆

भारते, भगदैवं तु यो मासमेकभक्तेन यक्किपेत्। स्तीषु वस्तभतां याति वयास्त्रैव भवन्ति ताः॥ भगदैवतं, पूर्वपस्त्रुनीनस्त्रं तदुपस्तितं मासं पास्त्रुनिमिय्येः॥ विष्णुः, - स दक्के दिपुलान् भोगान् चन्द्रसूर्ययशेषमान्। प्रातः खायी भवेचित्यं दी मामी माघपाल्गुनी॥ यमोऽप्यधिकमाइ, -

देवान् पित्वन् समभ्यक्षं सर्वपापैः प्रमुख्यते । देविषचर्षनं तर्पणादिना ॥

इति मामकत्यानि॥

#### श्रय पचनिर्णयः।

पचग्रन्दः पच परिग्रह इति धातोर्निष्यसः। चन्द्रस्य पञ्चद्राक-सानां पूरणं चयो वा यच पच्छते ग्रह्मते स पचः। यदा देव-पित्रकार्याणं पच्छते यः कासविग्रेषः स पचः। तथा च स दिविधः, ग्रह्मः स्वत्ययेति। तथा च हारीतः, उदगयनं ग्रह्मोऽहः पूर्वाक्षस्य तद्देवानां, दिचिणायनं तमिस्रो राचिरपराइस्य तत् पित्रणामिति। ग्रह्मः ग्रह्मपचः। तमिस्रः स्वत्यपचः। तथा च माधवीये,—

दैवे मुखाः ग्रुक्तपचः कृष्णः पित्रो विभिन्यते ।

## श्रय तिथिनिर्णयः।

तिणिमन्दोऽपि तन् विसार इति धातोर्निष्यसः। वर्द्धमानया चौयमाणया वा चन्द्रकसया तन्यते यः कासविमेषः सा तिथिः। सिद्धान्तिमिरमणौ,—

तन्यन्ते कलया यसात् तस्मात्तास्तिययः स्रताः । यदा तनोति वर्द्धमानां चीयमाणां वा चन्द्रकलामेनां यः का-सविभेषः सा तिथिः । षट्चिंग्रनाते,—

चन्द्रहिकरः ग्रुक्तः कष्णः चन्द्रचयाताकः । पचत्याद्यासु तिथयः क्रमात् पञ्चदश स्रताः ॥ पचितः प्रतिपत् । तथा च सोमोत्पत्तौ पर्वते,— प्रथमां पिवते विक्रिदिनौथां पिवते रवि:। विश्वेदेवासुतीयान्तु चतुर्थीं मिससाधिपः॥ 🗼 पश्मीं तु वषट्कारः षष्टीं पिवति वासवः। मप्तमीम्बयो दिवामष्टमी मज एकपात्। नवमीं रूपापचछ यमः प्राप्तोति पे वे कसाम्॥ द्रमनीं पिवते वायुः पिवत्येकाद्रभीसुमा । दादशौं पितरः सर्वे समं प्राञ्जन्ति भागशः॥ चयोदगौं धनाध्यचः कुवेरः पिवते कक्षाम् । चतुर्दभीं पशुपतिः पश्चदभीं प्रजापतिः॥ निष्कलय कवाभेषयुद्रमा न प्रकामते। कला घोडिशिका या तु अपः प्रविधते सदा ॥ श्रमायां तु मदा मोम श्रोषधीः प्रतिपद्यते । तमोषधिगतं गावः पिवन्यम्गतं च यत् ॥ तत् चौरममृतं भूला मन्त्रपूतं दिजातिभिः। इतमग्रिषु यश्चेषु पुनराषायते प्रशी ॥ दिने दिने कलाष्ट्राइ: पौर्णमाक्षां च पूर्णता ॥ प्रतिपदादिपौर्णमास्यनाभ्यः पञ्चद्रगतिथिभ्योऽतिरिका श्रमावाचा तिचिरिति सामान्यविशेषरूपेण तिचयो दिविधाः। तच

<sup>(</sup>१) प्रायाति।

श्रमावास्मातियाः सामान्यस्पान श्रन्याः प्रतिपदाद्यासिययो विशेष स्पाः॥

नतु च्योतिः ग्रास्तादौ कसानां सूर्यंप्रवेगनिर्गमाभ्यां तियुत्यक्तिमा, अव पानमुक्तमिति तिद्दरोध दति चेस्र । अस्मदादिदर्गनापेचया च्योतिः ग्रास्त्रस्य प्रवन्तनात् अव च वद्मादिदेवानां
तत्कासप्रयुक्तद्वर्तिवित्वतात् ॥ वस्तुतस्तु सूर्यंप्रवेगनिर्गमौ वा
वद्मादिदेवतापानं वा सर्वथापि कसामयुक्ता एव प्रतिपदादितिययः । तत्र तिथिविग्रेषेषु प्रथमा कसा दति प्रतिपद्माद्दीतिययः । तत्र तिथिविग्रेषेषु प्रथमा कसा दति प्रतिपद्माद्दी । प्रतिपक्कव्दः प्रत्युपमर्गात् पद्गताविति धातोर्निष्यतः । चान्दः पची
मासो वा प्रतिपद्मते भारभ्यते यस्यां सा तिथिः प्रतिपत् । सा च
ग्राक्तपचे चन्द्रं प्रविग्रेत् कृष्णपचे चन्द्राक्तिः सरेदित्युभययापि प्रथमेव । तदुपसचितः कासविग्रेषः प्रतिपक्कव्देनोच्यते । एवं दितीथादिषु बोध्यम् ॥ तत्र च्योतिः ग्रास्ते,—

षष्टिद्राह्मिकाः सर्वास्तिययस्त त स्यः।
षड्दण्डावधिका दृद्धः पश्चदण्डावधिर्मता ॥
तथा च द्रासदृद्धवयेन सन्देशत् तिस्रणयः कार्यः ॥
द्रासदृद्धी त गार्यणोक्तम्,—

खर्बी दर्प साथा हिंस स्तिविधं तिथिसचणम् ।-धर्माधर्मवमादेव तिथिस्तेधा विद्नि ते(१) ॥ नृणां धर्माधर्मवमादिति कासादर्भे । बौधायनः,—

नार प्रवेशे केल वर्गकार .

<sup>(</sup>१) विवर्तते।

खर्म समिति चर्चिया दर्ग दिश्चमती स्रता।
चौयमाणा तिथि चिसा निर्णयः प्राग्रदीरितः॥
खर्वः साम्यमन्यचयो वा चिस्तोऽधिकचय दति माधवाचार्याः।
एतन्नैविध्यस्य विपरिवर्त्तनविशेषात् तिचिर्दिविधाः समूणां
खण्डा चेति। तत्र स्कान्दे,—

प्रतिपत्पस्तयः सर्वा उदयादोद्याद्रवेः ।
सम्पूर्णा दति विख्याता हरिवासरवर्जिताः ॥
हरिवासर एकादगी । तच विष्णवमते ऋहणोदयवेधात्तदः ।
र्जिता द्रत्युक्तम् । नारदीये तु,—

त्रादित्योद्यवेताया त्रार्भ्य पष्टिनाडिकाः।

या तिथिः सा तः ग्रुद्धाः सात् सार्वतियो द्वारं विधिः॥ या तु नोक्रस्चणाः सा खण्डा । एतेनः सम्पूर्णः ग्रुद्धाः सम्ब्राः विद्वेति बोध्यम् ॥ तत्र ग्रुद्धायां विधिनिषेधयोर्न सन्देशः ॥ विद्वायां विधिनिषेधयोर्थवस्या गार्ग्यणोक्ता,—

> निमित्तं कालमासाद्य दृत्तिर्विधिनिषेधयोः । विधिः पूज्यतियौ तत्र निषेधः कालमात्रके ॥ तिथीनां पुज्यता नाम कर्मानुष्ठानयोग्यता । निषेधस्त निद्यत्यात्मा कालमात्रमपेषते ॥

हितः पालनम्। तथा च पूज्यकालमाश्रित्य विधेरतुष्ठानक्षपा-लनमिति तिथिमाश्रित्य निषेधकामनुष्ठानक्षपपालनिति । तथोः पालने कालक निमित्तवमित्यर्थः । यथा, यसिन्दिन एकाद्गी उद्यमाच्यापिनी तच "एकादगीसुपवसेत्" दति विधिनका नद्वते कत्स्मको रुक्कते इति तिथेः पूज्यता। तैसाभ्यक्नादि-निषेधे तुकासमाचापेचा। तथा च प्रिवर्क्स्ये,—

श्रभक्षे चोदिधस्ताने दन्तधावनमेथुने ।

जाते च निधने चैव तत्कास्तव्यापिनी तिथिः ॥ दत्यादि ।

तस्तादिद्वतिथी प्रभावं निर्णयम् ॥ तच पराग्ररः,—

चिमन्ध्यव्यापिनी या तु मैव पूज्या सदा तिथिः ।

न तच युग्गादरणमन्यच चरिवासरात् ॥

मरीचिः, चंबख्यापिमार्चेखा सात्स्र्यीद्यगा तिथिः।

सा भ्रावादा व्रतानां स्थात् तचारक्षसमापनम् ॥ भ्रम्यच,— उदितो यच मार्चण्डः खखण्डादितवर्चते ।

त्रखण्डा सा तिथिग्रीह्या स्नानदानवतादिषु ॥ सत्यवतः,— खदयस्या तिथियां सि न भवेदिनमध्यगा ।

सा खण्डा न वतानां स्यादारभञ्च समापनम् ॥ विष्णधर्मीत्तरे,—

व्रतीपवासस्तानादी घटिकैका यदा भवेत् । सा तिथिः सकता श्रेया श्राद्धादी लस्तगासिनी ॥ भविष्ये तु व्रतोपवासनियम इति पाठः । इति कर्मकास-षाप्तिः ॥ तत्र व्रते वेध उक्तः पैठीनसिना ।

प्तवदयेऽपि तिथयस्तिथिं पूर्वां तथोत्तराम् । किल्ले विभिन्नेहर्त्तैर्विधन्ति सामान्योऽयं विधिः स्रतः॥

पूर्वेद्युब्दयानन्तरममावास्या निसुहत्तां चेत् सा प्रतिपदं विध्यति परेयुरस्तमयात् पाक् दितीया निसुहत्तां चेत् सापि पूर्वां प्रतिपदं

विध्वति । एवं सर्वेच । तच चान्त्राणां तिथीनां ऋषोराचविभागं विना व्यवस्था कर्त्तुमगक्येति तदिभागो गर्गेणोक्तः ।

> श्रविपद्मपरिचेपो निमेषः परिकीर्त्तितः। दौ निमेषो चुटि नांम दे चुटी तु स्वो मतः॥ दौ स्वो चण दत्युकः काष्ठा प्रोक्ता द्य च्णाः। चिंग्रत् काष्ठाः कला प्रोक्ता कलास्विंग्रसुहर्त्तकाः॥ ते च चिंग्रद्दोराचिमत्याद भगवान् दरः।

एतादृशाहोराचस श्रुति-स्ति-पुराण-च्योतिःशास्तेषु दिवशस्य पश्चद्रशमुहक्तांनां पञ्चद्रशनामानि राचेरिप तथा नानाविधानि पठितानि । प्रकृते तु राचिनासामनुपयोगात् दिवशस्य मुहर्क्त-नामान्युच्यन्ते । तथा च शङ्काः,—

रौद्रयेच्य मैच्य तथा ग्रासकटः स्रतः । स्ववंचय जयन्तय गान्धवंः कुतपस्तथा ॥
रौहिणय विरिच्चय विजयो नैर्च्यतस्या ।
महेन्द्रो वरूणयेव भेदाः पञ्चदग्र स्रताः ॥

उत्तरायणे दिवमरद्भी मुह्न्तांनां रुद्धिः । दिवणायने दिव-मस्य हानौ तेषां हानिस्य । तथा च च्योतिः प्रास्ते,— म्रहः पञ्चद्रगांश्रो मुह्न्तं दति । एवं म्रथनयोः राचाविष वैपरीत्येन हामरद्भी ज्ञातयो । एवं पञ्चधा विभागादिस्विष नोधं । एवं पञ्चद्रश्रधा विभागः, पञ्चधा विभागोऽपि । तथा च व्यामः,—

> मुहर्क्तिवतयं प्रातः तावानेव तु सङ्गवः । मधाक्रस्तिमुहर्क्तः स्वाद्पराहस्तु तादृगः ॥

सायाक्रस्तिसुहर्त्तस्य सर्वकर्मविध्यन्तः।
चतुर्धा विभागोऽपि। तथाच गोभिलः,—
पूर्वादः प्रदरस्तादः मध्याङः प्रदरस्तथा।
प्राहतीयादपराषः सायक्रय ततः परम्॥
चिधा विभागोऽपि स्कान्दे,—
जर्द्धं स्पर्योदयात् प्रोक्तं सुहर्त्तानां तु पश्चकम्।
पूर्वादः पश्चकं प्रोक्तो मध्याक्रस्त ततः परम्॥
पूर्वादः पश्चकं प्रोक्तो सध्याक्रस्त ततः परम्॥
प्रवादः पश्चकं प्रोक्तो सुहर्त्तानां तु पश्चकम्।

देधां विभागोऽपि। स्कान्दे;—

त्रांवर्त्तनास्तु पूर्वाझो द्वापराइस्ततः परः । तत्र पञ्चधा विभागस्य बद्धप्रमाणसम्बतलात् प्रायेण तं समात्रित्य विधिनिवेधौ निणीयिते । यत्र यत्र विभेषविधिस्तत्र तत्रान्ये पद्या

खेखाः ॥

तचीपवासैकमके नक्तं चायाचितं वतं ।

दानं चाध्ययनं सप्तविधं देवकमं ब्रुवे ॥

उपवासप्रम्दायी विष्णुधर्मे,—

उपादनं सु पापेग्यो यस्तु वासो गुणैः सहः।

उपवासः स विज्ञेयः सर्वेच भोगवर्जितः ॥

तचीपवासः सर्वतिथिषु विहितः । नारदीये,—

शुक्तान् वा यदि वा कृष्णान् प्रतिपत्प्रस्तीन् तिथीन् ।

उपोद्येव विसे देवा विधिना द्यंपरेऽहिनि ॥

बाह्यणान् भोजयिवा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

द्रत्युपवासक्याद्योराचमाध्यतात् सम्पूर्णव्यापिन्यां न सन्देदः। तदं-सभवे चिमन्ध्यव्यापिन्याम्। तद्मभवे खण्डतियौ। तच वाक्यान्यु-दादतानि। तच ग्रुक्षपचे श्रमावास्याविद्वा प्रतिपदुपोव्या। तचाव्य-पराष्ट्रव्यापिनी सुख्या। तद्मभवे मायाक्रव्यापिनी ग्राह्मा। न तु उद्यचिसुहर्त्तव्यापिनी। तथा च व्यासः,—

प्रतिपत्सेव विज्ञेषा या भवेदापराहिकी।
देवं कर्षा तथा ज्ञेयं पिश्चं वा मनुर व्रवीत् ॥
पैठीनिसः, — पश्चमी भन्नमी चैव दशमी च चयोदशी।
प्रतिपत्रवमी चैव कर्त्त्रया ममुखी तिथिः॥
ममुखीसचणं स्कान्दे, —

समुखी नाम सायाझ्यापिनी दृश्यते यदा।
प्रतिपत्तमुखी कार्या या भवेदापराहिकी ॥
निगमोक्तिरपि,—

युग्माग्नियुगस्तानां षण्मुन्योर्वस्त्रस्योः । स्ट्रेण दादणी युक्ता चतुर्दम्या च पूर्णिमा ॥ प्रतिपद्मयमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफसम् । एतञ्चसं महाघोरं हन्ति पुष्यं पुरा कतम् ॥

युगं दितीया। श्रिश्चितीया। युगं चतुर्थी। स्तं पश्चमी। वट् षष्टी। सुनिः सप्तमी। वदः श्रष्टमी। रश्नं नवमी। स्द्रः एकादगी। श्रव दितीयादिसप्तयुगोषु पूर्वतिथिः उत्तरविद्वरः पाश्चा। उत्तरा तु पूर्वविद्धेत्वर्थः। दितीयादतीययोधुगं मेकनं महापालम्। तत्तत्तिथिनिमित्तवे कर्मणीति श्रेषः। एतद्वासं

युग्मादिविपरीतम्। प्रतिपद्वितीययोरित्याद्योर्मेलनं महाघोरम्। एवं चतुर्थौपञ्चम्यादिषु वोध्यम्॥

त्रय उपवासविचारः।

द्रदं युगागास्त्रसुपवास्विषयभेव ।

एकादग्रष्टमी षष्टी दितीया च चतुर्थिका।

चतुईगायमावासा उपोयाः सुः परानिताः॥

इति प्रदर्गीतावचनादिषु खपवाससीवोक्तलात्॥

नतु व्यासोक्तौ दैवग्रब्देन ब्रतादीनामपि विवचेति चेत्, न्।
तेषूद्यतिथिप्रागस्यस्य वच्यमाणलात्। तथा युग्गोक्तिः ग्रुक्तपचविषया, प्रतिपद्ययमावस्थेति ज्ञापनात्। त्रतएव,—

प्रतिपत् सदितीया स्याद् दितीया प्रतिपद्युता।

द्यापस्तमोतिः भवियोत्तरोतिय हन्णप्रतिपदिषया। तथाच, हन्णप्रतिपत् परेशुद्दयादूईं चिमुह्न्तां ततोऽपिधिका वा स्थान्तदा मैवोपोय्या नाचापराइच्याप्तिः। हन्णपचे दितौयायुतायाः प्रतिपदो विशेषमुख्यलेन पश्चमी मप्तमीत्यादिवचनस्थाप्रदन्तेः॥ ननु,— यो यस्य विद्तिः कासः कर्मणस्तद्पक्रमे।

तिथियां भिमता मा तु कार्या नोपक्रमो ज्ञिता॥

श्रव बौधायनोक्ता पूर्वविद्धायां ग्रुक्तप्रतिपदि प्रतिपत्प्रवेश एव सङ्कल्पः प्रतीयते ।

प्रातः मङ्गल्ययेत् विदानुपवासम्तादिकम् । प्रातरापूर्य्यं मितमान् क्रूय्योत्रक्षमतादिकम् ॥ नापराह्ये न मधाक्रे पित्र्यकालौ हि तौ स्रतौ । रत्यादि स्रितिषु प्रातरेव सङ्कल्पस्य कार्य्यवात् । तदुभयं क्षणं सङ्गल्कत रति चेदुच्यते । तिथिव्याप्तिः दिविधा । व्योतिः — प्रास्तप्रसिद्धस्त्राभाविकी एका । स्रित्युक्तमाकच्यापादकवचनोत्पा — दितान्या चेति । तथा च देवसः ;—

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्तरः ।

सा तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानजपादिषु ॥
तथा,— यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं (१) याति भाष्करः ।

सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥
कर्मस्थिति वज्जवचनात् निखिलदैवोपवासमङ्गद्धः (९) ।
सौरपुराणे,—

यां प्रायास्तसुपैत्यर्कः सा चेत् स्यास्तिसुहर्त्तगा । धर्मकत्येषु सर्वेषु सम्पूर्णां तां विदुर्नुधाः ॥ एवं च विग्रेषवचनाभावे चिसुहर्त्तयाप्तिरेव साकस्यापादिका। तथा सति,

श्रादित्योदयवेलायां यान्यापि हि तिथिभेवेत् । सा पूर्णेत्येव मन्तया प्रभूता नोदयं विना ॥ इति देवलोक्तौ ।

खद्ये मा तिथियां द्या विपरीता तु पैहने। इति स्कान्दोक्ती च चिमुहर्त्तव्यातिरेवेति गोध्यम्॥ एवं च मति माकच्यापादकवचनाद्मत्यामपि ग्रुक्तप्रतिपदि

<sup>(</sup>१) चार्त याति दिवाकरः।

<sup>14283</sup> 

<sup>(</sup>२) निखिलदैवोपसङ्गृहः।

श्रमावास्थायाः प्रातरेव सङ्कल्प इति सर्वे सङ्गतम्। एवमन्यभ तिथिम्बपि ज्ञेयम् ॥

श्रभावेऽपि प्रतिपदः सङ्क्यः प्रातिर्य्यते।
दिति माधवाचार्याः ॥ मधवाक्तीणां तु,—
नास्ति स्त्रीणां पृथक् धर्मी न वृतं नाष्णुपोषणम्।
दिति मनूकेस्पवासादिषु निषिद्धेस्वपि, भर्त्ताद्यनुश्चायां न दोषः।
भार्याः भर्त्तृमतेनैव वृतादीनाचरेत् सद्।।
दिति कात्यायनोक्तेः।

नारी खन्वननुज्ञाता भर्का पित्रा स्रतेन वा । निष्मानं तु भवेत्तस्थाः यत् करोति व्रतादिकम् ॥ दति मार्कण्डेयोक्तेश्च । श्रादिशब्देनोपवासाद्युपसङ्गन्हः ॥ दत्युपवासनिर्णयः ।

श्रममाते बतादी दोषः। परिग्रह्मोत्यादिविष्णुरह्मसाद्युक्ती दोष-श्रवणेऽपि प्रतिनिधिद्वारा तत्ममापनेऽप्यदोषः। तथा च पैठीनिधः,— भार्य्या पत्युर्वतं कुर्यात् भार्य्यायाम् पति र्वतम् । श्रमामर्थ्ये पर्म्वाभ्यां व्रतभङ्गो न विद्यते ॥ स्कान्दे,— पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भातरं तथा । एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं विनियोजयेत् ॥ भातरं भगिनीं ग्रिष्यं ब्राह्मणं दिचणादिभिः । स्रत्यन्तरेऽपि,—

> पित्रमात्वपितभात्स्वसृगुर्वादिभुजाम् । त्रदृष्टार्यमुपोषिवा स्वयं च फन्नभाग् भवेत्॥

पित्रमात्रखस्भात्रगुर्वर्ये च विशेषतः। उपवासं प्रकुर्वाणः पूर्धं क्रतु प्रतं सभेता द्विणा नाच दातथा ग्रुश्रुषाविहिता च सा 🗠 🖙 बाह्यो,— भिव्यवृतं प्रकुर्वन्ति गुरुषस्वन्धिवान्धवाः ।

पुनः स्कान्दे,—

: श्रातमा पुत्रः पुरोधाय भ्राता पत्नी गखापि वा । : याचायां धर्मकार्योषु जायन्ते प्रतिइसकाः ॥ एभिः इतं महादेवि खयसेव इतं भवेत्। त्रात्मा त्रात्मीय दति कतिरुद्खतिः॥ त्रत्यन्तासभावे तु,-उपवाशासमर्थश्चेदेकं विप्रं तु भोजयेत्। तावद्भनानि वा दद्यात् यद् भुकाद्विग्रणं भवेत्॥ मइसमितां देवीं जपेदा प्राणसंयमात्। 🔒 🤫 कुर्यात् दादग्रमङ्खाकान् ययाग्रिक वृते नरः ॥ देवीं गायचीम्॥

त्रय उपवासादि नियमाः ।

त्रादित्यपुराणे,—

श्रञ्जनं रोचनं वापि गन्धः सुमनसस्त्या । .... बतन्त्रे चोपवासे च नित्यसेव विवर्जधेत् ॥ 🗼 🏥 🕾 🗀 रोचनं, इरिट्रादिना गाषोज्ज्वसीकर्णम् ॥ स्रायमारे, - व्रते चेवीपवासे च वर्जयेह्नाधावनम् । गायव्याः प्रतप्तः पूता ऋषः प्राच्य विद्युद्ध्यति ॥ रति प्रायिक्तं चोन्नम् ॥

सुखग्रुद्धिसु दादग्रगण्डूषैरासपत्रादिना वेति दन्तधावननिषे-धकासप्रकरणे लेखान् ॥

सधवास्तीणां तु व्रतादिव्यपि इरिद्राग्यइणादिकं त्रावम्यकम् । वस्तासद्वारपुष्पाणि गन्धधूपानुलेपनम् । उपवासे न दुर्थाना दन्तधावनमञ्जनम् ॥

दति मनूतेः । तैनस्य प्रतिप्रभवाभावात् तद्ग्रहणाभावः । श्राचारोऽयोवमेव ॥

कौर्म, — कांस्यं मांसं मसूरां स्व चणकान् कोरदूषकान्। ग्राकं मधु पराकश्च वर्जयेदुपवास हत्॥ वृद्दस्पतिः, — दिवानिद्रां पराकश्च पुनर्भी जनमेयुनस्। चौरं कांस्यामिषं तैसं दादण्यामष्ट वर्जयेत्॥

एतत् पार्णमाचीपलचणम् ॥

विष्णुधर्मे, - श्रमभाष्यान् हि मभाष्य तुत्तस्वतिमकाद्त्तम् । श्रामत्तकाः फत्तं वापि पार्णे प्राप्य ग्रद्धति ॥ श्रमतत् अत्तपानञ्च दिवास्वापञ्च मेथुनम् । ताम्नूत्तर्वणं मांमं वर्जयेद्धतवामरे ॥

शरीतः,— पतितपाषण्डनास्तिकमभाषणं त्रनृतास्त्रीसादिकसुप-वासदिने वर्जयेत् । कौर्मे,—

विश्वाम्यान्यजान् सतं पतितञ्च रजखलाम्।
न स्पृत्रेञ्चापि भाषेत नेचेत व्रतवाचरे॥
स्तीणान्तु प्रेचणात् सङ्गात् ताभिः संकथनादपि।
निःस्वन्दते ब्रह्मचर्यं न दारेस्वृत्सङ्गमात्॥

#### गर्डपुराणे,-

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेचणं गुद्धभाषणम्। न्हे कि क्रिं संकल्पोऽध्यवसायस्य कार्य्यनिष्यत्तिरेव च॥ न्हें कि एतन् मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः। न्हें

....त्व पार्णमावश्वकम् । ....................... ३०००० हो हो ह

पारणानां वतं ज्ञेयं वतानी दिजभोजनम् । : १०० क्रिक्ट श्रथमाप्ते वते पूर्वे नैव कुर्याद्वतानाकम् ॥ १०० १००० इत्यादित्यपुराणोक्तेः ॥

ब्रह्मदैवर्त्त, - मर्वेष्वेवोपवाचेषु दिवा पार्णिमयते। ...... प्राप्ता प्राप्ता पार्णिमयते। प्राप्ता प्राप्ता पार्णिकात्। प्राप्ता प्राप्ता पार्णिकात्।

तवापि पूर्वाच एव,-

खगवासेषु सर्वेषु पूर्वाझे पार्ण, भवेत्।

श्रन्यथा तत्पालस्यार्ट्सं धर्ममेवोपसपिति॥

इति देवलोकोः। धर्मं यमम्॥ पूर्वाझे पार्णासम्भवे,—

सन्ध्यादिकं भवेत्रित्यं पार्णन्तु निमित्ततः।

श्रद्भिसु पार्यिता तु नैत्यकान्ते भुजिकिया॥

् द्युकोर्जनपारणं कता नियक्तमंणि समाप्य पुनःपारको न दोषः॥ तच स्कान्दे सप्रम्,—

 इति स्कान्दोक्तेसियानाप्रतीचायां कयं पूर्वाचे पारणमिति चेत् सत्यम्,-

> तियानी चौत्सवानी च पारणं यच चौद्यते। यामचयोर्ज्जवर्त्तान्यां प्रातरेव चि पारणम्॥

इति स्रत्यन्तरात् प्रहर् चयपर्यमां तिष्यन्तापेचा। ऋत्यया पूर्वाच एव ॥ व्रतादिष्यत्यच श्रादिशब्देन एकभक्तनक्रायाचितवतानि ग्रह्मन्ते, इति माधवाचार्याः ॥ इति च साधारणपारणाविधिः । विशेषस्त कृष्णजयन्यादिषु लेखाः ॥

यद्यपि पारणग्रब्दः पार तीर्ममाप्ताविति धातोक्त्यस्त्वेन समाप्तिमाचवाचकक्षणपि कोकग्रास्त्रयोक्ष्यवाससमाप्तावेव पद्मजा-दिग्रब्दवत् योगरूढः॥

ऋषेकभक्तं निर्णीयते ब्राह्मे वैश्वानरवते,— प्रतिपद्येकभक्ताश्री समाप्ते कपिलाप्रदः।

द्ति। तच प्रभक्तं चिविधम् । खतन्त्रमन्याङ्गसुपवासप्रति-निधिक्रपश्चेति । तच वैश्वानरव्रतादिषु खतन्त्रम्,—

पूजावतेषु सर्वेषु मधाक्तव्यापिनी तिथिः।

तया "मधाक्रे पूजवेत् नृप" दत्यादिविद्वितगणेशवतादावन्याक्रम्।

तिथौ यत्रीपवामः सादेकभक्तेऽपि मा तिथिः।

द्ति समन्तुवाक्यादिविहितसुपवासप्रतिनिधिक्षम्। तत्रान्याङ्गे प्रधानानुवारेण गुणस्य नेतन्यलादिङ्गनः पूजाविधेर्मध्याङ्गे विहितलेन पङ्गस्वैकभक्तस्यापरांकादौ प्राणमाणलासैव सुख्यकासापेचा ॥ किश यदा खतन्त्रेकभकेऽपि केनचित्रिमित्तेन सुख्यकाचा-समावे गौणकासोऽभ्यनुज्ञायते। तदा किं वाच्यमन्याङ्गे। उपवास-प्रतिनिधिकपथ च उपवासित्यौ कार्य्यं तस्य गौणोपवास्त्रात्।

"तिथौ यत्रोपवासः सादेकभक्तेऽपि सा तिथिः"

रित सम्मूक्तिय। तच मार्क छियपुराणे। "एक भक्तिन नक्तिनं र रित बच्चमाणेकादगी वतादाबुक्तम्॥ एवचः, पारिग्रेक्थात् स्रतन्ति-कभके मुख्यका लापेचा॥

तत्कर्मकासस्त्रस्य स्वान्दे,-

दिनार्ड्समयेऽतीते भुकाते नियमेन यत्। एकभक्रमिति प्रोक्तमतसाम्रात् दिवैव हि॥

देवलोको तु न्यूनपासचयेण तु दति विशेषः। नियमेनेत्यनेनं स्विद्यभोजनप्राप्तिः। तन्युख्यकालस्तु पञ्चधाविभक्तां समध्योक्षां पर्यदेशमान्त्रस्थां क्षां पर्भागस्त्रिः। तन्युख्यकालस्तु पञ्चधाविभक्तां समध्योक्षां पर्यस्ति भागस्त्रो दिनार्द्वस्थोपि सार्द्वसुहर्त्तपिरिमितः कासः। दिनार्द्वस्थिपिर सार्द्वसुहर्त्तपिरिमितः कासः। दिनार्द्वस्थिपिर सार्व्यस्ति प्राचीनोऽविशिष्टः कास्ति गौणः। दिवेत्यभ्यनुज्ञानात्॥

एवं व्यवस्थिते सति मध्याक्रवापिनी तिथियांचा,— इद्ये द्वपवास्य नक्तस्यास्तमये तिथिः। मध्यक्रवापिनी याच्चा एकभक्तवते तिथिः॥

द्रित बौधायनोक्तेः । तनः निर्णयस्य विषयस्य पौदार्भेदा जज्ञाः । पूर्वेषुरेव मधाक्रयाप्तिः । परेषुरेव तद्वाप्तिः । उभयभ तद्वाप्तिः । नोभयम तद्वाप्तिः । उभयम साम्येन तदैकदेशयाप्तिः । उभयम वैषम्येण तदैकदेशयाप्तिथेति । तनाष्ठितीययोर्न सन्देषः । त्रन्यदिने मध्याक्रव्याप्तरभावात्। हतीये पूर्वविद्धा याद्या। सुख्य-कालव्याप्तेः समलेऽपि गौणकालव्याप्तरिधकलात्। चतुर्थे पूर्वविद्धेव। दिनदये सुख्यकालव्याप्तरभावेऽपि गौणकालव्याप्तिकाभात्। पश्चमे-ऽपि पूर्वविद्धेव। सुख्यकालव्याप्तरभयत्र साम्येऽपि ऋधिकगौणकाल-व्याप्तिप्राप्तेः । पष्ठे त चदा पूर्वेद्युर्भध्याक्रेकदेग्रेऽधिकव्याप्तिक्तदा-धिक्यात् गौणकालव्याप्तेय पूर्वविद्धेव। तिस्निव षष्ठे यदा परेद्यु-र्मध्याक्रेकदेग्रेऽधिकव्याप्तिस्तदा परविद्धेव परेद्युर्गेणकालव्याष्ट्यभावे-ऽपि सुख्याकालव्याष्ट्याधिक्यात्। दत्येकभक्तनिर्णयः॥

## श्रय नक्तानिर्णय:।

भविष्ये रतुर्देखामणाष्ट्रम्यां पचयोः ग्रुक्तकष्णयोः।
योऽक्रि नित्यं न भुद्धीत शिवार्चनरतो नरः॥
तथा, वृत्तं कृष्णचतुर्देखां तथा कष्णाष्ट्रमीयु च।
कृता भोगानिहाप्नोति परच च शिवे रितम्॥

एवमादौ नक्तं चिद्धम्। तच्च चिविधम्, ऋन्णाङ्गं उपवासप्रतिनिधिरूपं खतन्त्रचेति। तचान्याङ्गे नक्तवते दुर्गापूजादौ पूजाविधेरिङ्गनोऽनुसारेणाङ्गस्य नक्तभोजनस्य राचौ प्रदरोत्तरमपि प्राप्यमाणलाच मुख्यकालापेचा। उपवासप्रतिनिधिरूपेऽपि तस्मिन्नेव
मुख्यकालापेचा। तस्य उपवासदिन एवानुष्टानात्। तथाच स्कान्दे,—

प्रदोषयापिनी याच्चा सदा नक्तवते तिथिः। उदयस्या सदा पूज्या इतिकत्वते तिथिः॥ एवमन्यचापि । तसात् स्वतन्त्रनके मुख्यकालो निर्णेयः । तच नक्तप्रस्दो भोजनपरः । अन्ययाः,—

> सदीपवासी भवति यस्तु नक्तं समाचरेत्। देवेर्भुकन्तु पूर्वासे मध्यक्ते पित्वभिः सदा॥ स्विभिद्यापराचे तु सायाक्ते गुद्धाकादिभिः। सर्ववेस्तामतिकस्य नक्तभुक्तमभोजनम्॥ विसुह्रक्तः प्रदोषः स्वात् भानावस्तं गते सति। नक्तं तत्र प्रकुर्वात द्ति ग्रास्त्रविनिश्चयः॥

दित व्यामोक्ती समाचरेत् प्रकुर्वीतित्यादेरन्वयो न स्थात्। न दि कालः केनचिदिच्छया कर्त्तु प्रकाते। तन्नक्रस्य काल-दयम्, भविस्थे,—

मुहर्त्तीनं दिनं नक्तं प्रवदित्त मनीषिणः।

नचनदर्भनात्रक्रमस्मन्ये गणाधिप ॥

श्रस्य कालदयस्मधिकारिभेदेन व्यवस्था । तथात्र देवलः,—

नचनदर्भनात्रकं ग्रहस्थस्य वृधेः स्प्रतम् ।

यतेर्दिनाष्टमे भागे तस्य रात्री निषिध्यते ॥

स्वत्यन्तरे,— नक्तं निभायां कुतीत ग्रहस्थो विधिष्ठंयुतः ।

यतिस्र विधवा चैव प्रकुर्यात् स दिवाकरम् ॥

सदिवाकरं तु यत्रोक्तमन्तिमे घटिकाद्वये ।

निभानकन्तु तत्रोक्तं यामार्द्धे प्रथमे सदा ॥

"तिमुहर्त्तः प्रदोषः स्थात्" दति रात्रिभोजने कास्रो स्थापेनोकः। प्रदोषसाध्यसभावे ग्रहस्यस्थापि दिवानकं ग्राह्मम्। तथाच स्कान्दे,— प्रदोषव्यापिनी न स्वात् दिवानकं विधीयते।
पातानो दिशुणां कायामितकामित भाष्करे॥
तस्रकं नक्षमित्याफ्तनं नकं निश्चि भोजनम्।
एवं ज्ञात्वा ततो विदान् मायाक्रे तु भुजिकियाम्॥
कुर्य्यास्रक्रवती नक्रफलं भवति निश्चितम्।
वक्षः,—प्रदोषव्यापिनी याच्चा तिथिनक्रवते मदा।
एकाद्गीं विना सर्वाः ग्रुक्ते कृष्णे तथा स्वताः॥

तथाच प्रदोषव्याप्तिमुंख्यककाः। मार्थकाच्याप्तिरत्वकाः। तच नक्षं प्रदोषव्यापित्यां तिथौ कार्यम्। तदेवं नक्षतत्काचौ व्यव स्थितौ ॥ चनापि राचिनके मोड़ाभेदाः। पूर्वेद्युरेव प्रदोषव्याप्तिः। परेद्युरेव प्रदोषव्यप्तिः। उभयन प्रदोषव्याप्तिः। नोभयन प्रदोष-व्यप्तिः। उभयन मार्येन प्रदोषकदेशव्याप्तिः। उभयन वैषस्येक प्रदोषकदेशव्याप्तिः। तन नाद्यदितीययोः मन्देषः। हतीये पर्तिचिरेवः—

बदैव तिथाहिभयोः प्रदोषधापिनी तिथिः।
तचोत्तरच नकं खादुभयचापि सा चतः॥
दति जावालिवाकात्। उभयचापि दिवा राचावपि सा तिथिकः
विद्यते चतः इत्थर्षः। चतुर्थेऽपि परैव।

"श्रतथाले परच खाद्यतोऽर्वागस्ततो हि सा । दित कावासिवाच्यात्" । प्रदोषे तदभावेऽपि श्रस्तमयादर्वाक् यतः सा विद्यते ततो बाद्योत्यर्थः । "श्रवीगस्तमयात्" द्रायनेक श्रस्य प दिवादाचित्रतलेन प्रदोषयाप्तिवत् सार्यकासम्याप्यापि निर्णेक इति श्रायते। पश्चमषष्ठयोर्षि परैव। सायंकांसस्य गौष्स्यं तत्तिथियाप्तलात्। राविनक्रभोजने नाड़ीचयसुत्तमः कासः,—

प्रदोषोऽसमयादूईं घटिकावयमियते ।

इति स्रतेः। मुह्नर्त्तंत्रयं मध्यमः कान्नः,-

विमुह्रक्तः प्रदोषः स्थाङ्गानावस्तं गते सति । ं

रति वासोकेः। निशीयपर्यन्तो जघन्यः कातः, "नकं निशायां कुर्वित" रति सामान्देनाभिधानात्॥

नन्, - सायंसन्ध्या चिष्ठिका श्रसादुविर भाखतः। तथा, - चलारीमानि कर्माणि सन्ध्यायां परिवर्शयेत्। श्राहारं मैथुनं निद्रां खाध्यायञ्च चतुर्थकम्॥

दित स्रतेय मन्धाकाले कयं भोजनिमित चेत्, न। क्रल-र्यन क्रतार्थनवचदर्शनभोजनिविधना पुरुवार्थस्य सन्धाकासनिवेधस्य बाधात्। यथा पुरुवार्थप्राणिहिंसाप्रतिवेधः क्रल्यांग्रिष्टोमीयहिंसा-विधिना बाधाते॥

यत्तु सप्तमीभानुवासरादौ सौरनकं विहितम्। तत्र पूर्वोक्तविपर्यासेन सायंकालवाप्तिर्मुखाः कन्यः। प्रदोषवाप्तिरमुक्तन्यः।
तत्र षोढाभेदे पूर्वसिन्नेव परसिन्नेव वा सायंकालवाप्तौ न
सन्देशः। उभयंत्र सायंकालवाप्तौ पूर्वतिथिरेव। उभयनाणि
तत्तिथिविद्यमानवात्। नोभयत्र तद्वाप्तौ पूर्वतिथिरेव। सायंकाले
तद्भावेऽपि प्रदोषकालेऽपि तत्तिथेः सन्तात्। उभयत्र सायेन
वैषम्येण वा तदेकदेशव्याप्तौ पूर्वेव। गौणस्य प्रदोषकालस्य तन्तिथिव्याप्तवात्। सौरनक्तभोजने दिवसस्यान्तिमसुहर्त्त उत्तमः।

"सुद्धर्त्तीनं दिनं नक्तम्" दत्युकेः । त्रन्तिमाधो सुद्धर्त्ती मध्यमः,—
सदिवाकरं यत्रोक्तमन्तिमे घटिकादये ।
दत्युक्तेः । ततः प्राचीनो अघन्यः,—

चिमुह्रत्तं सृगेदाङ्गि निणि चैतावती तिथिः। तस्यां भौरं भवेसक्रमस्येव तु भोजनम्॥

इति समन्तूकोः। "त्रात्मनो दिग्रणां कायां" इत्यादि ऋषेव पर्यवस्थित,—

> ये लादित्यदिने ब्रह्मानकं कुर्विन्तं मानवाः। ते दिनान्तेऽपि भुच्चीरन् निषेधाद्राचिभोजने॥

द्रति भवियो रविवासरे राजिनक्ष निषेधात् ग्रह्मस्यापि दिवैव भोजनम्। एवं रविसंकान्यादिव्यपि ज्ञेयम्॥

माधवाचार्येन्त एकसिनेव दिने एकभक्तनक्योः प्रमक्तौ गौण-कालसायसभवपचे भायांपुचादिना कर्न्ननरेण नक्तं करणीयमिति जिस्तिमनुसन्धेयम्॥

धवसमंग्रहे,- इविव्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारसाधवम् ।

ब्रह्मचर्यमधः ग्रयां नक्तभोजी वड़ाचरेत्॥

भविखे,— ''त्रशिकार्खमधः ग्रयाम्'' दति पठिला त्रशिकार्यः खाइतिभिराज्यहोम दति लचीधरः।

स्कान्दे, - एतानि वर्जयेत् नक्ते श्रम्नानि सरमुन्देरि ।
निष्पावा श्राड्की मुद्रा माषास्वैव कुनुष्यकाः ॥
- मसूरा राजमाषास्व गोधूमा स्त्रिपुटास्त्रथा ।
- प्रणका वर्त्तुसाक्षायि मुमुकास्वैवमादयः ॥

एतदुपलचणम्। नके इिवयद्रयमेव भोज्यमित्यर्थः। स विचारो इवियप्रकरणे लेखाः॥ इति नक्तनिर्णयः॥

# त्रय त्रयाचितं निणीयते ।

प्राजापत्यशक्त्रादी सप्तमीवतादी च तदि हितम्। तथा दावेषा । न याचितमया चितमित्यिकः प्रतिषेधक्त्यः। तथाच प्राजापत्यशक्त्र्याखाने गौतमः। त्रयापरं आहं कञ्चन न याचे-तेति। त्रतः उपवासवद्होराचमेव विषयीकरोति। त्रत एव संकल्पोऽप्यसिष्णहोराचे याचितमन्नं न भोच्य दति वाष्यम्। तथा पर्युदासोऽपि। तथा च दृहस्पतिः,—

त्राइं प्रातः त्राइं सायं त्राइमद्यादयाचितम् । त्राइं परञ्च नाश्रीयात् प्राजापत्यञ्चरन् दिजः ॥ स्मत्यन्तरेऽपि,—

त्रवाचिताभी सितभुक् परां सिद्धिमवाप्रुवात्।
दित । द्ग्रपासभोजिलं सितभोजिलम्। "त्रवाचिते दौ चाहौ"
दित चतुर्विंग्रतिमतोक्तेः । तथाच, याचिताद्ग्यद्याचितसित्यक्षाप्रयक्षकभ्यस्य परदत्तस्य भोजनं विवच्यते । तदापि पराधीनलादेव
काक्षविभेषविधानस्याग्रक्यलाद्द्रोराचमेव विषयौकरोति । स्वयद्दस्थितवस्तुनः ददानौमयाचितलेऽपि पूर्वयत्वस्यस्तिलाद्याचितमेव ।
तथाच पर्युदासः । यदा निषेधस्य प्रसिक्तपूर्वकलाद्याच्नाप्रसक्तेस्य
परद्रव्यविषयलाद्याचितग्रव्होऽपि परद्रव्यमेव विषयीकरोति । तस्व
भोव्यद्रव्यं परकौयमयत्रोपनौतस्य । तथाच याज्ञवस्क्यः,—

ं श्रयाचिताइतं ग्रांद्यमपि दुष्कृतकर्मणः। यतिधर्मेषूशनाः,—

भिचात्रनसमुद्योगात् प्राक्षेनापि निमन्त्रितम्। त्रयाचितं चि तङ्गच्यं भोक्रयं मनुरक्षवीत्॥

यदि प्रतिषेधो यदि वा पर्युद्ध उभयथापि एकभकादि-वस्र कालो विशेषणीयः। प्रतिषेधेऽनुष्ठेयाभावात् पर्युद्ध पर्याधी-नताच । श्रमति कालविशेषविधौ न कर्मकालव्याप्तिवचनम्भ प्रव-नति । तथा सति कालविशेषविध्यभावात् ग्रुक्तक्रण्यप्रतिपद्दिशै स्पवास्वत् पूर्वेत्तरविद्धे याद्ये। एवसयाचिते धर्वतिथिषु उपवास-वत् निर्णयः इति सुख्यितम् ॥ इत्ययाचितनिर्णयः ॥

श्रय दानवतकाली निण्यिते।
भविष्योत्तरे, प्रतिपत्तु दिजान् पूज्य पूजियता प्रजापितम्।
सौवर्णमर्विन्दञ्च कार्यिलाष्ट्रपचकम्॥
कतां लौदुमरे पाने सुगन्धिष्टतपूरिते।
पुष्पेष्ट्रपे: पूज्यिका विप्राय प्रतिपाद्येत्॥
माद्यो मण्डलवते.

मासि भाद्रपदे ग्रक्ते पचे च प्रतिपत्तिथी।
नैवेद्यन्तु पचेन्ग्रीनी बोड्ग्रचिग्रणानि च॥
फलानि पिष्टपकानि दद्यात् विप्राय बोड्ग्र।
देवाय बोड्ग्रीतानि दातव्यानि प्रयक्षतः॥
भुज्यन्ते बोड्ग्र तथा व्रतस्य नियमास्तयः।

एवमन्यान्यपि ज्ञेयानि । तत्र,-

पौर्वाक्तिमसु तिथयो दैवकार्ये पालप्रदाः।

दति रुद्धयाज्ञवस्त्र्यवाक्ये देवे पूर्वाद्यराध्यभिधानात् पूर्वाद्यस्य पञ्चधा विभक्तस्य मुख्यलात्।

> पचद्रयेऽपि तिथयसिषिं पूर्वी तथोत्तराम् । चिभिर्मुहर्त्तैर्विथन्ति सामान्योऽयं विधिः स्टतः॥

दित पैठीनसिवचनाचोदिते भानौं चिसुहर्त्ता तिथिर्घाद्याः। एकभक्रनक्रम् प्रतिपदोक्तकालविभेषणास्त्राभावात् सामान्यणास्त्रस्य प्रवृत्तेः। श्रतएव माधवाचार्य्याः,—

सोदयित्रमुह्नांयां कुर्याद्दानं व्रतानि च। इति।
ननु,— यां तिथिं समनुप्राय उदयं याति भास्करः।
सा तिथिः सकता द्वेया सानदानजपादिषु॥
इति देवतादिवाकास्य,

व्रतोपवासस्तानादौ घटिकेका यदा भवेत्। उदये मा तिथियां स्ना स्नादौ चास्तगामिनी॥

दति विष्णुधर्मोत्तरादिवचनस्य, "श्रादित्योदयवेसायाम्" दत्यादिवौधायनोक्तेस्य का गतिरिति चेत्, उच्यते। वैश्वानराधि-करणन्यायेन श्रवयुत्यानुवादरूपतया तेषां चिमुहर्त्त्रं व्याप्तिप्रशंमापर-वम्। तच षोढा भेदः। उदयकाले पूर्वेषुरेव चिमुहर्त्तं व्यापिनी। परेषुरेव उदयकाले चिमुहर्त्तं व्यापिनी। उभयचापि चिमुहर्त्तं व्यापिनी। नोभयच चिमुहर्त्तं स्थिति। उभयचापि मास्येन वैष-स्येण वा चिमुहर्त्तं कदेगस्यिगंनी चेति। तचाद्ये खण्डतिथिला-

भावात् न मन्देहः। दितीये चयगामिले चिमुह्नर्तामणुत्तरविद्धां परित्यच्य पूर्वेद्युरेवात्ष्ठेयम्। दृद्धिगामिले माम्ये च परेद्युरेव। तथाच उग्रनाः,—

खर्वा दर्पस्तथा हिंसा चिविधं तिथिसच्णम्। खर्वदर्पी परौ कार्यी हिंसा स्थात् पूर्वकालिकौ॥ हतीयादिषु चतुर्षु पचेषु असमयव्याप्तेः कर्मकासवाज्ञस्यस्य च साभात् पूर्वेद्युरेवानुष्टेयम्॥

त्रसमययाप्तेर्निणीयकलम्, पाद्मे,—

वते साने तथा नक्ते पिह्नकार्यी विशेषतः।
यसामसंगतो भानुः सा तिथिः पुष्यभाग्भवेत्॥
तौर्यसानजपद्दोमादयसु व्रतग्रव्देन संग्टहीता दति माधवाचार्याः।

# इति दानवतकाको।

त्रथ व्रतिविधेषु काला निरूषको । तत्र वस्परादिः प्रतिपत् ।

व्राह्मे,— या ग्रुक्षा चैत्रमासस्य वस्परादितिथिः स्थता ।

या ग्रुक्षा प्रतिपचैत्रमासस्य वस्परस्य सा ॥

पूर्वविद्धा न कर्त्त्रया कर्त्त्रया परमंयुता ।

नन्दां संवस्परादौ तु दर्भविद्धां न कारयेत् ॥

परविद्धा प्रकर्त्त्रया दिसुहर्त्ता भवेद्यदि ।

सुहर्त्तसेव कर्त्त्रया प्रतिपद् दितीयान्विता ॥

सुहर्त्तदितयं चैव सुहर्त्तं यदि चापरे ।

वर्त्तते वासरे यस्मिन् प्रातः साब्दितिथि भवेत् ॥

कार्त्तिकग्रक्तप्रतिपदि विलराजोत्सवः। तत्र ब्राह्मे,—
तस्माद्यूतं प्रकर्त्तवं प्रभाते तत्र मानवैरित्यादि ।
म च पूर्वविद्वायां प्रतिपदि कार्यः।
पाद्मे,— श्रावणी दुर्गनवमी तथा दुर्वाष्टमी च या।
पूर्वविद्वेव कर्त्तवा शिवराचि वंलेदिंनम्॥ दति।
माधवाचार्यास्त,— वस्तुत्सवश्च पूर्वेद्युरूपवामवदाचरेत्।

द्ति। उपवासवत् ग्रुक्तप्रतिपदुपवासवदित्यर्थः। एवं च साधवीसे व्याख्यातम्। कृष्णप्रतिपदि पर्विद्वायासुपवासख् सिद्धान्तितलात्।

# श्रथ दितीयाविचारः।

श्रय दितीया। मा च पूर्वविद्धा ग्राह्मा, प्रतिपत् मदितीया स्थाद्वितीया प्रतिपद्युता। य

नतु,— एकादम्बष्टमी षष्टी दितीया च चतुर्द्भौ । चयोदम्बष्यमावास्त्रा उपोब्धाः स्वः परान्विताः।

दित स्गुस्टितिवचनस्य, युगावचनस्य च का गतिरिति चेदुं चिते। पूर्वदिने चिमुहर्त्तमचे एव परिदेने चिमुहर्त्तमचे एत दिचात् पर्विद्वा याच्चा । अवानन्तभट्टीये यद्वावस्थापितं तम् कस्थापि ममातम् । तथाच माधवाचार्याः,—

पूर्वेद्युरमती प्रातः परेद्युस्तिमुहर्त्तगा ।

मा दितीया परोपोया पूर्वविद्धा ततोऽपरा ॥ दति।

यमदितीया । सेङ्गे । ऋसं दला भगिन्या प्रार्थनीयम्,--

भातस्वानुजाता हं भुङ्ख भक्त मिद्रं ग्रुभम् । प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः ॥ च्येष्ठा चेद्गजाता हमित्यू द्यम् । कार्त्तिके तु दितीयायां ग्रुक्तायां भात्यपूजनम् । या न कुर्य्यात् विनम्यन्ति भातरः सप्तजन्मनि ॥ तस्या दिति शेषः ।

भारते, — कार्त्तिके ग्रुक्तपचे तु दितीयायां युधिष्ठिर ।

यमो यसुनया पूर्वे भी जितः खरु हे खयम् ॥

तक्षां निजरु हे राजम् न भी कव्यमतो बुधेः ।

यद्भेन भगिनी हसाद् भी कव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ॥

दानानि च प्रदेयानि भगिनी भयो विशेषतः ।

श्रवाष्ट्रधा विभक्तदिवमस्य पञ्चमभागो मुखाः कर्मकासः।
"भोक्रस्यं पृष्टिवर्द्धनम्" दति विधिममभित्याद्यतपालश्रुत्या भोजननियमस्य प्राधान्यात्। पञ्चमभागस्य च भोजनकास्रावात्। तिथिदैधे
"दितीया प्रतिपद्युता" दत्युक्तेः पूर्वविद्धा याद्या, दति श्रवन्तभद्दीये
यस्तिवितं तस्र। तस्या उक्तेः रूष्णपचिवषयत्वेन निर्णयात्। तथाच
युगोक्ता परविद्विव याद्या। ज्योतिःशास्त्रे,—

तथा यमदितीयायां यात्रायां मरणं भ्रुवम् । दति दितीयाविचारः ।

श्रथ हतीया।

सा चतुर्थीयुना ग्राह्मा। श्रापसम्बः,—

दितीयाभेषसंयुक्तां हतीयां कार्येनु यः ।

स याति नरकं घोरं कालसूचं भयक्करम् ॥ दितीयाग्रेषसंयुक्तां या करोति विमोहिता । सा वैधयमवाग्नोति प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

एवं स्कान्देऽपि बह्ननि वाक्यानि मन्ति। श्रत्र निमुद्धर्त्तवाधीव व्यवस्था । वेधमास्त्रे तथैव निर्णयात् ।

> कस्ता काष्ठापि वा चैव दितीया संप्रदृष्यते । सा द्वतीया न कर्त्तव्या कर्त्तव्या गणसंयुता ॥

दति यत् स्कान्दवचनं, तत् कैमुतिकन्यायेन चिमुह्नतें द्रढय-तौति माधवाचार्याः। परदिने हतीयाया श्रभावे एव पूर्वविद्वा पाद्या।

विश्वष्ठः,—एकादणी हतीया च षष्ठी चैव चयोदणी।

पूर्वविद्धा च कर्त्तव्या यदि न स्थात् परेऽइनि ॥

युग्मवाकां रक्षावतविषयलेन निर्णेयमिति न विरोधः।

रक्षास्त्रां वर्जयिला तु हतीयां दिजमत्तमः।

श्रन्येषु मर्वकार्येषु गण्युका प्रगस्तते ॥

दति ब्रह्मवैवर्त्तीकोः॥

### त्रवयहतीया ।

भविखे, - वैशाखे मासि राजेन्द्र हतीया चन्दनस्य च ।
कस्पीतं तथा धान्यं इतं वापि विशेषतः ॥
तस्यां दत्तन्तवयं स्थात् तेनेयमचया स्यता ।

40

हतीया चन्दनसे<sup>(१)</sup>त्युकेरच चन्दनदानं ग्रसम्॥ दानानु चन्दनसेंच कञ्जजो नाच संग्रयः। इति वचनाच । कञ्जजो ब्रह्मा । त्राग्नेयादिषु उपानक्क्चजनपाचदानान्युकानि,— या ग्रक्ता कुरुगार्दू ल वैगाखे मासि वै तिथिः। हतीया साचया लोके गीर्वाणैर्भिवन्दिता॥ योऽस्थां ददाति करकान् वारिवाजसमन्वितान्। म याति पुरुषो वीर स्रोकान् वै इममासिनः॥ करकान् कुमान्। वाजमन्नम्। हेममालिनः सूर्यस्य। . विष्णुधर्मीत्तरे नचनविग्रेषे ग्रुणविग्रेषः,— श्रवया सा तिथिजैया कत्तिकाभिर्युता यदि । भविष्यति महाभागे विशेषेण फलपदा ॥ वैशाखे मासि राजेन्द्र ग्रुक्तपचे च या तिथि:। हतीया रोडिणीयुका अवया मा प्रकीर्त्तिता ॥ तथा,— वैज्ञाखे ग्रुक्तपचे तु हतीयाथा दिजोत्तम । यह्दाति नरश्रेष्ठ तत्तदचयमश्रुते ॥ विशेषेण तथा दानमचतानां महाफलम्।

बाह्ये,— वैशाखे मामि श्रक्तायां हतीयायां जनाईन । यवानुत्पादयामाम युगमारस्थवान् कृतम् ॥ ब्रह्मकोकात् चिपथगां प्रथियामवतार्यत् । , , तस्यां कार्योः यवैर्डीमो यवैर्विणुं समर्चयेत् ॥ .

<sup>(</sup>१) चन्दनस्य चेल्काः।

यवान् द्यात् दिजातिभाः प्रयतः प्राग्गयेद्यवान् ।

पूजयेक्कद्वरं गङ्गां केलामं तुष्टिनाचलम् ॥

भगीरषं च नृपतिं मागराणां सुखावष्टम् ।

स्नानं दानं तपः श्राद्धं जपष्टोमादि किञ्चन ॥

श्रद्धया कियते यन्तु तदानन्याय कत्यते ।

मिन्धोस्तीरे विश्रेषेण सर्वमचयमश्रुते ॥

श्राद्धन्तु श्राद्धप्रकर्णे लेखाम्। दानादौ पूर्ववत् परविद्धा गाञ्चा ॥

### श्रथ रसाहतीया।

भविष्योत्तरे, सहे कुरुष्य यक्षेत्र रक्षाख्यं वतसुत्तमम् ।
जीवश्चक्षतियायां स्नाता नियमतत्परा ॥
तथापरं रक्षाव्रतं तचेव, स्वीपापप्रणाणिनीम् ।

मार्गग्रीर्षे तथा मासि हतीयायां नराधिए ॥ ग्रुक्कायां प्रातक्त्याय दन्नधावनपूर्वकम् । इत्यादि । उपहारसंहारे,— मौभाग्यार्थं पुरा चौणें रस्थया राजसत्तम । तेन रस्थाहतीयेयं मर्व्वमौभाग्यदायिनौ ॥

सा च पूर्वविद्धा ग्राह्मा।

स्कान्दे,— वृष्ट्यापा तथा रक्षा षाविची वटपैहकी। इच्छाष्टमी च भृता च कर्त्तवा षमुखी तिथिः॥

ब्रह्मवैवर्त्ते, रकांखामित्यादि।

# गौरीव्रतम्।

प्रतानन्दमंग्रहे, — गुडपूपाः प्रदातव्या मासि भाद्रपदे सिते।

हतीयायां सर्वदानं वासुदेवस्य प्रीतये॥

उमां भिवं गणेश्रञ्च विधिवत् पूजयिन्त याः।

गौरीवरप्रमादेन परं सौभाग्यमाप्रयुः॥

तिथिदेधे परदिने व्रतम्। नाच चिसुहर्त्तवेधोऽपि श्रपेस्थते।

तथा च माधवाचार्याः, —

सुद्धर्त्तमाचसत्तेऽपि दिने गौरीवृतं परे । शुद्धाधिकायामधेवं गणयोगः प्रश्चखते ॥

# श्रय चतुर्थी।

साच पर्विद्धा ग्राह्मा,—

एकादमी तथा षष्ठी श्रमावास्था चतुर्थिका ।

उपोध्याः परमंयुक्ताः पराः पूर्वेण मंयुताः ॥

रित रहदमिष्ठोक्तेः, युग्मवचनाच ।

दितीया पद्ममी चैव दममी च चयोदमी ।

चतुर्दमी चोपवासे हन्युः पूर्वेच्चरे तिथी ॥

रित रहदमिष्ठवचनान्तरं वतान्तरविषयमित्यवधेयम् ।

मङ्गलवारचतुर्थीयीं भे फलाधिकाम्,—

श्रमा वे सोमवारेण रिववारेण सप्तमी। चतुर्थी भौमवारेण श्रचयाद्पि चाचया। इति भवियोक्तेः॥

# गिवचतुर्थी ।

ग्रतानन्दसंग्रहे, मासि भाद्रपदे ग्रुक्ता चतुर्ची ग्रिवपूजिता। तस्यां स्नानं तथा दान सुपवासी जपस्तथा॥ तावत्सहस्रमुणितं प्रसादाद्यतिनी नृप।

यतिनो घोगिनः शिवखीत यावत् ।

रौद्रवादपराचोऽच पूजाकाच इति निवन्धनकतः। तिथिदैधे परेऽक्ति जतम्॥

# गौरीगलेगचतुर्थी।

सिङ्गपुराणे, चतुर्थां तु गणेत्रस्य गौर्थास्त्रेव विधानतः।
पूजां कवा सभेत् सिद्धं सौभाग्यस्य नरः क्रमात् ॥
दिति । सिद्धिसौभाग्यस्पफलविधिष्टकामो यस्यां कस्यासित्
चतुर्थां गौरीगणेत्रौ पूजयेत्। पूजाकालयवस्या वस्त्रमाणगणेत्रवतवत् द्रस्या॥

#### विनायक व्रतम्।

भविखे,— विनायकं समभ्यक्यं चतुर्थां यदुनन्दन ।
सर्वविद्वविनिर्मुकः कार्य्यसिद्धिमवाप्नुयात् ॥
स्कान्दे,— विनायकद्रते कार्य्या सर्वमासेषु षण्मुख ।
चतुर्थीं च जयायुक्ता गणनाथसतोषिणौ ॥
प्रातः शुक्रतिचैः स्नाला मध्यक्ते पूजयेत्रृप ।
दित कस्पवचनात् ।

चतुर्ची गणनायस्य मादविद्वा प्रश्रस्ते।

मधाक्रयापिनी चेत् स्थात् परतश्च परेऽहिन ॥

इति रहस्यतिवचनाचः, परिदन एव मधाक्रयाप्तौ परिदने

कतमन्येषु पचेषु पूर्वदिन एव। नाच मोदयिचसुहर्त्तवेधः, मधाक्रस्य
कर्मकाचलात्। जयायुका त्तीथायुका। मात्विद्धा त्तीयाविद्धा।

इक्कितिसेः स्थानं, इक्कितिसान् चिरिम निचिष्येति काकादर्भकारः।

स्कान्दे,—गजवक्कं तु इक्कायां चतुर्थां पूजयेन्त्य।

मासि भाद्रपदे प्राप्ते ग्रुक्तपचे विशेषतः ॥ यदा चोत्पद्यते भिक्तमीसि पूच्यो गणाधिपः । एकमामं दिमासं वा षण्मासं वत्सरं तथा ॥ श्रथवा गणनाथस्य व्रतं दादशवार्षिकम् ।

एवं सित यदा त्रात्यायिककार्यसिद्धिकामो भवेत्, तदैव यसिन् किसंयन मासे ग्रुक्तचतुर्यां गणेशवतं कुर्यात्। "यदा योत्पद्यते" दित वचनात्। भाद्रमासे यद्वतारमं कुर्वित्ता तच विशेषत दित फलाधिकात् प्रतीचासद-कार्यम्बेवेति श्रेयम्। त्रन्यथा सीतान्वेषणार्थं इनूमता त्राचरितस्य वतस्य गरत्काले कार्यलं न स्थात्। एवं त्रस्तादरणादाविष श्रेयम्। एतदिष एकमास-पचे प्रमाणम्। तथा कार्यगौरवमपेच्य दिमासं व्याप्य वतं दिवार-मित्यर्थः। तथा त्रधिकविद्याग्रद्धायां षण्मासं व्याप्य वतम्। षण्मा-सेरेव वतस्य समाप्तिः। वत्यरपचेऽपि दादगिमर्मासमिकमासपाते तः चयोदग्रमासेरिति कालाग्रुद्धिप्रकरणे लेखम्। त्रत्यधिक-कार्यगौरवे दादग्रवर्षपचे प्रतिग्रक्तचतुर्थि दादग्रवर्षपर्यन्तं वतं कार्यमिति साधीयः। त्रस्मिन् दादग्रवर्षपचे यत् प्रतिवत्सरं भाद्रग्रुक्तचतुर्थ्यामेकवारमनुतिष्ठन्ति, तद्पि श्रज्ञानविस्तिमिति जीवम् ॥

श्रव वर्षाषु भवं वार्षिकं व्रतं दाद्येति केचिद्र्यापयां तत्र-न्दमेव। एकवचनान्त्रवत्राब्द्ख दाद्येत्यनेनान्त्रयाभावात्। एक-मामित्याख एकेकमामित्यर्थः कुतो भवेत्। एवं दिमामादिषु श्रोयम्। "मंख्यायाब्द्ख दृत्तिविषये वीद्यार्थलमियाते" दित भाय-कारोक्त्या यथाकयञ्चित् ममाधेयमिति चेत्, वत्यरं तथेत्यादृत्तौ न काचित् गतिरस्तीति मोऽर्थो हेय एव। किञ्च इनुमत्गद्डा-दीनामेकवारानुष्ठाने फलप्राप्तिरपि विसद्धा स्थादिति दिक्॥

वतेऽसिन् विशेषो, वाराहे,-

ग्रुका चतुर्थी कन्यार्कभौमवारेण संयुता।

महती तच विद्रेशमर्चितेष्टं कभेकरः॥

प्रक्रवारेण भौमवारेणेति वा कालादर्शवचनात् बोध्यम्॥

दति विनायकवतम्।

श्रय तद्दिनकर्त्तव्यानि ।

विनायकं समभार्चीत्यननारं भविष्ये, "तिह्ने निद्धां मितं शिवाम्" दत्यायुक्ता,

विद्याकामो विशेषेण पूजयेच गरस्वतीम्।

द्रित विश्वतस्य सरस्वतीपूजनस्य तु यसां राजौ चतुर्थी भवति तस्यासेव करणं समाचारमू सम्। श्रस्थां भाद्रग्रक्तचतुर्थां राजौ चन्द्रदर्भनं निषिद्भम्। ृत्वाच पाद्मे,— ग्रुक्षपचे चतुर्थां तु सिंहे चन्द्रस्य दर्भनम् ।

मिथाभिगंषनं कुर्यात् तस्मात् पर्येच तं सदा।

. . . . सिंहे भाद्रे मासि ।

.. नाह्ने, - वासुदेवोऽभिग्नसम् निगाकरमरी चिषु ।

स्थित यतुर्थ्यां मद्यापि मनुष्यायापतेच सः ॥

श्रतयतुर्थ्यां चन्द्रन्तु प्रमादादीच्य मानवः ।

पठेद्वाचेयिकावाक्यं प्राङ्मुखो वाष्युदङ्मुखः ॥

धाचीवाक्यं तचैव, -

सिंदः प्रसेनमवधीत् सिंदो जाम्बदता इतः ।
सुकुमारक मारोदीस्तव द्वीष स्थमन्तकः ॥
कृष्णोऽपि तद्राचौ चन्द्रकिरणेषु स्थित दति ।

श्रभिश्रापमाप, श्रद्यापि मोऽभिश्रापोऽपवाद इति यावत् मनुष्याय श्राप्ततेदित्यर्थः। श्रतपवेयं चतुर्थी इतितासिकेति प्रसिद्धा। इरेः श्रीकृष्णस्य, ताडिका श्रपवाददायिका इति यावत्। इसयो-रैकात्। तस्मात् चन्द्रेचणं निषिद्धम्। प्रमादात् तदीचणे सिंदप्रसे-नमित्यादिमन्त्रं पठेदित्यर्थः। चतुर्थां चन्द्रदर्शनस्य निषेधात्। "निषेधः कासमात्रके" इत्युक्तेस्तद्राचौ हतीयया पञ्चम्यावा विद्वायां तद्राचिगतहतीयापञ्चम्योञ्चन्द्रदर्शनसमाचारः।

पञ्चाननगते भानौ पचयोर्षभयोरपि।
चतुर्थामुदितसन्द्रो नेचितव्यः कदाचन॥

देखा ग्रांड्समासमसमामाभिप्रायेण पचयोरित्युक्तेर्भसमासेऽपि चन्द्रदर्भनं निषिद्धम् । श्रतएव पञ्चाननगते दति सौर्मासोकिः । श्रतएव, सीमन्तं प्रेतहत्यं च नवग्रव्या नवः ग्रग्नी । मस्त्रमासेऽपि कर्त्त्रयं निमित्तविहितञ्च यत् ॥

दति स्रत्यन्तरानासमायेऽपि नैमित्तिकषद्भर्यमनिषेधस्य परि-पासनसमाचारः । उदितग्रन्दोऽचार्द्धोदितव्यादित्तपरः, स्वरूपया-स्थानपरो वेति तिथितलकाराः। यत्ते तु पञ्चाननगते भानाविति वाक्यमवलम्ब्य ग्रद्धकष्णपचेऽपि चन्द्रदर्भनं निषिद्धमित्यलिखन्, तत् स्रक्तपच रत्यादिपाद्मादिवाक्यविरोधान्नाद्भियत एवासादेगे । नाग-चतुर्थीयवस्था नागपञ्चम्यङ्गलात् तत्र लेखा ॥

# वरदाचतुर्यो ।

नारदीये, माध्यक्कचतुर्थां तु गौरीमाराधयेद्वुधः । चतुर्थी वरदा नाम गौरी तच सुपूजिता ।

त्रच व्रतसामान्यात् सोदयचिसुहर्त्तेयाप्तिर्याञ्चा । तिथिदेधे दतीयाविद्धेव । नाच युग्मोक्तेः प्रसरः ।

जया च यदि सम्पूर्णा चतुर्थी द्वसते यदि ।
जया सैव चि कर्त्तव्या नागविद्धां न कारयेत् ॥
इति विशेषस्थतेः । तथा च माधवाचार्याः,—

गौर्याः ग्रुद्धजयायसु नागविद्धा निविध्यते ।

### श्रय पञ्चमी।

सा चोपवासे चतुर्वीयुता ग्राह्मा। व्रतेऽपि तथा। चतुर्वीसंयुता कार्या पञ्चमी परया नतु ।

इति हारीतोक्तेः।
स्कान्देऽपि, पञ्चमी तु धदा ग्राह्मा चतुर्थीषहिता विभो।
यन् ब्रह्मवैवर्न्ते, —

पश्चमी तु प्रकर्त्तवा षछ्या युक्ता तु नार्द। द्रति।
तत् स्कन्दष्ट्यां स्कन्दोपामनाय विचितं पश्चमुपवामं विषयीकरोति
"स्कन्दोपवामे स्वीकार्या पश्चमी परमंयुता"।

द्ति वाक्यमेषात्। तथा च, स्कन्दोपवासपञ्चमीव्यतिरिक्त-पञ्चमीषु पूर्वविद्धेव॥

श्रावणग्रक्षपचे जागद्गीरीपश्चमी।
प्राणे, पद्मनाभे गते ग्रय्यां सर्वे देवे रनन्तरम्।
पश्चम्यामग्रितौ पचे समुत्तिष्ठन्ति पन्नगाः॥
सप्ते तु देवदेवेग्रे पश्चमी व्याचपश्चमी।
कुर्युस्तच यथाग्रस्या जागद्गीरीमहोत्सवम्॥

देवैरिति महार्थे ढतीया। त्रिश्वतौ ग्रुक्तपचे। श्रितिर्धवस्तमे-चकाविति कोषात्, ग्रुक्तपचे समाचाराच। हरिग्रयनानन्तरं त्रावणमास दत्यर्थः। त्राषाढे ग्रयनविधानात्। तथा त्रावणग्रुक्तपचे जायद्गौरी दत्याखा। दयं पूजा राचावाद्रियते<sup>(१)</sup>, जायच्छ-ब्द्रश्रवणात्॥

भाद्रहण्णपचे रचापश्वमी । भविष्ये, — तच भाद्रपदे माचि पश्चम्यां श्रद्ध्यान्वितः । यस्तास्त्रिख्य नरो नागान् कृष्णवर्णादिवर्णकेः ॥

<sup>(</sup>१) क्रियते।

पूजयेद्गन्धपुष्पेश्व धर्पिःपायधगुग्गु सः ।
तस्य तृष्टिं समायान्ति पत्रगास्तवकादयः ॥
त्राधप्रमात् सुनात्तस्य न भयं नागतो भवेत् ।
तस्मात् धर्वप्रयत्नेन नागान् संपूजयेद् बुधः ॥

द्यं नागपूजा दिवैव । नागानां नामानि पञ्चम्यां लेख्यानि । रचाविधानं तु राचौ क्रियते । राचिपदेन प्रदोष एवाच च्चेयः । भविष्ये,—यः त्रावणे स्रवति ग्रीतजले सुरेन्द्रं

रचाविधानमिदमाचरते मनुष्यः । श्रास्ते सुखेन परमेण म वर्षमेकं पुचप्रियादिसहितः ससुइक्जनस्य ॥ श्रावण दति चैत्रशुक्तादिमासानिप्रायेण । रचाकरणमन्त्रो यथा,—

घष्टाकर्ण महावीर मर्वयाधिनिवारण।

मर्वीपद्रवर्षघातविद्रावण हरप्रिय॥

कण्डे यस्य महानीलं भूषणं यस्य पन्नगाः।

तेजांचि तस्य देवस्य रचन्तु मम मन्दिरम्॥

रस्त्रुधारणमन्त्रो यथा,—

येन बद्धो वली राजा दानवेन्द्रो महासुरः।
तेन लामपि बध्नामि रचामाचर मा चल ॥
यदोभयदिने पञ्चमी राचिं सृगति। तदा पूर्वदिने रचाविधानमिति निवन्धनकतः॥

## ऋषिपञ्चमी।

स्थितसमुख्ये, — भाद्रे सितेऽपराक्षेत् पश्चमौ यच तिष्ठति ।
विश्वामित्र ऋषिः स्मार्त्तः पूज्यः सन्तानदृद्धये ॥
त्रपराक्षः कर्मकाकाः । तत्र तिधिदेधे पूर्वविद्धेव याद्या ।
वष्ठीयुक्ता पश्चमौ या महर्षेक्तत्र पूजने ।
पतिपुत्रहता नारी सा नारी नर्कं अजेत् ॥
दति ग्रतानन्द्संग्रहोकोः ॥

## घोटकपश्चमी।

देवीपुराणे, — त्राश्वनस्थासिते पचे पद्यमी या तिथिभंवेत्।
तस्यां ग्रान्तिं प्रकुर्वीत त्रश्वानां दृद्ध्ये सदा ॥
दिव्यादिना रेवन्तादिपूजाविधिसुद्धाः (१),
एवं नमस्त्रत्य सुद्ध यः ग्रान्तिं कार्येत्रृपः ।
तस्याश्वाः प्रविवर्द्धन्ते श्वश्वपूर्णं च मन्दिरम् ॥
दिव्यक्तत्वात नपस्थावश्वकी पूजा । "पद्यमी सप्तमी चैव" द

द्युक्रतात् नृपस्थावस्थकी पूजा । "पश्चमी सप्तमी चैव" दति वास्थात् सायाक्रयाया व्यवस्थेत्यसात्पितामहरूतनीतिरक्षाकरे किखितम् ॥

## नागपञ्चमी ।

भविखे, - त्रावणे माधि पश्चम्यां ग्रक्षपचे नराधिष । दारखोभयतो लेखा गोमयेन विषोध्वणाः ॥ त्रानमो वास्तिस्थैव राजीवो मणिभद्रकः ।

<sup>(</sup>१) इत्यादिपूजामुक्ता।

ऐरावतो धतराष्ट्रः कर्कोटकधनद्मयौ ॥

पूजयेदिधिवदीर दिधिदुर्वाङ्क्ररेः कुग्नैः ।

गन्धपुष्योपचारेख ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥

ये तस्यां पूजयन्तीच नागान् भिक्तपुरःसराः ।

न तेषां सर्पतो वीर भयं भवति कुचित् ॥

दित । श्रावणमासे विचितमपीदं व्रतं कार्त्तिकमासे कुर्वन्ति ॥

एवं चतुर्षु मासेषु पञ्चस्यां यः प्रपूजयेत् ।

श्रासप्तमात् कुलात्तस्य न भयं सर्पतो भवेत् ॥

दति वाकान्तरे चातुर्माखमध्ये यस्मिन् कसिन्नपि मासे प्रक्रमचे तद्वतोतेः।

पुराणान्तरे,— तिथौ युगाइयायां च समुपोध्य यथाविधि । ग्रह्मपानादिनागानां ग्रेषस्य च महातानः ॥

पूजा कार्या गन्धपुष्पचीराषायनपूर्वकम् ।

दति। श्रन्यनागानां पूजोक्तेति तेषां नागानां विकन्यः। युगा-इया युगमंज्ञका चतुर्णीत्यर्थः। तत्र तिथिदेधे विचारः। तचादौ तदङ्गभूता नागचतुर्णी विचार्यते। तत्र मधाक्रः कर्मकासः।

> युगं मध्यन्दिने यत्र तत्रोपोख फणीश्वरान् । चीरेणाष्याय्य पञ्चम्यां पूजयेत् प्रयतो नरः ॥ विषाणि तेषां नम्यन्ति न च चिंमन्ति पञ्चगाः ।

दति देवलोक्तेः । "पश्चम्यां पूजयेत्" दत्येतद्दनात् पश्चमी-योगस्य प्राणस्यमवधीयत दति । तदङ्गभ्रता नागचत्यीं पूर्वेद्युरेव मध्याक्रयाप्तौ पूर्वेद्युः। ऋन्येषु पश्चसु भेदेषु उत्तरविद्धेव । नागपश्चम्यां मोदयित्रमुहर्त्त्याप्तिरेव पाद्या । कैथित्तु "युगं मधन्दिने" द्रायुक्ते नागपञ्चम्यां मध्याद्रः कर्मकास दति सिखितम् । तत् प्रमादविस्तिनेव। चतुर्थीवचनस्य पञ्चम्यामप्रवृत्तेः । नागपञ्चम्यासु नागचतुर्थाधीनलेन मध्याद्रव्याप्तेर्रियतलास् ॥

## श्रीपश्वमी।

धवससंग्रहे, पश्चमां सुन्दतुस्मैः कौन्दी पूज्या समृद्धे।
कौन्दी सरस्ती। तथा, —
सौभाग्यसुत्तमं सुर्य्यात् पश्चम्यां श्रीरिप श्रियम्।
श्रीरच सरस्ती। वरदाचतुर्य्यनन्तरं एतदचनस्योत्रलादियं
माध्यक्षप्रसमीति श्रायते।

थद्यपि गौड्संवत्सरप्रदीपे,-

माचे मासि सिते पचे पश्चमी या श्रियः प्रिया।
तस्याः पूर्वाच एवेच कार्यः सारस्त्रतोत्सवः ॥
तथायसाद्गेप्रिष्टेः राचावेव सरस्ततीपूजा कियते ॥

## श्रय षष्टी।

सा च सप्तमीयुता याद्या।

एकादम्मष्टमी षष्टी पौर्णमासी चतुर्द्गी।

प्रमावास्था हतीया च ता उपोस्थाः परान्विताः॥

इति विष्णुधर्मीकोर्युग्मवचनाच।

म दि षष्टी नागविद्धा कर्त्तस्था तु कदासम।

नागविद्वा तु या षष्ठी क्रतपुष्णचया भवेत् ॥

सप्तम्या सद्द कर्त्तव्या महापुष्णफलप्रदा ।

दित ब्रह्मवैवर्त्तीके बंतेऽपि सप्तमीयुतेव गाङ्मा। नागः पश्चमी।
पुष्पस्य चयो यसां सा तथोक्ता। यदि कदाचित्तिथिचयवणादुत्त
रविद्वा न सभ्यते। तदाऽमत्यां पूर्वविद्धा गाङ्मा। तदाद विष्ठष्टः,—

एकादगी हतीया च षष्ठी चैव चयोदगी।
पूर्वविद्धा तु कर्त्तव्या यदि न स्थात् परेऽद्दिन ॥

त्रार्खकषष्ठी।

सत्यः, — न्येष्ठे मासि सिते पचे वछ्यामार खक्तते।

या विन्ध्यवासिनी देवी पूजयेयु वंनेमताः॥

कन्दमूल प्रलाहारा सभन्ते सन्तिति हि ताः।
राजमार्नेण्डे, — न्येष्ठे मासि सिते पचे वष्ठी चार ख्यमं ज्ञका।

वजनेक करासासामटिना विपिने स्तियः॥

तां विन्ध्यवासिनी स्तन्द वष्ठी माराध्यनित च।

कन्दमूल प्रलाहारा सभन्ते सन्तिति हि ताः॥

स्तन्द वष्ठी मित्य पात्यन्तसंयोगे दितीया। तथाचास्याः श्रार खन्

स्कन्दषष्ठी मित्य पात्य नामं योगे दितीया। तथा पास्यः पार्यः -कषष्ठी स्कन्दषष्ठी चेति नामदयम्। चैत्र इथापचे वच्छा माणा तुः स्कन्दषष्ठ्येव। तिथिदेधे पूर्वविद्धा पाद्या।

हम्णाष्ट्रमी स्कन्दषष्ठी भिवराचिखतुर्दभी।

एताः पूर्वयुताः कार्व्याक्तिय्यन्ते पार्णं भवेत्॥

इति विभिष्ठोकेः॥

# षष्टीदेवीषष्टी।

यया भाद्रस्य ग्रुक्तायां षष्ठ्यां षष्टी प्रपूजिता ।
जीवत्युचा च सौभाग्यधनधान्यसमन्तिता ॥
तस्माद् यद्भेन नार्यस्तां पूजयन्ति सदैव तु ।
अच षष्टीसाधार्ण्येन व्यवस्था, विशेषाभावात् ।

### प्रावर्णषष्टी।

कौर्म, — या तु मार्गि घर प्रक्ता महावष्टी नराधिप।
देवदिजसुबद्धाय गीतन्नं तत्र दापयेत्॥
गीतन्नग्रब्देन वस्त्रकम्बसपटीप्रस्तयः। श्रव दानोक्या सोदयविसुद्धर्त्तः कर्मकासः॥

### चैचक्रण्कन्दवही ।

चैचमधिकत्य देवीपुराणे,—

षष्ठ्यां स्कन्दस्य कर्त्तव्या पूजा सर्वीपकारिका।

दचैव सुखसीभाग्यमन्ते विष्णुपुरं क्रजेत्॥

चैद्गेऽपि,—प्रत्यब्दमपि पूजा च षष्ठ्यां कार्य्या गुइस्य च।

व्यवस्थाद्धका॥

\_\_\_\_\_\_

### श्रय सप्तमी।

सा च पूर्वविद्धा ग्राह्मा । युग्मोक्तेः, समुखीतिथिला । वष्ट्येकादस्थमावास्था पूर्वविद्धा तथाष्टमी । सप्तमी परविद्धा च नोपोस्थं तिथिपञ्चकम् ॥ दित स्कान्दे खत्तरविद्धाया निषेधाच । व्रतेऽपि षष्टीविद्धैव ।

पष्ठी तु सप्तमी यत्र अन्योन्यं तु समाश्रिते । पूर्वविद्धा दिजश्रेष्ठ कर्त्तव्या सप्तमी तथा(१)॥

दित विष्णुपुराणोकेः । यदा पूर्वेषुरस्तमयपर्यन्ता षष्ठी, परेषुः तिथिचयवणादस्तमयादर्वाक् श्रष्टमी चिसुह्र्त्तां, तदा पूर्वविद्वाया श्रक्ताभादुत्तरविद्वायाय प्रतिषिद्धलात् कुचानुष्ठानमिति चेन्नि-षेधमुक्षङ्चापि उत्तरविद्वायामनुष्ठानम् । "ग्रेषिकोपस्थान्याय्यलादु-त्तरविद्वा गौणकाकलेन स्वीकार्या" दित माधवाचार्याः। तथाच मर्वेषु मप्तमीवतेषु "पञ्चमी सप्तमी चैव" दित पैठीनस्थुकेः,

यमुखी नाम मायाज्ञवापिनी दृग्धते यदा । इति स्कान्दोक्रीः मायाज्ञवाप्तौ व्यवसा॥

# कुकुटीवतम् ।

भवियो, — भाद्रे मासि सिते पचे सप्तम्यां चिताचये।

स्नाता शिवं मण्डचने लेखियता च साम्तकम्॥

भक्त्या संपूच्य विधिवत् करे बद्धा सुडोरकं। इत्यादि।

श्रव सप्तमीसाधारणी व्यवस्ता॥

## माघगतमी।

स्रित्मसुचये, — सूर्ययहणतुच्या हि ग्रुक्ता माघस्य मप्तमी । त्रक्षोद्यवेत्तायां स्नानं तत्र महापत्तम् ॥ तत्रेव, — सूर्य्याय पत्तगन्धार्कपवरक्तप्रस्नवत् । द्यादुत्याय तत्राघं मप्तधा यदि वा विधा ॥

<sup>(</sup>१) सन्मखी

कोटिभास्करा सप्तम्याः भास्करदेवताकलेन कोटिसप्तमीत-

मात्ये, — माघमासस्य सप्तम्यासुद्यत्येव भाष्तरे ।
विधिवन्तु तिसस्तानं महापातकनाग्रनम् ॥
भिवयो, — माघे मासि सिते पचे सप्तमी कोटिभास्करा ।
द्यात्मानार्घदानाभ्यामायुराराग्यसम्बदः ॥
श्रद्याद्मानार्घदानाभ्यामायुराराग्यसम्बदः ॥
श्रद्याद्मावयं ग्रद्धा माघस्य सप्तमी ।
गङ्गायां यदि सभ्येत सूर्यग्रहगतैः समा ॥

खोत्पर्थः । खानमन्त्रो यथा,-

यद्यद् जनाहतं पापं मया सप्तस्त जनास्।

तन्मे रोगञ्च प्रोकञ्च माकरी इन्तु सप्तमी ॥

श्रर्धमन्त्रस्तु,— जननी सर्वभ्रतानां सप्तमी सप्तसिको ।

सप्तयाञ्चतिको देवि नमस्ते रविमण्डले ॥

सप्तमित्रद्व प्रीत सप्तदीपप्रदीपक ।

नमस्कारमन्त्रस्तु,—सप्तम्याञ्च नमस्तुभ्यं नमोऽनन्ताय वेधसे॥

श्रवाचारभोजनं सुर्वन्तीति हत्यकौसुदीकाराः।

तद्र्याणि यथा,-

गव्यमिखनमन्त्र तिन्तसुद्गी च मागधी।
तथा, च्यामतण्डुनसुद्गास मद्योदिधि हतं (१) पयः।
श्रवाराः कथिता द्वोते श्रन्ये चाराः प्रकीर्त्तिताः॥
दल्तकाष्ठं तथैवापिस्तकटु चिमना तथा॥
भोज्यपानं तथैवैतद्चारं परिचवते।

<sup>(</sup>१) दधिसद्योष्टतं।

सुष्ठीपिषासीमरीचानि विकटु।

हरीतकी विभीतक्यामलक्यस्त्रिपाला तथा।

उभयचार्णोदयकालवाशौ पूर्वच खानम्।

चतस्रो घटिकाः प्रातर्हणोदय उच्चते ।

यतीनां खानकाकोऽयं गङ्गाभाः पद्गः स्रतः ॥

चिवामां रजनी प्राज्ञस्यकाद्यन्तंत्रस्यम् ।

नाडीनां तदुभे सन्ध्ये दिवसाद्यन्तसंज्ञने ॥

दति ब्रह्मवैवन्तैवाक्येन पूर्वस्थार्षोदयकासस्य परिद्नाङ्गलोकः। एतच सप्तमीस्थानं नित्यप्रातःस्थानं कला सन्ध्यातः पूर्वं पुन-र्माचस्थानं कला सन्ध्यातः पूर्वमेव पुनः कार्य्यम्। एतदिचारो वैभाखमासेऽनुसन्धेयः।

श्रव कोणार्कचेचे विशेषपंत्रम् । ब्राह्मे,—

माघे माधि सिते पचे सप्तयां संयतेन्द्रियः ।

कृतोपवासो यस्त्रच गला तु मकरालये ॥

कृतशोचो विश्वद्वातमा स्रारेहेवं दिवाकरम् ।

सागरे विधिवत् स्नाला श्रवयंन्ते समाहितः ॥

देवानृषीन्मत्रयांस्य पितृन् सन्तर्णं च दिजान् ।

प्रतीर्थं वाससी धौते निर्मले परिधाय च ॥

श्राचम्य प्रयतो भूला तौरे तस्य महोद्धेः ।

हत्यादि बद्धपन्त्रेष सूर्यपूजांघांदिकसुत्ना,

सूर्यगङ्गाभाषि स्नाला कुग्रेराधिच्य मुर्द्धन ।
सर्वपापविनिर्भुको नरो याति चिपिष्टपम् ॥

तथा,— योगं विवस्ततः प्राप्य ततो मोचमवाप्रुयात् । श्रेष विधिवाक्यानि ब्राह्मे द्रष्टव्यानि ॥

## त्रय त्रष्टमी।

तच हाणाष्ट्रमी सप्तमीविद्धा ग्राह्मा । तथाच निगमे,-क्रणपचेऽष्टमी चैव क्रणपचे चतुर्दशी। पूर्वविद्वेव कर्त्तंया परविद्वा न कस्यचित्॥ खपवासादिकार्येषु द्वोष धर्मः सनातनः । ग्रकाष्ट्रमी तु नवमीयुता गाच्चा । शुक्रपचेऽष्टमी चैव शुक्रपचे चतुर्दशी। पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या कर्त्तव्या परभंयुता ॥ उपवासादिकार्येषु द्योष धर्मः सनातनः। इति निगमोक्तेः । युग्मवाक्यमपि शुक्कपचपरम् । एवं, नाष्टमी पप्तमीयुका पप्तमी नाष्टमीयुता । नवस्या सइ कार्या स्थाद्यमी नाच संगयः॥ इति ब्रह्मवैवर्त्तवाकान्यपि ग्रुक्काष्टमीपराख्येव । तत्र काम्याऽष्टम्युपवासो देवीपुराणे,— एकादग्री कोटिसइस्रतुखाऽिमताष्टमी पर्वतराजपुत्राः। ततोऽपि शका गुणिता भतेन पराभर्यासवभिष्ठमुखीः ॥ भविखे, — ग्रुक्तपचे तथाष्टम्यासुपवासपरायणः। मालतीकरवीरेण विकापचेश्व पूजयेत्॥ दुर्गेति नाम जप्तयं पुरतोऽष्ट्रगतं नृप।

मर्वमङ्गलनामिति जप्तयं किल भारत ॥
तथा, - चतुर्द्यां तथाष्ट्रम्यां पचयोः ग्रुक्तकृष्णयोः ।
योऽब्दमेकं न भुज्जीत शिवार्चनपरी नरः ॥
यत् पुष्यमचयं प्रोक्तं सततं सचयाजिनाम् ।
तत् फलं सकलं तस्य प्रिवलोकं स गक्कति ।

• सततस्वयजनाचयपुष्यप्राप्तिः, गिवसोकप्राप्तिय फसम्। फास्-गुनग्रुक्षाष्ट्रमीचतुर्द्य्योरारभ्य वर्षं यावत् प्रत्यष्ट्रमीचतुर्द्य्युपवाय-वतम् ॥

#### श्रमोकाष्ट्रमी ।

स्तेक्षणारुख्योः,—श्रश्मोकस्याष्टकिका ये पिवन्ति पुनर्वसौ । चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते श्रोकमवाप्रुयुः ॥ व्धवारयोगे विशेषः,—

> चैंचे मासि सिते पर्चे दृष्वाग्ने पुनर्वसौ । स्रोतः स्नाला बुधाष्टम्यां वाजपेयमानं सभेत् ॥ त्रशोकेर्चयेदुगमशोकक्तिकाः पिवेत् ।

उग्नं जिवम्। इति नचचवारयोर्थीगे फलाधिकाम्। तयोरभावे-ऽपि तिथिमाचे तत्पानम्।

मीने मधौ ग्रुक्तपचे त्रगोकाख्या तथाष्ट्रमी। पिवेदगोककिकाः खायाक्षोकितवारिणि॥ इति ख्कान्दोकोः। चोहितवारिणि ब्रह्मपुत्राख्यनदण्छे।

काम्यं स्नानमार विष्णुः, - तद्भावे स्रोतोमाचेऽपि, -

पुनर्वसुबुधोपेतां चैचे मासि शिताष्टमीम् । स्रोतःस विधिवत् स्राला वाजपेयफलं लभेत् ॥ इति। जलगण्डूषेऽष्टाशोककलिकाः स्थापयिवाभिमन्त्रणम् । मन्त्रस्तु,—लामशोक हराभीष्ट मधुमासमसुद्गव ।

पिवामि ग्रोकसन्तप्तो मामग्रोकं सदा खुर ॥

इमं मन्त्रं पौराणिकलात् स्त्रिय गृहा श्रिप पठेयुः। स्ती
मिर्ष नोषः कर्त्त्रयः प्रकृतावपूर्वलादिति । जैमिनिन्ग्रायेन प्रसताव्राभावात् । एतत्पानस्य भोजनस्पलाद्ष्रधाविभक्तसाद्यः

पञ्चमभागः कर्मकालः। तच तिथिदेधे परविद्धेव याद्या।

सामान्यग्रुक्ताष्टमीलात् । फलं लच मन्त्रसिङ्गात् ग्रोकाभावः।

स्रोष्ठाव्रतादीनामस्रदेग्रे समाचाराभावात् न तद्वावस्रोक्ता ॥

## ह्याजयन्यष्टमीवतम् ।

तत्स्वरूपं स्कान्दे,—जयं पुक्षञ्च कुरुते जयन्तीमिति तां विदुः।

रोहिणीपहिता हृष्णाष्टमी या त्रावणाष्टमी ॥

विष्णुधर्मीत्तरे,—रोहिणी च यदा हृष्णपचेऽष्टम्यां युधिष्ठरः।

जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः॥

तद्करणे स्कान्दे,—गृद्रान्नेन तु यत्पापं ग्रवहस्तस्यभोजने।

तत्पापं सभते कुन्ति जयन्यां भोजने हते॥

बह्मप्रश्च सरापञ्च गोबधे स्तीबधेऽपि वा।

म स्नोको यदुग्रार्टूस जयन्तीविमुखस्य च॥

तथा,— म करोति यदा विष्णोर्जयन्तीसभवं वतम्।

यमस्य वज्रमापनः महते नार्कीं व्यथाम् ॥ विष्णुरइस्वविष्णुपुराणयोस्तत्करणे फलम्,-रो दिकामईराचे तु यदा क्रणाष्ट्रमी भवेत्। तस्यामभ्यर्चनं ग्रौरेईन्ति पापं चिजनाजम्॥ भविषाेत्तरे, - जयन्यामुप्वामञ्च कला योऽभ्यर्चयेद्धरिम् । तस्य जनामतोङ्गृतं पापं नामयतेऽच्यृतः ॥ कौमारे यौवने वाखे वार्ड्डको यदुपार्जितम्। तत्पापं नाग्रयेत् कृष्ण स्तथा तस्यां सुपूजितः॥ एवं यः कुरुते देवा देवकाः सुमहोत्यवम् । वर्षे वर्षे भागवतो मङ्गको धर्मनन्दन ॥ नरो वा यदि वा नारी यथोकं फलमञ्जूते। पुचमन्तानमारोग्यं धनधान्यर्द्धिमद् ग्टइम् ॥ ग्राजीचुयवसमूर्णं मण्डलं सुमनोहरम् । तिसान् राष्ट्रे प्रभुर्भेङ्को दीर्घायुर्मन से पितान् ॥ परचक्रभयं नास्ति तस्मिन् राष्ट्रेऽपि पाख्व। पर्जन्यः कामवर्षी स्थादीतिभ्यो न भयं भवेत्॥ यस्मिन् रहे पाण्डुपुच लिखाते देवकीवतम् । न तत्र स्टतनिस्त्रान्ति ने गर्भपतनं भवेत्॥ न च बाधिभयं तच भवेदिति मतिर्मम। न वैधयं न दौर्भाग्यं न तत्र कलहो ग्रहे॥ सम्पर्केणापि यः कुर्यात् कश्चिष्णन्माष्टमीवतम् । विष्णुलोकमवाप्नोति मोऽपि पार्थ न मंत्रयः ॥

इति प्रत्यवायवीयायोः श्रवणात् फलश्रवणाच एतद्वतं नित्य-काम्यम् ।

> नित्यं बदा यावदायुर्वीपायोगः पानाश्रुतिः । प्रत्यवायोऽनुकन्पश्चेत्यष्टौ नित्यलगोधिकाः ॥

द्रित संपद्योक्यादिषु एषां नित्यादिशब्दानामष्टानां मध्ये एक-स्थायुक्तौ नित्यलिसिद्धेः। काम्यतया करणे नित्यलस्थापि सिद्धिः।

काम्येन नित्यसिद्धिः स्थात् प्रयोगो नोभयात्मकः।

दति स्रतेः। एकस्य त्रभयते, धंयोगप्रयक्षमिति जैमिनि न्यायेन, "त्रिप्रदोत्रं जुड्डयात्" "त्रिप्रदोत्रं जुड्डयात् स्वर्गकाम" दत्यादिवदेकप्रयोगादुभयिषद्धिः। किन्तु काम्ये धर्वाङ्गोपमंद्दारे, नित्ये तु त्रङ्गवैगुष्येऽपि फलमिति। त्रत्र श्र्ट्रादेरप्यधिकारः, नरो वेति मनुष्यमात्राधिकारोत्तेः। स्त्रीणां स्कुटोऽधिकारः।

ज्यन्यामुपवामय मशापातकनाश्रनः ।

मर्वै: कार्या महाभक्त्या पूजनीयस केयवः ॥

इति भविष्योत्तेः, मर्वैः ग्रैवादिभिः मर्ववर्णेय कार्यामदं वतम् । भविष्योत्तरे तु,—

श्रावणे बज्जले पचे रूणजन्माष्टमीवतम् ।

न करोति नरो यसु भवति ब्रह्मराचमः ॥ इत्यादि।

तथा, - वर्षे वर्षे तु या नारी कृष्णजनभाष्टमीवतम्।

न करोति महासीहा व्यासी भवति कानने ॥ स्कान्देऽपि, चेन कुर्वन्ति जाननाः कृष्णजनाष्ट्रसीवतमः।

ते भवन्ति नराः प्राज्ञा व्याला व्याज्ञास कानने ॥

पातनं(१) नरके घोरे भुष्मता कृष्णवासरे ॥
पातनं(१) नरके घोरे भुष्मता कृष्णवासरे ॥
प्रन्यवापि, — नभःकृष्णाष्टमीप्राप्तौ भुष्मते ये दिजाधमाः ।
वैलोक्यसभवं पापं भुष्मन्येव न संगयः ॥
दत्यादिषु यः केवलाष्टम्युपवासोऽभिष्टितः । स जयन्युपक्रमोपमंद्रारमध्यपठितलादैश्वानरदाद्रग्रकपालान्तर्गताष्टाद्रग्रकपालादिवदवयुत्यानुवादेन जयन्तीवतप्ररोचनापर एव । तच्च स्पष्टं ब्राह्मो, —
तथा भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे ।
प्रष्टाविंग्रतमे जातः कृष्णोऽसौ देवकौस्तः ॥

दत्याधुक्ता,— श्रमिजिन्नाम नचत्रं जयन्ती नाम गर्वरी । अस्ति नाम यत्र जातो जनाईनः ॥

मोपवासो हरेः पूजां क्रवा तच न सीट्ति । इति तदन्त एवोपसंहतम् । एवमाग्नेयपुराणेऽपि,—

ह्यापचे भाद्रपदे श्रष्टम्यां रोहिणी ग्रुभे। उपोषितोऽर्चयेत् हृष्णं सुनिसुनिप्रदायकम्॥

द्ति जयन्तीसुपक्रम्य,—

<sup>(</sup>१) पातितं नरके घोरे यो भुड्तो।

प्रात्रस्थावगमात्तल्लाभेऽष्टमीमात्रमप्रयत्तं न यात्त्रम् । नवत्रयोगाभावे तुः प्रतिनिधिवत्तिथिमात्रमाश्रयणीयसेव ।

दिवा वा यदि वा राची नास्ति चेट्रोडिणीकसा ।
राचियुकां प्रकुर्वीत विभेषेणेन्दुसंयुताम् ॥
रित पुराणोकीः समाचाराच ।

क्रणाष्ट्रमीदिने प्राप्ते येन भुक्तं दिजोत्तम । वैकोक्यसभावं पापं तेन भुक्तं दिजोत्तम ॥

इति स्तायुक्तेसिथिमानेऽयकरणे प्रत्यवायत्रवणात् प्रतिवर्ष-विधानाच । तथाच, जन्माष्टमीति व्यवहारोऽपि संगक्ते॥ प्रत व्रतस्तक्षं, उपवासजागरणकृष्णपूजाचन्द्रार्घादि । तथाच, तत्प्रकरणे नारदीये,—

खपोष्य जनाचिक्रानि सुर्याक्रागरणं निशि ।

प्रद्वेराच्युताष्टम्यां सोऽश्वसेधपसं सभेत् ॥

भविद्योत्तरे,— तसानां पूजयेद्वत्या ग्रद्धः सम्यग्रपोषितः ।

बाद्यणान् भोजयेद्वत्या ततो द्याच दंषिणाम् ॥

दिरक्षं रजतं गावो वाशंसि विविधानि च ।

यद्यदिष्टतमं सोने रूप्यो मे प्रीयतामिति ॥

तचैव,— चन्द्रोदये ग्रग्राद्वाय अर्थं द्यात् इरिं स्नरन् । इति ।

ददं काम्यले, काम्ये सर्वान्नोपसंद्रारेण फलसिद्धेः । निष्काम
काषि वामर्थे । प्रशामर्थे तु,—

केवलेनोपवासेन तिसान् जनादिने मम । प्रतजनाकतात् पापानुष्यते नाच संप्रयः॥ र्त्येव जयली प्रकत्य, भवियो,—

एकेनैवीपवासेन कतेन कुरुनन्दन ।

सप्तजन्मकतात् पापान्सुचाते नाच संप्रयः॥

तच कर्मकालः, भवियो,—

रोडिणीयहिता कृष्णा मासि भाद्रपदेऽष्टमी।
श्रद्धराचादधञ्चोद्धं कलयापि यदा भवेत्॥
महापुष्णतमः कालो जयन्याख्यः प्रकीर्त्ततः।
योगीयरः,—श्रद्धराचादधञ्चोद्धंमेकार्द्धघटिकान्विता।

रोहिणी चाष्टमी याद्या उपवासनतादिषु ॥ इति ।

एका च ऋदूंघटिका च एकाईघटिके, ताभ्यां प्रत्वितेत्वर्षः।

एतेन घटिका याद्या, तद्यंभवेऽईघटिकापि।

नाद्ये,— सुद्धर्मी विजयो नाम यच जातो जनार्दनः। इति ।

एवं मुख्यकालसः चैविधोऽपि घटिकासम्बन्ध्यशौत्यधिकशक्तसभागक्ष्पायाः कलाया त्रितिसूक्षालेन दुर्लच्छलास्न व्यवस्थापकलम्।
नाषार्द्वघटिकायाः, तचापि सन्देशात् (१)। तथात्र पूर्वापरद्ख्यदेशोपेतमर्द्वराचमत्र मुख्यः कर्मकालः। विष्णुधर्मीक्तरेऽपि,—

श्रर्हुराचे तु योगोऽयं तारापत्युद्ये तथा।
नियतात्मा श्रिचः स्नातः पूजां तच प्रवर्त्तयेत्॥
श्रय गाञ्चतिथिनिर्णयः।

तचादौ जयन्तीषंज्ञका रोहिणीयुताष्टमी ग्रद्धा विद्धा ग्रद्धा-धिका विद्धाधिका चेति चतुर्विधा। तच षष्टिदण्डातिमकाषां

<sup>(</sup>१ सन्देष्ट्रसत्त्वात्।

ग्रद्भायामष्टम्यां समूर्णयोगार्द्धराचयोगार्ह्यराचामष्टम्यां संपूर्णरोहिणी-योगेषु न मंदेहः। एवं सप्तमीविद्धायामष्टम्यां संपूर्णरोहिणी-योगार्द्धराचतद्योगार्होराचान्तर्यत्किश्चिमुहर्त्ततद्योगेष्विप पूर्वच मतम्। एतेषु षट्षु भेदेषु दिनान्तरे योगाभावात्। किन्तु योगतारतम्यात् प्राग्रस्थतारतम्यम्। यत्किश्चिमुहर्त्तयोगः प्रग्रस्तः। श्रद्धराचयोगः प्रग्रस्ततरः। संपूर्णयोगः प्रश्रस्ततमः।

> मुहर्त्तमणहोरात्रे यस्मिन् युक्तं हि सभ्यते । त्रष्टम्यां रोहिणी ऋचं तां पुष्यां ममुपावसेत् ॥

द्रित विश्वारहस्थोकः, पूर्वेद्युः सम्पूर्णाष्टमी परेधुरिप वर्द्धते स्वेत् ग्राह्माधिका भवति। मापि पूर्वेद्युरेव रोहिणीयुता। परेधुरेव तद्युता। उभयन तद्युता चेति। तचाद्यदितीययोर्न सन्देदः। हतीये पूर्वेद्युरेव, परदिनार्द्धराचेऽष्टम्यभावात्। निभीये तिथिनच-चयोगस्य प्रमस्ततर्लात्।

. नतु, चर्ये चाष्टमी किश्चित्रवमी मकला यदि । मा भवेत् बुधसंयुक्ता प्राजापत्यर्चसंयुता ॥ श्रिपि वर्षमतेनापि लभ्यते वा नवा विभो ।

दति स्कान्दोक्ता परेषुः किं न स्वादिति चेन्न। तस्वाः पूर्वेषुः नचनयोगाभावपरलेऽप्युपपत्तेः। पूर्वेषुः निजीयात्राक् सप्तम्या युता परेषुः निजीयोद्धं तत्पर्यन्तं वा विद्यमाना विद्वाधिका । सापि - चिविधा। पूर्वेषुरेव रोहिणीयुता। परेषुरेव तद्दुता। समयच तद्युता चेति। त्राधे पूर्वेषुरेव,

विना खवं न कर्त्त्या नवमीसंयुताष्टमी ।

कार्स्मा विद्वापि मप्तम्या रोहिणीसंयुवाष्टसी ॥ इति त्रादित्यपुराणोकेः,

> जयन्ती शिवराचिश्व कार्ये भद्राज्ञयान्विते। कलोपवासं तिथ्यन्ते तथा कुर्यानु पार्णम् ॥

दति विष्णुभ्रमेतिय । दितीय परेषुः, "मुहर्त्तम्यहोराच दत्युत्तेः" । उभयच रोहिणीयुतायां विद्वाधिकायां चातुर्विधम् । पूर्वेषुरेव निग्नीये ज्ञभयोयाः । प्ररेषुरेव निग्नीये तद्युता । जभयचापि निग्नीये तद्युता । जभयचापि निग्नीये द्योगाभाव-येति । त्राध्ने पूर्वेव,

कार्या विद्वापि महस्या रोहिषीमहिताष्टमी । त्र

रति पाद्माक्तेः । अन्येषु सचेषु प्रदेषुरेव । तयाज्ञः पूर्वेषुरेव निग्नीसे त्रचनयोगाभावात्परा । वतीसे पूर्वेषुर्निग्नीये रोषिणी-योगेऽपि परेषुः सङ्ग्यकालावधिमर्वकाले तिथिनचनयोगमन्तात् ।

सा सर्वाऽपि न कर्त्त्र सप्तमीसंयुताष्ट्रमी।

इति ब्रह्मवैवर्त्तीकः।

चतुर्षपचन्त निविधः। पूर्वेद्युर्निभीयादृद्धें तियिनचनद्यं प्रवन्तं, परेद्युर्निभीयात् प्राक् समाप्तित्यादाः प्रकारः। पूर्वेद्युर्नचनं समृत् परेद्युः खन्यं अष्टमी निभीयादृद्धें प्रवृत्तत्वात् पूर्वेद्युः खन्याः, परेद्युर्मेद्वीति दिनदयेऽपि निभीये योगो नाकीति दितीयः प्रकारः। पूर्वेद्युरप्टमी महती, परेद्युः खन्या, रोहिणी तु निभी-यादृद्धें प्रवृत्तालादृन्या प्रदेद्युर्महती दति दतीयः प्रकारः। तचाद्ये परेव निश्चीययोगाभावेऽपि मङ्गन्यकालमारभ्य योगस्य सत्तात्। दितीये परेव।

> यप्तमीयहिताष्टम्यां स्त्वा ऋचं दिजोत्तम । प्राजापत्ये दितीयेऽक्कि सुझ्त्तां हुं भवेद्यदि ॥ तदाष्ट्यामिकं पुष्यं प्रोक्तं व्यासादिभिः परा ।

इति स्कान्दोक्तेः। हतीयेऽपि परेव।

पूर्वविद्वाष्टमी या तु उदये नवमीदिने । सुद्धर्त्तमपि संयुक्ता संपूर्णा चाष्टमी भवेत्॥

द्रित पाद्मोक्तः । एतेषु जयन्तीभेदेषु यदा कदाचित् बुध-वारयोगो यदा मोमवारयोगो भवति, तदा चतुर्थां मङ्गलवारवत्, श्रमावास्त्रायां मोमवारवत्, सूर्यग्रहणे रविवारवच फलाधिकाम् । तथाच पाद्मे,— प्रेतयोनिगतानां तु प्रेतलं नाणितं नरैः ।

> वै: इता श्रावणे मासि श्रष्टमी रोहिणीयुता ॥ किं पुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः ।

विष्णुधर्मीत्तरेऽपि,-

श्रष्टमी बुधवारेण रोहिणीयहिता यदा। भवेतु सुनिशार्द्रल किं कतिर्वतकोटिभिः॥

तथाच,— "उद्शे चाष्टमी किञ्चित्" दति स्कान्दोक्तिरिप एतत्ममानार्थेव । तसात् वारयोगे फलश्रुतेर्गुणफलवोधकलमिति, न वार्विभेषानुमारेण व्यवस्थेति, माधवाचार्यतिथितत्वक्तत्प्रस्तयो-ऽसादेभवद्गनिक्षकतस्य ॥

ननु अनयेव रीत्या रोहिणीगुणफलमसु इति चेत्, न।

प्राजापत्यर्चसंयुक्ता कृष्णा नभि चाष्टमी।
सुद्धक्तंमिप लभ्येत सैनोपोखा महापता॥ इति स्रतौ,
वासरे वा निप्रायां वा यत्र युक्ता तु रोहिणी।
विभेषेण नभोमासि सैनोपोखा सदा तिथि:॥

द्रित विश्विष्ठोक्तौ च, एवकार्श्रुतेः रोहिष्या नियामकलेगा-भिधानात् ।

एकादशीशताद्राजन्नधिकं रोहिणीवतम् । इति अवणाचेत्यज्ञमतिविद्यारेण ॥

त्रथ रोहिणोरहिताष्टमी विचार्यते, तच ग्रद्धाष्टम्यां न सन्देशः । विद्धा चतुर्विधा । पूर्वेद्युरेव निग्नीयव्यापिनी । परेषुरेव निग्नीयव्यापिनी । दिनद्दयेऽपि निग्नीयव्यापिनी । दिनद्द्येऽपि निग्नीयव्यापिनी । परेषुर्निग्नीयव्याप्तिरहिता चेति । त्राचेषु प्रवेदां परेव, सद्भन्यकालमारभ्य सर्वकर्म-कामकाष्टमीयोगात् ।

श्रथ जयन्तीपारणे विश्रेष:।

तिथिनचचिनयमे तिथिभान्ते च पारणम् । इति स्कान्दोक्रेसभयान्ते च पारणं कार्यम् ॥

नन्वेवं सित यदा दिवा तिथिनचचथोर्सभथोर्नो न सभ्येत तदा कथिमिति चेत्, उच्यते।

तिथिनचत्रमंथोगे उपवासो यदा भवेत्। पारणं न तु कर्त्त्रयं यावस्त्रेकस्य मंचयः॥ इति नारदौयोक्त्या एकृतरान्तेऽपि पारणम्॥ ननु पारणं दिवा तचापि पूर्वास रति पूर्वमुक्तम् । यदा तु पूर्वेबुर्द्धराचमारभ्य तिथिनचचयोः प्रवृत्तिः परदिने राचिप्रहर-पर्य्यन्तं व्याप्तिस्तदा कथिमिति चेत्, उच्यते । तदा राचावि पारणम् ।

तिथ्युचयो यंदा क्हेदो नक्तजानस्तथापि वा।
प्रदूरिकिऽपि वा कुर्य्यात् पारणं लपरेऽइनि ॥
दति प्रतिप्रसवस्तिः। प्रपिणव्दाद्विपूर्वाषयोः केसुतिकन्यायेन प्राष्ट्रभाव एव। श्रत्यन्ताणकस्यं तु गांद्रुः।
जयन्यां पूर्वविद्वाया सुपवासं समाचरेत्।
तिथ्यन्ते चोतसवान्ते वा व्रती कर्यान्त पारणसं ॥ दति।

तिथाने चोत्सवाने वा व्रती कुर्यात् पारणम् ॥ रति । तथाच परेद्युः प्रातः श्रीकृष्णपूजापूर्वकं व्रतं समाप्ये व्रतक्षी-त्सवाने पारणम् । एवं तिथ्यृषयोद्दभयोरने पारणं सुख्यः कद्यः । एकतरानोऽनुक्त्यः । जलवाने पारणसप्रभन्निति बोध्यम् ॥

याः काश्वित्तिययः प्रोक्ताः पुष्णा नचयमंयुताः ।

खनाने पारणं कुर्यादिना श्रवणरोष्टिणीम् ॥

दित स्रितेनीच रोष्टिष्णन्तापेचेति चेत्, न ।

श्रव्यम्यामय रोष्टिष्णां न कुर्यात् पारणं कचित् ।

श्रन्यत् पुराकतं कर्म अपवासार्जितं फलम् ॥

तिथिरष्टगुणं इन्ति नचचं च चतुर्गुणम् ।

तस्मात् प्रयक्षतः कुर्यात् तिथिभान्ते च पारणम् ॥

दिति ब्रह्मवैवर्त्तीकः । विना श्रवणरोष्टिणीमिति तः मचने।पवासविषयम । उपद्रवादिवभात् पारणाया श्रमभवे जसपारणं कीर्यम् ।

मन्ध्यादिकं भवेकित्यं पार्णं तु निमित्ततः । श्रद्भिसु पार्यिवाय नैत्यकान्ते भुजिर्भवेत् ॥ इति कात्यायनोक्तेः ।

जयनी पूजा विधिन्त, जानत् कते जतमारे द्रष्टयः। जयन्यष्टम्याः प्रातः श्रीदुर्गदिया जन्मोत्मवं कुर्यात्। तथा च भवियोत्तरे, श्रीकृष्णवाक्यम्। कर्त्तयं तत्चणाद्राची प्रभाते नवमीदिने। यथां मम तथा कार्या भगवत्या महोत्सवः॥ इति।

त्रच नवमीति यदुकं तद्ष्यमीयमाष्ट्रनन्तरं नवमीश्रष्टेन्थिभि-प्रायं, न तु नवमीनिथमपरम् । त्रन्यथा, तत्चणाद्राची प्रभाते रत्याद्यसङ्गतं स्थात् । त्रष्टमीशकरणे पारणविषये, ब्राह्मी,—

त्रक्लोद्यवेतायां नवम्यां च तथा स्त्रियः।

द्वादी चदुक्तं नवमीपदं, श्रष्टम्यनन्तरभावितादेवीकम्। तथार्षः, श्रष्टम्याः प्रभाते सन्तेऽपि दूर्गाजन्त्रोत्सवं निःसन्दिग्धमेव समार्ष-रन्ति । श्रत्यव नीतिरत्नाकरेऽसात् पितामहक्त्रप्ण दृष्टत्पिष्डतमहा-पाचैः जन्त्राष्टम्युत्तरदिनार्द्धराचे राजग्रहे दुर्गाजन्त्रोत्सवो यत् क्रियते तद्श्रान्तिम्लमिति लिखितम् ॥ दति श्रीकृष्णअयन्त्रपृत्नीवतम् ॥

## श्रय दूर्वाष्ट्रमी।

एतद्वतं नित्यं काम्यञ्च । प्राप्ते भाद्रपदे माचि ग्रुक्ताष्टम्यां च भारत । या न पूजयते दूर्वां मोद्दादिष यथाविधि ॥ त्रीणि जन्मानि वैधयं सभते नात्र संग्रयः।
तस्मासंपूजनीया सा प्रतिवर्षे वधूजनैः॥
सुखसन्तानजननी भाद्यसौख्यप्रदा सदा।

द्यादि वचनात्। श्रव व्रतमामान्यव्यवस्यया मोदयचिमुहर्त्त-वेधो रुद्धाते। तच तिथिदेधे श्रस्थाः शुक्कपचवर्त्तालेऽपि पूर्वविद्वेव याद्धा।

श्रावणी दुर्गनवमी तथा दूर्वाष्टमी च या।
 पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या शिवराचिर्वलेर्दिनम् ॥ इति
नारदोक्तः। मासि भाद्रपदे शुक्का या भवेदष्टमी नृप।
 दूर्वाष्टमीति विज्ञेषा पूर्वविद्धा प्रशस्तते ॥
तथा,— दूर्वांख्या माष्टमी ज्ञेया नोत्तरा सा विधीयते।

द्राधुकेश्व। श्रव "काष्डात् काष्डात्" द्रित मन्त्रेण भविष्य-वाक्यात् केवलदुर्गापृत्रां कुवैन्ति । तस्मिन्नेव भविष्यपुराणे स्त्री-पुरुषधाधार्ष्येन नानाकामार्थिसिद्ध्ये, दुर्गामहितमहेशपूत्रनं यत् लिखितं तत् काम्यम्। एकवर्षममाप्यं व्रतान्तरं विध्यन्तरेण कार्यम्। म विधिस्तिनेवानुषन्धेयः॥

भाद्रश्रुक्काष्टम्यां दुर्गाश्रयनम् । तच देवानां सामान्येन शयन-पचो राजमार्त्ताष्टे,—

> विक्तः स्कन्दपुरन्दरौ गणपितः श्रीर्द्धर्मराड् भास्करो देवः पर्वतपुत्रिका वसुमती तोयाधिपः केशवः । ब्रह्मा वायुश्विवादयः प्रतिपदारको तिथौ ग्रेरते चोत्तिष्ठन्यसुना क्रमेण वरदाः स्त्रे स्त्रे तिथौ पूजिताः ॥

विशेषसु तच भगवतीपुराणे,—

मर्वदेवोत्विता तिष्ठेत् दुर्गा कोकहिताय वै । खपेद्गाद्रमिताष्टम्यां चिपञ्चदिवसात् परम् ॥ उत्तिष्ठत्यर्चिता देवी षोडग्रेऽक्कि न राचितः । दिवा खापे भवेद्रोगो निम्नुत्याने जनचयः ॥ दिनचयो यदि भवेत् खपेद् घसाञ्चतुर्द्गा । न वर्द्वयेत् खापदिनं तिथिवद्भौ कदाचन ॥

दति तिथिरुद्धौ षोडग्रदिने स्वापननिषेधात्, पञ्चदग्रदिन-पर्यन्तं स्वापदिनम् । तथाच, भाद्रग्रुक्काष्टमौराचिमारभ्य षोडग्र-दिवसे बोधनोक्तेः उत्थाने नैवाष्टमौनियमः । एवं सति तिथिरुद्धौ सप्तमौदिने देवौसुत्याय परदिने दुर्गात्सवारमः कार्यः ॥ दति दुर्गाग्रयनम् ।

## त्रय गरत्कालीनदुर्गात्मवारमाः।

म च त्राश्चिनछण्णाष्टमीमारस्य तत्रग्रक्षाष्टमीपर्यन्तः । म च
मंयोगप्रयक्तन्यायेन नित्यः काम्यद्य । तथाच देवीपुराणे,—

एवं च यजनं कुर्यात् वर्षे वर्षे युधिष्ठिर ।

यो न पूजयते मन्यक् चिष्डकां भक्तवत्मकाम् ॥

भक्षीकृत्यास्य पुष्यानि निर्देष्ठत्यवमानिता ।

एवं वीप्राश्चवणात् त्रकर्णे प्रत्यवायत्रवणाच वच्चमाणानुकन्यविधानात् नित्यः । तथाच दुर्गाकन्ये,—

यदा देववग्रादिस्मन् मासे पूजा न जायते ।

तदा तु कार्त्तिकाष्टम्यां कर्म चैतत् प्रकीर्त्तितम् ॥

क्रम्याष्टमीं ममारभ्य यावत् इक्ताष्टमी भवेत् ।

दिवसे दिवसे पूर्वप्रोक्तं कर्म प्रमस्तते ॥

श्राश्विने कार्त्तिके वापि क्रम्याष्टम्यां ममारभेत् ।

सर्वकामार्थिसद्यभें कर्मदं दुर्कभं स्वतम् ॥

कर्मदं कुरते यस्तु मम्दिस्तस्य जायते ।

वेदविच भवेत् वर्णी चिवगें साध्येत् क्रमात् ॥

कलाप्नोति स्रमोराज्यप्रचायुर्द्वनसस्यदः । रति ॥

बतुकस्पविधानं फलयवणं च, भविध्योत्तरे,—

पूजनीया जनैदी स्थाने स्थाने पुरे पुरे।
ग्रहे ग्रहे प्रक्तिपरे यांमे यासे वने वने ॥
स्थातैः प्रमुदितैर्घष्टे ब्राह्मणेः चिवैर्विप्रैः।
ग्रह्मैक्षियुतैर्घे स्हेरन्ये सुवि मानवैः॥
स्तीभिय कुरमाद्वीत तदिधानमिदं प्रमु।

ग्राक्तिपरेदिवीपरायणैः । क्षेच्छैः किरातादिभिः । अयौरतुको-

मजातिभिः । देवीपुराणे ब्रह्मवाक्यम्,-

महासिद्धिपदं धन्यं सर्वे अनुनिवर्हणस् । सर्वे को को पकारायें विशेषाद्सिटित्तिभिः ॥ कर्त्त्रयं बाह्मणाद्येस्त चित्रयेकी क्पासकीः । गोधनार्थं तथा वेग्रैः श्रद्धेः पुत्रसुखार्थिभः ॥ सौभाग्यार्थं तथा स्वौभिरन्येस धनकाङ्किभः । महावृतं महापुष्यं श्रद्धराह्येरनुहितुम् ॥

हेमनो प्रथमे माधि नन्दवजकुमारिकाः।

दित तत्पूर्वार्द्धातेष्वस्य वतान्तरत्वात्। तथा, क्रण्णाष्टमीमित्यादिवाक्यादस्य घोड्मदिनात्मकत्वम्। यनु देवीपुराणे,—

पचमेकं तु ये भूषाः पूज्जियस्यिन चिष्डिकाम्।

न तेषां विष्र राष्ट्रेषु भयं किश्चिद्भविस्यति॥

दत्यादि बह्ननि फल्लान्युक्ला,—

चिष्डिकापूजनाद् वीर पूजिताः सर्वदेवताः । दृत्युक्तं पञ्चदग्रदिनाताकत्मम्, तित्तिथिचयाधीनम् । तज्ञ मूलाष्टमीविषये, श्रादित्यपुराणे,—

श्रीष्ठपद्यामतीतायां या सा क्रणाष्ट्रमी भवेत्। तस्यामवश्यं कर्त्त्रया दुर्गापूजा यथाविधि॥ विश्वह्रपनिबन्धे,—

यदाष्टमीं तु सम्माय त्रसं याति दिवाकरः।
तत्र दुर्गीत्मवं कुर्याच्च कुर्यादपरेऽहिन ॥
कुलं पुत्रं धनं राज्यं दीर्घञ्चायुक्तयेव च।
प्रथमा चाष्टमी पूज्या ये काङ्गिन्ति मदा ग्रुभम् ॥
त्राश्वयुज्याष्टमी यत्र पूज्यते नवमीत्रिता।
दुर्भिनं तत्र जानीयाद्यावर्षाणि पञ्च च॥

तथा,— मप्तम्यामुदिते सूर्ये परतश्वाष्टमी यदि। तच दुर्गीत्मवं कुर्यान्न कुर्यादपरेऽहिन ॥

प्रथमाष्टमी, मूलाष्टमी। तथाचाच ऋलमयवेधस्य प्रातिस्वि-कलात् तिथितलकार् लिखितसि थिमामान्यप्रदत्तमोदय चिमुहर्त्त-वेधी न ग्राष्ट्रः। एवं मति, "प्रातरावाच्येत् देवीं प्रातरेव विम-र्जयेत्" दत्यादिवाकां ऋलमयवेधस्य माकत्त्यापवादकलेन प्रातरारभ्य पूजाकर्मारक्षणीयं, न तु ऋष्टमी ऋषेचणीयेत्येवं परं बोध्यम्।

षोड्मदिनाशामर्थे स्तान्दे, नामौखछे,-

नवराषं प्रयत्नेन प्रत्यष्ठं सा समर्चिता।
नाग्रयत्येव विष्नोघान् सुगतिञ्चेव दास्वित॥
भविय्योत्तरे,— त्राश्विने मासि शक्ते तु कर्त्त्रयं नवराचकम्।
प्रतिपदादिकमेणैव यावच नवमी भवेत्॥

ग्रुक्ते, ग्रुक्तपचे। नवराचकम्, नवराचमम् न्धिपूजादिकं कर्म।
तच विद्वायां प्रतिपदि मायाक्रवेधं ग्रहीला पूर्वविद्वेव पाद्या। ममुखीतिषिषु मायाक्रवेधस्थोक्षलात्। माधवाचार्यासु, "श्राश्रयुके
मासि योऽयं नवराचोत्सवः क्रियते तस्य नक्षमतलास्नकतालेन
व्यवस्था" दति पश्चम्यादिनवम्यन्तपञ्चदिनपचेऽपि मायाक्रवेध एव,
पश्चम्याः ममुखीतिथिलात्। एतत्पचे प्रमाणमचैव लेख्यम्॥
चिदिनपचे रुद्रधामस्मिविष्ययोः,—

निदिनं वापि कर्त्तं यं सप्तम्यादिदिनवये । तचापि सप्तम्याः समुखीतिथिलात् सायाक्रवेध एव ॥ यन्तु,— व्रती प्रपूजयेद्देवीं सप्तम्यादिदिनवये । दाभ्यां चतुर्होभिर्वा ह्रामरुद्धिवग्रात्तिथेः॥

दित तिथितत्तकारैभेविष्यवाकामुदाइतम्, तत् गौड्देशे माद्रियते। तच मोदयिषमुह्ण्तंबेधस्यैव पूजायामुपवासे च म्रादृत-लात्, बिलदानस्य दिवानुष्ठामाच।

श्रम्भदेशे तु तिथिदृद्धाविष महाद्यमीपरिद्न एव महानवस्या नियतलात्, परिद्ने च पूर्वापरदण्डदयोपेतिनशीथे नवस्या श्रमभवाच पूर्वदिने महानवसीसमाशौ तत्परिद्ने पूजायाः कुतः प्राप्तिरिति नाद्रियत एव । श्रतएव महाद्यमीपद्धतिकारादिभिः प्राचीनरिषि तद्धाक्यमनादृतमेव । तस्रात् न चतुरहः पचः सभवति । "च्चचयेऽपि मूलादौ" दति सद्रयामलभविष्ययोर्नचनोपजीवनेन यत् चिद्नपूजनसुक्तं तद्षि श्रम्महेशे नाद्रियते । नचचस्य न व्यवस्थापकलिमत्यपुच्यते । दिद्नपचे यथाप्राप्तमहाद्यमीमहा-नवस्योः । तथाच भविष्यस्कान्दयोः,—

श्रष्टम्याञ्चं नवस्याञ्च अगन्मातरमस्विकाम् ।

पूजियलाश्चिने मासि विभोको जायते नरः ॥

एकदिनपचे तु, यथाग्राप्तमहानवस्यां । तथाच भविय्योत्तरे,—

नवस्यां पूजिता देवी ददात्यनवमं फलम् ।

दत्यादि महानवमीप्रकरणे लेख्यम् ॥

नवराचादिपञ्चपचेषु, भविय्ये,—

ग्रुक्को चाययुजे राजन् मोपवामो भवेत्ररः। नौरुजो निष्पृतिदन्दो निर्दुःखः म भवेत् सदा॥ यः करोत्युपवामन्तु नवन्यां विधिवस्तृप। एतांस्त एकभक्तेन प्रवद्नि मनी विणः ॥
पञ्चमी च तथा षष्टी सप्तमी चाष्टमी नृप ।
उपवासपरो स्त्वा पूजयेच िष्डकां बुधः ॥
नवराचोपवासेन यथा प्रक्रा तथा नृप ।
चिराचेण दिराचेण एकराचेण वा पुनः ॥
एकभक्तस्त पञ्चम्यां षष्ट्यां नक्तं प्रवक्तयेत् ।
प्रयाचितन्तु सप्तम्यामष्टम्यां च उपोषितः ॥

एतच तथा योग्याधिकारिविषयम्। तथास्मिन् वर्ते षट् पचाः, तथाचागमे संग्रहः।

तव दिनैः षोड्श्यभिनंवभिरयो पञ्चभिद्यास्याम् ।

एकेन च यदिहितं क्रमणः प्रस्तौमि तदिधानमहम् ॥

श्रव परे न्यूनाः । भाष्युद्ये केवलाष्टम्यामपि पूजा ।

यस्त्रेकस्थामयाष्टम्यां नवस्यां वाय साधकः ।

पूजयेदरदां देवीं + + + + ॥

इति कालिकापुराणोक्तेः। एतत् धर्वाधिकारिकं व्रतमिति वाक्येषु खुटमेव तथा समाचारोऽपि। "प्ररत्काले महापूजा" इत्यादिमार्कण्डेयपुराणोकेरच चण्डीपाठनियमः।

श्रथ महाष्ट्रमी॥

तच व्रतोत्पित्तः कालिकापुराणवाह्ययोः,—
श्रवाष्टम्यां भद्रकाली दचयज्ञविनाशिनी।
श्रादुर्भ्यता महाघोरा योगिनीकोटिभिः सह।
ततोऽर्थे पूजनीया सा तिस्रवहिन मानवैः।

तथा बाह्ये तदनन्तरम्,—

खपोषितेर्वस्वधूपमास्यैः रत्नानुलेपनैः ।
दीपे रत्नेस्तया भस्यैः फलपुष्पेय धान्यकैः ॥
श्रामिषैर्विविधैः कापि दोमे ब्रांद्वाणतर्पयैः ।
विक्यपैः श्रीफलेय चन्दनेन दतेन च ॥
पग्रभिः पालकैर्दयै राचिजागरणेन च ।
दुर्गाग्रदे तु ग्रास्ताणि<sup>(१)</sup> पूजितयानि पण्डितेः ॥
मद्यभाण्डानि चिक्नानि कवचान्यायुधानि च ।
राजौ च ग्रिन्थिभिस्तानि तानि पूज्यानि धर्वदा ॥
भगवतीपुराणे पूर्वीदाह्नतोक्तिभिः स्वापविधिसुक्का,—

मृलेन प्रतिबोधयेङ्गगवतीं चण्डीं प्रचण्डाकृतिम्।
त्रष्टम्यासुपवाससंयतिधया कृता नवस्यां विलम्॥
नानापाप्रवमांसमक्कद्धिरै भीत्वा समाराधयेत्।
नचने अवणे तिथिञ्च दणमीं सम्प्राप्य सम्प्रेपयेत्॥
निणायामष्टमीप्रोत्तं दुर्गात्सवं तु कार्येत्।
त्रन्यत्र चोपवासादौ नविद्धाष्टमी भवेत्॥

जसवपदेन पूजोपवामयोः मङ्गाहः । श्रन्यच दुर्गेतसवयितिरिक्ते जपवामादौ । श्रन्योपवामवतेषु युग्मवाक्यस्यैव मोदयित्रमुहर्त्तभादायैव प्रमरो न महाष्टम्युपवासे दत्यर्थः ।

त्रष्टम्यां यत्र नवमी तत्र पूजां विश्वज्येत्।

<sup>(</sup>१) प्रस्ताखि पाठान्तरम्।

त्रष्टभी बेदनुप्राप त्रसं याति दिवाकरः॥ तच दुर्गीत्सवं कुर्या च कुर्याद्परेऽइनि। वृथा पश्चन्नतां याति नवमीवासरार्चिते॥ ऋष्टमीनिणि चनुष्टा पूजां ग्रहाति पार्वती। त्रष्टमी नवमीबिद्धा तच दुर्गां न पूजयेत्। पूजरोत् क्षेत्रभागी स्थात् यथा वज्रहतो गिरिः॥ श्रष्टमी नवमीयुका प्रान्तिं कुर्यात् दिजो यदा। सियते क्रियमाणे तु तच राजा विनम्यति॥ गर्डुपुराणे,- पूजनीया जिवा सर्वे रेकधाऽभिन्नपर्वणि । भिन्ने श्वपादिभिः पूर्वं परं ग्राच्चं दिजातिभिः॥ पूर्वपर्वणि भुक्तर्थं मुक्तर्थं य परेऽइनि । पश्चमां मेर्बलं कुर्यात् निश्चि चेन्न्पतेरतः॥ पूर्वपर्व दिजातीनां परं व्रतवतां सदा। यिसम्बद्धनि यत् कार्ये तिसन् तत्करणात् परम्॥ पानं स्थात् पिटदेवानामतः कालं न लङ्क्येत्। मा विद्या सायविद्या चेत् सा भीमा सा प्रिवा ततः॥ श्रतस्त्रस्या दिधा पूजा दिधा कर्म च धर्मतः। या पूर्वतिथिमंयुका सा तिथिर्वतकर्मसु॥ नेष्टा चेहैवकार्याणि कुतस्तस्यां दिजनानाम्। तिथी पूर्वापरो प्रेते देवकार्येषु चेत् क्रमात्॥ नातो देवी दिजे: पूज्या विधिजी: पूर्वपर्वणि। दिजानासुपवासादि राजन्यसार्चनं परम्॥

देवी दिजातिभिर्माच कार्यं प्रेतगतेऽह्नि।
पग्रमां सविदानं यत्तूकं तद्राजन्यानां नियतं ब्राह्मणानामनियतम्, मालिक्यादिं पूजया चांरितार्थ्यात्।

तयाच स्कान्द-भविष्ययोः,—

पूजा तु चिविधा प्रोक्ता सालिकादिप्रभेदतः।
सालिकी जपयज्ञाद्यैनेविद्येस निरामिषः॥
राजसी बिलदानेन नैवेद्यः सामिषेलया।
सरामांसोपहारेस जपयज्ञेविना तु या॥
विना मन्त्रेलामसी स्थात् किरातजनसेविता। द्रति।
देवीपुराणे,—प्राटट्काले विभेषेण श्राश्विनेयाष्टमीषु च।

महात्रव्दो नवस्याञ्च लोने ख्यातिं गमिखति॥ त्रतएव महाष्टमी महानवमीति ख्यातिः।

नतु महाष्टम्यां किं मोदयित्रमुह्ण्तंवेधो ग्राष्ट्रा उत प्रातिस्विकः कामोऽस्ति दति चेत्, उच्यते । पूर्वापरदण्डदयोपेतमर्द्वराचमच कर्मकासः, तच देयुत्पत्तेः । कृष्णजन्ताष्टम्यादौ सर्वच जन्मकास्त्रे पूजाविधानवद्चापि बिस्तदानान्तायाः पूजायाः श्रद्धराचे विहितन्तेन तच्चन्यकास्त्रिनिर्णयात् ।

विचादईराचे न संगयः।

दति वायुकोको ऋईराचे बिलदानमुक्तमेव। क्रणजनादिने ऋईराचे देखुतपित्तः मिद्धैव। एवस ऋईराचे दिनद्वेऽष्टमीमम्बन्धे पूर्वेद्युः पूजादिकं परेद्युरुपवाम दित मिद्धम्। एवमष्टाचाताक दुर्गाव्रतेऽपि ऋईराचे दिनद्वे ऋष्टमीयोगे परच व्रतम्।

त्राधिनस्याष्टमी ग्रुक्ता पूर्वविद्धार्चने स्तता।

वतोपवासादौ गिष्टैः परविद्धा प्रगस्यते॥

दित सङ्घाकोः॥ यनु कैथि सिखितम्,—

नक्तकाले तु सम्प्राप्ते मण्डलं कार्यद्वती।

द्ति देवीपुराणोकोः प्रदोषः कर्मकाल दति तदतीवायुक्तम् । मण्डलकरणादिसम्भारकालो यदि कर्मकाललेनाच ग्राह्मः, तर्षि कृष्णजन्माष्टम्याम्,—

तत्र स्नाता तु पूर्वाक्षे नद्यादौ विमले जले।
देवाः सुप्रोभनं कुर्यात् देवन्याः सूतिकाग्रहम्॥
दिति भविष्योत्तरोक्तसूतिकाग्रहमण्डनादिकासः पूर्वाकः कर्मकासः किं न स्थात्।

नतु दिनद्येऽषर्द्भराचेऽष्टस्यभावे कथिमिति चेत्, परेद्युरिति

ब्रूमः मुख्यकाल श्रष्टस्यभावेऽपि मङ्गल्यमारभ्य तिथेः प्रवृत्तलात् ।

नतु,— उपवासं महाष्टस्यां पुचवान्त समाचरेत् ।

यथा तथेव पूतात्मा नती देवीं प्रपूत्रयेत् ॥

दिति महाष्टस्यासुपवासनिषेधः श्रूयते दिति चेत् न । एतदा-

कास पूजाङ्गमहाष्टमीनिमित्तकोपवासविषयलात् । तथाच, तिलिमित्तोपवासस्य निषेधोऽयसुदाहृतः । नानुषङ्गकृतो याद्यो यतो नित्यसुपोषणम् ॥ . दति जैमिनिः ।

.देवीपुराणे, श्रष्टमीं समुपोयीव नवस्वामपरेऽइनि । मत्यमां सोपहारेण द्वान्नेवेद्यमुत्तमम्॥ तेनैव विधिनात्रन्तु खयं भुद्धीत नान्यथा।

दति यत् मांगपारणमुक्तं तन्तांगमत्त्वाणिनां काम्यवतपरं।
श्रन्यथा यतिब्रह्मचारिविधवानामपि तत् प्रमञ्चेत । तम्मात् कतमत्त्यवर्जनगद्भन्यानामपि न मांगमत्त्यपारणम् । श्रथंकर्मणो-मांगादिवर्जनानांगादिपारणस्य प्रतिपत्तिकर्मलेन दुर्वस्तवाचा मध्यस्तीणां तु मांगमचणिनन्दोपस्त्रभेः सर्वदा मांगमचणाभाव-ममाचारात् मत्त्यपारणमेव, नैव मांगपारणम्॥

श्रय महानवमीविचारः।

त्रयाष्ट्रमीप्रकर्णमध्ये सौकर्याय महानवमी विषार्थते । भविस्योत्तरे,—

त्रष्टम्यां तु नवस्यां तु देवदानवराचमैः ।
गन्धवै दरगैर्यचैः पूज्यते किन्नरैनरैः ॥
त्रन्यैरिप युगादौ तु स्ट्रष्टैः पूर्वं प्रपूजिता ।
पूजितेयं पुरा देवेस्तेभ्यः पूर्वतरैरिप ॥
तस्तादियं महापुष्णा नवमौ पापनाणिनौ ।
उपोय्य संप्रयद्वेन सततं सर्वपार्थिवैः ॥

तथा,— कन्यां गते स्वितिरि शक्तपचेऽष्टमी च या।
मूलनचन्रसंयुक्ता सा महानवमी स्रता॥

नथा, पुष्णा महानवस्यस्ति तिथीनासुत्तमा तिथिः । श्रुतुष्ठेया नरैः सर्वैः प्रजापासिर्विभेषतः ॥ भवानीतुष्टये पार्थ संवत्सरसुखाय वै । भरतप्रेतिपभाचानां प्रीत्यर्थं चोत्सवाय च ॥

तथा,— संतर्जयन्ती इद्धारे विघीषान् पातकान् वरान् ।
नवस्यां पूजिता देवी ददात्यनवमं फलम् ॥
सा पुष्पा सा पवित्रा च सा सर्वसुखदायिनी ।
तदा तस्यां पूजनीया चासुष्टा सुष्टमालिनी ॥

तथा,— मन्नतरेषु सर्वेषु कर्लेषु कुर्नन्दन ।

तेषु सर्वेषु चैवासी न्नवमीयं स्रार्चिता ॥

प्रसिद्धा नवमी धन्या वर्षे वर्षे युधिष्ठिर ।

श्रयो श्रयोऽवतारेश्व भवानी पूज्यते सरेः ॥

श्रवतीर्णा च सा देवी श्रुवि दैत्यनिवर्षणी ।

स्वर्गपातालमर्त्येषु करोति स्थितिपालनम् ॥

श्रीहोत्रपरे विप्रे वेदवेदान्तपारगे ।

सुवर्णस्य भ्राते दत्ते कुर्रुचेचे च यत् फलम् ॥

तत् फलं सभते राजन् पूजियता तु चण्डिकाम् ।

न तद्देशे च दुर्भित्तं न च दुःखं प्रवर्त्तते ॥

न कञ्चिन् सियते राजा पूज्यते यत्र चण्डिका ।

ये दुर्गां पूज्यन्तीह पूजितं तैर्जगन्नयम् ॥

तस्मादुर्गाचनं श्रेष्ठस्यविभिगीयते कलौ ।

देवीपुराणे,— मामि चाश्वयुजे वीर ग्रुक्षपचे चिग्र्किनीम् ।
नवम्यां पूजयेद्यम्तु तस्य पुष्यप्रचं ग्रूणु ॥
श्रयमेधमदसस्य राजस्रयग्रतस्य वे ।
तत् पानं समते वीर देवीदेवगणैर्दतः ॥

तथा,- महानवत्यां पूजेयं सर्वे सिद्धिप्रदायिका ।

सर्वेषु वत्म वर्षेषु तङ्गाचा परिकीर्त्तिता॥ क्रताप्नोति यशोराच्यपुत्रायुर्धनसम्पदः। स्कान्दे, - श्रश्युक्ग्रुक्षपचस्य नवस्यां वै वरानने । उपवासपरो भूला यस्तां पक्षति भिक्ततः ॥ तस्य पापं चयं याति तमः सूर्यीद्ये यथा। तथा, तस्रकर्णे, दुर्गी सुदुर्गगइनान्नितर्ना मर्त्याः ॥ भविखे, - नक्तायाययुने राजा ऋष्टम्यां ग्रुक्तपचने । श्राश्विने मासि ग्रुकायां नवन्यां निश्चि चिष्डिकाम्॥ पूजनात् ग्रनुनागः स्थात् राष्ट्रं जयति सीसया । तथा,— वर्षपदासदस्रेषु यत् फलं ससुपार्जितम् । तस्यां दानं जपो होमः स्नानं चाचयमुच्यते ॥ श्रवापि, "नवम्यां विधिवत् बिखः" इति वाक्यात् निश्रीयः कर्मकालः। तत्र तिथिदेधे, "श्रावणीदुर्गनवमी" इति वाक्यात् पूर्वविद्धा ग्राह्मा ॥

त्रय गोष्ठाष्ट्रमी।

पाझे, प्राक्ताष्टमी कार्त्तिके तु स्तता गोष्टाष्टमी बुधैः।

तिह्ने वासुदेवोऽभद्भोपः सर्वत्तुंवत्यपः॥

तत्र सुर्यात् गवां पूजां गोग्रासं गोप्रदिचिणम्।

गवानुगमनं कार्यं सर्वकामानभीप्रता॥

कौर्मे तु, सर्वपापिवग्रद्धये द्ति पाठः॥

मार्गग्रीषंक्रयणपचे प्रथमाष्टमी।

तत्रासाहेगे प्रथमगर्भीत्पन्नस्थायुर्विद्द्य्ये गणपत्यादिवर्णपूजा-

पूर्विकां वन्दापनां कुर्विन्तः। समाचार एवाच प्रमाणम् ।
श्रीभुवनेश्वरचेचे चतुर्दश्रयाचामध्ये एकासपुराणे प्रथमाष्टमीयाचाया
चिचितत्वात् प्रमाणमण्यचास्तीति वदन्ति । तत्र सोदयचिमुहर्त्तयाष्ट्रा यवस्या । तिथिदेधे पूर्वेधुर्वन्दापना कृष्णाष्टमीतात् ।
यनु,— मध्याझादधिकं किञ्चित् परच प्रथमाष्टमी ।
तच पूजादिकं कार्यं न्यूना चेत् पूर्ववासरे ॥ इति ।
तदसमूचमिति निवन्धकतः । भद्राष्टमी, श्रसभ्ययोगे लेख्या ।
भीशाष्टमी आद्वप्रकरणे लेखा ॥

श्रय नवमी ।

सा चोपवासे पूर्वविद्धा याच्चा, युग्गोकोः । अतेऽपि तथा ।
श्रष्टम्या नवमी विद्धा कर्त्त्रव्या फलकाङ्किभिः ।
न कुर्यात्रवमीं तात दशम्या न कदाचन ॥
दित ब्रह्मवैवर्त्तोकोः, तथा ब्रह्मोकेस्य । श्रत एव माधवीये,—
नवमी पूर्वविद्धेव पचयो रूभयोरिप ।
दित नवम्याः साधारणनियमाः ॥

श्रथ रामनवमी।

तद्वतं नित्यं काम्यं च नरमाचाधिकारिकम् । तथाचागस्य-संहितायाम्,-

> प्राप्ते श्रीरामनवमी दिने मत्त्यें विमूढधीः । उपोषणं न कुरते कुमीपानेषु पच्चते ॥ श्रक्तता रामनवमी वृतं सर्ववृतोत्तमम् । वृतान्यन्यानि कुरते न तेषां फलभाग् भवेत्॥

तथा,— तस्मिन् दिने तु कर्त्तव्यसुपवासवतं सदा। तथा,— कुर्याद्रामनवन्यां तु उपोषणमतन्त्रितः। मातुर्गर्भमवाप्रोति नैव रामो भवेत् खयम् ॥ तसात् सर्वाताना सर्वे इलैव नवमीवतम्। मुच्चनो पातकैः सर्वे र्यान्ति ब्रह्म सनातनम् ॥ इति नेवलोपवासेनापि नित्यसिद्धिः । काम्यले तु, श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहोपमा । तिसान् दिने महापुष्टे रामसुद्दिग्य भिततः॥ यत्किञ्चित् कुरुते कर्म तद् भवचयकार्कम् । उपोषणं जागरणं पितृनुद्दिश्य तर्पणम् ॥ तिसान् दिने तु कर्त्तवां ब्रह्मप्राप्तिमभीष्मिः । दत्यगस्यसंहितोक्रीः सर्वाङ्गोपसंहारः कार्यः। तथा,— सूर्यंग्रहे कुरुचेने महादानैः कर्तर्मुङः । यत् फलं तदवाप्रोति श्रीरामनवमीवतात् ॥ श्रव मधाक्रः कर्मकानः। तथाचागस्यमंहितायाम,-मेषं पूषणि संप्राप्ते सम्रे कर्कटकाइये। श्राविरामीत् स कचया कौ ग्रन्थायां परः पुमान्॥ तथा, चेत्रग्रक्षनवन्यां तु रामख पूजनं भवेत् । ततो मधाक्रवेलायां मञ्जातो हि जगत्पतिः॥ चैने ग्रुद्धा तु नवमी पुनर्वस्युता यदि । मैव मधाक्रयोगेन महापुखतमा भवेत्॥ नवमी चाष्टमीविद्धा त्याच्या विष्णुपरायणैः।

उपोषणं नवस्यां वै दशस्यार्नेव पार्णम् ॥

शुद्धा, शुक्का । चैत्रश्रक्षनवस्यां तु दति वाक्यान्तरात् । एते-नाच तिथितत्त्वकारेः शुद्धायां ख्वादरो न विद्धायामिति यत् व्याख्यातं तित्ररक्षमेव । वस्तुतस्तु नचनयोगस्य फालाधिक्यापादकलं न व्यवस्थापकलं । तथा च तनैव फालमुक्तम् ।

पुनर्वखर्चसंयोगः खन्पोऽपि यदि सम्यते ।
चैत्रग्रक्षनत्रम्यां तु सा तिथिः सर्वकामदा ॥
सधाक्रे दिनदये नवसीयोगे पर्विद्धेव याद्या ।
श्रीरामजन्मनवसी संपूर्ण फलदा सदा ।
विद्वा चेत् पर्विद्धेव कर्त्तया तु विग्रेषतः ॥
दयोर्मधाक्रयुका चेन्नोपोया पूर्वसंयुता ।
पर्विद्धेव कर्त्तया सधाक्रयापिनी यदा ॥

द्वागस्यमंहितोकोः, दिनदये मधाक्रे नवमीयोगेऽपि पर्वि-द्वेव। मद्भाषकालमारम्य नवमीयात्, "नवमी षाष्टमी विद्वा व्याच्या" दख्यकेस । "विद्वा चेत् परविद्वेव" दत्यनेन पूर्वेशुर्मध्याक्रे योगाभावे परविद्वाया एव प्राप्तेः। तिथितत्त्वकारैस् द्रामी-पारणायत्ते सर्वे रेवाष्टमीविद्वा नोपोस्थेत्यक्तं। वैष्णवानां तु हरि-भक्तिविलासे सङ्ग्हकारिका। "नवमी पाष्टमी विद्वा" दत्यादि । लिखिला,

> दग्रम्यां पारणायाद्य निश्चयात्रवमी चये। विद्वापि नवमी ग्राह्या वैष्णवेरणधंग्रयम् ॥ दति। त्रत्र सालग्राम् प्रिलायां पूजाकरणे फलाधिकाम्।

मालग्रामिश्राचां तु तुलसीद्चकिता।
पूजा श्रीरामचन्द्रस्य कोटिकोटिग्रणाधिका॥
दत्यगस्यमंहितोकेः। महानवमी तु लिखिता।
श्रथ दश्रमी।

तत्र गुक्तद्यम्यां सोदयत्रिमुह्नत्तेवेधस्य प्राथस्यादेकाद्यीविद्भा पाद्या। ह्रण्यद्यम्यां तु त्रिमुह्नतिमकास्तमयवेधस्य प्राथस्यास्त्र-मीविद्धा पाद्या।

> ग्रुकपचे तिथियां ज्ञा यस्थामभुदितो रविः। कृष्णपचे तिथियां ज्ञा यस्थामस्यमितो रविः॥

द्रित सर्वतिथिसाधारणमार्कण्डेयोक्रेः, एतेन "द्रशमी चैव कर्त्त्रया सदुर्गा दिजसत्तम" दित स्कान्दवाकाम् । पश्चमी सप्तमी चेत्यादिवाको समुखीलमपि कृष्णपचिषयं श्रेयं । एवमन्यान्यपि परविद्धानिषेधवाक्यानि कृष्णपचिषयाण्वेव । सदुर्गा नवमीमिश्रा॥

नतु तिथिमामान्यप्रवत्तां मार्कछियोक्तिमवलस्य विशेषवा-व्यानामेषां पचदयपरता किमिति निरस्त इति चेत् न। पचदये, पूर्वविद्वास्तीकारे।

> सम्पूर्ण दशमी कार्या पूर्वया परयापि वा। युक्ता न दूषिता यसात्तिथिः सा सर्वतोसुखी॥

द्त्यङ्गिरोवाको यथा समूर्ण दममी दोषरहिता, तथा पूर्व-तिय्या परतिय्या वा विद्धापीति विभिय्य प्रवृत्तस्य परविद्धाभिधा-नस्यनिर्वकाम्रालेन वस्त्रक्तात्। श्रतस्व माधवाचार्याः,—

क्षणा पूर्वेत्तरा ग्रुका दगम्येवं व्यवस्थिता ।

## दगहरादगमी।

च्येष्टग्रक्तद्ममीमधिकत्य श्रीपुर्षोत्तमचेचविषये बाह्ये,-यः तद्यां इत्तिनं कृषां पग्नेत् भट्टां सुसंयतः। सर्वपापविनिर्भुको विष्णुलोकं वजेन्नरः॥ स्कान्दे, चेष्ठग्रक्षस दगमी मंतलरमुखी स्रता । तस्यां स्वानं प्रकुर्वीत दानश्चेव विशेषतः॥ यां काञ्चित् मरितं प्राप्य दश्चाइर्भतिलोदकम् । मुच्यते दग्रभिः पापैः स महापातकोपमैः ॥ बाह्मे,- ज्येष्ठे मासि सिते पचे दशमी इससंयुता। इरते द्रापापानि तसात् द्राहरा स्टता ॥ भविष्ये, च्येष्ठशुक्कदशम्यां तु भवेत् भौमदिनं यदि । ज्ञेया इसर्चिषंयका सर्वपापहरा तिथि:॥ तथाच, नेवलद्शमी पुष्णा, इस्तनचच्युता पुष्णतरा मङ्गच-वारइस्तनचत्रयुता पुष्यतमेति विवेकः। मङ्गयां तु प्रह्वः,-चेष्ठे मासि चितिसुतद्ने ग्रुक्तपचे द्रमयां। वियामियः, - इसे ग्रेसिम्गमिद्यं जाक्रवी मर्च्सोकम्। पापान्यस्थां दरति च तिथौ सा द्रशेत्याक्ररार्याः ॥ पुष्यं दद्यादिप ग्रतगुणं वाजिमेधायुतस्य ॥ विश्वामित्रः,- पारुव्यमनृतञ्चेव पैग्रन्यं वापि सर्वग्रः। श्रमंबद्धप्रनापय वाङ्मयं स्थाचतुर्विधम् ॥ परद्रवेष्वभिधानं मनमानिष्टचिन्तनम् ।

वितथाभिनिवेशस मानसं चिविधं स्रतम्॥

श्रदत्तानासुपादानं हिंसा चैव विधानतः ।

परदारोपसेवा च कायिकं चिविधं स्टतम् ॥

दशपापं हरत्येवं स्त्रयसे लं सुरासुरैः ।

हर तानि सदा गङ्गे पापानि मळ्यतो मम ॥

विष्णुपादाससमूत दति प्रक्ततमन्त्रोऽपि पठनीयः, तथा वास्ती
स्थुकोरिति गौड़ाः। तच तिथिदेधे श्रुक्तदशमीलात् परविद्धा याद्या।

श्रपराजितादशमी ॥

**ग्रतानन्द्यद्वाहे,**—

त्रवणेन युता चेत् स्थात् दशमी चापराजिता ।
तच नीराजनं कला याचा कार्य्या जिगीषुणा ॥
त्रवण्य दशमी ग्राक्ता श्रवणेन समन्तिता ।
विजया दशमी ग्रोक्ता सा चैवात्यन्तदुर्लभा ॥
त्राश्चिनस्य सिते पचे दशम्यां तारकोदये ।
स कालो विजयो ज्ञेयः सर्वकार्य्यार्थसिद्धये ॥
लसत्सन्ध्यामितिकान्तः किञ्चिदुङ्गिनतारकः ।
विजयो नाम कालोऽयं सर्वकार्य्यार्थसाधकः ॥
तथाचात्र सायंसन्ध्यासमागम एव सुख्यः कालः ।
मार्त्तष्डस्थोदये पुष्णा वर्त्तते दशमी तिथिः ।
त्राश्चिने ग्रुक्षपचे तु सा भवेज्जयदा नृष्णाम् ॥
दत्यादिवाक्यादुद्याविध सायद्वाल्यापिले तिथेः पुष्णलं जयदलं चेत्यिधकं ज्ञेयम् । चयवशाद्दिनदयेऽपि सायद्वालासभावे

तु विजयनामक एकादगमुहर्त्ती याद्यः।

श्राधिनस्य सिते पचे दश्यमां सर्वराशिषु।
सायद्वाले ग्रुमा याचा दिवा वा विजयचणे॥
दत्युक्तः। श्रवेकादशीयुक्ता दश्यमी ग्रस्ता।
एकादशीयुक्ता दश्यमी ग्रस्ता।
एकादशीयुक्तायां च दश्यमामुत्सवादिकम्।
ग्रुक्तायामाश्विने मासि कुरू लं भरतर्षभ॥
दषस्य दश्यमीं ग्रुक्तां पूर्वविद्धां परित्यजेत्।
श्रवणेनापि संयुक्ता मित्युक्तेः। श्रादिना उपवासादि।
परेद्युः सायद्वाले दश्रम्यभावे तु नवभीयुतापि ग्राश्चा।
सायद्वाले यदा न स्थात् दश्यमी चापरेऽहिन।
नवमीमंयुता कार्या सर्वदा जयकाञ्चिभः॥
नवमीश्रवसंयुक्तदश्यमां विजयोत्सवम्।
कुरू राम लिमत्युक्तं विश्विन महात्मना॥
दत्युक्तेः। एवं च,—

श्राश्विने ग्रुक्षपचस्य दश्रम्यां पूजयेत्तया ।

एकाद्यां न कुर्वीत पूजनञ्चापराजितम् ॥

इति शिवर्षस्थोक्तिरेतत्परैव । कालस्य नियमात् श्रवणायोगे फलाधिकां न तदनुसारात् स्ववस्या ।

तिथिनचपयोयोगे दयोरेवानुपालनम् ।

योगाभावे तिथिर्याञ्चा देखाः पूजनकर्मणि ॥

इति देवलोकोः ।

दमभी यः समुद्धन्तु प्रस्थानं सुरुते नृपः । तस्य संवत्सरं राज्ये न कापि विजयो भवेत्॥ दृत्युकौ केवलद्यम्या एव उक्तलाच । त्रतएवाच राच्चो याचा त्रावस्यकौ । यात्रायां तु वाल्मीकिः,—

> दुगोत्सवानन्तरवैषावर्षे तिषौ दश्यामपराजितायां। रामो जिगीपुर्दशदिषु वेधं कला जगामारिपुरं प्रवीरः॥

याचां समाय पुनर्वेतिः । "विनिष्टक्तसु वितं द्यात्" इति वाक्यात् ।

ग्रमीमभार्चयेत् देगयाचानिर्विष्ठसिद्धये । वार्ग्यकादि हिला तु दिचु प्रखानमाचरेत्॥ याचाकरणाग्रकौ तु ज्योतिःग्रास्त्रे,—

कार्यवग्रात् खयमगमे समर्तुः केचिदाचार्याः । ह

तथा खन्नादिद्र्यन्य स्थित् स्थानिषेधादिकं च तचैव द्रष्टव्यम्।
त्रच विशेषविधिरस्मत्पिताम इक्ष्णिट इत्पि छितम इत्याचकते नीतिरक्षाकरे द्रष्टवः। श्रीपुर्षोत्तमचेत्रे जगन्नायप्रासादे छद्यव्यापिद्रमस्याम्, "देवे द्योदियकी" दति व्याक्यात्। याचेयं दुर्गादेव्याः
श्रिप कार्या। विधिपूजासु श्रन्ते प्रेषणस्थोतेः।
तथाच, श्राश्चिनकृष्णाष्टमीमारभ्य मन्सवर्गहत्तायाम्,—

त्रष्टम्यां बोधये देवीं नवस्यां च प्रभावतः ।

ततः प्रभातसमये सुखप्रचासनं जसम् ॥

जातीसवङ्गतोयेन चासयेत् सुखमन्ततः ।

दन्तकाष्ठं दशम्यां तु प्रद्धात् कार्यसिद्धये ॥

एकादग्रामककञ्च दादग्रां नखग्रोधनम् ।

चयोदग्रां ततो द्धात् गाचोदर्त्तनकं ग्रुभम् ॥

चतुर्दृग्यां तु देखासु केग्रमंयमनं स्टतम् ।

प्रमावास्यायाङ्गन्यं तु गाचोदर्त्तनकं तथा ॥

प्रतिपत्सु च सिन्दूरं श्रञ्जनं चापरेऽइनि ।

हतीयायां ग्रुभे वस्ते चतुर्थां भ्रषणं ग्रुभम् ॥

पञ्चम्यां सद्घृतैः स्नानं षद्यां मद्योपहारकैः ।

सप्तम्यां पिकतापूजा नानोपकरणैः ग्रुभैः ॥

श्रष्टम्यां पूजयेदेवी नानोपकरणैः ग्रुभैः ॥

पग्रुरकैः समांमान्ने यथाविभवग्रक्तितः ॥

नवम्यां विलदानञ्च विजयार्थी नृपो(१) नरम् ।

दशम्यां प्रेषणं सुर्यात् क्रीड़ाकौतुकमङ्गलैः ॥

मधं मादकं जाती फलादि। घोडणदिनात्मकव्रतपचे मलमास-पाते सिन्दूरस्थेवाद्यत्तिरित्याचार्याः। एतस्मिन् दिने श्रीपुरुषोत्तम-चेवादौ विष्णुप्रतिमाया श्रपि याचा क्रियते ।

तथा च विष्णुधर्मीत्तरे,—

रयमारोष देवेशं मर्वाभरणशोभितम् । मामित्रणधनुर्वाणपाणिं नक्तञ्चरान्तकम् ॥ स्रजीखया जगन्नातुमाविर्धतं रघूदहम् ।

<sup>(</sup>१) चपोत्तमा इति पाठान्तरम् । . .

राजोपचारै: श्रीरामं ग्रमीटचतनं नयेत् ॥ मीताकानां श्रमीयुक्तं भक्तानामभयद्भरम् । श्रर्धयिला शमीरचमर्चयेदिजयाप्तये॥ तच मन्तः, - ग्रमी ग्रमयते पापं ग्रमी सोहितक एका। धरिव्यर्जुनवाणानां रामस्य प्रियवादिनी ॥ करियमाणा या याचा यथाकालं सखं मया। तत्र निर्विप्नकर्त्वी लं भव श्रीरामप्रिति ॥ गरहीला धाचतामाद्रीं ग्रमीमूलगतां सदम्। गीतवादिचनिघेषिसतो देवं ग्रहं नयेत्॥ कै सिदृ चे सत्र भावं के सिद्धायस वानरै:। के यिद्यात्रमुखैर्भावं को ग्रलेन्द्रस्य तुष्टये ॥ निर्जिता राचमा दैत्या वैरिको जगतीतले। रामराज्यं रामराज्यं रामराज्यमिति बुवन् ॥ त्रानीय खापयेदेवं निजिसिंहासने सुखम्। ततो नीराच्य देवेगं प्रणमेइण्डवङ्गवि॥ महाप्रसादवस्त्रादि धारयेदैणावैः सह । मीता दृष्टेति इनुमदाकां श्रुलाकरोत् प्रभुः॥ विजयं दानवैः साईं वासमोऽसात् . शमीतनात् । तथा च विष्णुप्रतिमानामपि विजयोत्सवः प्रास्त्रीयः। कुपाण्डदगमी।

ग्राम्बपुराणे,— श्राश्विनस्य सिते पचे दशम्यां नियतः ग्रुचिः । प्रातःस्वानादिकं कर्म कला पद्यादनन्तरम् ॥ एवं न्यामिविधिं क्रला ततः पूजां समाचरेत्।
तथा,— ग्रिवं दग्ररणं तच बच्चौदेवीं च पूजयेत्।
विदः कुमाण्डकुसुमैर्दग्राहं दग्रभिः क्रमात्॥
पूजयेत् विधिवत्तावत् यावळण्णचतुर्यिका।
तस्यामधं ग्रग्राद्वाय दला न विधवा भवेत्॥
श्रयैकादग्रीविचारः।

एकाद्युपवासो नित्यः काम्यस्, नित्यतापादकानामष्टानामपि विद्यमानलात्। तथा च पूर्व्योक्तकारिकाक्रमेण नित्यमन्दादयः। अपोस्थेकादग्री नित्यं पचयोद्दमयोर्पि।

इति गार्ड ।

एकादगी बदोपोखा पचयोः ग्रुक्तकृष्णयोः ।
 द्रित बनत्कुमारसंहितायाम् ।
 उपोद्यैकादगी राजन् यावदायः प्रवित्तिभिः ।

इति आग्नेये।

पचे पचे च कर्त्त्रयमेकाद्यामुपोषणम् । दित नारदीये ।

परमापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते । स्रतने स्टतने चैव न त्याच्यं दादशीव्रतम् ॥

इति विष्णुधमीत्तरे।

एकादम्यां न भूजीत पचयोर्भयोर्पि।

दति कात्यायनीय।

न करोति हि यो मूढ एकाद्यासुपोषणम्।

म नरो नरकं याति रौरवं तमसावतम्॥ निष्कृतिर्मद्यपस्थोका धर्मशास्त्रे मनीविभिः। एकादयञ्जकामस्य निष्कतिः कापि नोदिता ॥ मद्यपानान्मुनिश्रेष्ठ पातेव नर्कं वजेत्। एकादयासकामसु पिल्भिः सह मज्जित ॥

इति यनत्कुमारः।

एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च। उपवासेन दानेन न निर्दादिशिको भवेत ॥ इति मार्कछुयः।

द्ति नित्यादिग्रब्दाः । कारिकान्तरोक्तानिकमोऽपि । तथा च कखः,-

एकादभीसुपवसेस कदाचिद्तिक्रमेत्। एवमन्यान्यपि । तथा च कौर्मस्कान्दयोः,-न भोक्रवां न भोक्रवां संप्राप्ते इरिवासरे। नारदीये, यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। श्रमाश्रित्य तिष्ठनित संप्राप्ते इरिवासरे ॥ तानि पापान्युपात्राति सम्माप्ते इरिवासरे । श्रमिवणीयमनीच्णं चिपन्ति यमकिद्धराः । मुखे तेषां महादेवि भुञ्जते ये इरेर्दिने ॥ नारदीये,- वाजेनापि कता राजन् न दर्भयति पातकम्। - फलयोगात् काम्यस् । तथा च कौर्म,-

यदी ऋदिष्णुमायुक्यं श्रियं मन्तिमातानः ।

एकाद्यां न भुक्षीत पचयोर्भयोरिष ॥
नारदोऽपि, — खर्गमोचप्रदा द्योषा पुत्रपौत्रपदायिनी ।
त्रकरण द्वासमापने दोष उक्तो विष्णुरहस्थे, —
समादाय विधानेन दादगीव्रतस्तमम् ।
त्रस्थ भङ्गं नरः कला रौरवं नरकं विजेत् ॥

खपवासाङ्गतिचिनिर्णयस्य वेधाधीनलात् दश्रमीवेधो निरूपते। श्रह्णोद्यवेधः, कलाकाष्ठाद्विधः, पश्चदशदण्डवेधस्वेति चिविधः। तत्राचवेधो वैष्णवानामेवेति वच्छते। दितीय दतरेषां। हतीयस्य नोपवासविषयः। तथा च निगमे,—

मर्वप्रकारवेधोऽयमुपवासस दूषकः ।

सार्द्वमप्तमुहर्त्तम् वेधोऽयं वाधते व्रतम् ॥ दति ।

नाचोपवासे पञ्चद्रप्रदेखविधः नापि चिमुहर्त्तवेधः ।

नारदीये,—स्ववेधेऽपि विप्रेन्द्र द्र्यम्येकाद्गी त्यजेत् ।

सुराया विन्दुना सृष्टं गङ्गामा दव निर्मस्तम् ॥

स्रत्यन्तरेऽपि,— कसार्द्वनापि विद्वा स्याद्ग्रम्येकाद्गी यदि<sup>(१)</sup> ।

तचायेकाद्गी त्यत्का दाद्गी ममुपोषयेत् ॥

तथा,— त्रतिवेधा महावेधा ये वेधासित्रिष्षु स्रताः ।

सर्वेऽप्यवेधा विज्ञेया वेधः सूर्योदये मतः ॥ दति

तथा च त्रौतसार्त्तानां सूर्योदयवेधः, यचोदये कसाकाष्ठति
वन्त्यमाणोक्तेश्व ।

<sup>(</sup>१) दश्रम्येकादश्रीं विना।

## श्रथाधिकारिणः।

भविखे, नित्यमेतद्वतं नाम कर्त्तं वार्ववर्णिकम् ।

सर्वात्रमाणां सामान्यं सर्वधर्मेषु चोत्तमम् ॥

नारदीये, नत्रष्टाब्दादधिकोमत्त्यी द्वापूर्णामीतिवत्सरः ।

यो भुङ्गे मानवः सोऽभ्रदेकाद्यां स पापकृत् ॥

तत्र व्यवस्था, कौर्मे, —

एकादक्यां न भुज्जीत पचयोर्तभयोरिष । वानप्रस्थोयितस्वैव ग्रुक्कामेव मदा ग्रही ॥ भविस्थोत्तरे,— एकादक्यां न भुज्जीत पचयोर्तभयोरिष । ब्रह्मचारी च नारी च ग्रुक्कामेव मदा ग्रही ॥ अब नारी विधवा,

विधवा या भवेश्वारी भुज्जीतैकादगीदिने । तस्यास्त सुक्रतं नक्षेत् स्वषहत्या दिने दिने ॥ रति भौरधमें किः,

नास्ति स्तीणां प्रथम्धर्मा न मतं नाषुपोषणम् । इति मनूम्या पतिमत्यासिन्निषेधात् । तदतुरुत्तौ,— त्रायुखं हरते पत्यु नर्तस्वैव गच्छति।

इति विष्णूकेश्व । यनु एकादगीप्रसावे, तत् भर्वनुजापरम् । "भर्नृमती तथा" इति स्कान्दे उक्रम् । यनु रविवारेकादकां सधवस्तीभिः किश्चिद्वचणपूर्वकं व्रतं क्रियते, तत्,—

भानुवार्षमोपेता तथा मङ्कान्तिसंयुता । एकाद्ग्री सदोपोखा पुत्रपौत्रविवर्द्धिनी ॥

दति नारदोक्तेः, "मर्वभगत्करी तथा" दति मनत्कुमारीयो-क्रेय काम्यतया न दोषावद्दं, वारव्रतेषु स्त्रीणामधिकाराचारात्, उपवासनिषेधे अनोदनादिभचणेन निषेधपरिपालनाच । ब्रह्मवैवर्त्त,— ग्रयनीबोधनीमध्ये या कर्णेकादगी भवेत्।

हैवोपोथा ग्टइस्थेन नान्या हत्या कदाचन।

दत्यादी, "एकादगीयु कष्णास" द्ति वच्छमाणवाका व्यपि खपवासाङ्गनियमनिषेधो नोपवासनिषेधः। "यानि कानि च" दत्यादि बङवाक्येषु भोजनस्थ(१) निषेधात् इति बहवः। प्राची-नामु रहस्थेतरेषां पचदयेऽपि व्रतं रहस्थानां शुक्कांस्वेव । ग्रय-नीबोधनीमध्येऽपि "एकादगीषु कृष्णासु" इति निषेधात् पुच-वद्ग्टिं किञ्चित् भचणपूर्वकं वतिमिति। तथा च वायवीये, - उपवामनिषेधे तु किञ्चिद्भच्यं प्रकल्पयेत्।

न दूखत्युपवासेन उपवासफलं सभेत्॥ भच्यकस्पनापि तसैव,—

> नक्षं इविव्यान्त्रमनोदनं वा, फलं तिलाः चीरमणाम् वाज्यम्। यत्पञ्च गर्थं यदि वापि वायुः प्रयस्तमचोत्तरमुत्तरं स्थात्॥

वायुभचण्खाणुपवासानुकस्पलम्(१)।

तथा च रामायणे, - जलागी मारताहारो निराहारस्तथैव च ।

द्रति पृथ्यमतेः।

<sup>(</sup>१) भोजनस्य सर्वया निषेधात्। (२) नोपवासत्तम्।

भविखे, — दन्तखाद्यं भवेत् यद्धि तदोदनमिति स्रतम् ।

भद्यं चोखं। तया लेखं त्रोदनं तिः प्रकीर्त्तितम् ॥

पेयञ्चनोदनं प्रोक्तं + + + + + । दत्यादि ।

स्कान्दे, — त्रप्रकावुपवासस्य भद्यं किञ्चित् प्रकल्पयेत् ।

विष्णुरद्दस्ये, — त्रसामर्थ्यं प्ररीरस्य वते च समुपस्थिते ।

कारयेद्धर्मपत्नीं वा पुचं वा विनयात्वितम् ॥

भिगनीं भातरं वापि व्रतमस्य न सङ्घयेत् ।

भार्या भक्तृंवतं कुर्यात् भार्यायात्र्य पतिस्तया ॥

स्कान्दे, — नारी च पतिसुद्दिया एकादय्यासुपोषिता ।

पुष्यं कत्रप्रतं प्राप्त सृनयः पारदिर्प्यनः ॥

उपवासकतं तस्याः पतिः प्राप्तोत्यसंग्रयम् ।

राज्यस्यचिवार्ये च एकादय्यासुपोषितः ॥

पुरोधाः चित्रयैः सार्द्धं फलं प्राप्नोति निञ्चितम् ।

मातामहादीनुहिन्य एकादन्यासुपोषणे॥

कते कत्पालं विषाः समग्रं समवाप्तृयुः । कक्तां दशगुणं पुष्यं प्राप्तोत्यच न संग्रयः॥ श्रन्येषां केषाश्चिदणधिकारः पूर्वे लिखितः। ननु,— एकादग्रीषु कृष्णासु रविसङ्कःमणे तथा।

इति कात्यायनोक्ती,

सङ्कान्यां कृष्णपचे च रविशुक्रदिने तथा<sup>(२)</sup>।

चन्द्रसूर्योपरागे च न कुर्यात् पुचवान् रहि ॥

<sup>(</sup>१) ग्रोध्यम्।

<sup>(</sup>२) रविसंद्रमणे तथा।

दति कौर्मेऽपि, ग्रुक्तैकादम्यामपि मङ्गान्यादिपाते उपवासो न कार्य्य दति चेत्, न । "तिविभित्तोपवासस्य" दति जैभिन्युक्तेः मङ्गान्यादिनिमित्तोपवासस्य ग्रहस्यं प्रति निषेधात् ।

तथा च तद्यक्रम् विष्णुधर्मीत्तरे,—
स्राभानुदिनापिता सूर्यभक्कान्तिसंयुता ।
एकादगी सदोपोखा पुचपौचविविक्किंगी॥

प्रत्युत, "मङ्कान्ती रविवारोवा" इत्यादि मनत् कुमारीयोक्ती प प्रसाधिकामपि कथितम् ।

कात्यायनः,— उपवासी यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् । उपवासं प्रकुर्वीत श्राघाय पिट्टचेवितम् ॥ इति ।

वाराहे,— स्तकेऽपि नरः खाला प्रणम्य गिरमा हिर्म्।
एकाद्यां न भुञ्जीत व्रतमेतिश्रक्यते (१)॥
स्तकेऽपि न भुञ्जीत एकाद्यां यदा नरः।
पुसस्यः,— एकाद्यां न भुञ्जीत नारी दृष्टे रत्रस्यपि।

श्रगौचे तु काम्यक्रतेऽपि<sup>(२)</sup> पूजादिवजं ग्रारीर नियमकरणिमिति पूर्वं चिखितम् । श्रच "पूजादिकमग्रौचान्ते कार्य्यम्" इति माधवीये ।

स्रतकानी नरः द्वाला पूजियला जनाईनम् । दानं दला विधानेन व्रतस्य फलमञ्जते ॥ इति मात्येकीः ।

<sup>(</sup>१) न जुप्यते इति।

<sup>(</sup>२) काम्यवतेऽपि।

माधवाचार्याः, - ग्रुक्कायामेव नित्योपवासो नैमित्तिककास्यो-पवासौ तु क्रणायामपि कार्यो। तत्र नैमित्तिकः ग्रयनीबोधिनी मध्ये।

काम्यस्त मात्ये, — एकादयान्तु कृष्णाया सुपोय विधिवन्नरः । पुचानायुः सम्हद्धिश्व सायुज्यश्व सम्हष्क्ति ॥ इत्यादि । काम्ये सर्वाङ्गोपसंहारः । नित्यले तु नेवस्रोपवासेनापि सिद्धिः । त्रय नित्योपवासी चेत्सायं प्रातर्भुजिकियाम् ।

वर्जयेनातिमान् विप्रः संप्राप्ते इरिवासरे ॥

दति विण्युरइखोकेः।

ग्रमौ तु कात्यायनः, - ग्रिक्तमांसु ततः कुर्याविषयमं सविभेषणम् । श्रिकेतादकां देधे निर्णयः ।

यत्रोदये कत्ताकाष्ठासुहर्त्तमपि दृक्षते ।
सैवैकादक्षुपोय्या स्थान्नतः पूर्वा कथञ्चन ॥
दिनदयेऽप्युदयसम्बन्धे दादगौरुद्धौ सर्वेषासुत्तरेव ।
संपूर्णेकादग्री यत्र प्रभाते पुनरेवंसा ।
सर्वेरेवोत्तरा कार्य्या परतो दादग्री यदि ॥
दित उभयाधिको नारदोकोः ।

यत्तु क्रत्यकौ मुद्याम् "उभयाधिको विधवाना मुपवासदयं" चिखितं, तदाचार विरोधात् प्रत्यच प्रास्त्र विरोधात् सर्वस्य तिकारै-रना दृतत्वाच सर्वथा नाद्रियते। दाद्गीचये तु,— संपूर्णेकाद्गी यत्र प्रभाते पुनरेव सा। दाद्गी च त्रयोद्शां नास्ति चेत्तत्वयं भवेत्॥ उत्तरां तां यतिः कुर्यात् पूर्वासुपवसेद्ग्रही ।

एतेन विधवायुत्तरासुपवसेत् यतिसमानधर्मतात् निष्कासताच । तथा च मार्कछियः,—

संपूर्णेकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा । पूर्वासुपवसेत्कामी निष्कामस्त्रत्तरां वसेत् ॥

श्रतएव ग्रहस्थानां उत्तरीपवाषधमाचारोऽपि निष्कामलपचा-श्रयणादेव । सकामले तु पूर्वीपवाष एव युक्तः ।

तदेतद्वामं विष्णुर इस्रे,—

निष्कामस्य ग्रही कुर्यादुत्तरैकाद्शी सदा । सकामस्य सदा पूर्वामिति बौधायनो सुनिः॥

यदा ह्रद्ये कियती दशमी, तदुत्तरमेकादशी चीणा, पर-दिने दादशी, तदा दशमीविद्वाप्येकादशी याञ्चा।

> एकादगी दशाविद्धा सकला दादगी परे। खपोखा दशमीविद्धा ऋषिस्हालकोऽववीत्॥

> > दति विष्णुधर्मीत्तरोक्तः।

चयोद्यां न सभोत दाद्गी यदि किञ्चन। ज्योस्थेकाद्गी तच दग्रमीभित्रिता फला॥

दति गोभिनोक्तेश्व।

श्रव यः कालादर्शे,—एकादशी यदा ब्रह्मन् दिनवयितिथि भेवेत्। तदा द्वोकादशी त्यक्का दादशीं समुपोषयेत्॥ दित गोभिकोक्त्यन्तरम् श्रासम्य,

उपोषणन्तु विद्धायां दादभीं वा चये मति।

दित खकारिकायां विकल्प जक्तः, स नासाईग्रे त्राद्रियते । दित एकादय्यां चीणायामपुपवासत्रतादिकमेव । ननु,— कलार्द्धनापि विद्धा स्थात् दग्रस्थैकादग्री यदि । तदायेकादग्री त्यक्षाः दादग्रीं ससुपोषयेत् ॥

द्रत्यस्य स्वत्यन्तर्वाकास्य कागतिरिति चेत्, अच्यते । तस्य काम्यदाद्गीवतिमित्तलेन द्रममीनिषेधपरलं नलेकाद्गीवतिन-षेधपरलम् ।

दादकासुपवासन्तु ये वै कुर्वन्ति मानवाः ।

वत्स मामेव ते यान्ति मम व्रतपरायणाः ॥

दति काम्यदादगीवतस्यापुत्तेः ।

श्रन्यथा,— एकादगी दगाविद्धा परतोऽपि न विद्यते ।

गटिसिर्यतिभिर्यव सैवोपोव्या सदा तिथिः॥

दत्यादि वायुपुराणादिषूक्तदश्रमीविद्धैकादश्रुपवासविधायक-वाक्यानामनवकाशः प्रमञ्चेत । किञ्च, "कलार्द्धनापि" दत्यादिवा-क्यानां वैज्यवविषयलमिति वच्छते । यदा द्वदये एकादशौ तदुत्तरं दादश्याः चयः, परदिने त्रयोदशी, तदा ग्रहस्थस्य,—

> एकादगी दादगी च राचिगेषे चयोदगी। व्यक्त्मक् तदहोराचं नोपोखं तत्सुतार्थिभिः॥

द्ति पाद्योक्तेः, (१) स्पृत्यन्तरे उपवासनिषेधात् किञ्चित् भचण-पूर्वकं व्रतम् । तथा कालादर्भेष्टता स्मृतिः,—

एकादभी दमाविद्धा दादभी च चयङ्गता।

<sup>(</sup>१) इति पाद्मोत्त्वा उपवासनिवेधात्।

दानं वाष्येकभक्तं वा तदाकुर्यादयाचितम् ॥ इति ।
त्रातएव, — एकादगी कालामाचा दादगी च चयक्तता ।
चीणा सा दादगी पुष्णा नक्तं तच विधीयते ॥
दाद्यादि वाक्येषु एक<sup>(१)</sup> नक्तविधिर्ममर्थस्थोपवासासमावे
साम्युपगन्तव्यं इति विज्ञानेश्वराः ।

ननु एकादगीचयवदिष्ठद्शमौविद्धा किं न पाद्धा इति चेत्, न । तदिगेषवचनाभावात् । विशेषवचनाभावे दशमीविद्धायाः सर्वथा श्रनादेयलात् ।

तयाच नारदः,- नोपोखा दशमीविद्धा सदैवैकादशीतिथिः।

तासुपोख नरो जज्ञात् पुष्यं वर्षमतोङ्गवम् ॥ दमम्यां यस्त विद्वायामेकादम्यासुपोषितः । तस्यायुः चीयते सत्यं नारदोऽपत्रवीदचः ॥

द्शम्यनुगता यच तिथिरेकाद्शौ भवेत्।

तस्थापत्यविनागः स्थात् परेत्य नरकं व्रजेत्॥

दभमीभेषसंयुक्ता गान्धार्य्या ससुपोषिता ।

तस्याः पुचमतं नष्टं तसात् तां परिवर्जयेत्॥ इति<sup>(१)</sup>।

एवं ब्राह्मे,— सीतामान्धाहभार्थ्ययोर्दश्रमीविद्धोपोषणादेवदुःखिन-त्युक्तम् ।

भविखे, - नोपोषितञ्च नकञ्च नैकभक्तमयाचितम् ।

<sup>(</sup>१) एष नस्तिविधः।

<sup>(</sup>२) विष्णुधर्मोत्तरे, — दादश्याः प्रथमः पादो इरिवासरसंज्ञकः। तमतिक्रम्य कुर्वैत पार्गं विष्णुतत्परः॥ प्रक्रकान्तरे व्यधिकः पाठः।

नन्दायां पूर्वविद्वायां कुर्यादेश्वर्यमोहितः ॥ एकादगीव्रतविधिरसात्कते व्रतसारे द्रष्टयः । श्रय पारणे विशेषः ।

स्कान्दे, पार्णे उद्दिन संप्राप्ते दाइग्रीं यो यतिक्रमेत्। पयोदम्यान्तु भुद्धानः ग्रतजन्मनि नारकी॥ कलादयं चयं वापि दादग्रीं नलिक्रमेत्। पार्णे मर्णे नृणां तिथिसात्कासिकी भवेत् (१)॥

तथा, चानार्चनिकिया कार्या दानहोमादिषंयुता ।

एतस्मात् कारणात् विप्र प्रत्यूषे स्नानमाचरेत् ॥

पित्तर्पणसंयुक्तं स्वस्पां दृष्टा तु दादणीम् ।

महाहानिकरी श्लेषा दादणी खिलता नृणाम् ॥

पुनः स्कान्दे, कलाई दादणीं दृष्टा निणीयादूई मेव हि ।

त्रामध्याद्धाः क्रियाः सर्वाः कर्त्तव्याः प्रभुपासनात् ॥ त्रायन्तासामर्थ्ये देवनः,—

मद्भटे समनुप्राप्ते दादण्यां पारचेत् कथम् ।

श्रद्भिन्तः पारणं कुर्य्यात् पुनर्भुकं न दोषकृत् ॥

यदा कलापि दादगी नास्ति तदा चयोदण्यामपि पारणम्,—

चयोदण्यां तु गुद्धायां पारणं पृथिवीफलम् ।

श्रतयद्वाधिकं वापि नरः प्राप्तोत्यसंगयम् ॥

दिति नारदीयोक्तेः । पारणं तु नैवेद्यं तुलसी भित्रं कार्यम् ।

<sup>(</sup>१) स्मृता।

क्रवा चैवोपवाधन्तु योऽस्राति दाद्घीदिने। नैवेद्यं तुलसीमित्रं इत्याकोटिविनामनम् ॥ इति स्कान्दोक्तेः । तत्र दशस्यादिदिनत्रये नियमाः-त्रिङ्गराः, - गायमादान्तयोरङ्गोः गायमातस्य मध्यमे । उपवासमानमेषु जंद्याह्मिचत्रष्टयम्<sup>(१)</sup> ॥ देवलः, - दश्रम्यामेकभन्नमु मांष्मेयुनवर्जितः । एकादग्रीसुपवसेत् पचयोसभयोरपि ॥ देवतास्त्रस्य तुर्यान्त काङ्कितं चैव सिधाति । प्राकं मांगं मसूरांख पुनर्भीजनमैथुने ॥ चूतमत्यमुपानञ्च दशम्यां वैष्णवस्यनेत् । ब्रह्माण्डे, - कां सं मां सुरां चौद्रं सोभं वितयभाषणम् । वायामञ्च प्रवासञ्च दिवाखन्नमणञ्चनम्॥ तिस्रपिष्टं मसूरां य दादग्रेतानि वैष्णवः । दाद्यां वर्जयेकित्यं सर्वपापैः प्रमुखते ॥ विष्णुरुखे, - सात्याचोकनगन्धादिखादनापरिकीर्त्तितम् । त्रवस्य वर्जयेत् सर्वे गामानाञ्चाभिकाङ्कणम् ॥ गाचाभ्यक्नं ग्रिरोऽभ्यक्नं तामूलञ्चानुलेपनम् । व्रतस्यो वर्जयेत् सर्वे यज्ञान्यच निराक्ततम् ॥ श्रन्यव श्रन्योपवामे इत्यर्थः । तथा च दशमीदादम्योः शाक-निषेधादिकं पूर्ववत्।

<sup>(</sup>१) भक्तचतुरुयम्।

मह्माप्डे,- मङ्कान्यां पश्चदक्याञ्च दादक्यां त्राद्धवासरे । वस्त्रञ्च पौदाते नैव चारेणापि न योजयेत ॥ हरिभितिविलासादियन्यानालोका सम्प्रति । वैणावैकादगीभेदा किखानोऽनितिक्तरम्॥ तचादौ वैषावसचणम्, विष्णुपुराणे,-न चलति निजवर्णधर्मती यः मममतिरात्मसुद्विपचपचे। न इरति न च इनि किञ्चिद्चैः सितमनम नामवेचि विष्णुभक्तम् ॥ स्कान्दे,- परमापदमापन्नी हर्षे वा समुपस्थिते । नैकादगीं त्यजेद्यस तस्य दीचास्ति वैषावी ॥ ममात्मा मर्वजीवेषु निनाचारादविश्रुतः। विष्विपिताखिलाचारः स दि वैष्णव उच्चते ॥ सदीचाविधिमञ्जामं मयन्तं दादणाचरम् । त्रष्टाचरमयान्यं वा ये मन्त्रं समुपासते ॥ ज्ञेयासी वैष्णवा स्रोके विष्णुर्ज्ञनरतास्त्या॥ माधवाषार्यासु,— वैखानसाद्यागमोक्तदीचाप्राप्तो हि वैष्णवः ।

तच नित्यलादिविचारः() पूर्ववत् । कलाकाष्ठादिवेधोऽपि सूर्यादय द्वारुणोदयेऽपीति विशेषः । विलाससंग्रहकारिका,—

<sup>(</sup>१) निखलानिखलविचारः।

एकादग्री च ममूर्णा विद्वेति दिविधा भवेत्। विद्वा तु चिविधा तच त्याच्या विद्वा च पूर्वया॥ वेधचयन्त् पूर्वमुक्तम् । ऋक्णोद्यवेधोगाक्डे,— दग्रमीग्रेषमंयुक्तो यदि स्थादक्णोद्यः। नैवोपोय्यं वैष्णवेन तच चैकादग्रीयतम्॥ तत्रमाणं, स्कान्दे,— खदयात् प्राक् चतसस्तु नाडिका ऋक्णोद्यः।

गाड़िकाः दण्डाः। सा च राचेत्विंग्रत्तमभाग इति इरिभिक्ति-विकासकाराः।

त्रव ये संष्टक्रसन्दिग्धसंयुक्तसङ्कीर्णनामका वेधमहावेधातिवेध-योगाख्याञ्चलारो वेधाक्षेषासुद्यात्राक्काक्षीनचतुर्दण्डात्मकाक्णो-द्यवेधान्तर्गतलात् कैसुतिकन्यायेन वेधकलिमिति ग्रन्थगौर्वभया-श्रक्षिखताः। एतदनन्तरम्, पाग्नो,—

श्रहणोदयकाको तु वेधं दृष्टा चतुर्विधम् ।

महीनं ये प्रकुर्विन्त यावदाभूतनारकाः ॥

संप्रकादीनामन्ते गास्डे,—

पुचपौचप्रदृश्यें दादम्यासुपवासयेत् ।

तच कतुश्रतं पुष्यं चयोद्य्यान्तु पार्णम् ॥

विलाससंग्रहकारिकापि,-

त्रत एव परित्याच्या समये चाइणोदये। दमस्येकादमीविद्धा वैष्णवेन विभेषतः॥ षस्त कौर्मे, त्राईराचवेध उक्तः। तद्यवादो ब्रह्मवैवर्त्ने,— त्राईराचे च केषाञ्चित् दमस्यावेध दस्यते। श्रह्णोद्यवेलायां नावकाशो विचार्णे॥
कपालवेध द्वाइराचार्या ये इरिप्रियाः।
न तन्मम मतं यसान्तियामा राचिरिव्यते॥
चियामां रजनीं प्राइस्यक्षाधनाचत्रष्टयम्।
नाड़ीनां तदुभे मन्ध्ये दिवसाधन्तसंज्ञिते॥
दति ब्रह्मवैवर्त्तवाक्यात् चियामालं। एकादशीचयादौ विशेषः।
तथा च पितामदः,—

एकादगीदिने चीणे उपवासं करोति यः।

तस्य पुत्रा विनय्यन्ति मघायां पिष्डतोयथा॥

दिनचये तु सम्माप्ते उपोव्या दादगी भवेत्।

दग्रमीग्रेषसंगुक्तां न कुर्वीत कदाचन॥ दति।

कौर्म,— पूर्णायेकादगी त्याच्या<sup>(१)</sup> बर्द्धते दिचयं यदि।

दादग्रां पारणासाभे पूर्वेव परिग्रद्यताम्॥

विष्णुधर्मीक्तरे,— एकादगी यदा दृद्धा<sup>(१)</sup> दादगी च चयङ्गता।

चीणा सा दादगी ज्ञेया नक्तं तच विधीयते॥

कौर्म,— तिथिदृद्धौ तथा हृामे सम्माप्ते वा दिनचये।

सन्दिग्धेषु च वाक्येषु<sup>(१)</sup> दादगी समुपोषयेत्॥

श्रथ उन्मिसिन्याद्यद्धविधैकादग्रः।

ब्रह्मवैवर्त्त,— उन्मिष्निनी वश्चुकी च चिस्पृणा पचवर्द्धिनी । जया च विजयाचैव जयन्ती पापनाणिनी ॥

<sup>(</sup>१) प्राकादश्रमी त्याच्या।

<sup>(</sup>२) एकादग्री यदा विद्वा दग्रमी च चयद्गता। (३) सर्वेष !

दादकोऽष्टौ महापुष्धाः सर्वपापहरा दिज ।
तिथियोगेन जायन्ते चतस्रश्चापरास्त्रथा ॥
नचचयोगाच वक्तात् पापं प्रश्नमयन्ति ताः ।
एकादश्ची तु सम्पूर्णा वर्द्धते पुनरेव सा ॥
दादश्ची च न वर्द्धते कथितोन्मिक्तिनीति सा ।
दादश्चेव विवर्द्धते न चैवैकादश्ची यदा ॥
वज्जुक्तीति स्रान्नेष्ठ कथिता पापनाश्चिनी ।
श्वर्कोदय श्राचा स्थात् दादश्ची सक्तं दिनम् ॥
श्वन्ते चयोदश्ची प्रातस्त्रिस्तृश्चा च हरेः प्रिया ।
वज्जराने यदा दृद्धिं प्रयाते पचवर्द्धिनी ॥
विहायैकादश्चीं तच दादश्चीं ससुपोषयेत् ।
पुर्थश्चवणपुर्थाद्यरोहिणीसंयुतास्त ताः ॥
वपोषिताः समकता दादश्चीऽष्टौ प्रथक् प्रथक् ।

संग्रुकारिका,-

एतत्भेदाष्टके नन्दां त्यक्षा भद्रेव ग्रज्ञते ।
नन्दा, एकादग्री । भद्रा, द्वादग्री । एतेषु केषुचित् भेदेषु
कालविग्रेषेषु फलाधिकाम् ।
तचैव,— ग्रक्षा वैभाखमापे तु मन्पाप्ता मधुस्तद्दनी ।
दादग्री विस्पृत्रा नाम पापकोटिचयावद्या ॥
धन्याः पर्वे मनुष्यास्ते वैभाखे मधुस्त्दनी ।
सम्पाप्ता विस्पृत्रा येसु बुधवारेण संयुता ॥
आद्वी तु,— दादग्रां तु सिते पर्वे स्टवं यदि पुनर्वसु ।

नामा सा तु जया खाता तिथीनासुत्तमा तिथिः॥
तथा,— यदा तु ग्रुक्कदादश्यां प्राजापत्यं प्रजायते।
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः॥
तथा,— यदा तु शुक्कदादश्यां नचत्रं श्रवणं भवेत्।

तथा,— यदा तु अन्नदादया नचन अवस नवत्। तदा सा तु महापुष्णा दादशी विजया स्पृता ॥ प्राजापत्यं रोहिसी।

तथा, च्या तु श्क्षदाद्यां पुद्यं भवति कर्षिति ।
तदा सा तु महापुष्या कथिता पापनाभिनी ॥
दत्याद्युक्ता स्थानदानादिषु बह्धनि फलान्युक्तानि । पुत्यासं, पुनर्वसुनचनम् । पचवर्द्धिन्याः स्यष्टलचणम्, पाद्ये,—

श्रमा वा यदि वा पूर्णा सम्पूर्णा जायते यदा।
भ्रता च षष्टिघटिका जायते प्रतिपद्दिने ॥ इति ।
श्रच विसाससंग्रहकारिका,—

श्रय ऋचप्रयुक्तानां त्रतकर्त्तव्यता यथा ।
जयादीनां चतरूणां तथा व्यक्तं निरूपते ॥
भान्वकींद्यमारभ्य प्रवृत्तान्यधिकानि चेत् ।
समान्यूनानि वा सन्तु ततोऽमीषां त्रतौचिती ॥
किं वा सूर्योद्यात् पूर्वं प्रवृत्तान्यधिकानि चेत् ।
समानि वा तदायेषां त्रताचर्णयोग्यता ॥
श्रवणाव्यतिरिक्तेषु नचचेषु खलु निषु ।
सूर्यास्त्रमनपर्यन्तं कार्यं दादश्यपेचणम् ॥
श्रवणे तस्त्रमनतः दादश्याञ्च समाप्तताम् ।

गतायामिप तचेव वतस्थाचितता भवेत्॥
तचेव पारणकालनिर्णयः,—

वृद्धौ भितयोर्धिका तिथियेत् पार्णं ततः।
भान्ते खाचेत्तिथिन्धूना तिथिमध्ये तु पार्णम् ॥
दादग्यनतुवन्तौ तु वृद्धौ ब्रह्माखुतर्चयोः।
तन्मध्ये पार्णं वृद्धौ प्रेषयोद्धदितकमे ॥
श्रीदादग्रीचतुष्कस्य महतोऽभौ विनिर्णयः।
नृसिंहपरिचर्यादियन्यं दृद्धा विनिर्भितः॥

ब्रह्मा, रोहिणी । श्रच्युतः श्रवणर्चम् । श्राद्धेऽपि भेदः । पाद्मे, एकादम्यान्तु प्राप्तायां मातापित्रो र्म्टतेऽहिन । दादम्यां तत्प्रदातयं नोपवासदिने कचित्॥

कात्यायनः, — दादशौपूर्वपादीयसच चेद्धरिवासरः।

दादग्याधिकातः तिष्ठेत् पार्णं तच नाचरेत् ॥
एकादग्याधिकादादग्याधिकाभेदौ उन्मिजिनी, वच्चुिकानी चेति
न पुनर्लिखितौ । उभयाधिको तु स्याः,—

सम्पूर्णेकादभी यत्र प्रभाते पुनरेव सा।

तत्रोपोव्या दितीया तु पर्तो दादभी यदि॥

सन्देहे निर्णायकनिरूपणम्,—

विष्णुरहस्थे, - श्रर्वयन्ति सदा विष्णुं मनोवाक्कायत्रमंभिः ।
तेषां हि वचनं कार्ये ते हि विष्णुसमा मताः ॥
दित वैष्णवैकादमौ निर्णीता । ग्रहीतदीचैरिप श्रोइवैष्णवैस्तसार्त्तमार्गेणैव एकादमौं कुर्वन्ति ॥ दित साधार्णैकादमौ ॥

श्रय हरिश्रयनपार्थपरिवर्त्तनोत्दापनकालविचारः । यथा, मात्स्ये,— ग्रेते विष्णुः मदाषाढे भाद्रवे परिवर्त्तते । कार्त्तिके प्रतिबुध्येत ग्रुक्कपचे हरेदिने ॥

इरेर्दिने, एकाद्याम् ।

नारिषंहे, पश्च मामान् हरौ सुत्ते देशे तच भयं भवेत्।
ब्रह्महा स भवेद्राजा संग्रामे भयमाप्रयात्॥
स्विपेन्नारायणो देवश्वतुर्ये मासि मङ्ख्या(१)।
न वर्द्वयेत्स्वापदिनं तदा स्वोकः सुखी भवेत्॥

त्रतः त्राषादृश्क्षकेतादशीमार्भ्य कार्त्तिकश्क्षकेतादयःन्तमाय-चतुष्टये इरिश्रयनम् ।

स्रत्यन्तरे, - निश्च स्वापो दिवोत्यानं सन्ध्यायां परिवर्त्तनम् ।
भविद्योत्तरे, - मिथुनस्य सदसांगौ स्वापयं न्यधुस्दनम् ।
तुसाराशिगते तिसान् पुनस्त्यापये द्भुवम् ॥
श्रिधमामेऽपि पतिते द्योष एव विधिक्रमः ।
कार्त्तिके ग्रुक्तपचस्य एकाद्य्यां यथाविधि ॥
ततः समुत्यिते विष्णौ क्रियाः सर्वाः प्रवर्त्तयेत् ।

श्रव विशेषमाइ दहुमिहिरः,-

माधवाद्येषु षट्खेकमामि दर्भदयं यहा। दिराषादः म विज्ञेयः ग्रोते कर्कटकेऽच्युतः॥

द्यं दिराषाढ्यजा उत्तरभाविवर्षे हरिखापविवेकायोपयुच्यते,

तथा च वृद्धमिहिर:,-

<sup>(</sup>१) संच्चयः !

मेषादिमिणुनानेषु चदा दर्गदयं भवेत्।
श्रव्हानारे तथावयं मिणुनार्के हिरः खपेत्॥
कर्कटादिनिने मासि चदा दर्गदयं भवेत्।
श्रव्हानारे तथावयं कर्कटार्के हिरः खपेत्॥
भीमैकादग्री।

गर्डुपुराणे, — माघमाचे शक्तपचे पुर्वेण युता पुरा।

एकादशी तथा चैव भीमेन चसुपोषिता॥

श्रव्यंखद्वतं खुर्यात् पित्वणामनृणो भवेत्।

भीमदादशी विख्याता प्राणिनां पुष्यवर्द्धिनी॥

नचनेण विनायेषा ब्रह्महत्यां खपोहति(१)।

तदनुहत्ती मात्ये,-

यद्यष्टमीचतुर्द्यो दांदगीषु च भारत।
श्रन्येष्वपि दिनर्चेषु न ग्रम्नस्वसुपोषितुम् ॥
ततः पुष्यामिमां भीम तिथिं पापप्रणाभिनीम् ।
उपोय विधिनानेन मक्केदिकोः परम्यदम् ॥

ऋष दादभी।

सा चैकादशीयुता ग्राच्चा, युग्गोक्तेः। उपवासातिरिक्तवते तु क्रण्योकादश्युपवासेऽपि,

स्कान्दे, - दादभी च प्रकर्त्तचा एकादम्या युता विभी। सदा कार्या च विदद्गिर्विण्यभक्ते समानवैः॥

<sup>(</sup>१) विनाध्ययेत्।

नम्बेवं सित "श्रममाप्ते त्रते पूर्व" द्याद्युक्तनिषेधेऽप्येकस्मिन् दिने त्रतद्यानुष्ठानं प्राप्नोतीति चेत्, न, दैवतैक्यात् दिनद्येऽपि त्रताचर्षे दोषाभावात्। तथा च विष्पुधर्मान्तरे,—

एकादशीसुपोर्येव दादशीं ससुपोषयेत्। न तत्र विधिकोपः स्थादुभयोर्देवता हरिः॥ दति। एतदुक्तिवकादेव,

एवनेकादगीं भुक्ता दादगीं मसुपोषयेत्।
पूर्वीपवासजं पुष्यं भवें प्राप्तीत्यसंग्रयम् ॥ दति।
स्रात्यन्तरमालस्य माधवाचार्य्यक्पवासदयासामर्थ्यं यो दादम्मानेवोपवासो लिखितः, सोऽप्यसादेशस्मार्त्तर्गितिद्यते।
दादग्यां काम्योपवासो मार्कण्डेयेनोक्तः,—

दादकामुपवासेन सिद्धार्थी भूप सर्वेगः। चक्रवर्त्तित्वमतुसं सम्प्राप्नोत्यतुसां श्रियम्॥

चम्पकदाद्गी।

भवियो, चौष्ठे मासि सिते पचे दाद्यां चम्पकैः ग्रुभैः।
ग्रुद्धैरभ्यक्यं गोविन्दं नरः किमनुशोचित ॥
तिचिदैधे पूर्वविद्धा याद्या ।

वामनजन्म ।

नभस्थे ग्रिक्षपचे तु दादग्यां श्रवणोडुनि । बलेसु बन्धनं कत्तुं मध्याक्ते वामनस्त्रभूत् ॥ जयन्ती वामनाख्या मा मैबोपोय्या नरोत्तमेः । सर्वपापप्रश्रमनी सर्वकामप्रदायिनी ॥ एकाद्यां भवेद्योगो दाद्याः श्रवणस्य च ।
पूर्वाचे वाय मधाक्ते मा तिथिर्मदती स्रता ॥
श्रवणदाद्गी।

विष्णुधर्मी तरे,-

मामि भाद्रपदे एका दादगी अवणान्विता। महती दादगी जेया उपवासे महाफला ॥ मङ्गमे मरितां पुखे सुस्नातसामुपोवितः । श्रयद्वादेव चात्रोति दादगदादगीफलम्॥ युधश्रवणसंयुक्ता सैव च दादशी भवेत्। त्रत्यन्तमइती यस्रां सर्वे कतमयाचयम्॥ खर्गं समासाय चिरञ्ज भोगान् भुक्ता महेन्द्रोपमदेवतुखः। मानुष्यमामाच भवत्यरोगो धनान्तितो धर्मपरो मनखी॥ श्रवणर्चममायुक्ता दादगौ यदि सभ्यते । उपोखा दादगी तत्र त्रधोदक्शान्त पार्णम्॥ "एकादणीम्" दत्यादि "देवताइरिः" दति पूर्वमुक्रम्। भविखोत्तरेऽपि,-

निषिद्धमिष कर्त्तव्यं चयोदयाञ्च पारणम् । दादय्याञ्च निराहारो वामनं पूजवाम्यहम् ॥ दत्यादि । मिक्कपुराणे, — यथोत्रं नियमं कुर्यादेकादयासुपोषितः । दन्तकाष्ठं प्रयञ्चादौ वाग्यतो नियतेन्द्रियः ॥

श्रवणदादशीयोगे समुपोय जनाईनम्। त्रर्चयिला विधानेन त्रनं भचेत्परेऽइनि॥ मात्यो, - रात्री च अवणेनेव यदा चैककलां स्पृणेत्। मा तिथिः सर्वपुष्या स्थान्तलतञ्चाचयं भवेत्॥ तथा, - दानं दला दिजातिभ्यो वियोगे पार्णं ततः । वियोगे अवणदादभीव्यपगसे, दृदं भन्नविषयम्। श्रव इरिभिक्तिविलासकारिका वैष्णवानाम्,— दादमां तु भवेद्योगः श्रवणस्य दिवैव हि । श्रवीपवासः कर्त्त्वो वैषावैः सर्वदापि च ॥ उदययापिनीं कुर्यात् अवणदादगीं मदा। त्राचार्याः नेचिदिक्कृत्ति नेचिन्नेक्कृत्ति चापरे॥ मुहर्त्तितयं वापि मङ्गवान्यमयापि वा । इति । विष्णुधर्मे, - नभखगुक्कदादग्यां नचनं अवणं षदि। तस्यां तीर्चेषु यत्स्वानं तद्नन्तपनं नभेत्॥

देवपूजादिसहस्रगृणितमित्युक्तम् । दयं श्रवणदादभी फाल्गुन-चैचान्यतरक्षण्यचेऽपि भवति । तथा च नारदीये,—

> ग्रुक्ता वा यदि वा क्षणा दाद्भी श्रवणान्विता। तयोरेवोपवासय चयोदम्यां तु पार्णम्॥

> > श्रथ विष्णुग्रहाः ।

मात्ये, - दादगी श्रवणर्चञ्च सृगेदेकादगीं यदि । स एव वैष्ण्वो योगो विष्णुग्रहङ्खलमंजितः ॥ तस्मिञ्जुपोय्य विधिवन्नरः प्रचीणकत्समः । प्राप्तोत्यनुक्तमां सिद्धिं पुनराविक्तदुर्सभाम् ॥
पारणे लग्ननिवये विष्णुधर्मीक्तरे,—
दादग्रीमुपवासस्त दादक्शामेव पारणम् ।
निविद्धमपि कर्त्तव्यमाज्ञेयं पारमेश्वरी ॥
श्रमोत्यापनम् ।

तच नचवपच एकः, तिथिपचस्तपरः, नचवपचे श्रवणाया मारभ्य दिजानचविषर्गः, तथाचाष्ट्रदिनधाधो नचवपचः, तथाच इरिवंग्रे,—

> सप्तराचे व्यतीते तु भरकां विगतोत्सवे। जगाम संदतो मेघेर्टचहा खर्गमुत्तमम्॥

भविष्योत्तरे तु दिजायां विसर्जने यो दोष खक्तः स दिजा-नचत्रातुरोधेन नवमदिननिषेधार्थः । तदारमो, ब्रह्माण्डे,—

> भाद्रे मासि सिते पचे श्रवणदाद्भी यदि । ग्राक्रसुत्यापयेत्तच श्रवणे तदियोगतः॥

नचत्रपचोऽयं नाद्रियते। तिथिकस्यः पञ्चदिनात्मकः धर्वादृतः।
तथा च विष्णुधर्मीत्तरे,—

दाद्यां च ग्रिरःस्नातो नृपितः प्रयतस्ततः ।

मन्तेणोत्यापनं कुर्याच्छक्रकेतोः समास्तिः ॥

तथाच, - पञ्चमे दिवसे प्राप्ते ग्रक्कतेतुं विसर्जयेत् ।

भविय्योत्तरे, - एवं यः कुरूते यात्रां ग्रक्कतेतीर्युधिष्टिर ।

पर्जन्यः कामवर्षी स्थात्तस्मिन् देशे न संग्रयः ॥

इरिवंगे मक्तिमवसंवादे,-

नरास्ताश्चेत माश्चेत ध्वजाकारास यष्टिषु।
महेन्द्रं वाष्णुपेन्द्रश्च पूजयन्तु महीतले॥
ये लावयोः स्थिरे हत्ते महेन्द्रोपेन्द्रगंजिते।
मानवाः प्रणमिय्यन्ति तेषां नास्यनयागमः॥
भीमदादशी।

विष्णुधर्मीत्तरे,-

स्ग्रीर्षे ग्राधरे माघे माधि प्रजापते ।
एकाद्यां धिते पचे मोपवामी जितेन्द्रियः ॥
दाद्यां षट्तिलाचारं छला पापात् प्रमुच्यते ।
तिलोदन्ती तिलखायी तिलहोमी तिलोदकी ॥
तिलदाता च भोका च षट्तिली नावमीद्ति ।
यक्तनु षट्तिली भूला सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
चिंग्रद्षेषहस्राणि खर्गलोके महीयते ।

द्रयं वराषदाद्रशी।

रुष्वन्दिकेश्वरपुराणे,-

माघे तु ग्रुक्तदाद्यां सम्मे कर्कटमंत्रके । श्राविरामीद्वद्यानामाविवरात् क्रोड्रूपध्क् ॥ यजम् तिः च विज्ञेयो देवो नारायणः खयम्।
पूजाविधिः कच्यतरौ द्रष्टयः। दति वरा इदादग्री॥
श्रथ चयोदग्री।

श्रवापराइवेधः,—

त्रयोदगी प्रकर्त्तया या भवेदापराश्विकी। रित स्कान्दोक्तेः।

षष्ठाष्ट्रम्ययमावास्या छम्णा चैव चयोदशी।

एताः परयुताः पूज्याः पराः पूर्वेण संयुताः॥

पराः सप्तम्याद्यः दति निगमोत्तेः। कृष्णा पर्विद्धा याद्या,

प्रव कृष्णोपादानात् शुक्का पूर्वविद्धा ग्राच्चा ।

चयोदगी प्रकर्त्तया दादगीमहिता विभो। इति ब्रह्मवैवर्त्ते, सामान्योकोय।

यदा तु कृष्णपचे परविद्धा न सम्यते, तदा पूर्वविद्धापि याच्या।

एकादभी हतीया च पष्टी चैव चयोदभी।

पूर्वविद्धा तु कर्त्त्र यदि न स्नात्परेऽइनि ॥

द्ति विशिष्ठोक्तेः।

दति चयोद्याः साधारणनियमाः॥

कामदेवचयोदगी।

भवियो, चेच ग्रज्ञचयो द्यां मदनं दमनात्मकम् । द्यादि । दमनो, दमनरुचः ।

> एवं यः कुरते पूजामनङ्गस्य महातानः। भवन्ति नापदस्तस्य तस्मिन्नन्दे कदाचन॥

धवस्त्रं प्रेच्च यद्गे मदनं चन्दनात्मकम्। इत्ता संपूज्य यद्गेन वीजयेद्वजनेन तु॥ ततः संपूज्य वामः पुत्रपौत्रसम्हद्भिदः॥

संध्वितः प्राणितः।

गतानन्दसंग्रहे,- कामदेवः चयोदम्यां पूजनीयां यथाविधि ।

रतिशीतिषमायुक्तोऽयगोकमणिश्वितः॥

ततः प्रातः संमुत्याय साला कलमवारिणा ।

परं मौभाग्यमाप्नोति कामां शाप्तोति पुष्काचान् ॥

तिचिदेधे दयं पूर्वविद्धेव, ग्रुक्तचयोदगीलात्।

कृष्णाष्ट्रमी रहत्तुचा माविनीवटपैहकी ॥

त्रनङ्गचयोदगी रमा उपोखाः पूर्वसंयुताः॥

दित मंवर्त्ताक्रेश । वटमब्देन वतं, पैहकी तिथिः श्रमावासा। तथा च माविचीवतामावासा दित कालादर्भे । श्रपरानङ्गचयोद्भी, भविय्ये,—"मार्गगीर्घेऽमखे पचे" दत्युपक्रम्य

अनक्षेन कता होषा तेनानक्षचयोदशी।

पत्रापि पूर्ववद्वावस्था ।

इति अनङ्गचयोद्भी।

श्रय चतुर्दगी।

तत्र भड़कोत्तरविद्धा याद्या,

श्रुका चतुर्दभी पाद्या परविद्धा सदावते।

दिति व्यामीकी।।

प्रक्रपचेऽष्टमी चैव ग्रक्षपचे चत्रदंगी।

पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या कर्त्तव्या परभंगुता ॥ इति निगमोक्तेय ।

क्रणाः तु पूर्वविद्धेव,

कृष्णपचेऽष्टमी चैव कृष्णपचे चतुर्द्भी। पूर्वविद्धैव कर्च्या पर्विद्धा न कस्यचित्॥

इति श्रापस्तम्बोक्तः।

यनु स्कान्दे,— चतुर्दगी च कर्त्तवा चयोदया युता विभो । सम भन्ने में हावाही भवेद्या सापराष्ट्रिकी ॥

द्ति भिवचतुर्दभीविषयम्, मम भक्तेरिति देशरोक्ताखङ्गात्। माधवाचार्याखः "चैवश्रावणचतुर्दभौ ग्रुक्तेऽपि राचियोगिन्यौ" गाम्रो।

मधुश्रवणनामस्य ग्रुक्षा या तु चतुर्दशी।
सा राचियापिनी याद्या परा पूर्वाह्रगामिनी॥
दित वौधायनोर्क्षेरित्याद्यः।

परा, मामान्तरवर्त्तिनी ग्रुक्तचतुर्दशी। इति चतुर्दश्याः माधारणनियमाः।

समनकचतुर्वभी।

स्कान्दे,— मधुमाचेऽपि संप्राप्ते प्रदक्षपचे चतुर्दगी।
प्रोक्ता दमनभञ्जीति सिद्धिदा च महोत्सवा॥
तथा,— पूजविव्यन्ति ये मर्त्याः तदङ्गभवपस्नवैः।
ते यान्ति परमं स्थानं दमनस्य प्रभावतः॥
दयं प्रक्तापि पूर्वविद्वा पाद्या,

मर्वा चतुर्दशी पूज्या युक्ता पूर्णेन्दुना मह।
श्रपूज्या पूर्णिमायुक्ता मधौ शक्ता चतुर्दशी॥
दित वायवीयोक्तेः(१)।

सेंक्ने, प्रदला दमनं चीणं ब्रह्महा पूजने भवेत्। तथा, प्रदला च धदोदेगो जायते निश्चितं सुने। दला खचायमेधस्य सभते वाञ्चितं फसम्॥ दति दमनकचतुर्दग्री।

नरसिंहचतुईगौ।

याद्व चत्रहं यां मामि माधव मं जाने ।

प्राद्धितो नृपञ्चायः तमान्तां मसुपोषयेत् ॥

प्रान्द्वेन ममायुक्ता न मोपोय्या चत्रहं गी ।

पूर्णायुक्तान्तु तां कुर्यान्त्रर मिं इस्य त्रष्टये ॥

यः करोति नरो मोहात् कामिवद्धां चत्रहं गीम् ।

धनापत्यैर्वियुच्येत तसान्तां परिवर्जयेत् ॥

चत्रहं गी न वर्न्तत मायद्वाले दिनदये ।

परैव वर्न्तते वापि कर्न्त्या मा तदैव तु ॥

स्पृणेत्परदिने चेत्या मायद्वाले चत्रहं भी ।

कर्न्त्या लन्यया पूर्वा नरिंह प्रिया तिथिः ॥

दत्यादिवाक्यात् परिदने मायङ्गाले चतुर्द्भीसार्याभाव एव पूर्वविद्धा ग्राह्मा ऋन्येषु पचेषु परिविद्धैव । दति नृषिंदचतुर्द्भी ।

<sup>(</sup>१) माधवीयोह्नेः।

### त्रनन्तवतचतुर्द्गी।

भवियोत्तरे, — ततः ग्रह्मचतुर्द्यामननं पूजयेद्धरिम् ।
तथा, — धर्वकामप्रदं नॄणां स्तीणाञ्चेव युधिष्ठिर् ।
ग्रह्मपचे चतुर्द्यां मासि भाद्रपदे ग्रुभे ॥
तस्यानुष्ठानमाचेण धर्वपापं प्रणयाति ।
तिथिदेधे पूर्वविद्धा गाञ्चा ग्रह्मचतुर्द्गीलात् ।
भव धर्वव चिमुहर्त्त्याय्येव यवस्या ।

"पूर्वाच्चो वे देवानां" इति श्रुत्या देवकत्ये विहितस्य पूर्वाच्चस्य कर्मकाखलेऽपि "देवे द्यौदयिकी पाद्या" इति वाक्यात् सोदय-चिसुह्रक्तव्याप्तेरेवाच प्राप्तलात् । "चिसुह्रक्तांभावे समाचाराद् दिसुह्रक्तांपि पाद्या" इति माधवीये यक्तिखितम्, तदस्रह्रेणाचार-विरोधाचाद्रियते ।

> मधाक्रे भोज्यवेत्रायां ममुत्तीर्य परित्तटे । प्रिता दद्र्य मा स्त्रीणां ममूहं रक्तवामसाम् ॥ चतुर्द्यामर्चयन्तं भक्ता देवं प्रयक् प्रयक् ।

रति चिङ्गानाथा इः कर्मकाल रति केचित्, तन । प्रमा-णान्तरमले चिङ्गस्थोपोदलकलं, नाच प्रमाणान्तरमस्तीति चिङ्गस्य दौर्वस्थात् ।

तिथितन्तकारा श्रपि "दैवकत्ये विहितस्य पूर्वाइस्य विध्यसम-

<sup>(</sup>१) अत्र सर्वतियिवित्रमुद्धर्तवाप्तेव व्यवस्था।

भियाद्वतार्थवादेन वाधायोगात् । किन्तु तस्यैव गौणकालवबोधकं तत्" इत्याद्धः । तथा च मोदयचिमुह्नर्भव्याप्तिरेव ग्राह्या ।

इति श्रननावतचतुईगी।

त्रघोरचतुर्द्भी।

भविष्योत्तरे,— भाद्रे मामि मिते पचे श्रघोराखा चतुईंगी। तामुपोख नरो याति भिवनोकमयत्नतः॥ तिथिदेधे पूर्ववत् परविद्धा याद्या।

इति ऋघोरचतुर्द्गी।

चित्राक्षणचतुर्दगी ऋजभायोगेषु लेखा।
पाषाणचतुर्दगी।

देवीपुराणे, — दृखिने श्रक्तपचे तु या पाषाणचतुर्द्गी ।
तस्यामाराधयेद्गीरीं नक्तं पाषाणभोजनैः ॥
ऐवर्यभीख्यसीभाग्यक्षपाणि प्राप्नुयान्नरः ।

पाषाणाकारः पिष्टकः पाषाणग्रन्देनाच उक्तः, कर्मकाकोऽच नक्तम् । नक्तमिति विधिममभियाद्यारात् । दिनद्येऽपि नके चतुर्द्गीमने परेशुर्वतम् ग्रुक्तचतुर्द्गीलात् । दृश्चिकपदेन मार्ग-भीषों मासः, त्रन्यथा ग्रुक्तपचिनयमो न स्थात् । दृति ।

रटन्याखा चत्रईशी।

थमः, -- माघे मास्यमिते पचे रटन्याख्या चतुई्गी। तस्यामुद्यवेचायां स्नातो नावेचते यमम्॥ उद्यवेचा ऋष्णोद्यकाचः। तथा च वारा हे,-

त्रक्णोदयवेकायामारटक्यपि नित्यगः।
नियुक्ता विष्णुना धर्वाः कस्य पापं पुनीमहे॥
यां कांचित्सरितं प्राप्य कृष्णपचे चतुईग्रीम्।
यमुनायां विग्रेषेण नियतक्तपंयत् पुमान्॥
यमाय धर्मराजाय स्त्यवे चान्तकाय च।
वैवस्ताय कालाय धर्मस्तचयाय च॥
दभ्रोदराय दण्डाय प्रेताधिपतये नमः।
पाणिने चित्रग्रप्ताय रौद्रायौदुस्वराय च॥
एकेकस्य तिलेमित्रान् दद्यास्त्रीस्तीन् जलाञ्चलीन्।
सम्तस्तर्कतं पापं तत्चणादेवनम्यति॥
त्रक्षणोदयकाले दिनदयेऽपि चतुईम्या व्याप्तौ पूर्वदिनाक्णोदय
एव स्वानम्, कृष्णचतुईग्रीलात्, माधकष्णसप्तम्यक्रन्यायाच।

तव द्यानमन्तः।

माघमाचे रटन्यापः कृष्णपचे चतुर्द्गीम् । ब्रह्मम्नं वा सुरापं वा कं पतन्तं पुनीमहे ॥ इति रटन्तीचतुर्द्गी ।

श्रिवराचिव्रतम्।

तत् नित्यं काम्यं च, तथाचाकर्णे प्रत्यवायः,
स्कान्दे,— परात्परतरं नास्ति भिवराचिः परात्परम् ।
न पूजयित भक्त्येगं चद्रं चिश्रवनेश्वरम् ॥
जन्तुर्जन्मसङ्खेषु असते नाच संग्रयः ।

बीपापि स्कान्दे,-

वर्षे वर्षे महादेवी नरो नारी पतिव्रता ।

शिवराची महादेवं भक्त्रा कामं प्रपूजयेत् ॥
नित्यनियलगञ्जाविष स्कान्दे,—

माघक्षणचतुर्देश्यां यः गिवं मंगितवतः ।

सुसुचुः पूजयेचित्यं म लभेदीिषातं फलम् ॥
श्रणीयो यदि वा ग्रय्येत् चीयेत हिमवानिष ।

सेरमन्दरलद्भाय श्रीशैलो विन्ध्य एव च ॥

चलन्येते कदाचिदै नियलं हि गिववतम् ॥ इति ।

काम्यं च फलश्रदणात् । "ईषितं फलं" इति पूर्वं मामान्येनोदाद्यतम् ।

पुनः स्कान्दे बह्ननि फालान्युक्का,—

सर्वान् भुक्का महाभोगानस्तलं प्रजायते । इति ।

प्रवीपवासः पूजाजागरणं चेति चयं प्रधानम् ।

तथाच स्कान्दे,— उपवासप्रभावेन तथाचैवाच जागरात् ।

प्रिवराचौ तथा प्रभो लिङ्गस्थापि प्रपूजनात् ॥

प्रचथान् सभते कामान् प्रिवसायुज्यमाप्रुयात् ।

तत् सञ्चखाउँ प्रैवे च,—

स्वयं च लिङ्गमभ्यक्ची सोपवासः स जागरः ।

प्रजावस्यि निध्यापो निधानो गणनां गतः ॥

खय च । जङ्गमन्यच्छा सापवासः स जागरः ।

श्रजानन्नपि निष्पापो निषादो गणतां गतः ॥

खान्रभौत्या विल्वहचारूढ़ो निषादः तद्धः समिवलिङ्गोपरि
विल्वपचपतनात् जागरादुपवासाच व्रतफलमवापेति तस्यार्थः ।

"एवं च मित यत् स्कान्दे केवलोपवासः, केवलजागरणम्, केवल-पूजनम्, चोक्रम्, तत् वैश्वानरिवद्यान्यायेन अवयुत्यानुवादंकरूपलेन जपपद्यते" इति माधवाचार्याः । श्राचारादेकादभीवत् केवलोपवा-मोऽपि दृश्यते,

एकेनैवौपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति।

इति जेङ्गोकः।

खपवासामनौ तु स्रतिः,-

श्रथवा भिवराचि तु पूजाजागरणैर्नयेत्।

द्रत्ययं पचोऽनुकच्पेलेन याद्यः । नरमाचाधिकारिकमेव व्रतं द्वाद्शाब्दात्मकं चतुर्दशाब्दात्मकं वा काम्यं खात् द्रति देशान-धंदितायामुक्तम्,—

एवमेतत् वृतं कुर्यात् प्रतिषंवत्वरं वृती ।
दाद्गाब्दिकमेतत्त्यात् चतुर्विंगाब्दिकं तथा ॥
सर्वान् कामानवाप्तीति प्रेत्य चेहच मानवः ।
शिवराचिव्रतं नाम धर्वपापप्रणागनम् ॥
श्राचाण्डाक्तप्रस्तानां भुत्रिमुक्तिप्रदायकम् ।
स्कान्दे,— ततो राचौ च कर्त्तयं भिवप्रीणनतत्परैः ।
प्रहरे प्रहरे स्नानं पूजा चैव विभेषतः ॥
श्रीवे,— कुर्यात् पञ्चाखतैः स्नाय् यामे यामे ममार्चनम् ।

प्रहरे प्रहरे देवि द्वाद्र्धमनुत्तमम् ॥

रत्यादिविधिम् तद्वैव द्रष्ट्यः। म विधिः काम्ये लवम्मं
कार्यः।

#### श्रथ कालः।

### र्रगानसंहितायाम्,-

माघक्षणपतुर्देश्यां महादेवो महानिशि । शिवि जिङ्गतयोङ्गतः कोटिसूर्य्यसमप्रभः ॥ तत्कालचापिनी याच्चा शिवराचित्रते तिथिः । श्रद्धराचादधक्षोर्द्धे युक्तां यच चतुर्दश्री ॥ तत्तियावेव कुर्वीत शिवराचित्रतं त्रती ।

इति बह्न्यपराणि वाक्यान्युक्ता "महानिणान्तिता यच तच कुर्यादिदं व्रतम्" इत्युपमंहतम्। एवं नारदीयमंहितादाविष निणीय उक्तः।

महानिशासचणमाह ।
देवसः, — महानिशा दे घटिके रावेर्मध्यमयामयोः । इति ।
घटिकाच दण्डः । इति निशीधः कर्मकासः ।
प्रदोषोऽपि वायवीये, —

चयोदश्यस्तमे सूर्य्यं चतस्रषु च नाड़िषु । श्वतविद्धा तु या तच भिवराचित्रतं चरेत् ॥ स्थत्यन्तरेऽपि,—प्रदोषयापिनी ग्राह्मा भिवराचिचतुर्दभी । राचौ जागरणं यसात्तस्मात्तां समुपोषयेत् ॥

तथाच प्रदोषनिशीययो रूभयोरिप प्राधान्यम् ।

एवं पति तिथिदेधे पूर्वेद्युः प्रदोषनिशीयोभयवाशौ पूर्वेद्युरेव व्रतम्।

तथाच स्कान्दे, चयोदशी यदा देवि दिनभुक्तिप्रभाणतः ।

जागरे शिवराचिः स्थान्तिश पूर्णा चतुर्दशी॥

दिनभुक्तिः ऋत्तमयसमयः। परेशुरेवोभयवाप्तौ परेशुरेव।
नथाच कामिके,—

निगाइये चतुईम्यां पूर्वा त्याच्या परा ग्रुभा।

दिनद्येऽपि प्रदोषनिशीयोभयवातिह्मयोर्वाष्ट्रभावस्य न समावति, यामद्यस्य दृद्धिचययोरभावात् । पूर्वेद्युर्निशीयवातिः । परेद्युः प्रदोषवातिस्रोत् पूर्वेद्युः । "त्रावणी दुर्गनवमी" दत्यासुकेः ।

श्रर्द्धराचात्पुरस्ताचेध्वयायोगो यदा भनेत्। पूर्वविद्धेव कर्त्तया श्रिवराचिः श्रिवप्रियैः॥

इति पुराणान्तरोक्रेय।

महतामिष पापानां दृष्टा वे निष्कृतिः पुरा ।

न दृष्टा कुर्वतां पुंसां कुड्युक्तां भिवां तिथिम् ॥

दृति स्कान्दभैवयोर्दर्भयोगनिषेधाच ।

पूर्वेषुः प्रदोषयाप्तिर्नास्ति, निशीययाप्तिरपि नास्ति, परेशुः । प्रदोषमाचयाप्तियोत्, परेशुरेव ।

जयाप्रयुक्तां न तु जातु कुर्यात् भिवस्य राचिं प्रियक्तव्स्य ।

दति वच्चमाणपुराणान्तरोतेः(१) ह

यदा पूर्वेद्युः प्रदोषयाप्तिनांस्ति, परेद्युः चयवणात् प्रदोषया-प्तिरिप नास्ति, तदा पूर्वेद्युः उभययाष्ट्रभावेऽपि निशीययाप्तिः सद्गावात् जयायोगाच ।

<sup>(</sup>१) वच्यमाणपराग्ररोक्के।

जयन्ती गिवरात्रिय कार्य भद्राजयात्रिते। दत्युक्तेसः।
नतु,— चयोदग्यां यदा राची याममेकं चतुईग्री।
उपोध्या सा महापुष्या ग्रमुर्वचनमन्नवीत्॥
दति ग्रैवोक्तेः,

भाषा राचौ प्रकर्त्त्वो गीतवाद्यैः प्रजागरः। श्रखिलायां वयोदम्यामन्ते स्वाचेचतुर्देगी॥

दत्युक्तेस्य ।

पूर्वीक्रवेधकालादन्योऽपि वेधकालोऽस्ति इति चेत्। मैवम्। श्रव चतुर्थयामे, श्रव्ते वा यदा चयोद्यां चतुर्दशीयोगो पाद्यः, तदा किं वक्रयम्, श्रर्द्धराचे चयोदशीयोग इति, श्रव्ते वेध<sup>(१)</sup> छक्तो न तु भेदाभिप्रायेण। नतु तदाक्यानन्तरं "महतामपि पापाना" मित्यादिना दर्शयोगनिन्दोपस्तयेः तादृशस्त्रस्ते एतद् याद्यमिति चेत् न।

श्रद्धराचयुतां यस्त माघकष्णचतुर्दशीम् । श्रिवराचिवतं कुर्यास्रोऽश्वमेधफलं समेत् ॥ सूर्य्यऽस्ते नवनाडीषु स्तिविद्धा चयोदशी। शिवराचिवतं तच कुर्याच्चागरणं तथा॥ भवेद्यच चयोदश्यां स्तित्याप्ता महानिशा। शिवराचिवतं कुर्यात्॥

द्रत्यादिवज्जवाक्येषु ऋई्राचस्य प्रदोषस्य वा काललेन उक्त-लात्। ऋई्राचे प्रदोषे वा चयोदश्यभावेऽपि तद्धाच्चले "जया-

<sup>(</sup>१) खनावेध।

प्रयुक्तां न त जात कुर्यात्" रत्यादिवज्ञवाकानामनवकाणलेन वक्तवलाचेत्यसमितिविसरेण।

विस्पृष्यां तु पत्ताधिकां, पुराणे,—
वयोदगी कलायेका मध्ये चैव चतुईगी।
श्रनो चैव गिनीवाली चिस्पृष्यां गिवमर्बयेत्॥
वारादियोगे तु स्कान्देगानमंहितयोः,—
माघकृष्णचतुईष्यां रिववारो यदा भवेत्।
भौमो वाथ भवेदेवि कर्त्तयं व्रतसुत्तमम्॥
श्रिवयोगस्य योगो हि तद्भवेदुत्तमोत्तमम्।
पारणे तु विभेषः।

यदा पूर्वेद्युर्पवासः, तदा चतुर्दम्यामेव पार्षां, तथाच स्कान्दे,—

उपोषणं चतुर्द्श्यां चतुर्द्श्यां च पार्णम् ।

कतैः सकृतलचेश्य लभ्यते वायवा न वा ॥

बद्धा ख्यं चतुर्वक्रैः पश्चवक्रेस्त्रयायहम् ।

सिक्ये सिक्ये फलं तस्य मको वक्रुं न पार्वति ॥

बद्धाण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्यानि सन्ति वै ।

संस्थितानि भवन्तीह स्तायां पारणे कते ॥

तियीनामेव सर्वासासुपवासवतादिषु ।

तियान्ते पारणं कुर्यादिना मिवचतुर्द्भीम् ॥

एतत्प्रकरण एव मिवपुराणे,—

तियान्ते पारणं कुर्याद् यामचयसमापने ।

J

श्रन्थया पार्णं प्रातर्न्यतिथ्युपवासवत् ॥

द्रत्युक्षा पुनः पश्चादुक्तं, "तिथीनामेवमर्वासां" द्रत्यादि पूर्वव-दुक्तम्। तथाच यामचयमितकम्य चतुर्द्शीसन्ते पारणकः न याम-चयमध्ये। तथाच एतयोविंग्रेधवाकायोद्दभयोरिप सावकाश्यनमेव।

एतेन एतयोः सामान्यविशेषभावं कत्पियला तिथितत्त्वकारैर्य-सिखितं तत् श्रेववाक्यानामकस्तनकतमेवेति परास्तमेव । श्रशक्ष्य तु उत्सवान्तविधिना पूर्वाचे पारणे न फर्नं, न दोषोऽपि । श्राद्धाधिकारिणा तु नित्यस्य दर्शश्राद्धस्थाकरणे प्रत्यवायात्, तत्कालाविरोधेन यामचयोद्धें चतुर्दशीतिथिकाभे तत्पारणं कार्य्यम् । श्रन्यथा दर्श एव, ग्रणफलकामनाया नित्याविरोधेन कार्य्यलात् । "ददं शिवराचित्रतं वैष्णवैरिप श्रवश्यं कार्य्यं" दति चरिभिति-विलासकाराः ।

तथाच पादी व्रतखखे,-

सौरो वा वैष्णवो वान्यो देवतान्तरपूजकः।
न पूजाफलमाप्नोति भिवराचिवहिर्मुखः॥
श्रीभगवदुक्तिः,—

नराः परतरं यान्ति नारायणपरायणाः । न ते तत्र गमिय्यन्ति ये दिषन्ति महेश्वरम् ॥

दत्यादि वज्जवानि लिखिला इरिभिक्तिविलासकारैर्थ-वस्याय कारिका कता,-

> ग्रुद्धोपोया च मा मर्जे विद्वास्थाचे चतुई ग्री। प्रदोषयापिनी पाद्या तचायाधिकामागता॥

प्रदोषश्च चतुर्नाद्यात्मको (१) ऽभिज्ञजनेर्मतः ।
प्रदोषश्चापिनी साम्छे ऽथुपोश्चं प्रथमं दिनम् ॥
नोपोश्चा वैष्णवैर्विद्धा सापीति च सतां मतम् ।
यत् उक्तम्, — प्रिवराचिव्रतं स्रतं कामविद्धं विवर्जयेत् ।
श्रतएवोक्तं पराश्चरेण, —

माघात्रितं भ्रतदिनं हि राजन् उपैति योगं यदि पञ्चदक्या। जयाप्रयुक्तां न तु जातु कुर्यात् त्रिवस्य राजिं प्रियक्तव्स्वस्य ॥

योगयोक्तोलोगा चिणा,-

दिसुहर्नी भवेद्योगो वेधो मौहर्त्तिकः स्टतः ।

प्रिवराचौ च कर्त्तयं नियमेन चयं बुधैः ॥

उपवासो महादेव पुजा जागरणं निश्चि ।

स्कान्दे,— कश्चित् पुष्पविभेषेण व्रतहीनोऽपि यः पुमान् ।

जागरं कुहते तच स हर्रमातां वजेत् ॥

पुनः भिवहण्यभेदे बद्धदोषानुक्का संग्रहकारिकाषुका(१) ।

कार्यं गुणावतार्त्तेनेकारदुर्ख वैष्णवैः ।

वैष्णवाग्रतया श्रष्ठ्यात् सदाचाराच तद्वतम् ॥

यन्तु,— चतुर्थस्कत्भदृष्यातु नैके वाञ्क्रिन तद्वतम् ।

इति कारिकां हता श्रीभागवतचतुर्थस्कत्भे स्गुगापे उदा-

चतम्।

<sup>(</sup>१) चतुर्नाद्यधिको।

<sup>(</sup>२) संग्रहकारिका कता।

भवनतथरा ये च ये च तान् समनुद्रुताः । पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः॥

दति, खखाखारखादेव "नैकेवाञ्क् नित" दत्युक्तम् । वयं न वाञ्काम दित नोक्रम् । तत्राखारखवीजं किख्यते । भवनतं ग्रिवराव्यादिकं दिति चेद्धः खात्, तदा भवनतकरा दत्येवोक्रं खात्, न तु भवनतधरा दित । प्रकृतार्थसु भवस्य नतानि यागान-वासास्त्रिमालासप्धारणादिनियमान् ये द्धते, तांस्र येऽनुगताः ते पाषिष्ठिनोभवन्तु दिति ।

श्रतएव "मच्छास्तपरिपन्थिनः" इति विशेषणम् । श्रिव-राचिकरणे मच्छास्तपरिपासनमेव, न मर्वथा परिपन्थिलम् । श्रन्थथा श्रिवराचित्रताकरणे दोषप्रतिपादकानां वैष्णवयन्थोक्तानां बद्धवाक्यानामनवकाश्र एव स्थात्, इति दिक् । क्षेवसम्,

> द्रव्यमसं फलं तोयं भिवस्तं न पिवेत् किचित्। निर्मान्त्यं नैव सङ्घेत कूपे धर्वं विनिचिपेत्॥ इति पाद्गोक्तेः, तथा कार्य्यम्॥

> > द्रित भिवराचिनिक्पणम्।

त्रय चैंचक वाचत ह्यी।

ग्रतानन्द्संयहे,—

चैत्रक्षाचत्रईयां यः सायाच्छित्यमिधी।
गङ्गायां च विभेषेण न स भेतोऽभिजायते॥
मदनचत्रईभी त श्रसादेभीयप्राचीनाचार्योर्श्वीसकयनस्थाति—
निषिद्धलात् तद्वते तसीव प्राधान्यास्तिस्थितम्।

मद्नपर्वाकरणदोषवाकास्य मदनवयोदशीकरणेनेव चारि-तार्थ्यमिति, तथाच तत्ममाचारो गौडानामेव। इति ।

## सुहीचत्रईगी।

राजमार्चाछ,-

धवित्रतक्तसम्यस्तरक्षपताका सुद्दी भवने ।
चैचाभितभृतदिने पापरुषं दूरतोऽभिधत्ते (१) ॥
चैचक्रप्णचतुर्द्भां पिष्टादिभिः ग्रुक्कीकृतघटे रक्रपताकायुकां
सुद्दीभाखां ग्रद्दोपरि स्वापयेत् ।

इति चतुई गीपनरणम्।

# श्रय पञ्चद्गी।

सा च दिविधा, पौर्णमासी श्रमावास्या चेति। तच "चैत्र-ग्रुक्तादिका मासा" रत्युकेस्तवादी पौर्णमासी निर्णीयते, सा च उपवासे पूर्वविद्धा याद्या, "चतुर्द्या च पूर्णिमा" रति युग्मोकेः। इते तु परविद्धा ग्राह्या। तथा च ब्रह्मवैवर्त्ते,—

स्तिविद्धा न कत्त्रेया श्रमावास्या च पूर्णिमा। वर्जियला स्निश्रेष्ठ साविनीवतसुत्तमम्॥ एवं च सति,—

> एकादम्बष्टमी वडी पौर्णमाची चतुईगी। श्रमावास्था हतीया च ता खपोस्थाः परान्विताः॥

<sup>(</sup>१) वूरते। धत्ते॥

दति रहस्पत्युक्ति र्वतपरैवेति ज्ञेथम्।

श्रमाहेगीयवज्ञनिवन्धकारै र्लिखितोऽयं प्रकारः।

यमः,— पचान्ते स्रोतिस स्रायात्तेन नायाति .सत्पुरम्। दति।

स्कान्दे,— पौर्णमासीषु चैत्रासु मामर्चमहितासु च।

एतामां स्नानदानाभ्यां फलं द्रग्रगुणं स्त्तम्॥
वैग्राखीं प्रकत्यं यमः,—

गौरान् वा यदि वा कष्णान् तिकान् चौद्रेण संयुतान्। प्रीयतां धर्मराजेति पिढदेवां स्व तर्पयेत्॥ यावज्जनाकतं पापं तत् चणादेव नग्यति। श्रब्दायुतं च सन्तिष्ठेत् स्वर्गकोको न संग्रयः॥

देवस्नानं तु याचाप्रकरणे लेख्यम् । त्राषाद्यादिषु दानाकरणे दोषः । तथा च रामायणे,—ं

श्राषाड़ी कार्त्तिकी माघी तिथयः पुष्यसभावाः । श्राप्रदानवतो यान्तु यस्यायोऽनुमते गतः ॥ तासु दानादी फलं महाभारते,—

> त्राकामावेषु यत् श्राद्धं यच दानं यथाविधि । उपवासादिकं यच तदनन्तफलं स्प्रतम् ॥ त्राषादीकार्त्तिकीमाघीवेशाखीषु च यत् इतम् । तदनन्तफलं प्रोक्तं स्वानदानजपादिकम् ॥ श्रावणपौर्णमास्त्रां वस्तदेवपूजा ।

सात्यनारे वच्चमाणसुखराचिप्रातर्गवादिप्जामुक्ता स्रावद्यां यो विकत्प क्रमः स पचोऽसाईगे त्राद्रियते। तथाच, -गावो महिक्यः कागाद्याः पूज्याः ग्रोभ्यास्तदा दिने।
पूजनं केचिदिच्छ्नि श्रावणां तु गवादीनाम् ॥
तथा, - श्रावणी पूर्णिमा यत्र मध्याक्ष्रव्यापिनी यदि।
जत्याने वस्तदेवस्य नन्दाविद्धां तु वर्जयेत् ॥
स्वर्ग दर्पा तथा हिंसा नन्दायां पौर्णमीयुता।
जत्यापनं गीरपाणेः कारयेत् पूर्वत्रामरे ॥
यामदयं चतुर्द्श्यां पौर्णमास्यां दियामकम्।
पूर्वेऽहिन बसेः पूजा पश्चवन्दापना तथा॥
नन्दायुक्रपौर्णमास्यां कत जत्यापने वसेः।
तत्र रोगी भवेदिशो गावो नश्चम्यनेकधा॥
पौर्णमास्यां सनन्दायां यत्र चोत्यायते वसः।
गवां तत्र भवेद्रोगो दुर्भिचञ्च तदा भवेत्॥
पाद्ये, - "श्चावणी दुर्गनवमी" दत्यादि।

श्रव सध्याक्रस्य कर्मकास्तवं स्पुटम्। तच देधे सर्वेषु पचेषु पूर्विद्व एव। नन्दायोगस्य निषिद्धलात्, नेवसं परिदन एव मध्याक्रयाप्ती परिदने कार्य्यम्। पूर्वेषुः कर्मकाले तद्वाष्ट्यभावात्। तच पूजानुष्ठानं तु रौद्दलादपराष्ट्र इति नेचित्। तन्न। सर्व-देवानां जन्मकास्त्र एव पूजाविधानात्। किन्तु मध्याक्ते पूजाया श्रमभवे रौद्दलादपराष्ट्र करस्थेऽपि न दोषः॥

उपाकर्मकामः।

याज्ञबस्काः, - अध्यायानासुपाकर्म आवर्षा अवर्णन वा । इस्तेनीवधभावे वा पञ्चन्यां अवराष्ट्र वा ॥

Ü

पौषमाषस्य रौहिष्यामष्टकायामथापि वा। जन्नान्ते क्रन्दमां कुर्यादुत्सर्गे विधिवदृष्टिः॥

त्रधायानामिति वज्जवननं गाखाभिष्रायम्। तथाच वेद-वाक्यानामुणकर्माख्यं संस्कारः। त्रौषधीनां प्रादुर्भावे भाद्रपदे मासि सिंहार्के दत्यर्थः। तदैव सर्वीषधीनां प्रादुर्भावात्। इस्तयोगे वा श्रावणस्य ग्रुक्कपञ्चम्या इस्तयोगे वेत्यर्थः। स्वत्यन्तरे,—

> उपाकर्म च कर्त्तम्यं कर्कटस्थे दिवाकरे। इस्तेन ग्रुक्तपश्चम्यां त्रावण्यां त्रवणा न चेत्॥

यदा त्रावणां त्रवणाषोगाभावनिश्वयः, तदा तत्पूर्वतो इत्तग्रुक्तपञ्चम्यां एतदुभयाभावनिश्वये नेवसं त्रावषपूर्णिमार्था कुर्यादित्यर्थः।

प्रवरस्वामी, प्रधायानासुपाकुर्यादिति अवणेन वेति महार्ये हतीयाविभक्तेर्गुणस्तवात् अवणाया योगेऽयोगेऽपि आवणपूर्णिमा-यामिति सुख्यः कन्प रति। देशोपद्रवाशङ्कायां इस्नपञ्चन्यामिति वहवः॥ स्तिमहार्थवे तु,—

संक्रान्तिर्यष्णं वापि पौर्णमास्यां चदा अवेत्। खपाक्रतिस्तु पञ्चम्यां कार्च्या वाजसनेचिभिः॥

इति पचान्तरम्। उत्तर्गे तु पौषमाचस्य रोहिकीयुक्तायां दस्यां कस्याञ्चित्तियौ त्रष्टकायां वा सुर्यादित्यर्थः। मनुः,— श्रावर्षां पौष्ठपद्यां वाष्पुपाद्यत्य यद्याविधि।

युक्त ख्वास्थित मासान् विष्ठोऽ द्वेपञ्चमान् ॥ अव व्यवस्थितो विकल्पः । इन्दोगयितिरिक्तानां आवर्षां,

क्न्दोगानां भाद्रपूर्णिमायां "ष्य प्रोष्ठपद्यां इस्ते वोपाकरणं, पुखे चोत्वर्गं" इति गोभिक्षोक्तेः । क्न्दोगानां गोभिक्षोक्तेव्यधिकारात् । यत्पारस्करसूचे "मर्डूषष्ठानर्डूबप्तमान् वा" (१) इति पचदय-सुत्वर्गे जक्रम् । तत्प्रयमाध्ययनानन्तरं वोध्यं इति नियन्धकतः ।

तच कर्मकासः।

ट्डत्प्रचेताः,— भवेदुपाकृतिः पौर्णमाखाः पूर्वाञ्च एव च । बक्रुचपरिभिष्टे,—

पर्वष्वौद्धिके कुर्युः श्रावष्यां तै तिरीधकाः।

बक्रृषाः श्रवणे कुर्युर्धहमंक्रान्तिवर्जिते ॥ इति।
तैत्तिरीधकपदमुपक्षचणम् । श्राखान्तराधिकरणन्याधेन कन्दोगद्यतिरिक्ताः सर्वे पूर्वाहे कुर्युः। कन्दोगास्त श्रपराहे।
श्रधायानामुपाकर्म कुर्यात्कालेऽपराहके।
पूर्वाहके विसर्गः स्थादिति कन्दोगगोषरम्॥

इति गोभिश्लोकः।

तच तिथिदेधे का बादर्भकारिका,—
उपाकर्मण चोत्सर्गे पोर्णमाखां परा तिथिः।
यण्मुक्रक्तंकविद्धा स्थादिति वेधो निरूपितः॥
परा तिथिः प्रतिपत्।
यण्मुक्रक्तंकविद्धा दादग्रदण्डविद्धा। उपाकर्मण, उत्सर्गे, समाप्तौ

<sup>(</sup>१) सप्तमासान् वा।

च प्रस्ता चादित्यर्थः। "श्रावणी दुर्गनवमी" त्युक्तेरेतद्वातिरिक्रपरलं, श्रच विशेषविधानात्। केचित्तु दिनदये तथाले श्रवणायोगा-दिशेषः। श्रवणायोगाभावे चये पूर्वा, खद्बौ त्यत्तरा गाद्धा। दिभदये कर्मकालयाष्ट्राभावे परच करणमिति॥

किञ्च मामच्ही प्रजापतिः,—

उपाकर्म च इयञ्च कयं दुर्गीत्सवं तथा। उत्तरे नियतं कुर्यात् पूर्वे तिकय्यालं भवेत्॥

वैत्राखादिरङ्गी तु,—

माधवादि जिने माचि ऋधिमाची यदा भवेत्। कर्कटे तु इरेः खापः पौर्णमास्थासुपाद्यतिः॥

श्रावणादिरद्वौ तु,—

श्रावणादिविके माधि श्रधिमाधो भवेद्यदि।

सिंहेऽर्के च हरेः खापः श्रावण्यां खादुपान्नतिः॥

एवञ्च छन्दोगव्यतिरिक्तानाम्। छन्दोगानां तु मसमाध एव।

तथाच प्रतानन्दसंग्रहे,—

उपाकर्म तथोत्सर्गप्रमवाद्योऽष्टकादयः।

मनीसुचेऽपि कर्त्तयाः ग्रेषमन्यदिवर्जयेत्॥ रति।

पर्वण्डौदयिके कुर्युः आवण्यां तैत्तिरीयकाः।

बक्रृचाः अवणर्चे तु इस्तर्चे मामवेदिनः॥ दति।

नचनपचे,— अवणं द्वत्तरं ग्राष्ट्रमुपाकरणकर्मणि।

दिति माधवादार्योकि चिमुहर्त्तं वेधेन व्यवस्था।

स्थायः, स्वरोग त् चत्कर्म उत्तराषाद्रमंयुतम्।

गंवत्परकतं पापं तत्चणादेव नम्मति ॥

धिनष्टामहितं कुर्यात् अवणं कर्म यह्नवेत्।

तत्कर्म समनं कुर्याद्पाकरणसंयुतम्॥ दति।

"एतदुपाकर्म गुरोः साग्निकल एव, होमख त्रावसक्यसाध-लात्" इति केचित्। तस्र। एतदेव वतादेशेन विसर्गेष्टिति वतादेशशब्दोक्तेर्वेदारको विसर्गशब्दोकोः समावर्त्तने उपाकर्महोम-स्थातिदेशात्। तस्य सौकिकाश्चियाध्यलेन अधिकारसम्पादकलस्य सिद्धलात् सौकिकाश्चियाध्यलात्।

"यसु त्रमध्यमभयात् पौषमासे उत्पर्गं न करोति, म कासातिकमप्रायखित्तं महाव्याद्गतिभिक्तंला आवण्यामुत्पर्गपूर्वक-मुपाकरोति" इति प्रतानन्दमंग्रहे। माधीयानयमेव पन्नः मर्वैः समाचर्यते।

द्रत्युपाकमित्सर्गयोः काषाः।

श्रद्धां पौर्णमास्यां रिषकावन्थनम्।
भवियो,—धनावृतेऽमरे पार्थ ग्रादले धरणीतले।
संप्राप्ते श्रावणस्थान्ते पौर्णमास्यां दिनोदये॥
स्वानं कुर्वेति मितमान् श्रुतिस्प्रतिविधानतः।
ततो देवान् पित्वं स्वेव तर्पयेत् परमाम्भमा॥
स्वपाकमंदिने चोक्रस्यीणास्वेव तर्पणम्।
सुद्रीणां मन्त्ररहितं स्वानं दानं प्रशस्ते।

ततोऽपराह्ममये रचापटोखिकां(१) शुभाम्॥ कारचेश्वाचतैः अस्तैः सिद्धार्येर्षमभूषिताम्। वस्त्रैविचित्रैः कार्पामैः चोमैर्वा मश्वविताम्॥ विचित्रतन्त्राचितां खापयेद्वाजनोपरि । कार्या गरइस रचा गोमयाराधितसुरुत्तमा छनेः। · दर्वावर्णकमितिर्भित्तौ द्रितोपग्रमनाय ॥ उपित्रि ग्रहमध्ये दत्तचतुष्के न्यमेत् ग्रुभं पीठम्। तचीपविश्रोद्राजा सामात्यः मपुरोहितः॥ यसुद्देग्याजनेन यहितो मङ्गलग्रब्दैः मसुत्यिते सिन्नैः। देवदिजातींसु वस्त्रे रचाभिरर्चयेत् प्रथमम्। तदनु पुरोधा नृपतेः रचां बन्धीत मन्त्रेण॥ येन बद्धो बलीराजा दानवेश्रो मशासुर:। तेन लामपि वधामि रचामाचर माचल॥ ब्राह्मणेः चित्रयैतेष्यः श्रद्धेश्वान्येश्व मानतेः। कर्त्तव्या रचिका वाची दिजान् मंपूज्य ग्रिकतः॥ त्रमेन विधिना यसु रचिकावस्थमाचरेत। म मर्वदोषर्हितः सुखी संवत्यरं वसेत्॥ यः त्रावणे सवति ग्रीतजले नरेन्द्र रचाविधानमिदमाचरते मनुखः। त्रास्ते चुलेन परमेण स वर्षमेकं पुचित्रयादिस्थितः ससुद्रव्यन्य ॥

<sup>(</sup>१) रचापट्टालिकां।

श्रवापराष्ठः कर्मकालः। तिथिदैधे परदिने, सामान्यविधौ (१) तत्मकर्णात्। एतदिधिस्त श्रसात्पितामक्कते नौतिरज्ञाकरे द्रष्टयः इति ॥

### दऋषौर्णमासी।

श्रतानन्दमंग्रहे, पश्चदक्यां महेन्द्रश्च पूज्येत् के किकौतुकैः।
गीतवादिचमातक्निर्भतये भूपतिर्निश्च '
पश्चदक्यां भाद्रपौर्णमास्यां, तक्रकरणात् इति ।
कौसुदीपौर्णमासी ।

ने के के के निर्मा के क्यां क्यां की कि विश्व ।

को मुदी या यमाखाता कार्या को कि विश्व ते ॥

को मुद्यां पूज्ये क्यों दक्र मेरावते खितम् ।

सुगन्धे निर्मा वर्षे प्रमचे जांगरण खरेत् ॥

निर्माणे वरदा क्याः को जागन्तीति भाषिणी ।

तस्मे वरं प्रदाखामि ऋषैः की इां करोति थः ॥

गारिके खैंखि पिटकैः पितृ देवान् यम खेंयेत् ।

वन्धं ख प्रीणयेन्तेन ख्यं तद्मनो भवेत् ॥

नारिके कर्षे पीला ऋषै जांगरणं निर्मा ।

तस्में खिंदुं प्रयक्षामि यो जांगर्ना महीतले ॥

विष्णुः,— को जागर्त्ति वचोऽभिधाय पुरुषं लच्चीस्यनेत् सुप्तकम्। शुक्कां पञ्चदगौं निभि खयमिषे छोकस्ततो जाग्रयात्॥

द्षे श्राश्विने मासि।

<sup>(</sup>१) सामान्यविधेः एतदिधिस्त ।

भविष्योत्तरे पूजाविधिसुत्वा,—

.

एवं इता विधानेन यूतकी इां समाचरेत्।
प्रवेश चतुरक्षेश्व मुष्टिखी खादिभिक्तथा॥
की इयेश यथान्यायं युधिष्ठिर परस्परम्।
बाह्यणैः चित्रैयैवैं क्यैः श्रद्धेश्वेवान्यवर्णकैः॥
तथा,— तामू खेर्नारिके सेश्व वक्तिश्चेव कपदिकैः।

परस्परञ्च दातवं पूज्यदेवं समर्धयेत्॥

एवं यः कुरते भाषा तस्य देवी प्रिया भवेत्।

ददात्यभिमतान् कामान् ऐहिकामुक्तिकान् सदा॥

श्रव "निशि" रित "निशीय" रित चाभिधानात् राचौ पूजादिकं कार्य्यम्। तच तिचिदैधे यहिने प्रदोषनिशीयोभय-याप्तिः तहिने कार्य्यम्, निशानिशीयोभययाप्तिः।

यदा पूर्वेद्युर्नि शीयवाप्तिः, परेद्युरस्तमयादुपरि वाप्तिः चेत् तदा परेद्युः, प्रातरारभ्य राजिमम्बन्धात् प्रधानपूजाकासासुरोधास । यदा पूर्वेद्युर्नि शीयव्याप्तिः, परेद्युर्न निशायोगः तदा सुतरां पूर्वेद्युः।

> त्रहःसु तिथयः पुष्णाः कर्मानुष्ठानतो दिवा। नक्तादिवतयोगेषु राचियोगो विशियते॥

> > इति नावासुकेः।

श्रक्षाः कुमार्गौर्षमासीति सजानारं, तत्र कुमारोत्पत्तेः।
तथात्र श्रिवपुराणे, श्रिश्चयुक्षौर्णमास्यान्तु विभेद दिवि सलरः।
रत्याधुक्षाः,

# श्रवापि दृष्यते जोके कुमारो स्वत्रपूर्णिमा। दिति कुमारपौर्णमी।

पुष्यवन्दापना ।

शाह्यो, द्रं जगत् पुरा लत्त्या त्यक्रमासीत्ततो हरिः।
पुरन्दरस्य सोमस्य तथा ग्रुको रहस्यतिः॥
पश्चैते पुर्ययोगेन पौर्णमास्यां तपोवलात्।
श्रलहृतं पुनस्रकुः सौभाग्योत्साहस्यभौभिः॥
तस्माह्यरः पुर्ययोगे तच सौभाग्यरहृये।

तथा, चनैर्विप्रांश्व मन्तर्थ नवैर्वस्तैश्व ग्रोभितान्।

ततः पुष्टिकरं इद्यं भोक्रव्यं इतपायमम्॥

पुष्यथोगे च कर्त्तव्यं राज्ञा खानञ्च मर्वदा।

"पुष्ययोगेन" इतिवचनात् तिथिमनादृत्य नचने पूजावन्दा-पनादिकं वहवः कुर्वन्ति । राजानः मर्व एव । केचिन् स्वग्टहेऽपि तथा कुर्वन्ति, तच कुसाचारः प्रमाणम् । तच तिथिपधवत् नचनपचेऽपि । नचनदेधे,—

उद्ये चिमुहर्मस्यं नचनं व्रतदानयोः। दिनदये तथाले तु पूर्वे स्थादकवत्तरम् ॥ इति माधवीयकारिकया व्यवस्या॥

वज्ञासवपौर्णमामी।

केंद्रे,— वज्रुत्ववः मिते पचे माघे माछाईभे निज्ञ। द्राद्यां पञ्चद्यां वा भवेदिक्रमहोत्ववः॥ इति।

#### दोलयाचा।

माझे,— नरो दोलागतं दृष्टा गौविन्दं चिद्गार्चितम्। फाल्गुन्यां संयतो भूता गोविन्दस्य पुरं वजेत्॥ गतानन्दसंग्रहे,—

पाल्गुने पौर्णमास्थान्तु कार्यः प्रस्गुमहोत्यवः ।
गोविन्दो दोलयाक्रीड्त्तचार्यकि गते विधी ॥
प्रयंक्ति उत्तरापाल्गुनीनचने ।
तत्र कालः स्पुटो ब्रह्माण्डे, श्रीपुरुषोत्तमवर्णने,—
प्रमाति निग्रानाथे त्रप्रकाग्रे दिनेश्वरे ।
ततः प्रभोः प्रकर्त्त्वा दोस्रो पर्मसम्बता ॥
दित दोस्रोत्यवः ।
प्रथ श्रमावास्था विश्वर्यते ।

तदर्थी, ब्राह्मे,—

श्रमा वसेताम्चे तु यदा चन्द्रदिवाकरो ।

एकां पञ्चद्रशीं राचिममावास्था ततः स्रताः।
श्रव श्रमाशब्दः महार्थे। देवीपुराणे तु,—
श्रमा नाम रवेर्स्माः सूर्यकोके प्रतिष्ठिता।

यसात् सोमो वसत्यस्थाममावास्था ततः स्रताः॥ रति,
सा च प्रतिपश्चता याञ्चाः,

प्रतिपद्मयमावास्या तिस्योर्युगां महाससम्।

इति युग्मोक्तेः।

षछाष्टम्ययमाव।स्या उमे पचे चतुईभी।

श्वातानां गतिं थास्ये घट्डं नागमे पुनः ॥

रित वाराद्योत्तरच स्नानमावस्थकम् ।

श्वतप्य, दर्मे स्नानं न कुर्वीत मातापिचोस्त जीवतोः ।

सुर्वेस्तच निराचष्टे पिट्टइक्ति जीवितः ॥

रित कस्पतरौ किखितो जीवित्यद्वकस्य स्नानिविधो राग
प्राप्तविषयः । वैधे तु तस्थायनिविधात् ।

भोगाय कियते यत्तु स्नानं थादुस्किकं नरैः ।

भोगाय कियते यत्तु स्नानं यादृष्क्तिकं नरैः। तिस्रिषिद्धं दग्रम्यादौ नित्यं नैमित्तिकं न तु॥

इत्युक्तेः ।

द्र्यं खानं न कुर्वीत मातापिकोस्तु जीवतोः।
नवस्याञ्च न चेत्तच निमित्तान्तरसभावः॥
दित स्पुटसुक्तलाच । प्रत्युत फलमाइ पैठीनिसः,—
पुद्धे च जन्मनचने खतीपाते च वैधतौ ।
जमाधान्तु नदीखानं पुनात्यासप्तमं कुलम्॥
दिति साधारणनियमः॥

याविचीवतम् ।

ग्रतानन्दसंघड्डे,—

क्छेष्ठक्रप्णचयोदयां चिराचं व्रतमाचरेत्। साविचीं पूजयेदेवीं उत्सङ्गस्यस्तप्रभुम्॥ चिराचोपोषणं तच स्त्रीणां नान्यच प्रस्तते। कार्थः पत्युरनुज्ञाते वैधव्यं न भवेत् कचित्॥ तिथिदेधे साविचीव्रतं पूर्वेषुः कार्यम्। भृतिवहा भिनीवाली न त तच वर्त चरेत्। वर्जियला त साविचीवतन्तु भिखिवादन॥ दित स्कान्दोकेः। "भृतिविद्धा न कर्त्तव्या" दित ब्रह्मवैवर्त्तीकेस्य। यदा त पूर्वेद्युः चतुर्दभी श्रष्टाद्भदण्डात्मिका भवति। तदा पूर्वविद्धामपि परित्यच्य परविद्धेव श्राश्रयणीया। भृतोऽष्टाद्भनाड़ीभिदूषयन्युत्तरां तिथिम्। दित स्कान्दोक्तेः। दित साविचीवतम्॥

श्रथ सप्तपिद्धकामावास्या।

भाद्रामावाक्य सप्तपित्वनामावाक्या द्रत्युक्यते । तदाकां श्राद्धं च श्राद्धप्रकरणे लेख्यम् । तां प्रक्रत्य पुराणान्तरे विभेषः ।

दर्भे सवर्णवटकेः पितमाराध्यन्ति याः ।

ताः सर्वाः सभगा नार्यः पुचवत्यो वराङ्गनाः ॥

न वैध्यं भवेत्तासां पुनर्जन्मस् सप्तस् ।

दित सप्तपित्वकामावाक्या ।

कार्त्तिने प्रदीपामावाक्या श्राद्धप्रकरणे लेख्या ॥

सखराचिः ।

धवन्नसंग्रहे,-

कार्त्तिके मासि ग्रुक्कादौ तिथौ च कुङ्कमांग्रुकैः(१) सुखाय सुखराचिः स्थात् कायराष्ट्रसखाय वै॥

<sup>(</sup>१) कुसुमां प्रकै:।

कायसुखे त्युकेः कायसन्दरप्रतिपदित्यस्य नामान्तरं । ग्रुक्का-दावित्यमावास्थायाः प्रातिरित्यर्थः ।

श्रमावास्रां तुलादित्ये लच्चीर्नद्रां विमुच्चति ।
सुखरानेस्यः काले प्रदीपोज्ज्वसितालये ॥
दित स्रतेः । तुलादित्ये कार्त्तिके । पुनर्द्भवलमंग्रहे,—
सुग्रुभैः लुसुमैर्गर्न्यद्धिगोरोचनाप्रसेः ।
वन्धून् वान्धववन्धूं य पृच्छेत् लुग्नस्या गिरा ॥
पूजयेच तथा लच्चीमलच्चीमलनाग्रिनीम् ।
सच्ची पञ्चपताकाभिर्द्धजमेकं ग्रहे न्यसेत् ॥
गतस्यासानस्यस्य गत्न समाचारात । दित सत्तराचिः ।

एतस्थाद्यान्द्रमास एव समाचारात् । दति सुखराचिः । मार्गभीर्षे दीपावस्थमावास्था ।

तुत्तास्ये दीपदानेन पूजा कार्य्या महाफला।
दीपद्याय कर्त्त्र्या दीपचक्रमथापरम्॥
दीपयाचा प्रकर्त्त्र्या चतुर्द्ग्यां कुह्रषु च।
प्रिनीवालीषु ऋषवा वत्म कार्यं महाफलम्॥

एतेन चतुर्देख्ययमावास्त्रप्रतिपदादिचिषु दीपदानं प्रतिपादि-तम् । कृष्णपच दत्यनुवन्तौ भविय्योत्तरे,—

> नरकाय प्रदातको दीपः संपूच्य देवताम् । ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यानानोरमान् ॥ ब्रह्मविष्णुणिवादीनां भवनेषु मठेषु च । कूपागारेषु चैत्येषु सभास च नदीषु च ॥ प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोसीनिष्कुटेषु च ।

पूर्दार इर्म्यचासुण्डाभैरवायतनेषु च ॥

मन्दुरासु विविकास इस्तिशासास चैव हि ।

नरकाय नरकगमनपरिहाराय द्रत्यर्थः ।

श्रव देवोत्यापनानन्तरामावास्यायाः यत् कार्त्तिककृष्णलमुक्तं तस्वेत्रग्रक्कादिमासाभिप्रायेण दति॥

> वकुलामावाच्या श्राद्धप्रकरणे लेखा॥ श्रथ श्रीपुरुषोत्तमचेत्रे दादशयात्राकासाः।

तत्र संग्रहकारिका,-

मञ्ज्यानं र्थवर्गतिः गायनं चायने हे। पार्याद्वितः ग्रयपरिइतिः प्रावृतिः पुर्यपूजा ॥ दोलाने लिर्दमन नमशेऽचयपु खहतीया । याचाः स्कान्दे इरिप्रतिमया दादग्रेति प्रणीताः ॥ स्कान्दे खानं श्रीग्राण्डिचां चोक्का प्रतिमावचनम्,-मम खापं ममोत्यानं मत्पार्श्वपरिवर्त्तनम् । सार्गे प्रावर्णं चैव पुखे साममहोत्सवम् ॥ फास्युन्यां कीड्नं कुर्यात् दोसायां मम ऋमिष -त्रयने मां समभ्यक्षं दृद्धा मां प्रणिपत्य च॥ प्रत्येकमष्टमाइसमयमेधपानं नभेत। चैत्रे मासि चतुईम्यां दमनैर्मम पूजनम । श्कापचे तु यः पश्चेत् सर्वपापचयं सभेत्॥ वैभाखस सिते पचे हतीयाचयसंजिका। तव मां लेपयेहत्यचन्दनैरतिशोभनैः॥

प्रीतये मम ये कुर्युक्तस्वान् मम प्रायतान्। चतुर्वर्गप्रदा द्वीते प्रत्येकं तु प्रकीर्त्तिताः॥ पुनम्बचैव,—

ख्रस्या वा महती याचा धर्वा सुक्तिप्रदायिका।
तिख्यम् तिख्यम् दिने दृष्टो भगवान् सुक्तिदोधुवस् ॥
विश्वासहेतोर्मूखांणां याचा द्योताः क्रपावता।
विश्वाना कीर्त्तिता विप्राः पापिनां कस्त्रवापहाः॥
प्राथासजनितं पुद्यं मन्यन्ते ते नराधमाः।

तपादौ खानयाचा।

बाह्मो,— माचे च्येष्ठे तु संगाप्ते नचने चन्द्रदैवते । पौर्णमान्धां तदा खानं सर्वेकासं इरेर्दिणाः॥

तथा,— तथा समस्ततीर्थानि पूर्वीकानि दिजोत्तमाः। सोदकैः पुष्पमित्रेस्त स्वापयन्ति प्रथक् प्रथक्॥

तथा,— सूर्यस्य उदये सानं प्रशंसन्ति महर्वयः ।

खद्ये रति खद्यायविषतपूर्वकाले ।

तथा,— तस्मिन् काले तु चे मर्त्याः पुराणं पुरुषोत्तमम् ।

यत्तभद्रं सभद्राञ्च ते यान्ति पदमध्ययम् ॥

एवं बद्धनि फलान्युक्का,

त्रद्वास्त्वादिकं पापं प्रणुद्याच न संज्ञवः । पुरुषोत्तमपुराणे,—

> जयस्य राम क्षणिति सभद्रेति सक्तस्यरः । वदन्ति मार्जने काले यान्ति ब्रह्मपदं मम ॥

बाह्ये, — द्विणामूर्त्तिंदर्शनपत्तम्, — स्वातं पय्यन्ति ये कृष्णं वृजन्ति द्विणामुखम् । ब्रह्महत्यादिभिः पापै र्शुच्यन्ते ते न संप्रयः ॥ प्रामादमध्यप्रवेशानन्तरं वायवीये, —

ततः पञ्चद्रशाहानि मम खानाद्नन्तरम् । सुद्ध्यां वा विद्ध्यां वा न पश्चेत्रतिमां मम॥

द्रत्यादि ।

च्छे हान चर्च विनापीयं याचा पासदा। श्रान्यथा "सर्वकासम्" रत्य सङ्गतं स्थादन वहनि पासानि विस्तरभयान्न सिखितानि। "देवे द्वीद्यिकी" दित नार्दी योको देवतोत्सवेषु उदययाप्तरेव- व्यवस्थापकत्वात्। श्रान्य तिथिदेधे पर्दिने स्थानम्। केवसं दिनदयेऽ युद्यसम्बद्धे पूर्वदिन एव।

षष्टिद्खातिम्बायास तिथेर्निक्रमणे परे। स्वक्रमण्यं तिथिमसं विद्यादेकाद्गीं विना॥

इति ब्रह्माण्डोकेः।

परदिनस्य कर्मानर्चलात् । षड्जयन्तीयु श्रपराजिताकुमारोस्ववादिषु केषुचिद्पि विशिष्य स्मार्न्तविधेरुक्तलात् । तद्यतिरिक्तसर्वयाचादिकार्योषु श्रीपुरुषोत्तमश्रीभुवनेश्वरचेचप्रामादयोर्द्यवेध
एव ग्रश्चते । वच्चमाणायनादिसंक्रान्तिषु यसिन्नहोराचमध्ये
रिवसंक्रमणं, तद्दिन एव याचा कार्या । देवयाचायाः परिदेने
स्वानदानलाभावान्त प्रदिने प्राप्तिग्रङ्कापि कार्या इति बोध्यम् ।

इति चानयाचा ।

## त्रय गुण्डिचा।

ब्राह्मे, गुण्डिचामण्डपं थान्तं ये पश्चितत् रथे स्थितत् ।

बन्नं रूपां सुभद्राञ्च ते यान्ति भवनं हरेः ॥

ये पश्चिन्ति तदा रूपां सप्ताहं मण्डपे स्थितत् ।

हरिं रामं सुभद्राञ्च विष्णुकोकं व्रजन्ति ते ॥

तथा गुण्डिचामुपकस्य,—

चस्याः सङ्गीर्त्तनादेव नरः पापात् प्रमुच्यते ।
तत्र नानाविधवद्भणलान्युकानि द्रष्ट्यानि । तत्र नानोपहारदानञ्च लिखितं सर्वकामप्राष्ट्रर्थम् ।
स्कान्दे श्रीजगन्नायप्रतिमाया दन्द्रद्युनं प्रति वचनम्,—
श्राषादस्य सिते पचे दितीया प्रथ्यसंयुता ।
हत्यायुक्का,

श्रवाभावे तिथी कार्या घटा या प्रीतये सम ॥ इति । या गुण्डिचा । घटाशब्दाद्याचेयं श्रीपुक्षोत्तमचेचे श्रवध्यं कार्या । नचत्रं विनापि कार्यिति गम्यते । श्रकर्णे बह्वो दोषा श्रयुका विज्ञरभयात्र जिखिताः ।

तस्रास्ववयोगः श्रेयान् । न तदनुसारेण यवस्रिति सिद्धम् । स्कान्दे,— दिनानि नव यास्यामि तथा तस्मादिष्ठागतम् । तत्रास्ति ते महाराज सर्वतीर्थमयं सरः॥ तत्तीरे सप्त दिवसान् स्यास्थान्यन्जिष्टचया । तव स्थितं मां पक्षन्तो यान्ति मन्यां ममानयम् ॥ तिस्रः कोव्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां भुवनवये । 3

तानि धवंणि धरिष मत्सास्त्रिधाद्वजन्ति च ॥
तत्र द्वाला च विधिवहृद्दा मां भिक्तभाविताः।
जननीजठरे क्षेणं पुनर्नातुभवन्ति हि ॥
नवसेऽक्ति धमायान्तं दिखणाणासुखं तदा।
ये पण्यन्ति प्रतिपद्मयमेधक्रतोः फलम् ॥
प्राष्य भोगानिन्द्रधमान् सुद्धान्ते मां विण्यन्ति ते।
तथा,— सप्ताइं यो नरो नारी न सा प्राक्षतमानुषी ॥
सप्ताइमध्ये तचेव फलम्,—

दिवा तद्द्र्यनं पुष्यं राची दश्रगुणं भवेत् ।

दित श्रीगण्डिचा ।

श्रथ हरिश्रयनम् ।

स्कान्दे,— श्राषाढ़ ग्रुक्कदाद क्यां कुर्यात् स्वापम होत्यवम् । तथा,— ये पक्यन्ति महात्मानः ग्रथनोत् सवसुत्तमम् । मातुर्गभें न पक्यन्ति कारयन्ति च ये महम्॥

द्ति इरिश्रयनम्।

द्विणायनं।

स्कान्दे, - श्रतः परं प्रवच्छामि द्विणायनसुत्तमम् ।
संकान्तेः पूर्वकाले या कला वै विंगतिर्मताः ॥
श्रयनं पुष्पकालोऽयं पुष्पकर्मसु कर्मिणाम् ॥
तथा, - श्रयने द्विणे तसिस्त्रवंगमानं श्रियः पतिम् ।
विद्याय सर्वपापानि विष्णुकोकं अञ्चित ते ॥

यत् संक्रान्तेः पूर्वे पुष्यकात्तत्वसुक्तं तत्सक्षवेऽधिकषत्तसुक्तं नाच तेनैव व्यवस्था, सामान्यतः पुष्यलोक्तेः ।

इति द्चिणायनम्।

श्रय पार्श्वपरिवर्त्तनम् ।

स्कान्दे, - श्रतः परं प्रवच्छामि पार्थस्य परिवर्त्तनम् । श्रिवतस्य जगद्गत्तुः परिवर्त्तियित्र्युंगम् ॥ नभस्ये विमले पचे सम्माप्ते स्रिवासरे । सन्ध्याकाले तदा विष्ठाः कर्म कुर्याद्ययाविधि ॥ तस्मिन् काले च यः पद्येत् स्त्रयादा पर्मेश्वरम् । परिवृत्तिं स नाष्ट्रोति जननीगर्भसङ्कदे ॥

पुनर्पि नानाफसान्युकानि ।

इति पार्श्वपरिवर्त्तनम् ।

त्रय उत्यापनेकादग्री।

स्कान्दे, - कुमारपौर्णमामीसुह्वा,

ततः प्रभाते चद्गल्य कार्त्तिके व्रतस्तामम् । व्रतेन तेनैव नयेत् चावदेकादगौ सिता ॥ तस्यासुत्यापयेदेवं प्रसप्तं परमेथरम् ।

तथा,— ग्रयनादुत्यितं देवं ये पश्चिन्ति गद्धिरम् ।

निद्रां मोद्दमयीं भिन्ता ज्योतिः ग्रान्तिं वजन्ति ते ॥

सर्वेकामनाष्ट्रादीन्यपि जक्तानि ।

इति जत्यापनम् ।

#### श्रय प्रावर्णोत्सवः।

स्कान्दे, मार्गशीर्षं सिते पचे षष्ट्यां प्रावरणोत्सवम् ।

कला दृद्दा नरो भक्त्याः वैष्णवं लोकमाप्रुयात् ॥

दृत्यादि । तत्पूर्वं पश्चमीदिनकृत्यमुक्तम् ।

ततोऽक्णोद्ये काले प्रातः सन्ध्यासमीपतः ।

पुनः प्रपूजयेद्देवं पूर्ववत्सुसमाद्दितः ॥

द्ति प्रावर्णोत्सवः।

श्रय पुष्याभिषेतः।

स्कान्दे,— पुथर्चेण च मंयुक्ता पौर्णमाभी यदा भवेत्। पौषे मामि तदा कुर्यात् पुथस्वानोत्मवं हरे:॥

तथा, - पुष्यसानोत्मवं पुष्यं ये पष्यन्ति मुदान्तिताः । सम्बस्वकामास्ते क्रजेयुर्वेष्णवं पदम् ॥ इत्यादि ।

त्रस्य प्रत्यब्दविहितलान्नचनाभावे पूर्णिमायामेव कर्णम्।

नचनमङ्गावे तु फलाधिकां न तु तेन व्यवस्था।

द्रित पुष्याभिषेकः।

उत्तरायणम्।

ब्राह्मे, - उत्तरे दिखणे विप्रास्तयने पुरुषोत्तमम् । दृद्धा रामञ्च रूषाच भद्रां भद्रप्रदायिनीम् ॥ .त्यक्षा सर्वाणि पापानि विष्णुक्तोकं स गक्कति । दृति उत्तरायणम् ।

दोलयाचा ।

ब्राच्ची,-नरो दोनागतं दृक्षा गोविन्दं पुरुषोत्तमम्।

फाल्गुने मासि भो विष्रा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत्॥ दोखायमानं गोविन्दं यः पग्नेत् सुसमाहितः। ब्रह्महत्यादिपापानां करोति चयमात्मनः॥

द्युक्ता प्रथमे ब्रह्महत्यां, दितीये स्त्रीवधं, व्रतीये मद्यपानं नाभयतीत्युक्ता दोलाचयदर्भने पञ्चमहापातकचय उक्तः। ब्रह्माण्डे तु कालः स्पुटः,—

श्रप्रभाते निमानाथे श्वप्रकामे दिनेश्वरे । ततः प्रभोः प्रकर्त्तवा दोस्ती पर्मसमाता ॥ इति । फस्युदानन्तु पूर्वसुक्रम् ।

> दति दोलायाचा । दमनकचतुर्द्गी ।

स्कान्दे,- "चैंचे माचि चतुर्दृग्याम्" दत्यादि लिखितम्। तथा,- ततयाभुदिते सूर्ये देवं त्रणपुरः चरम्। नयेत् श्रीजगदीगस्य चमीपं दिजमत्तमाः॥ दत्यादि।

इति दमनकचतुई्गी।

त्रचयहतीया ।

ब्राह्मे, यसु पश्चेतृतीयायां कृष्णं चन्दनश्चितम् । वैगाखस्य मिते पचे म यात्यचुतमन्दिरम् ॥ दति श्रीपुरुषोत्तमचेषे दादगयात्राः ।

श्रय श्रीभुवनेश्वरस्य चतुर्दश्रयात्राकासाः।

तवायं संग्रहः,—

याचाद्या प्रथमाष्टमी निगदिता प्रावार्षष्टी तथा।

पुष्यस्वानमयाच्यकम्बसविधिर्माघे सिता सप्तमी ॥ तद्दत् स्थात् प्रिवराचिका र्यगितः साद्दामनं भञ्जनम् । पुष्णाचय्यवतीयिका परग्ररामीयाष्ट्रमीभायनम्॥ उत्ते तच पविचरोपणयमदैतीयिके चोत्धितः। चेचे श्रीभुवनेश्वरे हि विहिता याचा सतस्रो दग्र॥ ग्रेवे सष्टतयोदिता दग्रविधास्तवादिना संग्रहा-देकाचात् प्रथमाष्टमीप्रस्तयो याचा खतस्रो धताः॥ एकासपुराणे,-मार्गशीर्षं ग्रुभे माचे त्रादौ च प्रथमाष्टमी। पौर्णमास्वन्तमासे दयं कृष्णाष्टमी तथैव समाचारात्॥ जिवपुराणे, — यः पग्निज्ञिङ्गराजस्य मार्गे प्रावरणोत्सवम् । भवेतिवैः म मंयुको याति ग्रद्धरमन्दिरम्॥. एकाम्रपुराणे, - मार्गं ग्रुक्तस्य पश्चम्यां वस्त्रग्रुद्धं समाचरेत्। द्वाद्यधिवाषसुद्धाः तत् परेद्युः। पग्धेत्त भुवनेशं यः षष्ठ्यां प्रावर्णोत्सवे । ब्रह्महत्यादिपापानि तस्य नम्यन्ति नान्यथा ॥ द्रित तिथिपचौ स्कृटौ।

ग्रैवे, यः पुष्यपौर्षमास्थान्तु लिङ्गं नौराजितं सुने ।

पश्चेत् स याति भुवनिमन्द्रस्थ चिद्गार्चितम् ॥

दृद्दा मकरसंकान्यां लिङ्गं चिभुवनेश्वरम् ।

प्रतकम्बलसंयुक्तमिश्रलोकमवाप्नुयात् ॥

यः पश्चेन्याघसप्तम्यां भास्करेश्वरसन्तिधौ ।

प्रतिमां लिङ्गराजस्थ महापापैः प्रमुच्चते ॥

भविष्ये तु, - श्रह्णोद्यकाले तु शका माघस पप्तमी।
रित पचकर्मकाली स्फुटौ।

श्रेवे,— माघरुण्यस्द्रिशां शिवं राचौ विक्तोका तत् (१) ।
शिवधायुज्यमाश्रोति यदि वेदः प्रमाणभाक् ॥
माघरुण्यसद्देशौ तच चैचग्रुक्तादिमाधगणनया पूर्णिमान्तमासे पान्गुनरूण्यसद्देशौ सिद्धैव ।
श्रेवे,— एकासे चैचमासे यः पश्रेद्रचगतं हरम् ।

मञ्जूषत्यादिपापानि चयिला मोचमाप्रुयात् ॥ एकाम्रे तन्नामकचेचे श्रीभुवनेश्वरे ।

एकामपुराणे, पुरा तुष्टेन च मया राघवाय महामते।

वरो दत्तस्वदर्थञ्च यास्रेऽहं रथमंस्थितः॥

श्रमोकाख्यामिमां यात्रां कुरू लं नृपपुङ्गव।

रथस्थं तच मां दृष्टा मम स्रोकं ब्रजेसरः॥

सिङ्गपुराणे तु पचितयी स्फुटे।

चैचे मासि सिताष्ट्रम्यां न ते ग्रोकमवाप्रुयुः । इति । ग्रीवे,— तीर्थियरसमीपे यः पर्याद्दमनभिक्षकाम् ।

महोत्सवान्तितां तण्डे स पुष्यात्मा शिवं बनेत्॥ एकासपुराणे तु,— चैनग्रक्षचतुर्द्ग्यां यात्रां दमनभित्रकाम्। दति मासपचित्रयथः स्सुटाः।

एकामपुराणे,-

वैगाखस हतीयायां चिङ्गं चन्दनभृषितम्। दत्यादि।

<sup>(</sup>१) शिवरात्री विलोकाते।

भविष्ये तु पचः स्कृटः,-

या ग्रुक्ता कुर प्रार्ट्स वैप्राखे मासि वै तिथि:।

हतीया साचया सोने गीवांणैरभिवन्दिता॥ इति।

एकासपुराणे,— प्रायादग्रक्काष्टम्याना पेश्रेरामस्य सिन्धी।

ंनय मां तत्र यहोन पिविकास्यं विकोचनम्॥

प्रोवे,— प्रयने च चतुर्द्ग्यां यः पत्येत् कृत्तिवाससम्।

स ब्रह्मसोकमाप्तोति नियतं सुनिस्त्तमः॥

एकाम्रपुराणे तु,— श्रथ वच्छामि देवेशि यात्रां मे ग्रयनोत्तमाम्। श्राषादृख च ग्रुक्कायां चतुर्द्देश्यां ममाचरेत्॥

दति मामपचौ खुटौ।

एकासपुराणे, — श्रावणां चैचशक्कायां चतुर्द्यासुमापितम् । पविचेरर्चयेद्रात्यां कुर्वम् दियं महोत्सवम् ॥

भैवे, यमदितीयायाचां यः पर्यत्तच समाहितः।
स यसेनार्चितो भूला खर्गलोकमवाप्तृयात्॥
महाभारते तु, कार्त्तिके ग्रुक्षपचे तु दितीयायां युधिष्ठिर।
यमो यसुनया पूर्वं पूजितः खरहे खयम्॥

द्रत्यादिना मामपची स्कुटी॥

ग्रैवे, प्रवोधिनीचतुई ग्यां दृष्टा चिश्ववनेश्वरम्।
प्रवृद्धः धर्वदेवे स्तु भिवलोक मवाप्रुषात्॥
दत्यादिषु च पुष्णेषु दिवसेषु च यो नरः।
पग्रेत् चिशुवने ग्रञ्च स सभेत् परमां गतिम्॥
एका सपुराणे तु, कार्त्तिकस्य भिते पचे चतुई ग्यां महिश्वरि।

प्रभोरत्यापनं कुर्यात्तया सह नगेन्द्रने ॥
दत्यादिना उत्यापने मासपनौ स्कुटौ ॥
त्रासु याचासु तिथिदैधे व्यवस्था श्रीपुरुषोत्तमचेचयाचाप्रकर्णे
सिखिता ॥

द्ति श्रीभुवनेश्वरीयचतुर्द्गयाचातिययः।
श्रयानध्ययनकालाः।

मनु:,- एतान् नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत्:। अध्यापनञ्च कुर्वाणः शियाणां विधिपूर्वकम् ॥ कर्णअवेऽनिले रात्रौ दिवा पांग्रसमूहने। एतौ वर्षाव्यनधायावधायज्ञाः प्रचवते ॥ विद्युत्सनितवर्षासु महोस्कानाञ्च मंञ्जवे। श्राकालिकमनधायमेतेषु मनुरव्रवीत्॥ एतांस्त्रभुदितान् विद्याद्यदा प्रादुष्कृताग्निषु। तदा विद्यादनधायमनृतौ चाभ्रदर्भने ॥ निर्वाते भूमिचलने च्योतिषाञ्चोपमर्ज्जने। एतानाका विकान् विद्यादनध्याया नृताविष ॥ प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विधुत्स्तनितनिः खने। मच्योतिः खादनधायः प्रेषे रात्रौ यथा दिवा॥ नित्यानध्याय एव स्थात् गासेषु नगरेषु च। धर्मनेपुक्षकामानां पूतिगन्धे च सर्वदा॥ श्रनः प्रवगते यामे व्षवस्य च मन्निधौ। श्रनधायो रद्यमाने समवाये जनस च॥

उदने मधराचे च विष्मुचस्य विसर्जने। उच्चिष्टः श्राद्धभूक् चैव मनसापि न चिन्तयेत्॥ प्रतिग्रह्म दिजो विदानेको दिष्टस्य केतनम्। चारं न कीर्त्तयेदब्रह्म राज्ञो राहोस स्तके॥ यावदेकानुविष्टस गन्धो खेपस तिष्ठति। विप्रस्य विदुषों देचे नावद्ब्रह्म न कीर्त्तयेत्॥ प्रयानः प्रौद्पाद्य कला चैवावणक्यिकाम्। नाधीयीतामिषं जग्धा सूतकाचाचमेव च॥ नीहारे वाणग्रन्दे च मन्ध्ययोहभयोर्पि। श्रमावास्याचतुर्द्ग्योः पौर्णमास्यष्टकासु च॥ त्रमावास्या गुरुं इन्ति शिखं इन्ति चतुईंशी। ब्रह्माष्ट्रमीपौर्णमास्त्रौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत्॥ पांग्यवर्षे दिशां दाहे गोमायुह्दिते तथा। श्वखरौद्रे च ददति पङ्गौ च न पठेह्विजः॥ नाधीयीत भागानानी गामानी गोवजे तथा। विभवा सेयुनं वासः श्राद्धकं प्रतिग्रह्म च॥ प्राणि वा यदि वाप्राणि यत्किञ्चित् श्राद्धकं भवेत्। तदालभाष्यनधायः प्राष्यास्यो(१) हि दिनः स्रतः॥ चौरैक्पशुते गामे संभ्रमे वाग्निकारिते। त्राका जिकमनथायं विद्यात् सर्वाह्नतेषु च॥ उपाकर्मणि चौत्सर्गे चिराचं चेपणं सरतम्।

<sup>(</sup>१) पाखासः।

त्रष्टकासु तहोरात्र म्हलनासु च राचिषु॥
नाधीयीताश्वमारूढ़ो न हवं न च हिलनम्।
न नावं न खरं नोष्टं नेरिएखो न यानगः॥
न विवादे न कलाहे न सेनायां न सक्तते॥
न भुक्तमात्रे नाजीर्णं न विमला न स्क्रक्ते॥
त्रितिषञ्चानतुत्राष्ट्र मास्ते चाभिवाति वै।
स्थिरे च सुते गाचाच्यस्तेण च परिचते॥
सामध्वनाहम्यजुषी नाधीयीत कदाचन।
वेदसाधीत्य चैवान्तमारक्षकमधीत्य च॥
तथा,— पग्रमण्डुकमार्जारस्वर्यनकुत्तारद्वभिः।
न्नारे गमने विद्यादनधायमहर्निग्रम्॥
दावेव वर्जयेनित्यमनधायौ प्रयत्नतः।
साध्यायभूमिञ्चाग्रद्धामात्मानञ्चाग्रुचिं दिनः॥

एतदाकानामर्थापनेन स्रत्यन्तरोक्तिविशेषोऽयुच्यते
राची कर्षत्रवे (कर्षत्रवणयोग्ये वायौ वाति) दिवा च
धूलिपटलोत्सार्णप्रको वायौ वहित हित, वर्षासु (प्रायट्काले)
दावनधायावित्यर्थः। त्राकालिकं निमित्तकालादारभ्य परेधुर्यावत्
स एव कालः, तावत्पर्यन्तमनधायं विद्यात्, विद्युत्स्तिनतवर्षेषु
युगपत् जातेषु एकदा महोल्कानां सन्निपाते त्राकालिकमिन्त्यादि पूर्ववत्। एतान् विद्युदादीन् यदा होमार्थं प्रकटीकताग्निकालेषु (सन्ध्याचर्षेषु) त्रभ्यदितान् (उत्पन्नान्) जानीयात्
तदाऽनधायं सुर्यात्।

मन्धास विद्युदादिसमसान्वये, तदा मन्धायासेवानधाय रत्यर्थः। कन्यतस्कारास्तु, विद्युदादिप्रत्येकदर्भने तदैवानध्याय इति। श्रनृतौ (प्राराड्भिन्नर्त्ती) प्रकटीकताग्निकाचेषु सन्ध्ययोरित्यर्थः। समा-चारात् बक्तमेघदर्भनमाचे मत्यनध्यायो, न प्राटड्रतौ । च्योतिषां (चन्द्रसूर्यादीनां)। ऋतौ (प्रारुडृतौ)। ऋषि ग्रव्दादन्यचापि। प्रादुष्कृतेषु (प्रकटीकताग्निषु) होमार्थमित्यर्थः। तथाच प्रातः-सन्ध्यायां विद्युत्स्तनितनिःखने, न तु नेवसवर्षणे, यदि प्रातः-मन्धायां विद्युत्सनितनिःसनः, तदा मज्योतिर्यावत् सूर्योदय-द्र्भनं, तावदनधायः; दिनमाचवापौत्यर्थः। यदि मन्धायां, तदा रात्रिमात्रयापीत्यर्थः। एवं विद्युत्सनितयोर्थवस्या। वर्षणे तु व्यवस्था उच्यते। ग्रेषे (विद्युत्स्तनितवर्षाणां पूर्विकानां ग्रेष-वर्षणक्षे) हतीये जाते। यथा दिवानधायः, तथा राजी श्रहोराचमित्यर्थः। इारीतस्रतौ तु "गायं मन्ध्यायां स्तनिते राचौ श्रनधायः, प्रातः सन्ध्यायान्त्वहोराचिमिति" यदुकां तचा-होराचपचो नाचर्यते । सन्धागर्जनदोषमाह दुर्वासाः ।

> सन्धायां गर्जिते सेघे ग्रास्त्रचिन्तां क्ररोति यः। चलारि तस्य नम्यन्ति त्रायुः प्रज्ञा यग्रो वस्त्रम्॥

यानि चान्यानि स्रितिवाक्यानि श्राचार्विस्द्वानि सन्ति तानि सर्वाणि विस्तरभयादनुपयोगाञ्च न सिखितानि। नैपुष्यमतिगयः। श्रव धर्मातिग्रयकामानां यो नित्यमनध्याय उत्तः। स न सर्वेषां, काम्यलात्। श्रतएव विशिष्ठः,— "नगरे तु काम्यमिति"। मध्यमराचे (सुहर्त्तचतुष्टयक्ष्पे महानिग्रायां) "चतुर्मुहर्त्तमिति" गोभिलस्ततेः। त्राद्वभुक् निमन्त्रणादारभ्य त्राद्वभोजनाहोराचं यावत्, न पठेत् । नेतनं (निमन्त्रणं)। हारीतः,—
"त्राद्वमनुष्ययज्ञभोजनेऽहोराचं"। मनुष्ययज्ञो (त्रितियपूजा)।
याज्ञवन्त्रः,— "शिष्टे च ग्रहमागते"। ग्रंखिलिखितौ "नगरचतु—
व्यथमंत्रभेष्यनध्ययः" राजामात्यमहापुरुषस्वर्थागेऽनुकूले मिने—
ऽतीते नावस्थयज्ञवाटे । महापुरुषोऽच उत्कष्टगुणगाली । राज्ञः
स्तते पुचजनादौ, राहोः स्तते (चन्द्रसूर्योपरागे)
याज्ञवन्त्रः,— यहं प्रतेष्वनाध्यायः शिष्यवहुरुवन्धुषु (१)।
वपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वभाखात्रोचयोक्तया॥

बोधायनः,-

"ऋतिग्देशपतिश्रोतियेषु श्रहोराचम्"। देशपतिरच देशाधि-कारी।

त्रमेधगब्दशुद्रान्यसगानपतितान्तिके ।

श्रीवियस भिन्नशाखीयः। राजस्वशाखिनः विराचितः।
प्रीट्रपादः (श्रामनाद्यारूट्रपादः) श्रवशक्षिका नानौ पर्यंद्ववस्यरूपा। वाषश्रव्ये शरश्रव्ये रित केचित्। वाषश्रव्यक्षननुमहितवीषावाचीति माम्मदायिकाः। एकमुद्दिश्य श्रनुविष्टस्य सृष्टस्य
सुङ्गादेरिति श्रेषः। गन्धलेपमद्भावे श्राहादूर्धं श्रपीत्यर्थः।
पौर्णमास्यष्टकासु चेत्यत्र श्रष्टमीव्यत्यर्थः। ब्रह्माष्ट्मीति तद्यास्थावाक्यात् श्रष्टकाश्राद्धदिननिषेधस्य वच्चमाणवाच।
यनु यमेन,—प्रनापतिं हि तिष्टन्नि मर्वा विद्यासु पर्वसु ।

<sup>(</sup>१) भ्रिष्यतिंदु खवन्धुषु।

तसात् धर्मार्थकामार्था नेताः पर्वसु कीर्त्तयेत्॥
दति काम्यं पर्ववर्जनसुत्रं, तद्वेदान्तातिरिक्रविद्यापर्मिति
साम्प्रदायिकाः।

चतुर्द्ग्यष्टम्यो पचद्यस्य,

पचदये चतुर्द्योर्ष्टमीदितीये तथा।

इति भ्रोकगौतमोत्तेः।

पङ्गौ (श्वादिपङ्गौ) खितायाञ्च भन्दात्।

स्मानपरिमाणमापस्तवीये, स्माने वर्वत त्रामसाप्रासे।
प्राम्या रथप्रम्या, सा प्रदेशमाचा, प्रम्याखादुकतत्त्वणा। तस्याः प्रासः
प्रचेपो यावद्दूरे भवति, तावद्दूरं स्मानात् सर्वतो सुक्षाः
अध्ययमित्यर्थः।

यमः, - स्नेत्रातकस्य हायायां ग्रालानेर्मधुकस्य च। कदाचिद्पि नाध्येयं कोविदारकपित्ययोः॥

विश्वा (परिधाय)। प्राणि, गवायादि । श्रप्ताणि, वस्त-हिरण्यादि। यस्तात् ब्राह्मणः प्राणी एवास्यं मुखं यस तयोकः। यद्यपि "उत्यातेषु प्रान्तिसस्ययने कला" दति हारीतोकोः प्रान्तिपर्य्यन्तमनधायः प्राप्नोति, तथाण्यमकौ प्रान्तिकरणाभाव-निश्चये उत्पातकालीन एवानधायः दति मनोरिभप्रायः, "चौरैहपश्चते प्रामे" दत्यादि पूर्वोक्तानधायनिमित्तसमानलात्॥

त्रनधायः तिरात्रनु स्मिकम्पे तथैव च।

दित यमोक्तिः सर्वस्मिकम्पराः।

ख्रस्थास्त्रमे तु याज्ञवल्काः,—

सन्धागर्जितनिघातभूकमोक्कानिपातने। समाप्य वेदं द्वानिग्रमारक्षकमधौत्य च॥

द्वानिश्रमहोराचम् गौतमः। श्राचार्ययोः (गुरुश्क्रवोः)
परिवेशे (मण्डले) च्योतिषोः (स्व्यांचन्द्रमधोः) श्रव ये केचिदुत्पातभेदाः उक्ताः, ते तु धर्वपदेन मनुना धंग्रहीताः। श्रष्टकासु
(पौषमाधकानग्रनमाधीयक्रण्णाष्टमीषु) पूर्वमष्टमीषु योऽनथ्याय उक्तः।
सः,—

प्रतिपक्षेत्रमावेण कलामावेण चाष्टमी। दित वाकात्।
परिने कलामावसन्तेऽपि परिने भवति "निषेधः कालमावके" दित वाकाित्तिथिमारभ्य पूर्विदेनेऽपि। अष्टकासु तु
यथाप्राप्तश्राद्धिने दित न पौनक्त्रम्। अष्टकासु "चिरावं,
विरावमन्त्रामेके" दित गौतमोिकदियं सप्तस्यादिदिनवये प्रवत्तमपि मनूकिविरोधास्त्राद्वियते। स्थलन्त्रासु वसन्तायुलन्तभवासु।
दिरणस्त्रो (मरुदेशस्त्रः) यानं (प्रकटादि) सुक्तमावे (यावदाईपाणिरिति स्पत्यन्तरोक्तिरूपे)। हारीतः,— ऊर्द्धं भोजनादुस्रवे,
देवतायुत्सवे। भोजनोर्द्धञ्चानध्यायः। सूक्तके (श्रव्होद्वारे)।

श्राभिवाति श्राभिमुखोन वायौ वाति द्रत्यर्थः। ग्रस्त्रहननस्य पृथगुक्तेः। श्रार्णं (तन्नामकदैवतं देग्रम्)।

सामध्वनौ कर्मविशेषापवादमाइ श्रङ्गिराः। सामध्वनौ सत्यपि यज्ञेऽधीयौत स्तलात्। श्रापस्तवः। "काण्डोपाकर्णे चामादकस्य। काण्डसमापने चापित्सस्य, काण्डोपक्रमे समापने चानध्यायः। यत्काण्डसुपाकुर्वीत यद्नुवाकासुपाकुर्वीत । तावन्तद्ररधीयीत । तथा उपाकरणसमापनयोद्य पारायणस्य तां विद्यां ("पारायणं धर्मार्थमादित" दत आरभ्य समाप्तिपर्य्यन्तपठनं) तत् चानधायेन वर्न्धमित्यर्थः । चय्या (वेदचयस्य) निष्कषं प्रणवव्याद्यतिसाविद्या-तमकसरमित्यर्थः । प्रत्यद्रमभ्यस्य पश्चात् वेदाध्ययनं कुर्युः । प्रश्चवे (गोमहिषाद्यः) ।

विश्वामित्रः, - विद्युमिविद्राह्यामान्यभववायमेः।

कतेऽन्तराये पश्चाद्यैरनधायः ऋहं मतः॥

ग्रामान्यभवाः (मनुजाः रजककर्मकार्नटकैवर्त्ताद्यः) झोक-गौतमः,—

यायाद्यहन्तरे यात्रो नैवाधीयेत हायनम्।. हायनं (वस्तरम्)।

गुर्वन्ते वासिनां वेद्मध्येदृणाञ्च मध्यतः। प्राप्तश्वपाकगमने नाधीयीतापि वसरम्॥

मानवीये त्रादौ दमाश्रित्यमनधायानिति यदुकं त्रमध्यनस्य नित्यलं, तत्यदणधारणादिसमर्थस्यैव। "त्रन्ते तु दावेवेति त्रश्रद्धस्यात्मग्रीचधोर्यद्नध्ययननित्यलसुकं तदसमर्थस्य ज्ञेय"मिति निवन्धकतः।

थाजनस्काः, स्तमस्थिषु भुक्का च श्राद्धकं प्रतिग्रह्म च।
स्तमस्थः (प्रतिपत्)। मद्याभारतेऽपि, स्यं यौधिष्टिरी सेना गाङ्गेयगरपीड़िता।
प्रतिपत्पाठगीसस्य विसेव तनुतां गता॥

अपसानीयेऽष्टम्यादिषु विशेषः,—

उद्येऽस्तमये वापि सुह्रक्तंचयगामि यत्।

तिद्नं तद्द्रोराचमनध्यायिवदो विदुः॥

केचिदाङः कचिद्देशे यावन्तु दिननाडिकाः।

तावदेव द्यनध्यायो न हि तिसान् दिनान्तरे॥

तिद्नं तां तिथिं प्रायत्यर्थः। दिनान्तरे (तिष्यन्तरे)

निर्णयास्त्रेते, स्रतिः,—

प्रतिपक्षेत्रमानेष कलामानेष चाष्टमी।
दिनं दूषयते सर्वे सुरा गव्यघटं यथा॥
श्लोकभीषाः,— चातुर्माखदितीयास मन्नादिषु युगादिषु।
विषुवायनयोर्द्रने ग्रयने बोधने तथा॥
पन्नादिषु चयोदक्यां तस्त्रीमेवोत्तरा तिथिः।
दर्भस्य चेद्दिवैवस्यादनध्यायः श्रुताविष॥
राजमार्नाष्टे,— कोप्रेचैचादितीयासाः प्रेतपचे गते तु या।
या तु कोजागरे याते चैचावस्त्राां परेऽिष या॥
चातुर्मास्ये समाप्ते च या दितीया भवेत्तिथः।
परास्त्रेतास्त्रनध्यायः पुराणैः परिकीर्त्तितः॥

चैचावजी (चैचपौर्णमामौ)। रुद्धगार्ग्यः,—
ग्रुचावूर्जे तपस्ये वा या दितौया विधुचये।
चातुर्मास्यदितीयास्ताः प्रवदन्ति मनीषिणः॥

ग्रुची (श्राषाढ़े) जर्ज्ज (कार्त्तिके) तपस्थे (फारगुते) विधुचये (क्रम्णपचे) श्राषाळ्यादिषु पौर्णमाशीषु गतास्त्रित्यर्थः। मन्वादियुगादितिथयः श्राद्धप्रकरणे वाच्याः। विषुवायनेषु विभेषमार गार्ग्यः,—

> दिवायने क्रमेद्गानुर्यदि राचौ परापरे। नाधीयीताइनि राचावेवं विषुवयोरिप ॥

दिवा संक्रमे पूर्वापरयो राश्चोरनधायः, राचिसंक्रमे पूर्वोत्तर-दिनयोः चयोदय्युत्तरतियौ चतुर्दय्यामित्यर्थः। दर्भस्य दिवसे किश्चिद्भानेऽपि चयोदय्यामनधायः। श्रुतौ (श्रवणदादय्यां) सत्यतपास,—

श्वाभाकाशितपचेषु मैचश्रवणरेवतीः ।
दादश्यः संस्थृशेयुचेत् तचानध्ययनं विदुः ॥
व्रद्धमतुः,— जननाद्द्यराचं च श्रवे च ससुपस्थिते ।
नाधीयीत दिजो नित्यं तावदाकाणिकेषु च ॥
महाग्ररौ दादशाइं वेदानध्ययनं क्रजेत् ।
देवीपुराणे,— न सद्भीणें जने कुर्यास्र च तस्करमिन्धौ ।
न प्रश्रुकरकाकारिक्रकवाकुसमागमे ॥

सम्मुकरो (नापितः) काकारिः (पेचकः) क्रकवाकुः (कुक्कुटः) "चलारीमानि कर्माणि" इति नक्रप्रकरणोक्रस्यतौ सन्ध्यायां निषेध छकः।

भिवपुराणे, प्रदोषो हि दिधा प्रोक्तो रूढ़िर्लाचणिको सुने।
श्रद्धांसे च रवेश्वके प्रदोषो सुनिभाषितः॥
सन्ध्याकाले च पूर्णास्ते गगने तार्कामचे।
तथा, प्रविश्वकार्द्धमाचस्त प्रदोषो रूढ़िसज्ञितः।

यामनेकं चतुर्द्श्यां यामयामार्द्धभप्तमी ॥

यामचयं चयोद्श्यां प्रदोषो खाचिषिर्मतः ।

दत्याद्युक्ता,— नृत्यभङ्गानादादेवः कुद्धो भवति तत्चणात् ।

प्रापं ददाति तसी स जाद्यो भव दति प्रशुः ॥

तथा,— प्रदोषे न हरि प्रयोत् प्रयोच दृषभध्वजम् ।

द्रद्धगार्ग्यः,— राचौ यामदयादर्वाक् सप्तमौ स्थान्नयोद्भौ ।

प्रदोषः स तु विश्वेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥

राचौ नवसु नाडुौषु चतुर्थी यदि दृश्यते ।

प्रदोषः स तु विश्वेयो वेदाध्ययनगर्हितः ॥

शिष्टाः,— राचौ यामदयादर्वाक् यदि प्रयोन्नयोद्भीम् ।

प्रदोषः स तु विश्वेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥

सर्वचापवादमाद्द्याः सर्वविद्याविगर्हितः ॥

सर्वचापवादमाद्द्याः मनुः,—

नैत्यनेनास्यनधायो ब्रह्मसूनं हि तत्स्यतम् ।
तया, वेदीपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ।
नानुरोधोऽस्वनधाये होममन्त्रेषु चैवहि ॥
कौर्म, श्रनधायं तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः ।
न धर्मग्रास्तेष्यन्येषु पर्वस्तेतानि वर्जयेत् ॥

वेदोपकरणं (वेदातिरिक्तविद्यास्थानं) तेन भर्वविद्या न पठेत् इति यन माचादचनं तचैव वेदोपकरणेऽप्यनध्यायो न भर्वचेति सिद्धम् ।

द्ति तिथिषु दैवनिरूपणम् । त्रय पिव्यकर्मणि तिथिनिरूपणे प्राप्ते त्राह्मस्य मर्णोक्तरभा- विवासर्णसं तु जन्मोत्तरभाविवात् जन्मनञ्च ऋतुकासाधीनवात् ऋतुप्रस्तिकासा निरूयन्ते।

याज्ञविष्काः, — ब्रह्मचित्रयिविट्श्इरा वर्णास्वाद्यास्तयो दिजाः ।
निषेकादियाणानानाः तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः ॥
गर्भाधानस्तौ पुंसः धवनात् स्वन्दनात् पुरा ।
पष्ठेऽष्टमे वा सौमन्तो मास्रोते जातकर्मं च ॥
श्रद्धन्येकादणे नाम चतुर्यं मासि निष्क्रमः ।
पष्ठेऽस्त्रपाणनं मासि चूड़ा कार्या यथाकुसम् ॥
एवमेनः णमं याति वौजगर्भसमुद्भवम् ।

ह्रणीमेताः क्रियाः स्तीणां विवाषम् समन्त्रकः ॥

वीजगर्भषमुद्भवं (ग्रक्तगोणितसम्बन्धं, गोत्रवाधिमङ्कान्तिनि-मित्तं) न तु पतितोत्पन्नलादित्यर्थः । चूड्रान्तानां नित्यलेऽपि एतत् पापग्रमनं श्रानुषङ्किकं फलमित्यर्थः । स्त्रीणां तु विग्रेषः । एताः चुड्रान्ताः द्वष्णीमित्यादि ।

> बोड्गर्मुनिगाः स्त्रीणां तासु युगासु मिन्गित् । ब्रह्मचार्येव पर्वष्याद्यास्त्रसस्तु वर्जयेत् ॥ एवं गच्छेत् स्त्रियं चामां मघां मूलां च वर्जयेत् । स्वस्य दन्दौ सक्तत् पुचं लच्छां जनयेत् पुमान् ॥

षोड्गराचिमध्ये श्राष्टं राचिचतृष्टयं वर्क्यम् । श्रविष्ठाष्ट्रास्त्रस्य पञ्चमसप्तमनवमैकाद्यच्योद्यपञ्चद्यक्र्पाः षड्युगाराचयः त्याच्याः । द्रति द्यराचयः त्याच्याः । श्रविष्ठष्टासु षट्सु राचिषु यद्यत् पर्व पतित, तिद्विष्टाय सङ्गमे, विशिष्टः पुचो भवति ।

एकस्यां राची सहदेव गमनं, न दिस्तिरिति ब्रह्मचर्यफलं भवति। मानवीये तु,—षोड़ प्रराचिषु राचिद्रयगमनमेव ब्रह्मचर्य-फलप्रदमित्युक्तम्। चामां रजखनावतैर व्याच्याच्याच्याच्यानित्यर्थः। मघा दत्यादि गण्डनचचोपन्नचण्म। एवमादिप्रथम-सङ्गम एवाद्रियते। श्रन्यक्तांविप एतत् ग्रभकान्तगमने प्रचीत्यक्ति-रिति याज्ञवक्त्याभिप्रायः। गण्डनचचाणि तु च्योतिः ग्रास्ते,—

त्रित्रीमधमूत्तानां तिस्रो गण्डाद्यनाडिकाः । त्रन्धे पौष्णोरगेन्द्राणां पश्चैव यवना अगुः ॥ स्वस्य दन्दौ (वस्रवति चन्द्रे) एतत् चान्यग्रभग्रहोपस्रचणम् । तथा च स्योतिः प्रास्त्रे,—

पापामंयुतमध्यमेषु दिनदृष्ण्याचपास्त्रामिषु ।
तद्धूनेष्वग्रभोज्ञितेषु विकुले किहे विपापे सुखे ।
सद्युकेषु चिकोणकण्टकविधुष्वायचिषष्ठान्विते ।
पापे युग्मनिग्रास्त्रमण्डममये पुंग्रह्लितः सङ्गमः ॥

एवमादिप्रथमसङ्गम एवाद्रियते, श्रन्यक्ताविष एतत् ग्रभका-स्नादिगमनेन पुनोत्पित्तिति याज्ञवस्त्वाभिप्रायः। श्रयुगारा-नित्वागो नाधर्मकारणं, किन्तु पुनोत्पादनार्थमेव। पर्ववर्ळानं तु श्रधमंद्रेत्तत्या एव दिति बोध्यम्। गण्डनस्रनादिवर्ळ्जनं प्रथम-क्तावेव बुधवारादिवर्ळ्जनमपि प्रथमक्तावेव। "श्रभिनवनारीगमनं न बुधा बुधवासरे कुर्युः" दत्यादिशासनात्। पर्ववर्जनं तु सर्वर्त्तु-व्यपि, चतुर्द्याष्ट्रमीवाक्येषु तिथीनामेवोक्तेः। प्रथमक्ती वारादिदोषे च्योतिःशास्त्वे,— पुष्यं दृष्टं निन्दिते भे यदि स्वात्
ग्रान्तिं कुर्यादङ्गनानां च पूर्वम् ।
तत्वंयोगं वस्तभा वर्जयेयु
र्यावङ्गयो दृष्यते ग्रस्तभे तत् ॥
नचनतिथिवारेषु यच पुष्यं च दुष्यति ।
सोमं कुर्यात् च गायत्या वारदोषे तिथाविष ॥
कुग्रै राज्येसाष्ट्रगतं दुर्वाभिस्य तथैव च ।
तिसीराज्येन दुर्वाभिद्दीमं कुर्यात् प्रयन्नतः ॥
नचनदोषगान्यथं प्रत्येकं तु सहस्रकम् ।

श्रव व्यवस्था,—

वारदोषयपोत्तनार्थे त्राज्यमित्रितानां दुर्वाणां त्रष्टोत्तर्यतं होमः, तिथिदोषे त्राज्यानामष्टोत्तर्यतं होमः, नचनदोषे त्राज्यमि-त्रितानां कुणानामष्टोत्तर्यतं होमः, ज्ञादोषे त्राज्यमित्रिततिजा-नामष्टोत्तर्यतं होमः, त्रतियक्तस्य तु प्रत्येकं सहस्रहोमः, यदा,—

दुर्वातिलाची जुडियात्महसं
गायतीमन्त्रेण तदुक्तदोषे॥
दुर्वातिलयोद्दीमे हलस्य माधनतं
श्राच्यहोमे सुवस्य माधनतं॥ इति।

ममुचयहोमस्थामभावात् षट्चिंग्रद्धिकशतवयहोमे प्रत्येकट्ट्य-सम्बद्धेन सहस्राष्टोत्तरहोमः स्थिति। सहस्रगतहोमादिषुः, श्रमभावात् त्रष्टोत्तरत्वस्य नियमात्।

नतु दन्दसमासात् समुचयपचः प्राप्नोति दति चेन्न। भिन्ना-

वस्त्रस्यं प्रति साहित्यस्थोपपन्नलात्। ब्रह्माण्डोक्तहोमस्य काम्य-लान्न सर्वैः क्रियते । निषेककर्मणि दृद्धिश्राद्धाभावः "विवाहादिः कर्मगणं" इति वच्छमाणच्छन्दोगपरि ग्रिष्टोक्तेः । एवं च दृद्धि-श्राद्धाभावात् तत्पूर्वविहितानां मात्रपूजा वसोद्धारायुष्यमन्त्रजपा-नामप्यभावः एतद् दृद्धिश्राद्धप्रकरणे लेखम् । केचिन् दृद्धिश्राद्धाः भावेऽपि,—

> निषेककाले सोमे च सीमन्तोस्रयने तथा। ज्ञेयं पुंसवने चैव श्राद्धं पञ्चाङ्गमेव च॥

दित विष्णुपुराणोक्तकमां क्षेत्रं कार्यम्। "कर्माक्तं रुद्धि-मत् स्रतः" मिति स्रितेमीत्रपूजादिकरुद्धिश्राद्धकर्त्तेयतापि, दित वदन्ति॥

वसुतस्त नान्दीमुखश्राह्मस्य गर्भाधाने विहितप्रतिषिद्धलात् विकन्य एव, इति ग्रिष्टबाद्धाणानां गर्भाधाने नान्दीमुखश्राद्धा-भावसमाचारो, नृपादीनां तु तत्कर्णे समाचारस्य उभयं प्रमाणः मिति, श्रसत्पितामहक्षण- वहत्पण्डितमहापाचादयः।

एवं च ग्रह्मसूत्रभाखे,— "मात्रप्रापूर्वतं स्वयमाभुद्धितं हाला" दित पद्धतौ यिक्षितं तदिप मङ्गतम् । श्रृद्राणां गाय-व्यामधिकाराभावाद् ब्राह्मणदारा होमः कार्य दित केचित्, तन्न । तथा मित यागादाविप श्रृद्रस्थाधिकारो न निर्वार्थतं । किन्तु वारादिदोषयपोहनार्थम् ॥

योगस्य (१) होमकरणस्य च धान्यमिन्दोः

<sup>(</sup>१) हमकर खसा।

गंखस तण्डुलमणी सियिवारयोस ।

ताराकलायलवणान्ययगास्रराग्रे
र्द्यात् दिजाय कनकं ग्रुचिनाडिकायाम् ॥

इति सामान्यशामिः कार्या ।

यदा सर्वत्र हेमदानमात्रम्,--

सर्वदोषोपग्रान्यर्थं हेमदानन्तु केवसम् ।

इति ग्रास्तात्।

विशेषस्तसात्कते श्राचारमारे द्रष्टयः । मनुः,—

श्वतुकामाभिगामी स्थात् खदारनिरतः मदा ।

"श्रव त्रते" इति स्र्वेण त्रतार्थे णिनिप्रत्ययः । श्रयमृतुकासगमनविधिरपूर्वविधिः । पुचोत्पादनम् प्रत्यप्राप्तस्य सत्गमनस्य
ग्रास्त्रेण विधानात् । नाच नियमविधिग्रद्धा, पुचौत्पादने सतुगमनस्य पाचिकप्राप्तरभावात् । नापि परिसंख्याविधिः, सतुगमनस्य पुचोत्पादनं प्रति प्राप्तरभावात् ।
तथाच,— विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाचिके सति ।

तच चान्यच च प्राप्ती परिसंख्येति की चंते॥

यत्तु नियम इति विद्यानेश्वरैक्त्रम्, तत् पुचौत्पादमस्य नित्यलात् स्वतुगमनमपि नित्यं इत्यभिप्रायेष । तसात् सन्ध्या-वन्दनादिवदृतुगमनमपि नित्यम् ।

यथा कामी भवेदापि स्तीणां वरमनुसारम्।
इति याज्ञवस्काोक्रेरनृतावपि गमने न दोषः। श्रत एव,—
स्तौ नोपैति यो भार्यामनृतौ यद्य गस्कृति।

तुस्त्रमाङसयोदेषिमयोनौ यस सिश्चति ॥

इति बोधायनोक्रौ श्रनृतौ यो दोष उक्तः, स स्रतावगला
अनुत्रगमने बोधः। यद्यपि,—

यः खदारानृतुस्नातान् खस्यः मन्नोपगच्छति ।

भूण्डत्यामवाप्नोति गभें प्राप्य विनम्मति ॥

इति देवलोक्षौ, यथा यमादिवाक्यादिषु ब्रह्महत्यादोषाद्य

धक्ताः । तथापि,—

चतुकासाभिगामी साद्यदि पुची न जायते।

दति कोर्माक्रेक्एपक्रविद्यमानपुत्रस्य स्वीकामनाविर्हेऽपि स्तावगमनेऽप्यदोषः। चतुर्द्य्यादिषु नचनेषु च वर्ळानं ततृतत्कास्य एव, "निषेधः कासमानके" दत्युक्तः। सङ्गान्तिसमयस्य लितस्यान् लेन दुर्शस्यलात् तदविक्स्त्राहोरात्रमेव विषयः। "श्रतीते नागते पुष्णे" दत्यादिवस्थमाणोक्तौ दानविषयतम्, म तु स्वीतेसमांस-वर्ळानविषयतम्। पुष्णं नाम विहितविधिवद्भक्तमं, (१) दति निषेधस्य पुष्णालाभावात्। ननु स्तत्दोषद्दोमप्रायस्ति "गायचीद्दोमः ग्रद्भस्य निषद्ध दत्युक्तः" तत्क्रयं स्वीग्रद्रयोवैदिकमन्त्रानधिकारः क्रयं वा पौराष्किमन्त्राधिकार दति चेन्न। मात्स्य,— न हि वेदेस्यधिकारः कश्चित् ग्रद्भस्य विद्यते।

नात्य,— न १६ वदव्याधकारः काश्चत् शृहस्य विद्यत । पुराणेव्यधिकारो मे दर्भितो ब्रह्मणैव हि ॥

दत्युक्षेरिधकारः

एतद्वनं सद्धरजातिविशेषसः श्रूट्रस्थेति नाचोपयुक्तमिति

<sup>(</sup>१) विचित्रविधिधमी इति ।

गङ्गनीयम् । यच प्रतिजोमकायधिकारः, तच सुतरां शृद्रस्थेति क्रीसृतिकन्यायेन शृद्रविषयलमभावात् । व्यासोऽपि,—

मन्त्रवर्ज्ञं न दुखन्ति प्रग्नंसां प्राप्नुवन्ति च।

श्रव मन्त्रवर्जिमिति वैदिकमन्त्रवर्जं इति कच्यतक्काराः।
तेषामयमभिप्रायः। "तच्चोदकेषु मन्त्राख्ये" इति जैमिनीयन्यायेन
"वेदभेदे ग्रुप्तवादे" इति चौकिककोषप्रामाख्येन च मन्त्रश्रब्द्धः
वैदिकमन्त्रपरलमेवेति। श्रतण्व पराग्ररः,—

किपिलाचीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च। वेदाचरविचारेण शूट्रो गच्छत्यधीगतिम् ॥ नतु पुराणमधिकत्य भवियो,—

श्रधितयं न चान्येन ब्राह्मणं चिचयं विना । श्रोतयमेव श्रद्रेण नाधितयं कथञ्चन ॥ इति । तथा,— श्रौतं सार्त्तञ्च वै धर्मं प्रोक्तमस्मिन्प्रोत्तम । तसात् श्रद्धैर्विना विष्रं न श्रोतयं कथञ्चन ॥

द्युकेः पुराणमन्त्रेव्यपि कथमधिकार दति चेत् न । निषा-द्ख्यपत्यधिकारन्यायेन पुराणनिषेधस्य कमें।पयोगिपौराणिक-मन्त्रविग्रेपाध्यमविषयत्वे मानाभावात् ।

तसाद्रयकारादेराधानोपयोगिवैदिकमन्त्रपाठवत् शृद्रस्य कर्मो-पयोगिपौराणिकमन्त्रपाठेऽधिकारस्याविरोधात् । एकोद्दिष्टश्राद्धा-नन्तरं वाराहे,—

> श्रयमेव विधिः प्रोक्तो श्र्ट्राणां मन्त्रविर्घ्यतः । श्रमन्त्रस्य तु श्रृद्रस्य विप्रो मन्त्रेण ग्रह्मते ॥ दति ।

द्रित यदुनं, तनापि उन्नमन्त्रसर्वणानुसारेण वैदिकमन्त्राणा-मेवाभावः । नतु पौराणिकमन्त्राणामपि गौणलेन तेषां मन्त्रप-द्रप्रयोगविषयलात् । श्रन्यथा गौर्नास्ति दत्यादौ वाहकादेरभावः प्रसन्तेत । तस्तादमन्त्रलप्रसिद्धिवैदिकमन्त्राभावक्षतेव ।

नतु पौराणिकमन्तेऽपि श्र्द्रस्य नाधिकारः, श्रध्ययनं विना प्रयोगस्यानुचिततात् । श्रध्यमञ्ज,—

न ग्रद्राय मितं द्दात् नो च्छिं न इविष्कृतम् । दित ब्राह्मणस् ग्रद्धे ज्ञानोपदेग्रनिषेधात्र सम्भवतीति चेदुस्रते । त्रच मित्रग्न्दो त्रश्चात्मविषयकमितपर एव । ग्रद्रस्य ब्रह्मविद्यायामधिकाराभावस्य द्रितेतलात् । विदुरादेस्स्वस्थभावतोविद्यलेन, (१) दित समाधानम् । तसात् ग्रद्रस्य पौराणिकमन्त्रपाठेऽधिकारः । स च नित्यनेमित्तकेय्वेव कर्मस्, न त काम्यकर्मस् । काम्य (१) श्रुतीनां सन्धविद्यादिताग्निचैवर्णिकाधिकारिकलेनेव प्रधिकार्यन्तराकाङ्घाया त्रभावात् । त्रतपव रणकारस्याविद्यलादुत्तरकतिषु नाधिकार देति दृष्टार्थे तस्याधानमिति मीमांसकिद्धान्तः ।
नतु वैदिकमन्त्रसाधेषु कर्मस्र कथमिति चेत् ? उत्यते । "त्रतुमतोऽस्य नमस्कारो मन्त्र" दित गौतमोक्तेवैदिकमन्त्रस्थाने नमः
पद्ष्रपमन्तो हेनाधिकारः । याज्ञवक्कोऽपि,—

नमस्कारेण मन्त्रेण पश्चयज्ञान हापयेत्।

भभ एवकारादिप्रयोगवत् कार्ग्रन्दः प्रयुक्तः । तेन नम इत्येव मन्तः । विज्ञानेयरैस्त "नमस्कार्मन्ते। देवताभ्यः पिद्य-

<sup>(</sup>१) खतोविद्यतेन।

<sup>(</sup>२) कामश्रुतीनां।

भय द्राहिमन्त्री नम द्रित वा" यिल्लिखितम्, तच प्रथम-पचस्य श्रमाद्गे नादरः । देवताभ्य दित मन्त्रस्य वैदिकलासम द्रत्यस्वैवादरः । नतु मन्त्राणां प्रयोगसमवेतार्थप्रकाग्रनदारा कर्माङ्ग-लात् नमःग्रन्देन प्रयोगसमवेतस्य कस्यचिद्र्यस्य प्रकाग्रनात् कयं वा मन्त्रलं, केन रूपेण वा कर्माङ्गलम्, दित चेदुच्यते । जपा-दिमन्त्राणां कर्मसमवेतार्थप्रकाग्रकलाभावेऽिप श्रदृष्टदारा कर्माङ्गल-वदुपपत्तिः । कर्मसमवेतार्थप्रकाग्रन तु नावस्थकं, स्नार्चकर्मस्य वाजसनेयिनां पविचकर्णादेः केनायप्रकाग्रनात् ।

श्राद्धविवेककञ्जिस्त, श्रमन्त्रस्थेति परिभाषेत्यादि यदच विचा-रितं तदक्रभिदूरिवतमनुषन्धेयम्, श्रुद्राणामामाञ्चेनैव वैश्वदेवक-रणात्।

सौकिने वैदिने वापि इतोच्छिष्टे जले चितौ।

इति सम्तीतिर्जन एव होमः कार्यः । उपनयनाभावेन वेदा-भावात् बद्धायज्ञस्य न करणम् । यदा पौराणिकमन्त्रेण बद्धायज्ञा-नुष्ठानं, श्रम्भवे वक्तभिर्नमःपदैर्वा तदनुष्ठानम्। श्रन्यत् भवे "श्रद्रा वाजमनेयिनः" द्व्यापसम्बोक्तेर्वाजमनेयिब्राह्मणवदाचरणीयं इति संचेपः । विशेषस्त तच तच लेखाः । श्रच केचित्,—

> एवं श्रूहोऽपि सामान्यं रुद्धित्राह्धं च सर्वदा । नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्त्रवद्वुधः ॥

> > इति सखनरोकः।

मन्त्रवर्क्कं हि श्रृद्राणां दाद्या हे विष्छनम् ।

रति विष्णुनेः।

नमस्तारेण मन्त्रेणित याच्यवस्त्रोतिः।

ब्रह्मचचित्रामेव मन्त्रवत् स्नानिम्यते । त्रस्णीमेव हि श्रृद्रस्य सनमस्तारकं मतम् ॥

दति योगियाजवन्कोतेः । दर्भात् हत्तौ श्र्ट्रोऽयमन्त्रविति मात्थोक्रेयाविशेषाभिधानात् श्राद्भपञ्चयज्ञनित्यस्नानेषु पौराणिक-मन्त्रोऽपि पठनौयः । एषु मन्त्रमाचस्नानाङ्गितलात् तत्-पुरोहितबाह्मणेनापि न पठनौयः । दति चैवर्णिकस्त्रीणामपि ।

> यज्ञेषु मन्त्रवत् कर्म पत्नी कुर्याद्यथाविधि । तदौर्द्वदेखिके सा हि मन्त्रार्ह्या धर्मसंख्नता ॥

द्ति स्कान्दोक्तेरेतदितरकर्मस न वैदिकमन्त्रपाटः । तथा च नृषिंहतापनीये,— "माविकीं प्रणवं यजुर्कस्त्रीं स्त्रीशृद्रयोर्नेस्कृत्ति माविकीं सस्त्रीं यजुः प्रणवं यदि स्त्रीशृद्रयोर्जानीयात्, स स्त्रो-ऽधो गस्कृति नेस्कृत्तीति" । "नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रे"रिति वचनमपि पूर्ववद्वैदिकमन्त्रपरम् । पौराणिकमन्त्रासु तत्तत् कर्मस स्त्रीभः पठनीया एव ।

### श्रथ पुंसवनम् ।

पुंगः सवनं सन्दनादिति पुमान् सूयतेऽनेनेति पुंसवनास्यं कर्म गर्भचालनात् पूर्वमित्यर्थः । तथा च पारस्करः,— मासे दितीये हतीये वा यददः पुंगा नचनेण चन्द्रमा युज्यते, दति पुंगा पुंनामकपुत्थादिनचनेण युज्यते यदेत्यर्थः । मासे दति गर्भ-धारणकालादिति प्रेषः । एवं सीमन्तोन्नयनेऽपि बोध्यम् ।

# श्रय भीमन्तोत्रयनम् । षष्ठेऽष्टमे वा भीमन्तो माभीति ।

प्रतानन्दसंग्रहे,-

षष्ठेऽष्टमे तथा मासि सीमन्तोत्रयने विधिः। कुर्यात् प्रथमगर्मे तु नवसे तु वचः प्रद्रणु॥

इति नवममामोऽप्यत्र विहितः। ग्रंखिलिखितौ विशेषमाहतुः। "गर्भखन्दने मीमन्तोन्नयनं यावदा न प्रमव" इति । मीमन्ताकरणे तु पत्यवतः,—

स्ती यदा कतमीमना प्रस्येत कथञ्चन ।

ग्रहीतपुचा विधिवत् पुनः संस्तारमईति ॥

हारीतः,— सक्त्मकत्सुसंस्ताराः सीमन्तेन दिजस्त्रियः ।

यं यं गभें प्रस्यन्ते स गभेः संस्तृतो भवेत् ॥

पारस्तरोऽपि,— "प्रथमगर्भे षष्ठेऽष्टमे वा, तथाच प्रंसवनसी-

पारस्करोऽपि, "प्रथमगर्भ षष्ठऽष्टमे वा, तथाच पुंसवनसी-मन्तोन्नथने चेत्रसंस्कार्त्वात् सकदेव कार्ये, न प्रतिगर्भम्"। सकत् च संख्वता नारी सर्वगर्भेषु संख्वता।

दति देवलोकः।

कर्काचार्यासु गर्भान्तरेष्वनियम द्रायाङः।

इति सीमनोन्नयनम्।

### श्रय जातनर्भ।

"एते जातकर्म च," श्राङ्यमर्गादिण् धातोः "कः" (श्रा+ रण्+क) एते (श्रागते गर्भकोषात् कुमारे जाते निर्गते वा) जातकर्माभिधम् कर्म। श्रव यहानादिकं, तत्वर्वमग्रीचप्रकर्णे सेखं। तप जनामकारो याज्ञवक्षीयेऽनुसन्धेयम्। गर्भिणीपतेः चौरादिनिषेधः।

तथाच स्रति:,—

वहनं दहनं चैव वपनं सिन्धुमळ्जनम् ।
पर्वतारोहणं चैव न कुर्यात् गर्भिणीपितः ॥
तथा,— नोदचतोऽभिष्ठ स्नायाच च आश्रादि कर्त्तयेत् ।
श्रन्तर्वत्याः पितः कुर्वन्नप्रको भवति ध्रुवम् ॥
एतदिहितेतर्विषयभित्याचार्याः । यत एतत् प्रकर्णे,
श्राधानपर्वदीचासु प्रायक्षित्ते गुरोर्म्टतौ ।
सञ्चासे यज्ञकाले च सप्तभिर्वपनं स्रतम् ॥
तथा च श्रलभ्ययोगादौ समुद्रस्नानम् ।

इति जातकर्म।

श्रय नामकरणाखं कर्म।
"श्रुचेकादग्रे नाम" द्रतीदमग्रीचान्तोपखचणम्।
श्राप्तीचे तु व्यतिकान्ते नामकर्म विधीयते।

द्ति ग्रह्वन्वचनात्।

तसात् चलविट्श्द्राः स्वाभौचान्तिषु नाम कुर्युरित्यर्थः।
पारस्करः। "दमम्यामुत्याय ब्राह्मणान् भोजयिता पिता नाम
करोति, द्यचरं चत्रचरं वा घोषवदाद्यन्तरस्यं दीर्घाभिष्ठानम्।
कतं कुर्यान्न तद्धितमयुक्ताचरमाकारान्तं स्त्रिये तद्धितम्। भर्म
बाह्मणस्य, वर्म चित्रयस्य, गुप्तेति वैश्वस्य दाचेति श्वद्रस्य"। इति।
श्रद्यार्थः, मातुर्द्भम्यां दममदिने जत्यापनम्। श्रभौचान्ते

नामकरणं, ब्राह्मणचयभोजनं नियतम् । घोषवद्चरं त्रादौ यख नामः तद्घोषवदादि। गघङाः, जझञाः, उठौ णो, दधौ नो, वभौ मो, यरौ को, वहौ, घोषवंनाः। त्रन्तर्मध्ये त्रनं त्रवरं यख तदन्त-रख्यम् । यरखवा त्रन्तखाः । दौर्घमङ्गखमभिष्ठानं त्रवमानं यख तत् तथा। कतं (कत्प्रत्ययान्तम्)। यदा कतं पूर्वपुरूषेषु विक्तिं नाम । तथा च प्रह्वः,— "कुखदेवतामबद्धं पिता नाम कुर्यात्" दति। कुखमबद्धं देवतामबद्धं वेत्यर्थः। स्त्रीनान्नि विभेषोऽयुक्राचर-मित्यादि। ब्राह्मणस्य गर्म (मङ्गखप्रतिपादकं नाम)। चित्रयस्य वर्म (गौर्यप्रतिपादकं नाम)। वैक्यस्य गुप्तं (धनवत्तादिप्रतिपादकम्)। ग्रद्धस्य दाषेति (प्रेथ्यलप्रतिपादकम्)। नाच नान्नि ग्रमादिप्रयोगः, ब्रह्मचर्य्यानन्तरं ग्रमादिप्रयोगस्य वच्छमाणलात्।

> प्राक् चूडाकरणादातः प्रागनप्राधनाच्छुचिः। कुमारस्य स विजेयोः यावन्योज्जीनिवन्धनम्॥

दति दृद्धगातातपोन्नेश्च ब्राह्मणवासकादीनां जन्माविध न गर्मादि प्रयोगः।

मनुर्पि, माङ्गल्धं ब्राह्मणल स्थात् चित्रयस्य बनान्तितम् । वैग्यस्य धनमंयुक्तं ग्र्ड्स्य तु जुगुस्तितम् ॥ इत्यादि । तथा, म्लीणां सुखोद्यमकूरं विस्पष्टार्थं मनोरमम् । माङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाग्रीर्वादाभिधानवत् ॥

"दिगिनिशिवशताहे तत् कुलाचारतो वा" दित ज्योति-विचनात्।

नामधेयं दशम्यां तु दादकां नापि कार्येत्।

पुछ तिथी मुहर्त्त वा नचने वा गुणान्विते ॥

दित मनूतेश श्रन्थदापि नामकरणसमाचारः । तच दशम-दिनपचो नाद्रियते, श्रशौचानन्तरमन्यपचाणां सम्भवात् दत्यभिज्ञाः। कच्यतस्कारास्तु "दशम्यां" दत्यच, येषां दशाहात् प्राक् श्रुद्धिः तेषामित्याज्ञः ।

इति नामकरणम्।

### श्रथ विश्विकामणकर्म ।

"चतुर्धं मासि निष्ममः" । मनुः, चतुर्धं मासि कर्त्त्रं शिशोर्निष्ममणं ग्रहात् । यनु भवियो,—

दादग्रे इनिऽराजेन्द्र शिशोर्निकामणं ग्टहात्।

इति "तत् प्राखाभेदात्" इति (१) कस्यत्रकाराः । इदं च वास्तकस्य चन्द्रतारानुकूसे ग्रंभदिने कार्यम् । श्रव दिनस्य श्रनि-यतलात् चतुर्यमासे यथासम्भवं कार्यलात् ।

एवमचप्राशनेऽपि बोध्यम् । चूड़ादिके तु वर्षमधे शुभदिने इति बोध्यम् ।

इति विहिनिक्रमः।

#### त्रयात्रप्राग्रनम्।

षष्ठेऽन्नप्रामनं मासि । "यत्तु सम्बत्धरेऽन्नप्रामनम्" इति ग्रंख-निखितवचनम्, तत् ग्रण्फलविषयं इति निच्यतस्काराः ।

द्त्यचप्राग्रनम् ।

<sup>(</sup>१) विकल्प इति कल्पतककाराः।

## श्रय चुड़ाकर्म।

त्रुड़ा कार्या यथाकुलम् । मनुः,—
प्रथमेऽब्दे त्रितीये वा कर्त्तयां श्रुतिचोदनात् ।
प्रश्नकिखितौ "प्रथमेवर्षे चूड़ाकरणं पञ्चमे वा" ।
पारस्करः,—"यथा मङ्गलं वा मर्वेषां यदा यथाकुलाचारम्" ।
यथामङ्गलमिति, धर्मगास्तान्तरविदितकालान्तरस्रोपलचणम् ।

यथामङ्गलमिति, धर्मग्रास्तान्तरविहितकालान्तरस्थोपलचणम्। श्रतएव कै सित् पञ्चमेऽब्दे कियते, वज्जभिम्त उपनयनात् पूर्वं यदा-कदापि कियते।

श्रव विशेषः सात्यनारे,—

स्नोर्मातरि गर्भिषां चूड़ाकर्म न कारयेत्, प्राक् पञ्चवत्वरादृद्धें गर्भिष्णामपि कारयेत्। चूड़ाकतौ प्रिक्रोर्माता गर्भिषी चेद्यदा भवेत्, कते गर्भविपत्तिः खाद्दमत्योवी सुतस्य वा ॥

द्रं चूड़ादिनं नर्म मनरादिमामपद्गे,— चूड़ा माघादिपद्गे लघुचरम्टद्भे मैचहीने मणको, नानंग्रे मत्स नेन्द्रेयग्रभगगनगैर्टद्भिगैर्विणुवोधे। नोरिकाद्यष्टपष्टान्यतिथिषु न यमाराह्युग्माब्दमासे, नो जनार्चेन्दुमासे विधटकुजगणिन्यूचलग्नार्कग्रद्भौ॥ दति च्योतिःशास्तात्।

श्रत्र माघादिपदं मौरमामपरम्। "मौरो मामो विवाहादौ" दृत्युकेः॥

द्रति चूड़ाकर्मकालाः।

#### श्रयोपनयनकालाः।

विश्वामित्रयात्रवस्क्यी,-

गर्भाष्टनेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणखोपनायनम्। राज्ञामेकादग्रे मैके विशामेके यथाकुलम्॥

श्रव गर्भपद्ख समासे गुणीसूतलेऽपि राज्ञामित्यादिष्यणन्यः,

श्रय ग्रव्दानुशासनं केषां श्रव्दानामितिवत्।

गर्भादेकाद्ये राज्ञो गर्भानु दाद्ये विग्रः।

इति मनूकेः।

मयनभेव नायनं पद्यादुपोपसर्गः । फलकामनायान्तु मतुः,— मन्नवर्त्तस्य कार्यः विषयः पञ्चमे ।

राज्ञो वन्नार्थिनः षष्ठे वैश्वसेहार्थिनोऽष्टमे ॥

उपनयनस्य परमाविधमाह याज्ञवलकाः,--

श्रायो इगाद्वा विंगाच चतुर्विंगाच वस्ररात्,

मह्मचत्रविशां काल श्रीपनायनिकः परः।

त्रत ऊर्डें पतन्येते सर्वधर्मवशिष्कृताः,

भाविचौपतिता त्रात्या त्रात्यास्तोमादृते कतो:॥

उन्नकासयितिकमेऽपि त्रात्यास्तोमनामकन्नत्तकरणक्षपप्रायिस्ना-नन्तर्मेव संस्कार्य्य एव द्रत्यर्थः । स्त्रीणान्तु विवाद एव उपनयनम्,—

वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्रतः।

इति मनुकेः।

याञ्चवस्काः, प्रतिवेदं ब्रह्मचयं दाद्गाब्दानि पञ्च वा। यहणान्तिकमित्येके केप्रान्तसैव घोड्गे॥ तथा, - गुरवे च वरं दत्ता सायाच तदनु ज्ञया।
वेदं व्रतानि वा पारं नीलाणुभयमेव वा॥
श्रविषुतव्रद्धाचर्यो सच्चां स्त्रियमुद्देश्॥
गुरवे वरं (श्रभिलिषतं) श्रभिलिषतदानाग्रकौ तदनु ज्ञया
दत्यर्थः।

पारस्करः,— "चयः स्नातका भवन्ति, विद्यास्नातकः व्रत-स्नातको विद्यावतस्नतकः"। समाय वेदमसमाय व्रतं यः समावर्त्तते स विद्यास्नातकः यो व्रतं समाय वेदमसमाय समावर्त्तते, स व्रत-स्नातकः। य उभयं समाय समावर्त्तते स विद्यावतस्नातकः॥ ननु— श्रनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकमपि दिजः।

द्ति निषेधेऽपि श्रसाहें श्रे समावर्त्तनानन्तरं कथं विसम्य विवाह दति चेत्, सत्यम्।

"श्रभावे कन्यकायाः स्नातकं वर्तं चरेत्, श्रपि वा चित्रयायां पुचानुत्पादयीत वैश्वायां वा" इति पैठीनिभवचनात् कित्युग-निषिद्धेषु "वज्ञकालं ब्रह्मचर्यं" इति निषेधोक्तेश्व श्रमादेशममाचारः सङ्गच्छत एव। चित्रय वैश्वयोः कलावभावात् न तिद्वाद्यवद्यारः। श्रद्राणां तु यमः,—

ग्रूद्रोऽप्येविम्बिधः कार्य्या विना मन्त्रेण मंक्ततः। न केनिचत्यमस्जत् कन्दमा तं प्रजापितः॥ कन्दमा (वेदेन) न समस्जत् (न समयोजयत्)। ब्राह्मे,— विवाहमाचं मंस्कारं ग्रुद्रोऽपि सभतां मदा। माचग्रव्देन विवाहेतरमंस्कारनिष्टित्तिः, तथाच यमब्राह्मोितिभ्यां श्रुद्राणां गर्भाधानपुंगवनमीमन्तोस्रयनजातकर्मनामधेयवहिर्निष्क-मणास्त्रप्राग्रनचूड्राकरणविवाहाः॥ इति॥

श्रय विवाहकालाः।

विष्णुपुराणे,— वर्षे रेकगुणां भार्यामुद्दहे स्त्रिगुणः खयं। मनुः,— चिंग्रद्वेषां वहेत्कन्यां चद्यां दादशवार्षिकीं। व्यष्टवेषीं ऽष्टवर्षां वा धर्मे मीदित सलरः॥

सतरः ग्रहस्थात्रमे तरायुक्तः सनित्यर्थः ।

कम्मपः, - श्रष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी। दम्मवर्षा भवेत् कन्या श्रत ऊर्द्ध रजखला॥

ग्रतानन्दः,— गर्भाद्ष्टमवर्षे तु द्रामे दाद्रगेऽपि वा ।

कन्यापरिणयः ग्रस्त इति वात्यादिममातं॥

सम्बर्तः, - विवाहस्त्रष्टवर्षायाः कन्यायाः प्रस्तते वुधैः।
गर्भादिति सर्वचात्वयः॥

श्रन्यथा,— कन्या दादशवर्षाणि याऽप्रदक्ता रखे वसेत्।
सणदत्या पितुसास्याः सा कन्या वर्येत्स्वयं॥
दत्यादियमादीनां तु(१) दादशवर्षे विवाहे निन्दावचनमनर्थकं

खात्। श्रतएव जन्मावधिमप्तमवर्षे गौरीलमाइ कथ्यपः,— मप्तवर्षा भवेद्गौरी दणवर्षा तु कन्यका। प्राप्ते तु दादभी वर्षे कुमारीत्यभिधीयते॥

भविष्येऽपि, - षप्तवर्षा भवेद्गौरी दशवर्षा तु नमिका।

दाद्गे तु भवेत् कन्या त्रत कर्द्धे रजखला॥

<sup>(</sup>१) जन्मावधिद्वादश्यवर्षे।

सप्तमवर्षस्य गर्भाष्टमलादिति कन्यतस्काराः। तथाच मासद-याधिकपड्वर्षानन्तरं स्त्रीणां विवाहकान्त द्रत्यर्थः। तस्त्रिन्नेव वर्षे कन्याया गौरीलमिति च सिद्धं। एवं च<sup>(१)</sup> स्त्रीणां जन्मावध्येकादग्र-वर्षमभिद्याण विवाहकान्तस्य परमाविधिरित्युकं भवति ।

विशेषं मनुराष,-

श्रमिष्डाच या मातुरमगोचा च या पितुः। सा प्रश्रम्ता दिजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥

दारकर्मणि (दारलजनके विवाहे) मैथुने (मिथुनवाच्यस्ती-पुंगमाध्य त्राधानकर्मणि) न केवलं स्तीमाध्यपाकादिकर्मणि। त्रपि तु उभयमाध्येऽपि मा प्रश्नसेत्यर्थः। "मिथुनमाध्यधर्मपुचौत्पत्ती" दति कच्यतक्काराः॥

व्यासो विशेषान्तर्माइ,—

सगोचां मातुर्णे ने नेक्न्युदाइकर्मणि। जन्मनानोरविज्ञानादुदहेदविग्रद्भितः॥

तदमभवे याज्ञवल्यः,—

पञ्चमासप्तमादूर्डं माहतः पिहतस्तथा।

माहतो माहसनाने मातामहादिपिण्डेन सिप्छामपि पश्च-मादूई उदहेत्, पिहसनाने पितामहादिपिण्डेन सिप्छामपि संप्रमादूई उदहेदिहार्थः।

तत्रायसभावे, विश्वष्टः,—

पश्चमीं मप्तमीं चैव माहतः पिहनस्तथा। इति।

<sup>(</sup>१) एतेन।

"एतदर्वाङ्निषेधार्थं, न पुनम्तलाष्ट्रार्थम्" दति विज्ञानेयराः। कच्यतरौ तु "त्रममानजातीयकन्याविषयमेतदिति"। "सवर्ष-मातामइकु सविषयमेतदिति" मदनपासः । विमाहसपिण्डेऽपि निषेधमाच सुमन्तुः, पित्रपत्यः सर्वा मातरः तङ्गातरो मातुकाः। तद्द्शितर्ञ्च भगिन्यः, तद्पत्याः भागिनेयाः खः, ताः सञ्जरकारि-ष्यसासकुकां नोदहेदिति। सर्वमिदं सभावपरं। त्रत्यनासभावे तु सुमन्तुः,— "चीनतीत्य माहतः, पञ्चातीत्यपिहतः" ॥ पेठीनसि-रिप "चीन् माहतः, पञ्च पिहत इति वा" अच "समानजातीये पञ्च, श्रममानजातीये चीनिति व्यवस्थितो विकचः" इति कच्यतरौ यद्यपुत्रं तथापि ऋसाद्गे रुद्धैरत्यनासमावपरमित्येव लिखितं। बद्धानां तु, पित्वस्मात्वस्जाचणं यथा, श्रादिपुरुषस्य सगोचले-ऽपि पित्रमन्तानो भवति। ऋन्यगोत्रले मात्रमन्तानो भवति" इति। "यनुपित्रखरः खसः पुनाः" दत्यादिकात्यायनोकिसुदादत्य तिचितन्तकारैः पित्वस्वादिकचणं उक्तं। "तत् अगौचे क्रिया-कर्त्तुरिधकारे च" त्रसाद्देशनिबन्धकारै किंखितलात् न तक्षचणमा-द्रियते<sup>(१)</sup>, तत्र त्रात्मवन्धोर्पि उपात्तलात् । काचिद्साद्देशविछ-द्धापि दाचिणात्यमंग्रहकारिका,—

> चतुर्थी मुद्दहेत्कन्यां चतुर्थः पञ्चमीमिष । पाराध्यमते षष्टीं पञ्चमो न तु पञ्चमीं ॥ पञ्चमः पञ्चमीं कन्यां नोद्दहेदिति यदचः । पित्रपचे निषेधोऽयं मात्रपचे न दूषणं॥

<sup>(</sup>१) चादियते । तत्र चात्मक्योरपिदच्चिणात्यसंग्रहकारिका,-।

कूटस्थगणनायान्तु यस्यां पङ्कानै वरस्थ तु । जनको विद्यमानश्चेत् स पचः पित्रपचकः॥ जननी विद्यमानां चेत् स पचो माह्यपचकः। इति, विवाइयेदित्यनुहत्तौ याज्ञवस्यः, "त्रसमानार्षगोचजाम" इति च्चेरिदं त्राषें प्रवरदत्यर्थः। गोचं वंग्रपरम्पराप्रसिद्धं। त्रापसम्यः, समानगोत्रप्रवरां कन्यासुद्वीपगस्यच । तस्यामुत्पाच पिष्डादं ब्राह्मकादेव शैयते॥ एवं प्रवरेक्येऽपि,— परिणीय सगोवां च समानप्रवरां तथा। त्यागं कता दिजस्तासास्तत्रशान्त्रायणं चरेत्॥ दति पार्थकोन परिगणनात् त्यागञ्चोपभोगस्य, न तस्याः। ममानप्रवरां कन्यां गोचजामथवापि वा। विवाहयति यो मूढ्स्स वच्छामि निष्कृतिं॥ उत्पृच्य तां ततो भार्यां माहवत्परिपासयेत्।

दति भातातपोक्तेः । समानप्रवरखङ्गमात्र बौधायनः,—

एक एव च्छिर्षावत् प्रवरेखनिवर्त्तते ।

तावत्समानगोत्रलस्ते स्म्बित्तरोगणात् ॥

समानगोत्रलं समानप्रवरलमित्यर्थः। सम्बित्तरोगणेषु विशेषमाच
संग्रहकारः,—

पञ्चानां चिषु सामान्याद्विवाह स्त्रिषु दयोः।
स्वाक्तरोगणेखेवं वंग्रेखेकोऽपि वारयेत्॥

तथाच पञ्चार्षेयाणां ऋषित्रयानुहत्तौ मिथो न विवाहः। व्यार्षेयाणां ऋषिदयानुहत्तौ न विवाहः। भ्रेषेस्वेकानुहत्तौ विवाह इत्यर्थः,—

जमद्ग्निर्भरदाजो विश्वामिनोऽनिगौतमौ।
विग्निष्टः गौतमोऽगस्तिरेषां येऽयोनुयायिनः॥
येषां तुन्धर्षिश्चयस्तं नोदद्दन्ति मिथस्ति।
एष(मष्टानामेकस्थापि येषु प्रवरेष्वनुवर्त्तनं, तेषां मिथो न
विवादः। सर्वर्षितुन्धते च विवादः स्फुट एव।
कथ्यपः,— श्रनेकेभ्योऽपि दत्तायामनूदायां तु यच वै।
वरागमञ्च सर्वेषां स्रभेतादिवरस्तु तां॥
पञ्चादरेण यद्दत्तं तस्याः प्रतिस्त्रभेत मः।
तथा गक्रेषुरूदायां दत्तं पूर्ववरो हरेत्॥

त्रनेकेशो धनग्रहणपूर्वकं दातुं प्रतिज्ञाय यच वह्ननां वराणां त्रागमनं, तचादिवरः तां कन्यां क्रभेत, त्रन्ये तु पूर्वदत्तमृत्यं क्रभेरिकायर्थः।

नारदः, — प्रतिग्रह्मा तु यः कन्यां वरो देशान्तरं ब्रजेत्।
चीनृद्धन् समितिकम्य सा चान्यं वरयेद्वरं॥
प्रतिग्रह्मा वाग्दत्तां खीक्तायेव्यर्थः। कात्यायनः, —
प्रदाय ग्रन्तां गर्वेद्यः कन्यायाः साधनं तथा।
धार्यां सा वर्षमेकन्तु देयान्यसी विधानतः॥
यमः, — वाचा दत्ता तु या कन्या यदि तस्या वरो म्हतः।
न च मन्त्रोपपन्ना सा कन्यका पितुरेव सा॥

मन्त्रोऽच पाणियाचणिकः।

मनुः, - कन्यायां दत्ताग्रस्कायां स्रियेत यदि ग्रस्कदः। देवराय प्रदातया यदि कन्यानुमन्यते॥

त्रय पुचदु हिचोरब्दमधे व्रतविवाहिवचारः।

च्योतिः शास्त्रं,-

नपुंविवाहोर्द्धमृत्ययेण विवाहकायें दृष्टित्य यहात्।

न मण्डनादुपरि मुण्डनं स्थात् तन्मुण्डनान्मण्डनमन्त्रगेव ॥

तथाच पुचोपनयनादूईं दुहित्ववाहः।

प्रत्युदाहो नैव कार्योऽयोकस्मिन् द्हिलद्वयं।

न चैकजन्ययोः पुंमोरेकजन्ये च कन्यके॥

नूनं कदाचिदुदाको नैकधा मुखनदयं।

पुचीपरिणयादूडें यावद्निचत्रष्टयं॥

पुत्र्यनारस्य कुवीत नोदाइमिति सूर्यः।

एतत विमात्कन्याविषयं। अन्यथा स्रतौ,-

एकोदरप्रस्तानां विवाहो नैकवस्ररे

विवाही नैव कर्त्तचो गार्गस्य वचनं यथा॥

इति एकोदरवैयर्थं सात्। श्रमक्षवे तु,-

विवाइस्वेकजन्यानां षएमासाभ्यन्तरे यदि।

श्रमंत्रयं चिभिवंधें सचैका विधवा भवेत्॥

रत्यादीनामपि वैयर्थं स्वात्। तथा,-

एकोदये करतन्त्रप्रणं यदि स्था-

देकोदरखवरयोः कुलमेति नागं।

एकान्दके तु विधवा भवतीति कन्या,
न ह्यन्तरथविहतं ग्रुभदं वदन्ति ॥
श्रिधकोऽत्र एकलग्नविवाहे दोषः ॥ इति ।
श्रय ज्येष्ठपुत्रदुहिचो र्ज्येष्ठमाषे व्रतविवाहादिविचारः ।
ज्योतिःशास्त्रे, — ज्येष्ठे मापि तथा माघे<sup>(१)</sup> जौरं परिषयं व्रतं।
ज्योद्यप्त्रदुहिचोख यद्गेन परिवर्ज्यत् ॥

रह्मासायां,-

त्राद्यगर्भदुहितुः स्रुतस्य वा च्येष्ठमासि न हि पाणिपीड्नं। च्योतिःशास्त्रे,—

जन्ममासि न च जन्मभे तथा नैव जन्मदिवसेऽपि कारयेत्।
त्राद्यगर्भदुहितः स्तस्य वा न्येष्टमासि न हि जात मङ्गलं॥
त्रव जन्ममासि द्रत्यादिचिकनिषेधोऽपि न्येष्टपर एव।
त्रव्या,— जन्ममासे च पुचाब्या धनाब्या जन्मभोदये।

जनाभे च भवेदूढ़ा कन्या हि धुवधनातिः॥ जन्मोदये जनासु तारकासु मासेऽयवा जनानि जनाभे वा, व्रते न विप्रोऽध्ययनं विनापि

प्रजाविभेषैः प्रचितः पृथिव्यां ॥

दत्याचुिततिरोधः स्वात्।

पिल्रच्छेष्ठं विना चान्यो च्येष्ठपुची न दूर्याति। माहतो च्येष्ठपुचर्येच दोषो वै प्रजायते॥

<sup>(</sup>१) मार्गे।

श्रमभावे तु ज्योतिः शास्त्रे,—

कत्तिकास्यं रिवं त्यक्षा ज्येष्ठे ज्येष्टस्य कारयेत्। उत्सवेषु च सर्वेषु दिनदादशकं त्यजेत्॥

द्यमां प्रथमं क्रिकानचे दाद्गाइं रवेभींगः "सौरो मासो विवाहादौ" दत्युक्तलात् ॥ चौष्ठो (दृषः),—

प्रथमं ज्येष्ठमामस्य मात्रयो वर्क्कयेदिनं।

ग्रुभक्तमंक्षप्रजानामष्टौ च मुनिभाग्रदिः॥

द्याइं चैव गार्ग्यस्य दाद्याइं दृइस्पतिः।

श्रजभोगाग्निभं भोगं यावन्तुनिपराग्रदः॥

त्रजोऽच सेषमासः तथाच सेषमासानग्रदिनपञ्चकेऽपि वर्जनं। तावत्रस्टतिकत्तिकाप्रवत्तेरिति पराग्रराभिप्रायः॥

त्रयाग्रुद्धिकालेषु कर्मकरणाकरणविचारः।

तत्राद्वसात्कतग्रुद्धिमारकारिकाः तिखिला पश्चात्माचि-वचनानि लेखानि । तथाच,—

कालकाग्रिविताऽधिमास्य हरिस्तापेऽय याम्यायने,
ग्रवीदित्य उदीरितोभयविधे राग्येकतारैकातः।
तस्यां सिंहरहस्पतौ सुरग्ररौ वाले च रुद्धे कवौ,
सन्ध्यासंगतवास्त्रवार्द्धकवग्राचिष्टे च ग्रद्धं बुवे॥
लग्नाब्देऽधिकवत्सरे मकरगे जीवेऽपि कास्तोऽग्रिचिः।
तचोड्रादिषु भर्वकर्मकरणं देशेषु श्रिष्टेर्मतं॥
कालाग्रद्धिषु काम्यकर्मकरणं नैवाथ नैमित्तिकं।
नित्यं कार्यामिह प्रतिप्रसवाङ्गूलं विशेषं बुवे॥

त्रिष्टवाक्यं, — गुर्वादित्ये गुरौ सिंहे नष्टे गुड़के मसीम्बुचे। याम्यायने हरौ सुप्ते सर्वकर्माणि वर्क्कयेत्॥ तथा, — वाद्यं दृद्धं गते जीवे सर्वकर्माणि वर्जयेत्।

रहिं (रह्नें) गुर्वादित्यो दिविधः। एकराश्रिगतलेन एकनचत्र-गतलेन चेति। एकनचत्रगतलं च भिन्नराशिखले सतीति बोधं।

तथाच कग्यपः,—

श्चिकमन्दिरगतौ यदि जीवभानू शुक्रोऽस्तगः सुरवरैकग्रुस्थभिंहे। नारभ्यते व्रतविवाहग्टहप्रतिष्ठा-चौरादिकर्मगमनागमनं च धीरैः॥

नारभात द्रायनेन त्रारअवृतं कार्थे। ऋषैकेत्यत्र मन्दिरं राणिः
तथाच दृष्ठस्मतिसूर्यो एकराभिगतौ यदीत्यर्थः। एतेन दृष्ठस्मतेरसं
गमनम्युकं। रविभोग्यनचनगतलमस्तलमिति सचणात्। गुर्वादित्य
दृत्युकौ सर्वधर्मनिषेधः काम्यपरः॥ त्रच माचिवाक्यानि मसमामप्रसावे सेख्यानि शुक्रनष्टलचातुर्विध्यप्रतिपादकोक्तयो सेख्याः।
उत्तरसौरे,—

ग्ररोर्मध्यममंकान्तिहीनश्चान्द्रोऽधिवत्वरः । बर्च्यानि तत्र यज्ञार्घप्रतिष्ठादीनि नाकिनां ॥ स्पुटमंकान्तिहीनश्चेत् केऽपाज्ञरिधमामवत् । प्रतानन्दः,— त्रतिचारगतोजीवो नैति चेत्पूर्वमन्दिरं । सुप्तमनत्वरो ज्ञेयः मर्वकर्मसु गर्हितः ॥ सिंद्रस्थं मकरस्थं च ग्रहं यत्नेन वर्जयेत् । रति देवीपुराणोक्तेः, प्रतिष्ठादौ मकरत्रस्थातिरपि वर्ज्य छक्तः तत्र जुप्तसम्बद्धरे कर्मनिषेधेऽपवादमात्र सत्याचार्यः,—

राशिचयं सञ्चरतेऽब्दमधे
नायाति पूर्वे यदि जुप्तवधें।
जीवो न कर्माणि तदा च
कुर्यादिहाय गौड़ोड़ विहारदेशान्।

च्योतिः शास्त्रे मकर्टस्यतावणपवादः,—

नर्मदापूर्वभागेत प्रोणस्थोत्तरदिष्णे। गण्डुक्याः पश्चिमे पारे मकरस्थो न दोषभाक्॥

एतद्धिसम्बद्धराष्युपस्तवणं, श्रस्तद्देशशिष्टाचारात्। तथाच नुप्तवर्षाधिकवर्षमकरट्डस्पतिषु धर्वकर्मकर्णं निःसन्दिग्धमेव। धर्वास्त्रिप कालाग्रद्धिषु काम्यकर्मणो धर्जनं, न नित्यनैमित्तिकयो-रिति सामान्यतः। विशेषस्त तच तच लेखाः।

श्रथ मलमामकारिका।

काम्यारमधमापने न मिलने मासे तु क्रच्छादिकं,
प्रारखं हि समापयेत्तद्पि यत् मासास्ततं सावनात्।
प्रारम्भस्य समापनस्य च यदा मध्ये धिमासस्तदारखं कर्म समाचरेदय नवे तीर्यामरेक्ये त्यनेत्॥
रोगावर्षणग्रान्तिसुख्यकरणाकास्त्रतीचासहस्थारमं च समापनं च मिलने काम्यस्य कुर्यादुधः।
नो सुद्येसकलं तदास्यगतिकं नित्याग्रिहोचादिकं
नित्यं सोमसवादि नो गतियुतं नाधानमस्याचरेत्॥

जातेष्टिं गतिसंयुतां न चि तदा कुर्याद्योत्यर्जन-मानादिं यहणोदितं लगतिकं जनाद्यशौचं चरेत्। पुंस्तिप्रमुखाञ्चखादनविधिप्रान्तानि कर्माणि षट्, प्रैतं सर्वमसभयोगविहितं श्राद्धादिकं कर्म च॥ ग्रद्धे मासि मसीसुचे च तनुयाच्छाद्धं तु दंशीदितं, दानश्राद्भविधी युगादिषु तथा श्राद्धादि मन्वादिषु। प्रेताब्दोदककुमादानमच नो चि प्रेतपचाष्टका-न्वष्टकाप्रियतानि जातु मिलने श्राद्धानि कुर्यासुधीः॥ श्राद्धे मासि मलेऽधिमामविहितं श्राद्धं विपचोदितं, षष्ठले मति तस्य पूर्णदिवमाधोऽप्यूनवाएमासिकं। इउद्धे मासि मृतस्य मासि मलिनेऽयादादिकं लाचरे, दन्यदार्षिकमाचरेद्धि मिलने नष्टस्य मासे मले॥ नयस्तीगमनं तथा परिषयानन्तर्यभाङ्गतने-न्दोर्वन्दापनमचनूतनगयात्राङ्कं विद्धासुधीः। विष्नेशवतमञ्ज्यविहितं तचाय संसप्ने, चीणे मासि विवादमुख्यरहिताः स्रुत्याः श्रुतेस कियाः॥ मासञ्चाधिक त्राश्विने यदि भवेत् तत्पूर्वतो वामरा-नष्टी चाधिकमाममेव सकलं ग्रुद्धां च ग्रुकाष्ट्रमीं। यावद्याण शिवार्चनं विरचयेचेनुख्यपचचमो-उग्रक्तः ग्रद्ध दहाचरेत्रवदिनादिस्वेकपचं सुधीः॥ मसमासस्हपं ब्रह्मसिद्धानी,—

चान्ह्रो मासो श्वमकान्तो मलमामः प्रकौत्तितः।

ग्टब्रपरिभिष्टे,—

मलं वद्नि कालस्य मामकालिवदोऽधिकं।
कालाधिकां विष्णुधर्मोत्तरे उकं,—
सौरेणाव्दम्य मानेन यदा भवति भार्गव।
मावने त तदा माने दिनषद्धं न पूर्यते॥
दिनराव्यद्य ते राम प्रोक्ताः मम्बस्यरेण षट्।
भौरमवत्यरस्थान्ते मानेन ग्रिग्निन त॥
एकादगातिरिस्यन्ते दिनानि भ्यानन्दन।
वर्षदये साष्टमासे तसान्तामोऽतिरिस्यते॥
म साधिमासकः प्रोक्तः सर्वकर्मस् गर्हितः।

मौरवर्षस्य पञ्चषष्ठ्यधिकविणतदिनात्मकलं। चन्द्राब्द्सु चतुः-पञ्चाग्रद्धिकविण्यतदिनात्मकलमिति एकाद्ग्रदिनाधिकलं॥ नन्वेवं सति दिनार्द्धन्यूनोऽधिको मास दति चेत्सत्यं। प्रतएव सिद्धान्ते,— दाचिंगद्भिर्गतैर्मासे दिनैः षोड्ग्रभिस्तथा।

घटिकानां चतुष्कीण पतत्येकोऽधिमासकः ॥ दति ।

ननु श्राधिका मित मामस्य मललं कुत इति चेत्,

तस्य नपुंसकतादित्येवेथ्य। तथाच, ज्योति:शास्त्रे,—

श्रसङ्कान्तो हि यो मामः कदाचित्तियिष्टद्भितः। कलान्तरात्समायाति च नपुंचक दस्यते॥

नपुंचकलं कुत इति चेत्, पुरुषस्य सूर्यस्य तन्माचेऽभावादि-त्येवेथ्य। तथाच, तचैव,—

माचेषु दाद्यादित्यासपनो हि वयाजमम्।

नपुंसकेऽधिके मासे मण्डलं तपते रवेः॥ ग्रातातपस्त्राह,—

मली खुचैः समाकान्तं सूर्यमङ्कान्तिवर्जितं। मजी खुचं विजानी यात् सर्वकर्मसु गर्हितं॥ यनु काठकरुद्दो,—

यसिकासे न मङ्गानिः मङ्गानिदयमेव वा। मसमासः स विजेयो मासे चिंगत्तमे भवेत्॥

दति स्कुटमानात्रितं। दाचिंग्रज्ञिरिति मध्यममानात्रितिमिति न किस्विदिरोधः।

सघुद्वारीतः,—

दन्द्राग्नी यत्र इत्येते मासादिः स प्रकीर्त्ततः।
त्रिश्चामो स्ततौ मध्ये समाप्तौ पित्रसोमकौ॥
तमतिक्रम्य तु यदा रविर्गच्छेत् कदाचन।
त्राचो मसीसुचो जेयो दितीयः प्राह्मतः स्ततः॥

तथान, ग्रक्कप्रतिपदादिदर्शान्तोमासः, संक्रान्तिरहितोऽधिमास द्रायायते। दर्शान्तमासः संक्रान्तिदययुकः चयमासः। उभयोरपि मललिमायर्थः। ननु श्रिधमासे जातस्य उत्तरवर्षेषु कस्मिन् मासे स्वनचनपूजादि, मृतस्य तु कुन श्राद्धादि श्रनुष्ठेयमिति चेत्, उच्यते। तस्य उत्तरमासेऽन्तर्भावात् उत्तरमासे तदनुष्ठेयं। तथान, ज्योतिःपितामहः,—

षष्ठ्या तु दिवसे मांसः कथितो वादरायणैः ; पूर्वाह्वें तु परित्यच्य उत्तराह्वें प्रशस्त्रते॥

इति च्योतिःशास्त्रे। तथाच एतदाकामुपजीव्य माधवाचार्य्याः,— चान्द्रोऽधिमासः संकानाः मोऽन्तर्भवति चोत्तरे। इति। श्रच कश्चिदिशेषः सुधीभिरवधेयः॥

तच कंचिनामं धला विचारणीयं। तथाच, भाद्रेमामि श्रिधमामपाते श्रादो मक्तपौर्णमामीपचः, तदुत्तरं मलद्र्भपचः, तदुत्तरं ग्रह्मपौर्णमामीपचः। तच कस्यचित् जन्म मलद्र्भपचे, कस्यचिक्तन्म ग्रह्मपौर्णमामीपचे, तचाधिमामस्य ग्रह्मपौर्णमामीपचः उत्तर्भावे सिद्धे मित मक्तपौर्णमामीपचस्य ग्रह्मपौर्णमामीपचेऽन्त-भावः। मलद्र्भपचस्य भाद्रग्रह्मद्र्भे पौर्णम्यन्तपचमाश्रित्य श्राश्चिनद्रभपचतया व्यवद्भियमाणेऽन्तभावः। तथाच मलमामवर्षे ग्रह्मपौर्णमामीपचे यस्य जन्म, पश्चात्जातस्यापि तदुत्तरग्रह्मवर्षे वादौ स्वनचचपूजा। यस्य मलद्रभपचे जन्म, तस्याधिजातस्यापि श्राश्चिनकृष्णपचतया व्यवद्भियमाणे कृष्णपचे पश्चात् स्वनचचपूजा। एवं श्राह्मदौ वोद्ध्यं। श्रयमधिमामः चैचादिसप्तसु मासेषु भवति। तदुक्तं ब्रह्मसिद्धान्ते,—

चैचादर्वाक् नाधिमामः परतस्वधिको भवेत्। च्योतिःमिद्धान्ते,—

धटकन्यागते सूर्यं दिश्वके वाय धन्नि।
मकरे वाय कुस्ने वा नाधिमासो विधीयते ॥ इति।
ननु दिसंकान्तमास एखेव मासेषु पततौति चेत्, न।
न्योतिःसिद्धान्ते,—

त्रमंकान्तिमामोऽधिमामः स्कटः स्वात् ।

दिसंकान्तिमासः चयाखाः कदाचित्॥ वयः कार्त्तिकादिचये नान्यदा स्थात्। तदा वर्षमध्येऽधिमासदयं स्थात्॥

द्ति, कार्त्तिकादिमामचये चयमामः। चयमामयुके वर्षे चयमामात् पूर्वं दिचेषु मासेषु मध्ये एकोऽधिमामः। चयमामा-दूर्द्धमपि मामचयमध्ये ऽपरोऽधिमामः।

म च ज्योति:गास्ते,—

दर्गदयं नेषसुखीकराणिस्थिते तु चैचप्रसुखोऽधिमासः।
दर्गान्त जर्च्वादिकमासि सूर्यो राणिदयस्थे चयमास उक्तः॥
नतु यथा एकाधिकमासोपेताब्दस्य चयोदणमासात्मकलं। तथा
प्रधिमासदयोपेताब्दस्य चतुई्यमासात्मकलं प्राप्तं। न च तसुक्तं,

चयोदगंतु श्रुतिराष्ठमामं चतुर्द्गः कापि न चैव दृष्टः। दति वचनात् दति चेत्, नैष दोषः। श्रमंकान्तलेन श्रधिक-प्रमिद्धियुतयोर्दयोर्भध्येपूर्वस्थाधिकलनिषेधात्।

तथाच जावालिः,-

एकसिम्बेन वर्षे तु दौ मासावधिमासकौ। प्राकृतस्तच पूर्वः स्थादुत्तरसु मसीसुरः॥ दति,

प्राक्तः ग्रुद्धिकर्मार्चं द्रत्ययः। त्रतएव चयमामपूर्वस्थामंक्रान्त-मामस्य मन्यक्षपंति कर्मणे दति मंमपंनामकलं। चयमामस्य कर्मानर्चलात् त्रंहमः पापस्य पतिरंहस्यतिनामकलं।

तथाच, विवाहादाविति प्रक्तत्य ज्योतिर्यन्थे,— यस्मिन् मासे न संकान्तिः संकान्तिदयमेव वा। संसर्पां इसाती मामावधिमास्य निन्दितः॥ एतदचनमुपजीय माधवीये,—

चयस्याच्या विवाहादौ मंमपींहराती उभौ। ग्रद्धौ श्रौते तथा सार्ची मनमामो विविच्यते॥

दित चयोत्तरामंकान्तमामस्य मस्त्रस्य, "उत्तरस्य मसीस्तृष" दित वचनात्। नन्वेवं चतुर्द्यमासात्मकभावे एकाद्गात्मकल-प्रमितः। तच्च दाद्ग्य मासाः सम्त्रस्य दित नित्यवत् श्रुतिविरुद्धं। नन्तु तिर्षं केवलाधिमासर्षे चयोद्ग्यात्मकमपि तदिरुद्धमिति चेत् न। कचित् चयोद्ग्यमामाः मम्त्रस्य दिति श्रुतेः। तथा सित चयमासोपेते चयोद्ग्यमासात्मकेऽपि श्रब्दे दयोरसंकान्तयोः परित्यागे सत्यविग्रद्धाः ससंकान्ता एकाद्ग्रेव मासा दत्यतो नित्यवच्छुति-विरोध दित चेत्र। दिसंकान्तियुक्तस्य चयमासस्य मासदयलेन गणनात्।

तथाच स्रतिः,-

तियाई प्रथमे पूर्वी दितीयेऽई तदुत्तरः।

मामाविति वृधे श्विन्यौ चयमामस्य मध्यगौ॥ दति।

चान्ननमंस्काराभावे दृदं बोध्यं। "न चलति यदि वै तन्मामयुग्मं
विचिन्त्यं" दृति वटेश्वरमिद्धान्तोन्नेः।

दृष्यं मन्त्रमासे निक्षिते वन्यविन्यान्युच्यन्ते। तत्र पैठीनसिः,—

श्रीतस्मार्त्तियाः मर्वा दाद्ये मासि नीर्त्तिताः। चयोद्ये तु मर्वास्ता निस्प्रसा दित नीर्त्तिताः॥ निस्पना दत्युकेः काम्यकर्मनिषेधः। इश्वादिभवेकाम्यं तु मन्नमामे विवर्जयेत्।

इति सरत्यन्तरोतेः।

नित्ये नैमित्तिके कुर्यात् प्रयतः सन्मलीचुचे। इति व्हर्यत्युक्तेर्नित्यनैमित्तिककरणं। अधिमासे निपतितेऽणेष एव विधिक्रमः।

दति स्रतेरारभसमाप्तिमधे मलमासपातेऽपि पूर्वारअकाम्यं कार्यमेव। त्रारभसमापने तु शुद्धकाल एव,—

श्रस्या नाम ये माना न तेषु मम नमाताः। व्रतानां चैव यज्ञानामारमाञ्च ममात्रयः॥ द्रत्युकेः। यनु काठकरुद्धी,—

प्रवृत्तं मलमासात् प्राक् काम्यं कर्म समापितं।
श्रागते मलमासेऽपि तत्समायं न संग्रयः : इति।
तत् सावनमानप्रवृत्तकः स्कृतान्द्रायणं हि न सत्राद्विषयं।
गार्ग्यः,— श्रपूर्वदेवतां दृद्दा ग्रुत्तिः स्यान्वष्टभागवे।

मलमाचेऽप्यनाष्ट्रत्ततीर्थयाचां विवर्ज्ञयेत्॥

तथाचापूर्वदेवदर्शनापूर्वतीर्थयाचे निषिद्धे। मसमासे प्रकान्ते दिचेव्यहःस गच्छत्स यदि कियदासो वास्त्रप्रहम्मदिना यद्दे वा रोगट्डिमेहिती स्थात्, यदि वा दृष्टिप्रतिवन्धः स्थात्, यदि वा राजद्रोह श्रापतेत्, यदि वा श्रीभचारः केनचित् प्रारम्थेत, तच मस्रमासस्य समाप्तिप्रतीचायां वास्तादिवाधादिकं स्थात्, तस्रात्तस्रतीकारस्यः कर्त्तुसुचितलादात्ययिककार्येषु श्रद्धान

नपेचणस्य श्रोत्सर्गिकतात्। "चय्येव यजेताभिचर्यमाणः" दत्यादि वर्त्तमानार्थग्रानच्प्रत्ययान्तग्रव्दादिभिः ममानकास्नताविग्रेषास्य मस्न-मामेऽपि तादृग्रकर्मणामारमः समापनं च कार्यमेव । नित्यनैमि-त्तिकयोरपि यदनन्यगतिकं, तदेव मस्नमासे कार्यः। मगतिकं तु न कार्यः। तथास, काठकरहो,—

मसमासेऽनन्यगति सुर्यास्त्रीमित्तिकी क्रियां।

ग्रह्मपरिभिष्टेऽनन्यगतिकानि यथा,—
श्रवषट्कार-होमाञ्चपर्व चान्द्रायणं तथा।

मस्मासेऽपि कर्त्त्रयं काम्या दृष्टीर्विवर्जयेत्॥
श्रवषद्कारहोमाग्निहोन्नोपासनवैश्वदेवादयः।

काठकग्रहो.—

मोमयागादिकर्माणि काम्यान्यपि मन्तीनु । यष्टीश्वाश्रयणाधानचातुर्माखादिकान्यपि ॥ मन्तान्याष्टकाश्राद्धोपाकर्माद्यपि कर्म यत् । खखमामविशेषस्य विन्तिं वर्जयेनाले ॥

तयाच वधन्ते विहितस्य मोमयागस्य मसमाधे च वर्जनेऽपि ग्रद्धमार्चेऽनुष्ठानसभावात् सगतिकलं।

एवमादि सगितकनित्यानां वर्जनं। वष्ठीष्टिः काठकप्राखादौ मिद्धा ।

मात्ये, - श्राधानं यज्ञकर्माणि प्रायखित्तकतानि च। न कुर्यान्मक्तमासेऽपि ग्रुकगुवेक्पिञ्चवे॥ संक्रान्तिर्हिते मासे कुर्यादाश्रयणं न वा। द्ति पैठीनसिना विकक्षितलादाश्रयणस्य सगितकागितकयो-स्टाइरणं न विद्धं। जातेष्टेऽभौचेऽवसिते यथानुष्ठानं, तथा मस्त्रमासेऽप्यवसितेऽनुष्ठातुं भक्ताल्यगितकनैमित्तिकलाळातेष्टिनं कार्या। एवमादिसगितकनैमित्तिकानां वर्जनं।

> चन्द्रसूर्ययहे स्नानं श्राद्धदानजपादिकं। कार्याणि मस्त्रमामे तु नित्यनैमित्तिकं तथा॥

दित यमवचनादगितकनैमित्तिकानि यष्ठणस्नानादीनि कार्या-ण्वेव । जन्ममरणार्त्तवागौचादीनां भावनमानप्रवत्तत्वात्तदाचरणं । "स्रतकादिपरिच्चेद" द्रत्यादि तदचनमुक्तं ।

स्प्रितिसंग्रहे,— नामकर्म च पुंस्रितः सीमन्तोत्रयनं व्रतं ।

मलीचुचेऽपि कुर्वीत निमित्तं यदि जायते ॥

जातकर्मान्यकर्माणि नवत्राद्धं तथैव च ।

श्राद्धजातकनामानि येन संस्कारसव्रताः ॥

मजीचुचेऽपि कर्त्तंथा दृष्टीः काम्यास्य वर्जयेत् ॥

गौतमः, — दानकर्मणि यक्ताद्धं नवश्राद्धं तथेव च।

ग्रहणे पुंसवादौ च तत्पूर्वस्य परस्य च॥

नवश्राद्धं तु, —चतुर्णे पश्चमे चैव नवमे दश्रमे तथा।

यदत्र दीयते जन्तोस्त चवश्राद्धमिस्यते॥

पुंचव।दिपदेन पुंचवनशैमन्तोन्नयनजातकर्मनामकर्णविहिन्-क्रामणाञ्जमाजनानां संग्रहः।

तथाच प्रतानन्दः,-

चूड़ार्वाक्मङ्गसं कर्म मसमाचेऽपि कार्येत्।

तेषां सावनमानेन ऋषिभिः परिकीर्त्तनात् ॥
एवं च, -- नामासप्राग्रनं चौसं विवाहं मौन्जीवन्धनं ।
निकामं जातकर्मापि काम्यं दृषविसर्जनं ॥
ऋसगे च गुरौ ग्रुके वाले दृद्धे मसीसुचे ।
उद्यापनसुपारकं ज्ञतानां चैव कार्येत् ॥

द्ति दृद्धगार्यवचने जातकर्मादीनां यो निषेधः स प्रातिस्विक-कालेषु कदाचिदनुष्ठितानां तेषां कालान्तरेऽनुष्ठानपचे वोद्ध्य-. मिति सर्वं समन्त्रसमिति वदामः।

वृष्यतिः,—

नित्यनेभित्तिके कुर्यात् प्रयतः सन्मली सुचे। तीर्थसानं गजक्कायां प्रेतश्राद्धं तथैव च॥

गजहायात्तवणं विखितं। श्रष्टा नैमित्तिकतेपि पुनर्वचनमेवं-जातीयानां महावैशाखीप्रस्तीनां मजीचुचे, नित्यनिष्टच्यर्थमितिः केचित्, तन्न।

> रोगे चालभ्ययोगे च मीमन्ते पुंमवे तथा। यहदाति ममुहिष्टं पूर्वचापि न दुखिति॥

दति मरीचिवचनात्। तथाच वहस्यतिवचने गजकायापदं श्रम्भथोगोपन्नचणमित्यवगन्तयं। श्रतएव कान्ताद्गीयसंग्रह-कारिकायां,—

रोगग्रान्तिरसभे च योगे श्राद्धवतानि च। इति मसमासे कर्त्तव्यलेनोक्तं। सर्वनित्यकर्मणां मासद्येऽपि कार्यलेन उक्तलात् मसमासेऽपि दर्गश्राद्धं युगादिश्राद्धदाने च स्यः। काम्यखापि मचादिश्राद्वस,—

मनादौ च युगादौ च मामयोर्भयोरिष ।
दित मरीचिवचनादुभयचायतुष्ठानं । त्रच युगाद्युपादानं दृष्टानालेन । तथाच मनादिश्राद्धं युगादिश्राद्भवदुभयचापि कार्यमित्यर्थः ॥

श्रतएव संगहकारः,—

युगादिकं माधिकं च श्राद्धं चापरपाचिकं। मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्येऽपि च ॥ दति।

त्रापर्पाचिकं (त्रमावास्याविहितं)। तैर्थिकमिति पूर्वेहृष्ट-

मात्येऽपि, — दर्भे चाहरहः श्राद्धं दानं च प्रतिवासरं। गोभूतिलहिरण्यानां मासेऽपि स्थानालीम्बुचे॥ एवं सति, — सम्बत्सरातिरेकेण यदि स्थानु मलीम्बुचः।

तच चयोदग्रे आहं न कुर्यादिधुमंत्रये॥

दति च्रव्यग्टङ्गोक्तिः काम्यामावास्याश्राद्धविषया दति मन्तयं।
याज्ञावक्कादौ तिथिवारविहितं काम्यं आहं द्रष्टयं।

श्रतएव जावासिः,-

नित्यं नैमित्तिकं चैव श्राद्धं कुर्यानानी मुचे।

तिथिनचववारोक्षं काम्यं नैव कदाचन ॥ इति।
कौ थुमिः,— पन्दममुघटं दद्यादनं चापि सुमञ्चितं।
सम्बत्धरे विद्देशि प्रतिमासं च मासिकं॥
अष्टकाश्राद्धस्य नित्यलात् प्रेतपचश्राद्धस्य नित्यकाम्यलाच

कर्त्तयलाग्रद्धायां वचनवलात्तयोः ग्रद्धमास एवानुष्ठानं, न मले॥ तथाच "महालयाष्ट्रके श्राद्धे" इत्यादि काठकग्रह्मवचनं पूर्वसुदाहतं। हारीतोऽपि,—

खपाकर्म तथोत्सर्गं काम्यमुत्सवमष्टकाः । मामष्टद्वौ परा कार्या वर्जियला तु पैहकं ॥ भगुरिष,— दृद्धिश्राद्धं तथा सोममग्याधेयं महालयं। राज्याभिषेकं काम्यं च न कुर्याद्भानुलंचिते ॥ नागरखाडेऽपि,—

> नभो वाथ नभस्यो वा मलमामो यदा भवेत्। मप्तमः पित्वपचः स्थाद्न्यचैव तु पञ्चमः॥

श्रवाषाङ्गीमधिकत्य सप्तमपञ्चमौ द्रष्ट्यौ । "श्राषाळ्याः प्रथमः पचः" इति वचनात् ।

त्रव्होदकुमानवादिमहालययुगादिषु।

दति कालादगींयसंग्रहवाको .तु महालयग्रब्देन तीर्थ-विग्रेषस्य माघनयोदग्यां (१) वा विविचतलिमिति माधवाचार्याः । तस्मादिधमामेऽपि मर्वथा न महालयश्राद्धं, नाषष्टकाश्राद्धं, तदनु-सन्धिलाचात्रकाश्राद्धमपि कार्ये । मासिकश्राद्धं मलमामे कार्ये । प्रत्यहं प्रेताब्दोदकुम्भदानमपि कार्यं,—

> यत्र वा तत्र वा षष्ठे मासि षाण्मासिकं भवेत्। वैपविकं विपचे च पूर्णे स्थान्तदनन्तरं॥

<sup>(</sup>१) मघाचयोदायां।

दित कात्यायनोक्ती यत्र वा तत्र वा ग्रह्के मसीसुनेऽपि वा तदनन्तरं षट्चलारिंग्रेऽक्षीत्यर्थः। दित षट्चलारिंग्रह्विस एव चैपचिकश्राद्धस्थानुष्ठानात् मसमासेऽपि चैपचिकश्राद्धं॥ षाएमासिक-मत्र जनपाएमासिकमित्यर्थः। षाएमासिकान्तः कियमाणतया तस्य षाएमासिकमंजा।

एकलेन तु पाएमामं यदा खुरपि वा चिभिः।
न्यूनाः मम्बत्सरयेव खातां पाएमामिके तदा ॥
दित कात्यायनोकिय।

तथाच प्रथमषण्मासाभ्यन्तरे मलमासपातेऽपि षष्टमासपूर्वतिथिरेव प्रथमषाण्मासिकस्य काल इति सिद्धान्तितलात् न मलमासेऽपि जनवाण्मासिकश्राद्धं "थत्र वा तत्र वा" इत्युक्तेः । ग्रद्धमासन्दतस्यापि दाद्यमासस्याधिमासले तत्रैव सपिण्डीकरणं कार्यं ।
हारीतः,— श्रमङ्कान्ते हि कर्त्तस्यमास्टिकं प्रथमं दिजैः ।

सघुदारीतोऽपि,-

प्रताब्दं दाद्गे मासि कार्या पिछिकिया स्तै:।
किचित्रयोद्गेऽपि स्थादाशं त्यक्ता तु वत्सरं॥
दितीयवर्षादाब्दिकं ग्रद्धमास एव, न मले।
तथाच, मत्यव्रतः,—

वर्षे वर्षे तु यच्छाडुं मातापिचोर्म्हतेऽइनि । मसमामे न कर्त्तवां व्याप्रस्य वचनं यथा ॥

किन्तु मसमामस्तरः कदाचित्तस्वै मामस् वर्षान्तरे मसले तन्मसमाम एव त्राब्दिकमणनुष्ठेयं। तथाच,— वर्षे वर्षे तु यत् श्राह्मं स्ताहे तनासीसुचे।
सुर्यात्तन प्रमीतानामन्येषासुत्तरच तु ॥
पैठीनिसरपि,— मसमासस्तानां तु श्राह्मं यस्रतिवत्सरं।
मससासेऽपि कर्त्तयं नान्येषां तु कदाचन ॥

नूतनस्तीगमनं, विवाहोत्तरं चन्द्रवन्दापनाख्यं कर्म च मसमासे-ऽपि कार्यं । तथाच स्राह्मनारे,-

सीमनां प्रेतकत्यं च नवग्रया नवः ग्रगी।
मलमासेऽपि कर्त्त्रयं निमित्तविहितं च यत्॥
नूतनमपि गयात्राद्धं तच कर्त्त्रयं,
त्रिभासे जन्मदिने चासे च गुरुग्रक्रयोः।
न त्यक्रयं गयात्राद्धं सिंदस्थे च टहस्पती॥
दित वायुपुराणोकीः।

गणे प्रवृते विचार्यते । स्कान्दे गणे प्रवृतं प्रकृत्य,— एकमामं दिमामं वा षण्मामं वत्यरं तथा । श्रथवा गणनाथस्य वृतं दाद्यवार्षिकं ॥

द्रित एकमायसमायदिमायसमायवाद्याससमायवर्षसमायदा-द्रावर्षसमायेषु पञ्चस पचेषु वर्षसमायव्रतपचस प्रतिमासं प्रति-ग्रुक्तचत्र्यीकर्त्तव्यलेन विद्यितवात्तद्र्षमध्ये मन्तमासपाते चयोद्रासु मासेषु कार्यसेव। "चयोद्रामासाः सम्बद्धरः" द्रित खुतेः। चयो-द्रामासात्मकलाद्पि वर्षस्य। ननु "षद्या तु द्विसैः" द्रित वचनेन तद्गतं उत्तरमास एव कर्त्तव्यं न पूर्वसिन्नपीति चेत्, न। तादृशवाकानां मलमायस्य उत्तरमायशेषलप्रतिपादकलमिति माधवाचार्योदकलात् । "काम्यवतादिकर्मणां श्रारम्भयमाप्तिविष-यलाच" दत्यन्ये। तत्र "श्रस्ट्यां नाम ये मायाः" दति तत्रैव जिखितं। तथा मलमाये श्रारभयमाप्ती एव निषिद्धे। श्रारम्भयमाष्ट्रीर्मध-पातिन्यधिमायेऽपारस्थकर्मणोऽनुष्ठानस्य पिद्धान्तितलात्।

यदि भाद्रमाचेऽधिमामः, तदा ग्राह्माचे प्रारमः, श्रावणे त समापनस्य विद्वितलात् । भाद्रमाचेऽधिमामपातेऽपि न कश्चित् विरोध दति, तद्वतं सम्बत्धरपचमाश्रित्य प्रवत्तं चेन्मलमामेऽप्यनुष्ठेय-मेवेति सिद्धं । नन्वेवं मित श्राश्विनमाचेऽधिमामपातश्चेत् दुर्गागर-दुत्सवः कथं भवेदिति चेत् उच्यते। श्रारमस्य समाप्तिश्चेत् दत्यादि वचनात् षोङ्गदिनात्मकः ग्ररदुत्सवः कार्यः ।

मार्ड्समाधात्मकलं कथिमिति चेत्? उच्यते। "चैचग्रक्तादिकाः माधाः" दति न्यायेन दर्भान्तमासपचे यो भाद्रपदस्य कृष्णपचः स एव पौर्णमास्यन्तमासपचे त्राश्चिनकृष्णपचः, तच त्राश्चिनमासात् पूर्वं कृष्णाष्टम्यादि दर्भान्तं दिनाष्टकं समग्रो मस्तमासः। ग्रुद्धा-श्चिनमासग्रक्तपचान्तराष्टम्यन्तं दिनाष्टकं एवं मिस्तिता सार्द्धमासा-तमकलं नवदिनादिषु पञ्चस पचेस त्रमक्ततया कार्येषु त्राश्चिनग्रक्त-प्रतिपदि एव समार्भः कार्यः।

नवाहपञ्चाहत्यहञ्चहेकाहरूपाः पञ्चपताः। तेषु पूर्वपूर्वाग्रकः परं पर्मेकं पत्रमेव कुर्यात्। एतत्पचे प्रजापतिः,—

> उपाकर्म च इयं च कयं दुगेतिसवं तथा। उत्तरे नियतं कुर्यात् पूर्वे तन्त्रिष्मलं भवेत्॥

यथा षोड़गाइपचे 'श्रद्यारम्य महाष्टमीपर्यन्नं' इत्युक्तेखात् कदाचित्तिथिरुद्धौ दिनाधिकोऽपि न दोषः। तावन्तासाधिकोऽपि न काचित्यतिरिति सर्वे सुखं।

श्रथ हरिखापदिचिणायनयोः कारिके।

यद्विष्णौ श्रयिते व्रतादिगदितं याम्यायने चाच तत्

कार्यं श्रारद्वाजपेय दतरत्कमं प्रतीचायदं।

नारीनूतनसंगमो नवगयाश्राद्धं च गोदावरी,—

स्नानं नूतनचन्द्रवन्दनिधिः धवं परं पूर्ववत् ॥

प्राक्पश्चाच्चयनाद्धरेवितनुयाद्याम्यायनेकर्कट
खेऽर्के तौलिगतेऽलिगेऽपि सदनारभ्रभवेशौ वुधः।

उदाइं तनुयादलौ च निखिले याम्यायने चागती
नुगाणां नरिषंद्रमादिगिरिजादीनां प्रतिष्ठाविधिं॥

विनायकव्रतादीनां च हरिखापदिचिणायनयोरेवोक्तलाच्यो
रिष तेषां करणं। एवं श्ररद्वाजपेयस्थापि। एवमनन्यगतिकं

प्रतीचासद्दं कर्मापि तच कार्यं।

प्रथमपर्वान्तरं कालविलमे बज्जतरदोषस्य वच्यमाणलादनयोरपि नारीनूतनमङ्गमः कार्यः। गयात्राद्धं प्रेतपचप्रलाधिकाकेरग्रद्ध-कालेऽपि प्रतिप्रभववचनस्थोकेस कार्यमेव।

गोदावरी द्वानस्य सिंद्यहस्पता वेव विहित लाला त्यां। दमायो-र्नवचन्द्रवन्दापनस्य विवादाननार मेव विहित लास माचाराच्च तदपि कार्यं। श्रन्यस्यं मल मासवद्वोधं। साचिवचना न्यपुकानि। नित्य-नैमित्तिक सर्वनिषेधस्य हरिणयनदि चिणायनयो रौस्य गिंक नेऽपि स्रावणे सत्यसाभद्य हानिर्भाद्रपदे तथा। पत्नीनाग्रस्तथासिने कार्त्तिके खुर्डूनानि च। मार्गगीर्षे भवेद्भक्तं पौषे तष्करतो भयं॥

दत्यादिमात्यवचनाद्याम्यायनानाद्रवद्धरिणयनस्यायनादरेण श्रावणकार्त्तिकयोर्यहारस्थप्रवेणप्रकृती "श्रादित्ये यूपकर्किकिय(१)-मियुनघटासिस्थिते" इति ज्योतिर्वचनेन सौरमानेनेव ग्रहारस्थ-प्रवेणयोः सिद्धान्तितलात् हरिणयनात् पूर्वं कर्कटमासे पतिते तथा हरिणयनोत्तरं तुसामासे स्थिते ग्रहारस्थपविणो कार्यो। न जातु हरिणयनमध्ये। एवं च मात्यादिवचनस्य भावकाणले किमिति निषधोसंघनं कार्य्यमिति सम्प्रदायविदः। दृश्चिकमासस्य द्विणायनान्तर्गतलेऽपि मात्योक्षवचनेनेव ग्रहारस्थपविणकार्यं। विवाहविषये ज्योतिःशास्त्रे,—

वात्यो वर्षमनोजिमिक्कित तथारैभोऽयनं चोत्तरम्,
स्तीनामानसृतं विद्याय मुनयो माण्ड्यिशिया जगुः।
चैनं प्रोऽश्य पराग्ररस्तकथयत् पौषं च दौर्भाग्यदम्,
श्रापादादिचतुष्टयं न ग्रुभदं कैस्तिग्रदिष्टं दिजेः॥
श्रापादे धनधान्यभोगरिहता, नष्टप्रजा श्रावणे,
वेग्या भाद्रपदे ऽश्विने च मरणं, भोगार्थिता कार्त्तिके।
पौषे प्रेमवती वियोगवज्ञला चैने मदोन्मादिनी,
श्रोषेळ्वेव विवाहिता सुतवती नारी समृद्धा भवेत्॥

<sup>(</sup>१) युक्तकर्किकिय इत्यादि।

स्तीनामानं स्ती सिङ्गिमित्यर्थः । तथाच वर्षाः गर्दिति चतु-दयं, दति कर्कटादिमौरमामचतुष्टयं वन्धं दत्यर्थः ।

> त्राषाढ़ादिवज्जभी हावाषाढ़ः के सिदिखते । माण्डवादिवचो दृद्दा मार्गेशं सन्त्यथापरे ॥

श्रसार्थः। श्राषादादिचतुष्टयमित्यच श्राषादः श्रादिर्येषां ते श्राषादादयस्त्रेषां चतुष्टयमित्येतद्गुण्यं विज्ञानो वज्जनी हिः। तथाच श्रावणादिषु न विवादः कार्यः, श्राषादे तु कार्य एवेत्यर्थः। एवं दिचणायनमनादृत्य दृष्टिके विवादममाचारः यन्त्रूसः। "मौरमामो विवादादौ" दत्युक्तेराषादादिशब्दानां मिथुनादिपरत्नमेव। श्रगति-कानां स्त्रताद्यशौचग्रदणस्नानादिनवस्ती मङ्गमेन्द्रवन्दापनादीनां दिचणायनमासपद्वेऽपि करणं। माद्रभैरवादीनां च प्रतिष्ठादि-वाकां श्रयनप्रकरणे सिखितं।

त्रय गुर्वादित्ये कारिका।
जीवेऽपस्तिनितेऽध्वरादिकरणं ग्रस्तं प्रतिष्ठाव्रतचौरोदाइग्टइप्रवेगसद्नारंका विवज्ज्यों हि षट्।
गुर्वादित्य उगन्ति सद्मकरणादीन्यत्र तारुष्यवान्,
जीवश्चेदुदितोऽपवापतरुणः त्यांच्ये विवाहवते॥

प्रतानन्दः,—

गुरावस्तं गते वज्ज्याः प्रतिष्ठोदास्मेखलाः।
ग्रहारमभप्रवेशौ च चूडेत्येवं षडेव तु॥
श्रान्याधेयादिकं भवें गुरावस्तं गतेऽपि च।
कु वींततिक्षिधोक्तेरभावादिति निश्चितं॥

रिविद्यरागिं मंत्राच्या उदितः स्वाद्युवा गुरः।
रिवरागिममेतोऽपि कदाचिदुदितो युवा ॥
गुरावयुवित त्याच्यं विवाहं प्राष्ट्र चाङ्गिराः।
ग्रन्थे तु व्रतमुदाहं त्याच्यमाइक्मनीिषणः ॥
गुरुणा मंयुते सूर्ये गुक्ते चास्तमुपागते।
श्रमौम्यदिवधे प्राप्ते व्रतोदाहौ विवर्जयेत् ॥
वाले नवदिनं प्रोक्तं रुद्धे चैव चतुर्द्गा।
वाच्यं रुद्धिं गते जीवे ग्रभक्मं विवर्जयेत्॥
"गुर्वादित्ये गुरूद्येऽपि कार्ये ग्रहादि दति गम्यते" दति
निवन्धकतः॥

त्रय सिंइरहस्पती।

कुर्यात् सिंइटइस्पताविष गयात्राद्धं च गोदावरी-स्नानं पुंसवनादिकास्नकवत्नानािन स्वकालेषु चेत्। षट्चायात्यिकागितग्रहणकाशास्त्रयोगांक्तया नयस्त्रीगमनं च सोमयजनाङ्गाधानसोमाध्वरान्।

त्रय गुकास्तमये।

सन्ध्यासङ्गतवास्त्रवाद्धं सवग्रासष्टः कविः प्रोस्यते-ऽग्याधानाद्यस्तिः हि वर्ष्यसुदितं तत्राधिमासे यथा। एकस्रेदुदितो युवा दितिसृतात्रार्यामरात्रार्ययो-स्ट्वाहं प्रविहाय सर्वमितरत्कर्त्त्यसेके जगुः॥

"न त्यक्तवं गवात्राद्धं सिंइस्ते च दृइसातौ" इति गवात्राद्ध कार्यं। तत्कास एव गोदावरीस्तानस्य कर्त्तवात् सुतरां तत्- करणं। पुंसवनसी मन्तो चयनजातकर्मना मकरणिन आसणा च प्राधनानां संस्कारषद्भर्मणां काल स्थानिया निषेधवाक्येषु चूड़ादीना मेवो क्राताच्च, केवलं विश्वितका लेखनु छेयः, उत्क्रस्य काला-निरं तत्करणप्रसक्ती सिंद हुदस्ती तानि सर्वथानु छेयानि। तच तिथिनच च गुड़ियान् कालगुड़िरिय प्रेपेचणी यत्नात्॥

तथाच कालप्रतीचास इकर्मणां त्रगतिकानां प्रेतकत्यागौचादीनां ग्रइणाद्यसभ्ययोगविष्टितकर्मणां च करणं। दोषातिग्रयत्रवणास्रय-स्तीगमनमपि कार्यं "न ऋतं न कालं प्रच्छेन्" दति श्रुतेः। सोमयागे त्रग्रग्रद्धकालस्थानिषिद्धलात् त्राचाराच सोमः कार्यः। तथाच तदङ्गाधानस्य स्तरां करणं। "यागकरणनिषेधोकिस्त भ्रतिपुचाभिचारादिकाम्ययागपरा" दति याजिकाः। तच निषेध-वचनानि, ग्रौनकः,—

सानं तीर्थगितवतचुरमहादानप्रतिष्ठादिनं।

सिंहस्ये विवुधाचिते न ग्रभदं कर्त्तुसाया सूर्यगे॥
सूर्यगे गुर्बादित्य दत्यर्थः। ग्रातातपः,—

माघ एव यदा माघी सिंहे चैव यदा गुरुः।

वतं चौरं तथोदाहं ग्रहकर्म विवर्ज्यते॥

प्रतानन्दः,-

माघे च माघी यदि पौर्णमाधी, तक्षां विधी सिंहगते च जीवे। नोदाहकर्माच च कामक्षे, समाचरेद्यास्यदिशि प्रशक्तम्॥

माघे न यदि माघी सामादामाघः स उच्चते। यज्ञोदाषी न कुर्वीत यावत् सिंहगतो गुरु:॥ महामाघीं विनैवाइ माख्यः सिंहगे गुरौ। विवादवर्जं कर्माणि कुर्यादिति वरः शुणु॥ अुतिवेधवतचूड्रानवयच्यजप्रतिष्ठार्घाः । र्विभवनस्ये जीवे कार्या वर्जी विवाइस्त ॥ तसर्वे दाचिणात्यविषयं। त्रतएव राजमार्त्तण्डे,-यानां चूड़ां विवाहं श्रुतिविवरविधि यागभग्नप्रविशो, प्रासादोद्यानहर्म्यामर्नर्भवनारस्भविद्याप्रदानं। मौक्षीवन्धं प्रतिष्ठां मणिरदक्तनकाधारणं कुर्वते ये, मृत्युक्तेषां इरिज्ये गुरुदिनकरयोरेकराणिखयोद्य॥ गुरौ इरिखे न विवाहमाऊ इरितगर्गप्रमुखा मुनीन्द्राः। यदा न माधी मघसंगता सात्तदातु कन्योद इनं वदन्ति॥ मघामचं परित्यच्य यदा सिंहे गुहर्भवेत्। विवाइसच कर्त्त्वो सुनिभिः परिकीर्त्तितः॥ कल्पतरौ देवीपुराणे,—

सिंहसंखं गुरुं ग्रुकं सर्वारक्षेषु वर्जयेत्।

प्रारश्चं न च सिध्येत महाभयकरं भवेत्॥

पुचभ्यात्वकत्वचाणि इन्यात्गीष्मं न संग्रयः।

कारको वर्जते नाग्मं सन्तानं चीयतेऽचिरात्॥

देवारामतङ्गिषु प्रपोद्यानग्रदेषु च।

सिंहस्थं मकरस्यं च गुरुं यत्नेन वर्ज्ययेत्॥

दत्यादि नानाविषद्भवाकोः सिंदग्रहसातो विवादोपनयनादिकर्मकरणमन्देहे गुर्वादित्य दत्यादिपूर्वोदाद्दतोक्तिवलात् देशाचारसावदादौ विचिन्य दति सिद्धान्तितलात् श्रिपवा कारणाग्रहणे प्रयुक्तानि प्रतीयन्तिति जैमिनीयन्यायाद्य विवादोपनयननवतीर्थयाचादिकं मर्वथा न कार्यं दति सिद्धान्तः। श्रस्रदेशाचारस्र तथैव दृश्यते ॥ रूग्णमार्त्तण्डे,—

भवेत् यन्ध्यागतः पद्मादस्तमेति दिनचयं। दिनानि पञ्च पूर्वेण धर्वकर्मं(१) विवर्जयेत्॥ वास्रो दिनचतुम्बं स्थाहद्भः पञ्चाइमिष्यते। अवहं सन्ध्यागतः शुक्रस्तिधायेवं विवर्जयेत्॥

तथाच सन्धासमितलवासलरद्भलेषु चतुर्षु ग्रुनस्य नष्टलं। तच सर्वनर्भवर्जनं। रहस्पतिः;—

> बाले वा यदि वा रुद्धे शुक्ते चास्तमुपागते। मसमाम द्वैतानि वर्जयेदेवदर्भनं॥

मसमासदृष्टान्तोपादानानासमासे यावित्रिषद्धं, तावत् धर्व-मिद्द निषिधते । सकलकाम्यान्यपि वर्च्याणि । तथा,—

> श्रपूर्वदेवतां दृष्टा ग्राचः सुर्नष्टभागवे। मसमारेऽप्यनावत्ततीर्थयाचां विवर्जयेत्॥

तत्र विचारान्तरमाह ग्रतानन्दः,—

गुरुभागंवयोरेको यदि खादुदितो युवा।

विवाहवर्क्तमन्यानि कुर्यादित्याह चाङ्गिराः॥

<sup>(</sup>१) सन्धाकमी।

ब्रह्मसिद्धान्ते,—

रविणामित्रन्थेषां ग्रहाणामस उच्चते । श्रवांगूर्ड्डमधसात्स्यात् मौद्यवार्ड्डकग्रैगवाः॥ च्योतिःसागरे,—

तथा मनीसुचे माधि सुराचार्येऽतिचार्गे।
वापीकूपतङ्गगदिक्रियाः प्रागीर्ततास्यजेत्॥
प्रतानन्दसंग्रहे,—

कुजग्रद्भनुधार्काणां पत्नं वक्तातिचारगं।

रहस्पतेस्त तन्नास्ति पूर्वराभिगतं पत्नं॥

तया,— सत्यं विवाहश्रज्ञादिविषयं वचनं न तत्।

किन्तु नष्टदतावाप्तौ मनोर्यवचः शुणु॥

यथाचारं गताः सर्वे ग्रहाः स्युः खप्तनप्रदाः।

नष्टप्राप्तौ तु पत्नदः पूर्वराभिगतो ग्रहः॥ द्रति।

श्रय जन्ममर्णाद्यभौचविचारः।

तपादावसारातग्रुद्धिमारकारिका लिखिला माचिवचनानि लेखानि।

वाद्यं चाभ्यन्तरं च दिविधमिति मतं कर्षशौचं तु वाद्यम्।
देहे स्थान्तदिनेऽपीत्युभयविधमिदं ज्ञातिजन्मादिजन्यम्॥
कालसानापनोद्यं यदविध विदितौ जन्मसृत्यू तथाद्यम्।
श्रीषाई: धर्ववर्णस्विप लगित सतां यच कुचायशौचम्॥
कर्षश्रीचं दिविधं, वाद्याभ्यन्तरभेदात्। तथाच देवन्नः,—
श्रशौचं दिविधं प्रोक्तं वाद्यं चाभ्यन्तरं तथा। दति।

श्राभ्यन्तरं कर्त्रशौचं प्रायश्चित्तापनोद्यमघलवणं यन्यगौरवभया तवाच विचार्यते। वाद्यमपि दिविधं, शरीरस्य कर्मानर्षत्वरूप-नेकं। श्रशौचिस्तत्वाश्रयद्रव्यस्यपिति। ददं च वाद्याशौचं जन्म-मरणादिना जायते, स्त्रीणां स्टतुप्रसवादिना च। तच वच्यमाण-कासविशेषेण स्वानेन चापगस्कृति।

कालोऽग्निकर्म सदायुर्मनोज्ञानं तपो जलम्।
पञ्चात्तापो निराहारः सर्वेऽमी ग्रुद्धिहेतवः॥
"वर्षणोजलम्" दति कालो दणहादिरिति विज्ञानेश्वराः।
देवलः,—जनने मरणे नित्यमणौचमनुधावति।

सपिग्डान् पित्वन्धूंय यच कचन तिष्ठति ॥

पित्वत्थवः (समानोदकाः) यच कचनेति एकरुष्ठे अन्य-चापि वेत्यर्थः। जननं मरणं च ज्ञातसेवाग्रौचनिमित्तं। तसादि-देशादिवग्रात् विकालेन अवणे तु अविशिष्टदिनैरेव शुद्धिर्भवति॥ तथाचादित्यपुराणे,—

श्रिप दाहयही नोश्य स्तते म्हतकेऽपि वा ।
पितश्चानेन दोषः स्थात् श्राद्धादिषु कथञ्चन ॥
कौर्मे, — देशान्तरगतं श्रुला स्ततकं शावमेव च ।
तावद्ययतो मर्त्या यावच्छेषं समायते ॥
व्हस्यतिर्पि, —

श्रन्यदेशस्तं जातं श्रुता पुचछ जन्म च। श्रनिर्गते दशाहे तु शेषाहोभिर्विश्चधित॥ सापिएखो तद्दशाहं चिदिनमपि समानोदकलेऽपि यावत्, ज्ञानं खाळ्यानाकोरिप भवति समानोदकलं हि तावत्।
तुर्याद्या लेपभाजो जनकप्रस्तयः पिष्डभाजोऽय पिष्डोत्स्वष्टा स्थात् सप्तमस्रेत्यपि भवति सपिष्डलमासप्तमं तत्॥
जीवः सप्तद्यान्तान्त्रगदति पुरुषान् याय्य चैकोदकलमन्नाने जन्मनास्रोरिप भवति तद्भ्यन्तरे तनिष्ठित्तः।
एवं सत्येव यस्नान्मनुवचनसुराचार्यवाचौ विरुद्धे,
न स्थातां तत् सुधीमा विद्धत सुविचार्येव जीवस्य पचम्॥
वहस्यतिः,—

दशाहे न मिण्डासु ग्रुध्यन्ति स्टतसूतके। विराविण मकुखासु स्नाला ग्रध्यन्ति गोवजाः॥ मिण्डास मात्यो,—

लेपभाजञ्चतुर्याद्याः पिचाद्याः पिण्डभागिनः।
पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्डां साप्तपौर्षं॥
मनुः,— सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते।
समानोदकभावञ्च जन्मनाम्बोरवेदने॥

एतब्राखाने नेधातिथिः। "खप्रिपतामहस्य यः प्रिपतामहः तदन्वये यावनाः मप्तमास्रो लस्य मिष्णाः" दति। समानोदकभावस्य निवर्त्तीताचतुर्द्गात्।

दति रहस्यतिवचनं।

मन्वर्धविपरीता तु या स्हितः सा न ग्रस्थते ॥ दति स्ववचनविरोधादेव नादरणीयिमिति केचित् । वस्तुतस्तु चतुर्द्शपुरुषादूर्द्धे जन्मनामज्ञानेऽपि न समानोदकभावः । चतुर्द्श- पुरुषमध्ये जन्मनामोर्ज्ञाने मनुवचनस्य मावकाण्यताद् रहस्यति-वचनस्य निरवकाण्यतेन बस्तवस्यम्।

तचास्रत्यद्ये प्रपिष्डसमानोद्कयोः पौर्वापर्यविपर्यामो निवन्ध-सौकर्यार्थः।

एकाग्नेरणनग्नेरिप मरणिदनावध्यभीचन्तु साग्ने,
दांहोर्ड्ड देवतश्चेद्द्रनमिप कतं जीकिकेनाग्निनास्य ।
नास्यवाभौचमेतत्तनयकुजभुवां किन्तु दाहो यदाम्यः,
श्रौतेनास्याग्निना स्यात्तद्विध गदितं पर्णदाहेऽस्य तदत् ॥
श्रौताग्निमतो दाहात् पूर्वं ज्ञातीनां पुत्रस्य च श्रभौचाभावः ।
श्रितामत जल्कान्तेः साग्नेः संस्कारकर्मणः ।
श्रद्धिः संचयनं दाहान्मृताहस्त यथातिथि ॥
दत्यक्रिरः स्रतेः ।

जातुकर्णः, एकाग्नेर्मर्णादूर्द्धमगौचं श्राह्मवे च।
यस्र तु चयमग्नीनां तस्योर्द्धः दाइकर्मणः॥
जर्द्धः चिपचाद्यक्त्राद्धं स्ताइन्येव तद्भवेत्।
श्रधसात् कार्यदाहादाहिताग्नेर्दिजनानः॥

श्रतएव विश्वानेयराः "श्राहिताग्रौ पितिर देशान्तरस्रते पुचा-दीनामवीक् संस्कारात् सन्ध्योपामनादीनां कर्मणां खोपो नासि" दित खिखितवन्तः । तथा चाहिताग्रेदैवाक्षौकिकाग्निना दाहेऽपि पश्चात् श्रौताग्निना यदास्थिदाहः ततः प्रस्त्येवाशौचं, तत्पूर्वसशौचं नासि, एवं निणीते साग्निके पितिर स्तते पुचस्य दाहादूर्द्धं श्रशौचं, ज्ञातीनां मर्णादूर्द्धमिति ग्राह्मिश्चकारस्थवस्था निरसीव। त्रस्यभावे पर्णनरदाइस उन्नलात्त्रहाईऽपि ततःप्रसत्येवागौषं। तथाच बन्दोगपरिणिष्टे,—

विदेशस्य मरणे त्रसीन्यभ्यत्य मर्पषा ।

दाइयेदूर्णयाच्हाद्य पाचन्यामादि पूर्ववत् ॥

त्रस्त्रामसाभे पर्णानि शकसान्यूर्णयाद्यता ।

दाइयेदस्यमंख्यानि ततः प्रस्ति स्तकम् ॥

त्राद्यता परिपात्रा, स्तकं त्रशौचम् ।

दम्पत्योराहितान्योरपि मति तु वितानाग्रिनैकस्य दाहे,

पश्चादन्यस्य म्हत्यामरणिजनिमताप्यग्निना सौकिकेन ।

दाहेऽशौचं न दाहावधि भवति परं म्हत्युषसावधि स्थात्,—

त्रौताधानस्य मध्ये यदि भवति म्हतिर्मृत्युषसावधि स्थात् ।

दम्पत्योः पूर्वम्हतस्य त्रौताग्निना दाहे पश्चान्मृतस्य वन्त्यमाणोक्त्या

सौकिकारणिजन्येनाप्यग्निना दाहे मरणिदनावधेवाशौचम् । पश्चा
न्मृतस्येति वचने सौकिकाग्निनेत्युक्तेराहिताग्निलाभावात् । तथाचा
दित्यपुराणे,—

स्राहितान्योस् दम्पत्यो यंस्वादौ िसयते भुवि।
तस्य देहः मिपण्डेस् दम्धयस्त्रिभरिमिः॥
पयान्मृतस्य देहस्त दम्धयो सौकिकाग्निना।
स्रनाहिताग्ने देहस्त दास्त्रो ग्रद्धाग्निना दिजैः॥
तदभावे पस्ताभोत्यैः पनैः कार्यः पुमानिष।
स्रतिस्त्रिभः तथा षश्चा सर्पनैर्विधानतः॥
वेष्टितयस्त्या प्यात्क्रण्मारस्य चर्मणा।

कर्णास्त्रेषेण मंत्रेद्य प्रलेशक्यस्त्या यदैः ॥ सिंपिण्डैर्जनसंमिश्रेर्दम्धव्यस्य द्यामिना । श्रमौ सर्गाय लोकाय साहेत्युक्ता स्वतान्धदैः ॥

रथाग्निः (बौकिकाग्निः) एवं च मित आहिताग्नेरित्यच निष्ठान्ते आहिताग्निपदे माङ्गप्रधानिकयोपरमप्रतीतेराहिताग्निधर्माः माङ्गप्रधानाभिनिरुत्यन्तरमेव । तथा च मंख्निते कर्ममंस्काराणां तदर्थलादिति जैमिनिना पञ्चमाध्यायत्तीयपादे क्रप्रत्ययान्तस्य कियोपरमप्रतीतेरेव सिद्धान्तता। एवं च आधानमध्ये यजमानमर्णे नाहिताग्निकविधिरिति मरणदिनावध्येवाभौचम् ।

श्रागौचे कर्मणां नो भवति किल निषेधान्ययो येन कला,
तिसान् सन्धादिने स्थादिप विदितनिषिद्धलयोगादिकत्यः।
किन्तु स्थात् पर्युदासस्तिदिदमभिद्दितं सभावत्यच यद्यत्,
सन्ध्यादि स्थादुपास्यं भवति दि तद्गौचाद्दभिन्नेष्यदःसु ॥
तथागौचे कर्मनिषेधविचारः।
तत्र कात्थायनः,—

स्रुतके कर्मणां त्यागः मन्ध्यादीनां विधीयते । दत्यादिषु अग्रीचे कर्मणां निषेधः, येन विधितप्रतिषेधे विकच्यः स्थात् । किन्तु पर्युदासः । यसन्ध्यादिकसुपास्तं, तदन्यचाग्रीच -दिनेभ्य दति । तथा च विष्णुपुराणे,—

> मर्वकालमुपखानं मन्ध्ययोः पार्थिवेय्यते । श्रन्यच सूतकाशौचविभ्रमातुरभौतितः ॥ इति ।

विश्वमो (भयं विनाषाकुत्तता) श्रव निवन्धकतः जननसर्णा-गौच एव पर्युदासः सन्ध्याया श्रकर्णलप्रतिपादकवह्निश्रव- णात्। विश्वमातुरभयेषु पति समावे कार्य्यतेव। श्रसमावे लकर्णे-ऽपि न दोष इति तात्पर्यम्।

मन्धा सार्त्ताग्रिहोमः श्रुतिपठनमुखाः पञ्चयज्ञाञ्च दाना-दाने सार्त्ते च कर्म चिविधमहिमहक्षंक्रमस्नानदाने । दर्भश्राद्वादि पित्यं न भवति तु भवेच्चातकर्मापि पष्ठाह-हाद्युक्तं प्रेतकर्मादणमदिनम् स्नानमुख्यं ग्रहे च ॥

ग्रहो(ग्रहणं)। श्रग्नौचे केषाञ्चित् कर्मणां लोप एव, केषाञ्चित्त त्तनमध्येऽपि करणं। केषाञ्चित्तदनन्तरमेव करणमिति व्यवस्था क्रियते।

श्रव जावालि:, मन्ध्यापञ्चमहायज्ञा नैत्यकं स्पृतिकर्म च ।

तक्षथे हापयेत्तेषां दशाहान्ते पुनः क्रिया ॥ इति ।

ननु मन्ध्याया श्रशीचेऽष्यपरित्यागः, पुलस्य श्राह, —

सन्ध्यामिष्टं चहं होमं यावच्चीवं समाचरेत् ।

न त्यजेत् स्तके वापि त्यजन् गच्छेदधोगितम् ॥

इत्यत्र विरोधाभावः, कथमिति चेत्? उच्यते, पुलस्यवच-नम्य मानसिकमन्ध्याकरणे तात्पर्य्यम्, न तु माचात् सन्ध्याकरणे।

> म्हतके सूतके चैव मन्ध्याकर्म ममाचरेत्। मनमोचारयेनान्त्रान् प्राणायामस्ते दिजः॥

द्ति वचनान्तरात्, श्रञ्जलिप्रचेपमाचस्य वच्चमाणलाञ्च। नैत्य-कग्रब्देन श्रावश्यककत्त्र्यनैमित्तिकानामपि संग्रहः। श्रनारश्चका-म्यानां तु सर्वेच सर्वेथा निष्टत्तिः। तथा च कालिदासचियिनिनः,— "स्मान्तें च कर्म विधा त्याज्यं" इति । विधा (नित्यं नैमित्तिकं काम्यं च) रविसंकान्तिस्नानादिकं नैमित्तिकत्वादक्यम् । न च नैमित्तिकोक्षेदः कर्त्तिथो हि कथञ्चन ।

द्रित वाकास प्रामाणे स्तिकादिमध्यपितनजातकर्मसञ्चयना-दिविषयलमिति सर्वनिवन्धकतः ।

यमग्रञ्जाने, - दानं प्रतिग्रहो होमः खाध्यायः पिलकर्म च । प्रतिपद्धिकियावर्जमग्रीचे विनिवर्त्तते ॥

तेन दर्गेष्टिकादिश्राद्धानां पित्वकर्मलाश्विष्टित्तः। होमोऽत्र स्मार्त्तः, श्रौतस्याणवानुष्टेयलात्। तथा च पारस्करः, "नित्यानि विनिवर्त्तरम् वैतानवर्जं" दति।

मार्कण्डेयः, - षष्ठेऽक्ति राचियागन्तु जन्मदानाञ्च कारयेत्। रचणीया तदा षष्टी निर्णातच विशेषतः॥

जन्मदानां षोड़गमातृषां षष्टी षष्टी देवी निगां निगां व्याप्य ऋत्यन्तसंयोगे दितीया।

प्रजापतिः,— एवं प्रेतिकियायान्तु पूर्वाभौचं न वाधकम् । सृत्यन्तरे,— यहणे भावमाभौचं विसुक्तौ स्रुतकं सृतम् ।

एवं यहसुकरिप स्नाननिमित्तलम् । श्रतएव लिङ्गपुराणे,—
चन्द्रस्यंगहे स्नायात् स्तते स्तके रितकेऽपि वा ।
श्रसायौ स्त्युमाञ्जोति स्नायौ पापं न विन्दति ॥
तद्विहितश्राद्धदानादिकमणत्र कार्यम् । तथा च तद्देव,—
स्तके स्तके चैव न दोषो राज्ञदर्शने ।
तावत्कासं भवेच्छद्धिर्यावनुक्तिनं दृश्यते ॥

श्रव यत् ग्रह्मिभधानं तद्दानश्राद्धार्थमेव, पूर्वेण स्नानस्य प्राप्तेः।

यत्तु,— स्नतके स्नतके चैव न दोषो राष्ठदर्गने।

स्नानमाचं च कर्त्तव्यं श्राद्धदानिविर्विज्ञतम्॥

दित गौड़देगीयसम्बत्धरधतवाक्यम्। तच मूलं न दृश्यते।

श्राद्धे चैपचिकैकादग्रदिनविद्यिते चाब्दिकं मासिकान्यू,

नान्दोत्पन्नं सिपष्डीकृतिरिप न भवेदूनषाण्मासिकं च।

प्रेतसाग्नेस्वि पचाभिद्दितमिष भवेद्योजनं नो निरग्नेः,

किन्तु श्राद्धान्यग्रीचयपगमदिवसे तान्यवश्यं भवेयुः॥

योजनं सिपष्डीकर्णं।

स्मृतिः, - मासिकार्थे तु संप्राप्ते कदाचिन्मृतस्तके । वदन्ति गुद्धौ तत्कार्थं दर्गे वापि मनीविणः॥

माधिकार्थं माधिकाभिधेये कर्मणौत्यर्थः । तथा च एकादग्राहश्राद्धस्य जनमाधिकमञ्जलात् चैपचिकश्राद्धस्य मार्द्धमाधिकलात्
जनपाएमाधिकोनमान्तसिक्योः पाएमाधिकमञ्जलात् मिपण्डीकरणस्य दादग्रमासे विहितलाच्च एकादग्राहचैपचिकोनपाएमाधिकोनसाम्तसिक्षिपिष्डीकरणानि माधिकश्राद्धवदग्रीचानन्तरिद्वसे
कार्याणीत्यर्थः । श्रव यत् "दर्ग" दित पचान्तरं । तदग्रीचान्तदिने विग्ने मतीति वोध्यम् । "एकादग्रे नवश्राद्धे" दित वच्यमाणोकेः एकादग्राहश्राद्धप्रस्तावे तस्य जनमाधिकमञ्जलं वक्तव्यम् ।
नन्नेवं सित,—

श्राचत्राद्धमग्रद्धोऽपि कुर्यादेकादगेऽहिन । कर्त्तुकात्कालिकी ग्रद्धिरग्रद्धः पुनरेव सः॥

<sup>(</sup>१) प्रेतेसामौचि इत्यादि।

दित ग्रह्मवचनस्य का गतिरिति चेदुच्यते, श्रव केचित् विज्ञानेश्वरोक्षिखितमपि तद्भिप्रायमुक्षीय दाद्गाहाद्यगौषि-चित्रयादिपरतया समाद्धते। तस्र सम्यगिति प्रतीमः। तथा-ग्रीचापगम दति विष्णुना सर्वसाधार्यकेन एकाद्गाहस्राद्धम-ग्रीचापगम एवोक्रम्।

मात्स्येपि, — तत एकादशाहित दिजानेकादशैव तु। चनादिः स्ततकान्ते तु भोजयेदयुतोदिजान्॥

द्ति चलादीनामगौचान्त एकादगाइकत्यसुक्रम् । त्रतएव कन्यतस्कारेर्म्हतेऽद्दिनि तु कर्त्तव्यमिति याद्यवन्कीयवचने एका-दगाइपदमगौचान्नोपजचणिमिति व्याख्यातम् ।

> राजां तु दगमः पिण्डो द्वादग्रेऽहिन दीयते। वैग्यस्य पञ्चदग्रमे ज्ञेयस्त दगमस्तथा॥ ग्राद्रस्य दगमः पिण्डो मासे पूर्णे हि दीयते।

्रत्यादि पुराणोक्तौ पूरकिपण्डदानस्य चनादीनां दादग्रदिन् नादिषूक्तलात् पूर्वमुत्तरषोड्ग्राधिकाराभावात्। श्रतण्वानाभिन् युक्ता श्राष्टं श्रग्रद्धोऽपीत्युक्तेः कन्यतस्कारादिभिरना-दृतलेन श्रनतुष्ठानज्ञचणमप्रामाण्यं दत्याद्धः। श्रतण्य पर्णदाद्यदिन् प्रयुक्तत्रश्राणोचादौ श्रगौचान्तदिन एव एकादग्राह्यसमाचारः सङ्गच्छते। न लेकादग्राह्यचन्तापचेति कामधेनुकारः। श्रतण्य-श्राचश्राद्धमिति संज्ञा बाह्यणस्य सर्ववणीत्तमलादधिकेन व्यपदेग्रान् भवन्तौति न्यायादेकादग्रोकिरिति सिद्धं। यदि श्राधं श्राद्धमिति ग्रह्योक्तेः काचादर्भकारादृतलेन प्रामाण्यमङ्गीकार्यम्, तर्ह्वि तदेग्रीन यानां वैकल्पिकं तदिति वोध्यं नलसाई शीयानाम् । एवं निर्ग्नि-पुचेण माग्निकस्थ पितुः चिपचे मिपिष्डीकरणं कार्यमिति यदच्यते तद्यशीचान्त एव कार्यम् । "देखे पित्रणां श्राद्धे" दत्यृष्यश्रङ्कोको मामिकार्थं दंत्युक्तो, मंग्रहीलाच ।

त्रसृग्यसर्प्यनोक्ताञ्चवनिमव मदा स्नानमत्रायमन्त्रम्।
प्राषाङ्गत्यः समन्त्राः परिमद्द तद्योग्रानयुग्गं समन्त्रम्॥
सावित्र्याः प्रास्त्र नीराञ्चितिमद च परिक्रम्य सन्ध्यानिषेधे।
सूर्यं वन्देत कर्मेयद्य भगवतो वन्दनादौनि न स्युः॥
सृतिः,— सूतके मन्त्रवत्कर्म स्नान्तं नैव समाचरेत्।
त्रपोग्रानदयं सुक्ता तथाप्राषाङ्गतौर्पि॥

एवं च प्रातः खानं मन्तरिहतं कार्य्यम्। विष्मूचचाण्डाकादि-स्पर्भविहितसानस्य ग्रोचेऽयमन्त्रकतास्तुतरामचायमन्त्रकतम्। नतु,— श्रसाताग्री मलं भुद्गे श्रजपी प्रयग्नोणितम्। श्रक्तता च क्रमीन् भुद्गे श्रदला विषभोजनम्॥

दति जावालिवचनात्। भोजनिमित्तयोर्जपद्धानयोरगौचे ऽपि कार्यतमिति चेत्, न। नैमित्तिकानामण्य निषिद्धतात्। प्रथवा एतदाकाखागौचेतरिदनेषु सावकाग्रलेन सर्वकामैत्याग-स्मतेर्निरवकाग्रलेन वज्जवन्तात् तदाक्यैकदेगोकसार्त्तहोमदानयो-रपि कार्यत्वपाताच। नन्यच नैमित्तिकस्य निषेधे चण्डाजाद्यसृग्य-स्पर्गनिमित्तस्तानस्य नैमित्तिकत्वादकरणं प्रसच्येत द्रित चेत्, न। गक्तिविषये न सुहर्त्तमप्रयतः स्थादित्यापस्तम्बोक्तेर्निषेधपरिपालन-रूपेण गौचस्य कार्यतं न तु नैमित्तिकत्वात्। क्ष्मानिषेधे पैठीनिसः,—"मावित्याऽञ्चिलं प्रचित्य प्रदिचणं क्षाता सूर्यं नमः सुर्यात् एतावत्ं कार्यं" इति । तसात् मर्वया जपो न कार्यः । जपस्य किञ्चित्करणिमिति केचिददिन्तः, तस्र चाइ । वाचनिकेऽर्यं प्रद्धाया अनुचितलात् । किञ्च "पूर्वां मन्ध्यां जपंक्षिष्ठेत्" इत्यादिना अञ्चलिप्रचेपजपयोः मन्ध्यायां प्राधान्या—चित्रपेधस्य निर्वकामलं स्थादिति मञ्चेपः। वाराष्ट्र दाचिंगदप-राधमध्ये,— "उच्छिष्टे चैव वा ग्रीचे भगवदन्दनादिकम्" इति गणनात् भगवदन्दनादिकं न कार्य्यम् । उच्छिष्टे चेपाद्यभौचे । अग्रीचे सूतकाद्यगीचे ।

प्रारीरं खाद्वतोत्रं निखिलनियमनं कार्त्तिकादिवतेषु, प्रारभेष्वेव देवापचितिवितरणे किन्तु वान्यैर्विधेये । यदाघान्तेषु कार्ये यजनवितरणे पञ्चगयाप्रनान्ते, तदस्रार्यस्रदेयू रजिस परमुपोखादमीयास्त रात्रीः ॥ लिङ्गपुराणे,—

प्रारक्षे तु वृते पश्चादभौषं यदि जायते ।

प्रारीरिनयमः कार्यः पूजादानिविवर्जितः ॥

प्रभौषान्ते ततः खाला पश्चगयकतामनः ।

देवं पूर्वीक्रिविधिना<sup>(१)</sup> दिखिणां दापयेत्तदा ॥

भवेद्रजखना नारी यद्येवं वृतवामरे ।

भवितयं तदायेवं प्ररीरक्षेणयुक्तया ॥

यस्मिन् दिने भवेष्कुद्वा विधि तस्य ममाचरेत् ।

<sup>(</sup>१) संपूज्य विधिना।

त्रतस्य राजशार्दू नैव खण्डकतं भवेत् ॥

त्रिक्तराः, पारश्वदीर्घतपमां नारीणां यद्रजो भवेत् ।

न तेन तद्वतं तामामुपद्यात्कदाचन ॥

खभाव एष नारीणां ज्ञेयो मूत्रपुरीषवत् ।

ततोऽर्थात्र प्रदुष्यन्ति चरेयुरेव तद्वतम् ॥

तथा, नियमस्या यदा नारी प्रपश्चेदन्तरा रजः ।

उपोय्वेव च ता राचीः श्रेषं स्नाता व्रतस्वरेत् ॥

गारुद्रपुराणे तु पचान्तरम्,—

श्रन्येर्दानादिकं कार्यं कायिकं खयमेव तु । इति । श्रतप्वैकादशीप्रसावे, माधवाचार्याः, — स्त्रीणां रजोद्र्यनेऽपि न व्रतत्यागः । किन्तु देवार्चनादिर्हितं स्त्रकादाविव उपवास-माचं कार्यमित्यादि ।

देवाचांचांन्यगोचेर्हरिगिरिप्रिप्रियावाबद्वापूजा तु नित्या,
मानस्वेकादग्री श्रीमधुरिपुयजनं मानमं वाष्यघान्ते।
श्रारश्चं पूर्वरिक्षेत्रंतस्र्यजनं स्वाद्धारश्चजाणं,
स्वोचाद्यं तीर्थयाचाद्यनुदिवममिष्ठ स्वाद्धान्ते ममाणम्॥
देवाचांचां देवप्रतिमायाः पूजेत्यर्थः। व्रतस्त्पं सुरयजनं ग्ररत्कास्तीनदुगोत्सवादि। पूर्वरिक्षेरग्रीचात् पूर्वमित्तद्रव्यैः। जप
एव जाणम्। तीर्थं गङ्गागयादि। याचा श्रीगुण्डिचादिदेवोत्सवः।
श्रूगोचे मर्वकर्मनिषेधेऽपि "नार्चयिला तु यो भुङ्क्ते" रत्यादिविग्रेषवाक्ये विण्वबद्धाहरदुर्गाणां पूजायाः कार्यलग्रद्भायां नैमित्तिकलात् स्नानजपवत् निषद्धलेऽपि,

त्रय स्तिकनः पूजां वदास्यागमचोदिताम् ।

स्नाला नित्यं च निर्वर्त्त्यं मानसा क्रियया तु वै ॥ वाद्यक्रियाक्रमेणीव ध्यानयोगेन पूजधेत्।

द्रित यमोक्तिवलानानसी पूजैव कार्या। पुष्पाञ्जिलिनयदानं श्रष्टपुष्पिकापूजा कार्येति केश्विद्यिलिखितं तन्न चार्। श्रमिकितं विषये तथोविधानादगौचे प्रसराभावात्। यत्तु राघवभट्टेन,—जपोदेवार्चनविधिः कार्या दीचात्वितैनँरैः।

नास्ति पापं यतस्तेषां सूतकं वा यतातानाम्॥

इति चिखितं तद्गौचाभावकवात् यतिव्रह्मचार्यादिविषयम्।

तथा च,— श्रमपिष्डग्टहे नीवा पूजनीयः मदाभिवः।

दति वाक्यादमगोत्रग्रहे पूजा कार्यितया। मदामिव दत्युप-लचणादिष्ण्वादिदेवानामपि। एवं च सति "प्रतिष्ठितार्चा न त्याच्या यावच्त्रीवं तदर्चनम्" दति इयग्रीर्षवाक्यस्य ब्राह्मणान्तर-दारा करणास्र विरोधः।

स्कान्दे, चन्द्रगर्मणो वैष्णवार्चाप्रतिज्ञायां,—"मया भक्ता प्रकर्त्तव्यं प्रत्यदं पूजनं तव" इति वाक्यं भगवत्पीतिक्ष्पफलकामनया यावच्जीवक्षतमद्भय्यवादेयमिति केचित्, वस्तुतस्तु नित्यारभायाः विष्णुपूजायाः सन्ध्यादिनित्यकर्मवत् श्वगौचेतरदिनविषयलमेवेति सर्वे समञ्जसम्। एकादग्यां तु मानस्थेव पूजा,

स्रतकेऽपि नरः स्नाला प्रणम्य मनमा स्रिम् । एकाद्यां न भः स्त्रीत वतमेतस्रलुप्यते ॥ स्रतकेऽपि न भः स्त्रीत एकाद्यां सदा नरः ।

इति वाराचीकः।

माधवीये तु पचान्तरमुक्तम् । तथा च एकादभी प्रक्तत्य,
मात्स्थे,— स्त्तकान्ते नरः स्नाला पूजियला जनार्दनम् ।
दानं दला विधानेन बतस्य फसमञ्जते ॥ दति ।
स्तते स्तते चैव चिष्यभीचं न विद्यते ।
यत्री विवादकासे च देवयागे तथैव च ॥

द्रित वाक्यात् प्रारथगरत्कासीनदुर्गोत्यवादिवतेषु नागौचम्। त्रग्रौचिद्रयस्य पूजानर्हलेऽपि तदर्थपूर्वमस्वितद्रयोः पूजा । स्दर्सतिः,— विवाद्योत्सवयज्ञेषु लन्तरा स्टतस्तके । पूर्वमद्भन्तितं द्रयं न दुखति कदाचन ॥

सेङ्गे, स्तकान्मृतकात्पूर्वं धर्मार्थं यस्तकन्यितम् । द्रयं तेन यजेद्वीमांस्रणैवोत्पादितैरिष ॥ पैठीनिसः, विवाददुर्गयन्नेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि ।

म तब सूतकं तदत् कर्म यज्ञादि कारयेत्॥ विष्णुः, - व्रतयज्ञविवादेषु त्राद्धे देशमेऽर्चने जपे।

प्रारचे स्तकं न खादनारचे तु स्तकम् ॥ दतीदं महस्रनामादिस्तवोपस्चणम् ।

यर्वसङ्कल्पितेऽर्थे च तसिमागौचसुचाते ।

इति यमोत्रोः। तसाद्यतानां तत्तत्वर्मस् नाग्रोचम्। किन्तु वक्ष-दिनसाध्यानि प्रारश्चस्वपाठजपद्योमादिकर्माणि कालप्रतीचासद्यानि चेत्तर्षि त्रग्रोचमधोऽपि प्रत्यदमनुष्टायाग्रोचान्त एव समाप्यानि ।

दुर्भिचप्राणर्चाणमकरणविपत्यादिदेणादिभङ्गा-दिम्बारमाः समाप्तिः स्वपठनज्ञपादेर्भवेतां न दोषः । पूर्वारमे विवासम्तमदनजनाधारदेवप्रतिष्ठा-दानत्राद्धादिकच्छादिकमघपतने स्वात्ममाणं तदापि ॥ नागौचम् कचिदित्यनुदनौ ब्राह्मो,—

श्रकासम्वयोः शान्यथं महादाने च रोगिणाम्।
दुर्भिचप्राणरचायं क्षतयञ्चस्य देखिनः॥
राद्रभङ्गे स्थितस्थाय पुत्तदारांश्च रचतः।
ग्रहोपतापशान्यथं क्रियमाणे च कर्माणि॥
तथोपमर्गात्स्वं देहं रचमाणस्य नो भवेत्।
महादानपदं शान्तिमाचोपस्यणम्।

दचः, - खखका सं तिदं धर्वम् ग्रौचन्तु परिकीर्त्तितम् । श्रापद्गतस्य धर्वस्य स्नुतकेपि न स्नुतकम् ॥

्विणुः,— "न देवप्रतिष्ठाविवाच्योः पूर्व्यम्नृतयोः" देवप्रतिष्ठा-पदं सर्वप्रतिष्ठोपस्चणम्, विवाचपदं व्रतादेवपस्चणम् । याज्ञवस्काः,— स्विजां दीचितानाञ्च यज्ञे कर्मणि सुर्व्यताम् । सचिव्रतिवञ्जचारिदाद्ववञ्जविदां तथा ॥ दाने विवादे यज्ञे च संगामे देणविश्ववे ।

श्रापद्यपि च कष्टायाम् सद्यः गौचं विधीयते॥

बाह्ये,— निमन्त्रितेषु विशेषु प्रारक्षे श्राद्धकर्षणि।
देहे पित्रषु तिष्ठत्तु नागौषं विद्यते कचित्॥
कन्दोगपरिभिष्ठे,— न दौचणात् परं यज्ञे न कच्छादि तपश्चरन्।
श्रादिपदम् प्रारक्षकर्षीपलचणम्, तस्रादितेषाम् प्रारक्षले—
ऽगौचस्रावाधकतात् यागवत् ममाप्तिरित्यभियुक्ताः।

कच्छाद्यनाङ्गश्चोमदिजशुजिकरणे दाहभोक्नोर्न दोषो नित्यासकस्य कच्छादिकविधिषु समारमाणे नापि दोषः। श्रारमो नाम यज्ञे वरणमुण्यमादौ तु नान्दीमुखं स्थात् श्राद्धादौ पाकसिद्धिर्वतविधिषु च सङ्कल्प उक्तोऽपि सचे॥ श्राप्तीचं नो भवेदित्यनुहत्तौ,

त्राह्मे.— नित्यं व्रतपरस्थापि कक्क्रचान्द्रायणादिषु । निरुक्ते कक्क्रचोमादौ त्राह्मणादिषु भोजने ॥

तयाच मन्ततक्क् चान्द्रायणाद्याचरणशीसस्य कक्काद्यारभी-ऽयशीचं नास्ति । कक्क होमादिसमाप्ती ब्राह्मणभोजनकर्मणि दाह-भोक्नोञ्च नाशीचम् ।

विष्णुः, - त्रारक्शो वरणं यागे सङ्गन्यो व्रतमत्रयोः । नान्दौसुखं विवाहादौ आद्धे पाकपरिक्रिया ॥

निमन्त्रणं तु श्राद्धेऽपि श्रारमाः स्वादिति स्वितः।

वृतजापयोरिति पाठान्तरम् । निमन्त्रणपचस्यास्त्रदेशे नादर एव । "श्राद्धादौ तु पचिक्रिया" दत्यादि स्तत्यन्तरे नेवलपाक-सिद्धेरेवोक्रालात् ।

त्रागौचात्रं मिण्डानृत इतरजना दात्रस्तुर्दयोर्वाजानेऽश्रीयुर्न कामादनविहततयायुर्वदा वा ममाघाः।
भुक्तार्द्वेऽघे तु दातुः पतित मित तदन्नामुनी मन्यनेयुर्यागोदाहादिमध्ये मित तु यदपरे दयुरन्नं तद्युः॥
मतुः,— जभयन दगाहानि कुलस्थानं न भुन्यते।
यदान्त्रमित्त तेषान्तु दगाहेन विद्यध्यति॥

उभवन सूतने मृतने चेळर्थः । श्रिष दाह्यदीचोस्रेत्यादि पुराणवाकाद्दातुरज्ञानेऽल्लादुष्टलेऽपि,

उभाभामपरिज्ञाने स्तकं नैव दोषक्षत्। एकेनापि परिज्ञाते भोकुदेषिसुपावहेत्॥ इति षट्चिंगनातवाक्याहोषः।

या तु,— स्तकेऽपि कुलस्यान्त्रमदोषं मनुरत्नवीत् ।

दति यमोक्तिः । मा जातीनां स्ववंशान्तभुक्तिपरा,
त्रशौचमध्ये यत्नेन भोजयेच सगोचजान् ।

. इति बाह्योकः।

त्रादित्यपुराणे,—

विज्ञाते भोकुरेव स्थात्पायश्चित्तादिकं क्रमात्। विष्णुः,-क्राञ्चणानामशौचे यः सकदेवान्नमन्नाति तस्य तावदेवा-

ग्रीचं यावत्तीषामग्रीचं, त्रग्रीचयपगमे प्रायश्चित्तं कुर्यात् । इति ।

एवं च मकामाशौचान्त्रभोजने प्रायश्चित्तोकेस्तन्त्रिषिद्धसेव। त्रकामभोजने तु त्रशौचिसमाशौचाचरणम्। त्रादित्रपुराणे,— भोजनाद्धं तु मस्पाप्ते विषे दातुर्विपद्यते।

यदा कश्चित्तदोष्किष्टग्रेषं त्यक्ता समाहितः॥ श्राचम्य परकौयेन जलेन ग्रुचयो दिजाः।

विपद्यत इति जायत . इत्यस्थायुपलचणम् । तथा च षट्चिंग्रनाते,—

> भुञ्जानेषु च विषेषु लन्तरा स्टतस्तके। श्रन्यगेशोदकाचान्ताः सर्वे ते श्रुचयः स्टताः॥

पुनः त्रादित्यपुराणे,—

विवाहयद्ययोर्भधे स्ततके मित चानारा ।

शेषमञ्ज परैर्दद्यात् दाता भोक्षृं न सृशेत् ॥

दद्यात् दापयेत् इत्यर्थः। न सृशेत् त्रशौचप्रयुक्तदोष इति शेषः।

विवाहयद्ययोरिति भवीत्भवोपलचणम् ।

तथा षट्चिंग्रनाते,—

विवाहोसवयज्ञेषु लन्तरा स्तस्तके ।

परेर मं प्रदातव्यं भोक्तव्यञ्च दिजोत्तमेः ॥

प्रेतामं स्तिकामं यदि परमदने कापि स्ते तदास्या
प्रोत्यानं नाम्नमाद्यं परभवपतनेऽप्यास्त्रमानिर्हतेनं ।

जत्यामं जन्मतः स्यादहनि तु दशमेऽपाग्रिमत्मिनदाचो
रामामं स्त्यभौचेऽस्थिचयनपरतः स्तके लादितोऽद्यात् ॥

म भुद्भौतेत्यनुदन्तौ,

मनुः,— ष्ठयाम्नं स्तिकाषम् पर्याचान्तमनिर्देशम् । दति । पर्याचान्तं त्राचमनस्यानस्यम् ।

थमः, प्रेतासं स्तिकासञ्च दाद्गाशं यवान् पिवेत्। दति यमोकौ प्रायखिकोकोः तदस्रयोरभच्छता। प्रेतासं प्रेतसुद्दीम्य ग्राचिनापि दक्तम्।

स्तिकाचं स्तिकामुद्यः पक्रम्।

श्रापसम्बः,—

त्रतिकायां सुतिकायामनः प्रवेन च। त्रसार्थः, त्रज्ञौचानधिकारिणोऽपि यस्य रहे सूतिका, तद्त्यानपर्यनं तद्ग्रहे न भोक्तयमिति। एवं परगोचे ग्रवे ग्रहे खिते तावत्कालं न भोक्तयं इति। "उत्यानं जन्मतोद्ग्रमदिने" इति नामकरणप्रलावे पारस्करसूचं लिखितम्। नतु श्रनःसूतके चेदोत्यानादाग्रीचं सूतकवदिति पारस्करसूचान्तरे एकादग्रदिने उत्यानपदं प्रयुक्तमिति चेत्? उच्यते। श्राजत्यानादित्यच श्राङो ऽभिविध्यर्थता। तथा च जत्यानदिनमभियाष्याग्रीचिमिति। एका-दग्रदिने श्रग्रीचापगम इति न किखिदिरोधः।

प्रक्तिराः, - न दोषयाग्रिहोत्रिणाम् ।

स्तिके याव त्रायौचे लिखिमञ्चयनात्परम् । त्रवसचप्रवृत्तानामाममश्चं विगर्धितम् ॥ भुक्षा पकात्रमेतेषां चिराचं तु वृती भवेत् । त्रियोचीचणां सदासदानयीचानाञ्च स्तकायौचे पञ्चदिन-प्रस्तवामात्रयहणे स्तुतके त्राद्यदिनतोऽपि त्रामान्नयहणे च न

दोषः । पकानभन्तणे प्रायश्चित्तम् ।

श्रमीषोमीयपर्यन्तमि न हि मतं दीचितस्यान्तमाश्रम्, किन्वापरीव सोमक्रयण दह कते भोज्यमेवं विपत्तौ । यज्ञेऽपेच्छं हि यद्यद्द्रविणमिद्मवस्थाय वाद्यं तद्व्यत्, चातुःप्रास्थे तु भच्छं न हि निगदितमाधानकर्माङ्गस्तते ॥ धौम्यः,— ब्रह्मोदने च सोमे च सौमन्तोन्नयने तथा । जातश्राद्धे नवश्राद्धे सुक्का चान्द्रायणं चरेत् ॥

ब्रह्मोदनं त्राधानाङ्गभूतं चातुःप्रायः, श्रव चलारः ऋत्विजः प्राश्रनीति विधिः। गोगोऽग्नीयोमीयपग्रपर्यन्तम् । "श्रग्नीयोमीय- संखायां यजमानस यह न भोक्तव्यम्"दित जुतेः । "कीतराजको भोच्याचः" दित जायर्वणजुतिरापिद्वया । कीतो राजा सोमो येन स तथोकः । जापस्तम्ः,—"यज्ञार्ये वा विनिर्दिष्टे भोक्रव्यम्"। ज्रस्यार्थः, यज्ञार्थम् यावद्द्रव्यमपेचितं तावित द्रव्ये प्रथक् कते ज्रव-जिष्टाद्दीचितस्थानं भोक्रव्यमिति एतद्यापदिषयमेव ।

दुर्भेद्धाव्यतेलाञ्चनफललवणचौद्रमांचेषु मूलकादौ काहे च मूलौषधद्यणसमनः ग्रस्थमाकेषु पर्छे।
पक्के सक्यौ यवादौ पचनविर्ष्टिते तण्डुलादौ न दोषः,
किन्लाभौचौ न दद्यात् पर उत वितरेदाददौत स्वयं वा॥
मरीचिः, — सवणे मधुमांचे च पुष्पमूलक्षेषु च।

ग्राककाष्ठहणेखेवं द्धिमपिःपयोऽपु च ॥ तैलोषधाञ्जने चैव पकापके खयङ्गाहे । पळेषु चैवं मर्वेषु नाग्रीचं मृतसूतके ॥

श्रव पयः पदं दिधसा इचर्यात् दुग्धपरं । पकं सक्युमोदक-गुड़ादि श्रपकं तण्डु लादि । स्रात्यन्तरे, — लवणं सर्पिमां सञ्च पुष्पमू लफलानि च ।

काष्ठं ग्राकं त्रणं तीयं द्धिचीरं एतं तथा॥
श्रीषधं तैनमञ्जनं ग्रष्कमनञ्ज नित्यगः।

श्रुणीितनां ग्रहाद्याद्यं खयं ग्रस्थः मूलकम्॥

एतत् सर्वमणीितग्रहगतमपि खयं ग्रद्यमाणं न दोषावहम्।

श्रुणौितना वेदीयेत तर्हि दुष्टमेव। तथा च श्रुणौिकीत्दीयमान-

मिप न दोषावहम् । श्रव वाक्ये ग्रष्टाक्षपदेन तष्डुकादेर्यहणम् (१) ।
नतु वाक्यद्येऽपि श्रमौ चिग्टहस्थितजनस्थापि ग्राह्मतमिति चेत्, न।
तस्य लत्यन्तामभावे लयाचितविषयलात् ।
श्रन्थणा,— स्तर्तते तु घदा विश्रो ब्रह्मचारी विश्रेषतः ।
पिवेत्पानीयमञ्चानात् मम्यक् स्वाथात् स्पृश्चेत वा ॥
पानीयपाने कुर्वीत पञ्चगयस्थ भन्नणम् ।

दत्याचिक्तिरःप्रस्तिवाक्यमनर्थकं स्वात् । "भोजनकाले त्रगौ-पपाते तु त्रन्यस्य ग्रहाच्चलमानीय त्रात्रमनीयं" इत्याद्यपि व्यथं स्थात् ।

विप्रादाग्रौ चयुक्ताद्दलनप्रस्तिभिः संस्क्रियाभिर्विग्रोध्यम्,
धान्याद्यं ग्राह्यमामं गदितमपि विपत्तौ त पकास्त्रवर्ज्ञम् ।
विप्रैः सत्ग्रद्रजातेः परिमष्ट त पणाः किषकास्तासिकाख्या,
ग्राह्या उक्ता श्रातोऽस्मिन् रजतमपि हिरण्यादिकं ग्राह्यमाज्ञः ।
श्रित्राः,— संस्कारैः ग्रुष्यति ह्यामं धान्यं तेन ग्रुचि स्मृतम् ।
तस्माद्वान्यं ग्रहीतयं स्तिस्तान्तरेष्यपि ॥
पकास्त्रवर्जं विप्रेभ्यो गौर्धान्यं चित्रयात्त्रयाः।

वैक्षेभः धर्वधान्यानि ग्रद्रात् गाद्याः पणास्तथा ॥ 
ग्रंस्कारैः द्वनादिभिः। "एतचापद्गतस्य" दति कच्यतरकाराः। ताम्रिकाः कर्षिकाः पणाः, पणानां ग्राह्मलोकेः। रजतादौनामपि ग्राह्मलिमिस्यभियुकाः।

पूर्वाग्रीचेऽपि तातः सुतजनुषि विकोक्यास्थमस्यायदृद्धा,

<sup>(</sup>१) तण्डलसक्खादेग्रहणम्।

वा नाड़ी केंद्रनात् प्राक् ग्राचिर भिषवणात् गोसुवर्णादि दशात्। न स्नानं षण्डपुत्योर्जनुषि भवति संसर्गजागौचपाते, पिचोस्तद्यद्मविक्तेरपि सुतप्रमुखा वैश्वदेवादि कुर्युः॥ श्रभिषवणात् स्नानात्।

प्रजापतिः, - ऋशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत्।

कर्त्तुंसात्कालिकी ग्रुद्धिः पूर्वाग्रीचं न वाधकम् ॥
त्रतएवैतदनापद्विषयम् । पारस्करः,—"जातस्य कुमारस्थास्क्रियायां नाद्यां मेधाजननायुः वे करोति" दति जातकर्मा अक्रवान् ।
ग्रङ्कालिखितौ,— "कुमारप्रमवे नाद्यामिक्स्त्रायां गुड्तिजदिरस्थवस्त्रपावर्णगोधान्यप्रतियद्देऽस्यदोषः" त्रपि ग्रब्दात् कुमार-

प्रमविनिमत्त्रद्यान्तरपरियहेऽप्यदोषः । सुमन्तुः,— स्रुतके तु सुखं दृद्वा जातस्य जनकस्रतः ।

क्रवा मचेलं स्नानं तु ग्रुद्धो भवति तत्वणात्॥ ममर्त्तः,— जाते पुत्रे पितुः स्नानं मचेलन्तु विधीयते।

एतदाक्यात् पुचमुखदर्भनाभावेऽपि पितुः स्नानम् । कन्योत्-पत्तौ तु पितुः स्नानाभावः ।

तथाचाङ्गिराः,- नागौचं विद्यते पुंमः संवर्गञ्चेम्न गच्छति ।

रजः सवति च स्त्रीणां तच पुंचि न विद्यते॥

पुंगः पितः रजःप्रावक्ये स्तीजननात्, यस्या रजः, तस्या एवाङ्गाग्रोचम्, न पितुः। जननीसर्ग्यने तु पितुरपि स्नानं वच्चिति। तथा च, श्रङ्गाग्रोचापगमार्थं दुहित्वजनुषि स्नानाभावः। एवं च "स्नानोपसर्ग्यनादेव पिता ग्रुद्धः" दृति वाक्यस्य, पुंजननविषय-

तम् । नपुंसकोत्पत्ताविष भ्रयमः स्तीधर्मस दर्भनात् स्वानाभावः।
तथा च जैमिनिस्त्रं "विरोधिधर्मममवाये भ्रयमां स्थात् मधर्मतं"
दिति । त्रत्एव एतत् सर्वे विविद्य कास्तिदामचियिनिभिरप्युक्तं
"पुत्रीमच्चनतोऽय मर्वजननीस्पर्भे द्याद्यात् ग्रुचिः" दिति । पुत्री
(पुत्रवान्) न तु तातादिभाव्दः प्रयुक्तः ग्रद्धपतेर्वेच्यमाणस्वग्रदस्यतदुद्धिप्रमवनिमित्तादिसंसर्गाभौषे पुत्रादिदारैव वैश्वदेवादिकरणम् । सर्वार्थतादेश्वदेविकयादीनामस्रोपः ।
तथाचाङ्गिराः,—त्रभौषं यस्य संमर्गाच्यायते ग्रद्धमेधिनः ।

क्रियास्तव न जुष्यन्ते रुद्धाणां न च तङ्गवेत् ॥ रुद्धाणां रुद्दभवपुचादीनां, रुद्दद्याणां च द्रव्यर्थः ।

स्मान्तांग्री कर्म किञ्चित्र भवति तु हतः पौर्णमास्यश्यक्ते,-दारभलात् समायो भवति किस तदाग्रीचपातेऽपि द्र्ये । श्रीताग्नावग्निदोचाङ्गतिसुखमखिलं नित्यकर्मायग्रीचे,

स्वानात्तर्त्तर्मग्रद्धैः स्वयमि कुलजैरन्यगोत्रेश्च कार्य्यम् ॥ यद्यपि,— श्रव्यतं स्वावयेत् स्वार्त्ते तद्भावे कताव्यतम् । तथा,— कतमोदनसक्यादि तष्डुलादि कताक्रतम् ।

श्रीद्यादि चारुतं प्रोक्तमिति इव्यं चिधा बुधैः ॥ इति इन्दोगपरिभिष्टे उक्तम् ।

जावालिनापि,—जन्महानौ वितानस्य कर्मत्यागो न विद्यते। ग्रालाग्नौ केवलो होमः कार्य्य एवान्यगोचजेः॥

द्रत्युक्रम् । प्राचाग्निः सात्ताग्निः केवनप्रब्हात् पचादिपिण्ड-पित्यज्ञनिषेधः । पिल्यज्ञं वर्तं श्रोमममगोचेण कारयेत् । इति जातुकर्णवाकात् चरुपिण्डयज्ञयोर्विकस्य इति । तथापि,— स्तके मन्त्रवत् कर्म स्नान्तं नेव समाचरेत् ।

इति सृतेर्न किञ्चित् सार्त्ताग्नी कुर्वन्ति । किन्तु सार्त्ताग्नान वपि पौर्णमास्वर्रौ कते लमावास्थायामग्रौचपाते लार्थलात् समापनमेव ।

पौर्णमास्यादिदर्भान्तमेकं कर्म प्रचचते ।

द्रत्युकेः । श्रीताग्नौ तु पारस्करः, — नित्यानि विनिवर्त्तरन् वै तानवर्ज्जम् । वैतानिकानि नित्यान्यच दर्भपौर्णमास्याश्रयणाग्निहोच-चातुर्मास्यादौनि ।

व्यात्रपादः,— "श्रौते कर्मणि तत्कासं प्रातः ग्रुद्धिमवाप्रुयात्" । श्रशीचमध्येऽपि स्टलिक् यजमानस्थेत्यर्थः ।

मनुः,— "न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाम्योऽयग्रुचिर्भवेत्"। सनाभ्यः सपिण्डः। तत्कर्म श्रौतेष्वार्तिजं श्रसगोत्रासाभे कर्म कुर्वाणो नाग्रुचिर्भवेदित्यपि ग्रब्दार्थः।

नित्यः सोमोऽपि तद्दत् पग्रस्पिर तयोः पर्वसतास्र कार्या,-वन्ते पर्वष्णग्रौचं यदि पति नवास्त्रेष्टिरचागते स्थात् । नाग्गौचे स्थान्प्रवासो न च भवित निजस्त्यार्त्तवेस्थादिपच्चौ, सोऽप्यचाय प्रवेगो न च भवित भवेत् पर्वपाते तु सोऽपि ॥ निष्ट्रढपग्रवत्ससोमयोर्नित्ययोर्पि पर्वान्तर्मावकाग्रतात् नाग्गौ-चेऽनुष्ठानम् । आश्रयणमप्यन्तिमपर्वगतमनन्यगतिकत्वात् श्रन्ते-कार्य्यम् । स्तके मृतके चैव यस भार्या रजस्ता। प्रवासे गमने तस्य पुनराधानभियते॥

द्रत्यभौचे पत्था रजस्यपि प्रवासः निषिद्ध एवं। तथायात्यायिके कार्ये शुद्धिविधानादेव विपत्तौ तु प्रवासे कार्ये ऋग्युपस्थापनं कार्यम्। तथा प्रवेभोपस्थापनञ्च पर्वसिन्धावावस्थकत्वात् कार्यमेव। पित्रोर्मध्ये दमाइं यदि भवति सुतः साम्रिको दर्भपाते,

त्यक्षास्मिन् पैचयज्ञं सकलमनुचरेच्छ्रोतदर्भोक्रकत्यम्। श्रसिंसावसपिण्डीकरणस्विगिरा यन्निषद्धं विना तत्,-

नो युक्तः पिण्डयज्ञस्तदितर्विहितश्रौतलोपः कुतः स्थात् ॥ स्रुतिसंग्रहे,—द्गाहाभ्यन्तरे यस्य मिण्डीकरणं भवेत् ।

प्रेतलं सर्वदा तस्य यावदास्रतमं अवम् ॥

कार्णाजिनिः,—

मिष्डौकरणं कुर्यात् पूर्ववचाग्निमान् सुतः। परतो दग्रराचाचेत् कुझ्रच्झेपरीतरः॥

दतरोऽनग्निः।

जावानिः, — नामपिएडाग्निमान् पुत्रः पित्रयज्ञं ममाचरेत् ।

पापौ भवत्यकुर्वन् हि पित्रहा चोपजायते ॥

"त्रमपिएडौ मपिएडनमक्तवा" इति कच्यतर्काराः ।

एवं च दशाहमध्ये दर्शपाते मिपिछीकरणमाचस्य निषिद्ध-लात् मिपिछीकरणं विना च पिष्डिपिटयज्ञानुष्ठानस्य निषिद्धलात् तमेव विना श्रौतमन्यद्र्शकर्म कार्यमित्यभियुकाः । मातुः पिष्ड-पिट्टयज्ञे प्रवेशाभावेऽपि, एकादगाइं निर्वर्त्यं त्रवीग्दर्गाद्ययाविधि।
प्रकृवीताग्निमान् पुत्रो मातापित्रोः सपिष्डनम्॥
दित वाक्यान्मातुरपि सपिष्डीकरणं क्रलैव पिष्डपित्रयज्ञकर्णमिति। मात्रद्गाइमध्येऽयेवम्। विमातुस्त स्वकास एव
सपिष्डनमिति वच्छते।

साग्रिस्तेकादगाहे यदि पतित कुह्रदीदगाहेऽथवान्या-गौरे छता सपिण्डोकतिमपि तनुयात् श्रौतदर्गीककत्यम् । यागोऽगौरे समायो यदि भवति रजो योषितो यागमधे, तच्छुद्धौ तत्समाप्तिस्त्वचितगमभवे पर्वके जातकेष्टिः ॥ रहस्पतिः,— दादग्रैकादग्रे वाह्रि साग्निः कुर्यात्सपिण्डनम् । ग्रावागौरस्य मध्येऽपि कुर्यादेवाविग्रद्भयन् ॥

द्ति पुत्रस्य माग्निकले दादगाहे दर्भपातेऽगौचेऽपि दादगाहे सिपाष्ट्रीकरणम्। एकादगाहिदने दर्भपाते तु एकादगाह एव। स्रगौचानन्तरं दर्भपाते तु स्रगौचानन्तरं दर्भपाते तु स्रगौचानन्तरं दर्भपाते तु स्रगौचानमदिने मिपाष्ट्रनम्। देये पितृणामित्युक्तेः।

• ब्राह्मे,— ग्रहीत मधुपर्कास यजमानस स्वितः। पद्माद्गाहे पतिते न भवेदिति निश्चयः॥ तदद्रृहीतदीचस्य चैविद्यस्य महामखे। स्वानं स्वस्थे यावन्तावन्तस्य न विद्यते॥

स्तिजां मधुपर्कग्रहणाननारं यजमानस्य दीचायाः पञ्चात् पतितमग्रीचं तत्कर्मममाप्तिपर्यन्तं न भवतीत्यर्थः । तथाचाग्रीचेऽपि यागसमाप्ती न दोषः । यागस्य मध्ये पत्नीरजोदर्भने तत् श्रद्धावेव यागसमाप्तिः । 'यस्य पत्नी श्रनासम्बुका स्थात् तामवरूध्य यजेत'' इति श्रुतेः ।

श्रनासमुका (रजोवती) श्रौतमपि जातेश्वादिकं श्रशौचाप-गमपितते श्राधे पर्वणि कार्यो, नाशौचमधे। तथाच पूर्व-मीमांसायां चतुर्याध्यायहृतीयपादोनविंशाधिकरणस्य संग्रहकारिका माधवीय,—

> जातकर्मानन्तरं स्थादग्रौचापगतेऽचवा । निमित्तपिकधेराद्यः कर्त्तृग्रुद्ध्यर्थमुत्तरः ॥

दति। त्रग्रीचानन्तरकार्या जातेष्टिरग्रीचानन्तरपतिते पर्वण्वेव। "य दश्चा पश्चना सोसेन वा यजेत सोऽमावास्थायाम् पौर्णमास्थाम् वा यजेत" दति त्रुतेः। सामान्यतः सर्वासामिष्टीनां पर्वण्येव विधानात्।

श्रङ्गाग्रीचं समये भवति हि स्तते व्याय त्यांहमसिन्, खण्डे भागं हतीयं न तु जन्ति कुले स्नानमसिंस्तु वप्तुः। मातुः सूत्यन्तमेव स्पृण्णति यदि पिता तां तदन्तः सस्त्या-ग्रीसोऽङ्गाग्रीचयुक्ता श्रपि कुलजनना<sup>(१)</sup> द्वादिसर्वाधयोगे॥ सम्बर्त्तः,— ततः सञ्चयनादूर्द्धमङ्गस्पर्भा विधीयते।

ततः पूर्वमङ्गागौचिमत्यर्थः ।

म्बित्राः, — चतुर्चेऽहिन कर्त्तवाः संस्पेभी ब्राह्मणस्य तु । चेचस्य पञ्चमे द्योयः सप्तमे च तथा विभाः॥ शृद्रस्य दम्रामेऽयोवं खण्डामौचं चिभागतः।

<sup>(</sup>१) कुलजजना।

चनस्य पञ्चम दत्यादि तु चित्रयादीनां दादगाहाद्यगौचपचे, त्रसहेगे तु भवंवर्णानां दगाहागौचपचात्रयणात् चतुर्घेऽहन्येवास्थि-चयनमङ्गागौचं च तावत् ।

देवनः,- श्रगौचकानात् विज्ञेयं स्पर्गनन्तु चिभागतः ।

स्तके तु स्तिकां विना कुलेऽङ्गाशीचाभावः। तथाचाङ्गिराः,— स्तके स्तिकावर्जं संस्पर्शे। नैव दुखित । ब्राह्मे तु विशेषः,—

श्रन्यासु मातर स्तदत् तद्ग्यहं न व्रश्नन्त चेत् ।

मिपिष्डास्त्रेव मंस्पृथ्धाः मन्ति मर्वेऽपि नित्यशः ॥

श्रङ्खासिखितौ,—"खानोपस्पर्शनादेव पिताश्रद्धः, नाड़ीच्छेदनात्

परं दशरात्रपर्थनं मातुरपङ्गागौत्रम्" ।

तथा च हारीतसूचं,— "ऋत ऊर्ड्डमममासभानमादशराचा-दिति"।

देवसोऽपि, - "माता ग्रुध्येदशाहेम"। इति ।

यदि पत्थां प्रस्तायां नरः सम्पर्कमृक्ति । स्तकन्तु भवेत्तस्य यदि विप्रः पड्कृवित् ॥

पारस्करः,— "सर्थातस्य पितुर्नेतरेषाम्"। इत्यनेन षड्ङ्गविद्पि बाह्मणः पिता सूतिकासर्थे दशरावपर्यन्तमङ्गाशीवीत्यर्थः। श्रन्येषां तु तत्सर्थे स्नानमावम्।

तयाचाङ्गिराः, - मंसर्गे स्तिकायाय सानमानं विधीयते ।

ज्ञातीनामपि दिचिचतुरादियत् किञ्चिद्गीचमित्रपाते लग्नी-चापगमान्तमङ्गाग्रीचम् ।

तथा च त्राच्चे,— धर्वमङ्गमसंस्पृग्धं तच स्थात्मृतके सति । सूतकमध्ये सूतके नितरां स्तकमध्ये स्तके। पिचोर्चत्यां गरीरं ग्रहमग्रुचि भवेदर्षमेकं न दैवम्, पित्रं कर्मापि काम्यं पर्ग्यइपचनचौद्रमांसामनं च। स्वाधायान्याब्दिकायुत्सवग्रभकरणं चेत्रतीर्यादि न स्वात्, किन्तु खुर्नित्यनैमित्तिककरणपरप्रेतज्ञत्यान्यपी इ॥ षण्मामान् सादिमातुर्भरण द्रदमघं व्याण भार्याविनाग्ने, चीन् मामान् स्वादशौचङ्गदितमपि सुतश्चादनाशे विपचान्। तनाधे चेतापिण्डीकरणमपि कतं काम्यकत्येऽपि वत्ते, द्रयादानादिरूपेऽधिकतिर्पि मता पूर्त रष्टेऽपि तच ॥ दानं निष्यवताङ्गं ग्रहणमिहिर्सङ्कान्तिदाने च पैत्रो, यज्ञयारामनीराभयसुरसदनान्यवदानश्च पूर्त्तम् । दष्टं लातिव्यसुकं शुतिपठनतपःश्रीतधासाग्निकार्या,— न्तर्वेदीदानमुक्तं सृतिषु निगदितं वैश्वदेवोऽपि मत्यम् ॥ नोदा हे दारमले लिधकतिरितरामादिभुकौ महे नो, दर्शादौ दीपदाने निपवन इह न प्रेतपचे गयायाम् । नान्येषां तर्पेषेनाब्दिक दव जननीवार्षिके नाधिकार,-स्ताताब्देऽयास्ति ताताब्दिक रु जननीवर्षमध्येऽधिकारः॥ दित चतुर्भिः कुलकम् । श्रन्यान्दिकादि रत्यनेन पित्वयादि-तर्पणसापि संग्रहः। इतराचादि इत्यनेन मांसमाचिकयोः संग्रहः। महे उत्सवे। दर्शादित्यनेन श्रष्टकान्वष्टकायुगाचादीनां संग्रहः। निवपनं, निवापः श्राद्धमिति यावत्। दीपदाने प्रदीपामावा-

स्वायां दीपदाने। गयायामित्यचापि निवपन द्रायन्यः। त्रन्येषां पित्रव्यादीनां दवप्रब्देन यथा पित्रोवंषमध्ये पित्रव्यादितपंणत्राद्धे न कार्ये, तथा जनकवर्षे जननीवार्षिकमपि न कार्यमित्यर्थः। जननीवर्षे तु जनकशंवत्सरिकं कार्यमितीयान् माहतः पितुर्भेदः दिति सूचनार्थं त्रथप्रब्द उपात्तः।

ं विश्वामित्रः,— पिता चोपरमेद्यस्य ग्रहं तस्त्राग्छिभवेत्। पितेति माताप्युपस्तस्यते। ग्रहमिति देहोऽपि। तथा च देवीपुराणे,—

> प्रमृतौ पितरौ यस्य देइस्तस्राग्रिचिभवेत् । न दैवं नापि पित्र्यं स्थाद्यावत्पूर्णो न वत्सरः ॥ महाग्रुरुनिपाते च सर्वकर्माणि वर्ज्ञधेत् ॥

मशागुरः मातापितरौ।

पुनर्विश्वामित्रः,-

स्नानं चैव महादानं स्नाध्यायञ्चान्यतर्पणम् । प्रथमेऽच्दे न कुर्वीत महाग्रह्मिपातने ॥

स्नामिति तीर्थस्नानम् । "तीर्थस्नानं महादानं" र्ह्यतित् ममानम्, यमोक्तेः। स्नाधायो वेदपाठः। श्रन्यतर्पणमिति पिल-यादिश्राद्धमुपलस्यते।

गातातपः,— त्रन्यत्राद्धं पराम्नञ्च मधु मांसञ्च मैथुनम् । वर्जयेदब्द्मेकञ्च महागुरुनिपातने ॥

मधु चौद्रं। मैथुनं विवाहः। यमः,— "माङ्गस्त्रमुत्सवं काम्यम्" दित निषेधं प्रकृत्योवाच। दृति सामान्यतोऽग्रौचप्रकर्णेऽपि "तथैव

काम्यम् यत्कर्म वत्यरात् प्रथमादृते" दति व्यान्नोत्नेः काम्येव्यनधि-

तथा,— ऋन्येषां प्रेतकार्याणि महाग्रहनिपातने ।

कूर्युः संवत्सरात् पूर्वं नैको द्दिष्टं न पार्वणम् ॥

इति चहनानुकेः।

पित्वयादीनां प्रेतकार्याणि "नैकोह्छं न पार्वणं" इति कुल-भेदेन दिविधमणाब्दिकं न कार्यम् ।

विमाचादिविषये वृद्दमानुः,—

पिचोरष्ट्मग्रीचं स्थात् षएसामान् मातुरेव च ।
मामचयन्तु भार्यायास्तदद्वं भाट्यपुचयोः ॥

म्हताविति श्रेषः। मातुरिति विमातुः पित्रोरिति पूर्वमुक्तलात्। कनिष्ठमातुः षण्मामान् मातापित्रोश्च वत्सरम् ।

द्रित वाक्यान्तरात् श्रपक्षय मिपिष्डीकरणे कते काम्येष्यप-धिकारः। तथा प्रतिग्रहादिष्यपि। तथा च मात्स्ये,—

> मिपिष्डीकर्णादूर्ड्डं प्रेतः पार्वणभाक् भवेत्। दत्तपूर्त्तिष्टियोग्यय ग्रहस्यय ततो भवेत्॥

वृत्तं प्रतियहादि दष्टं यागादि ग्रहस्यो भवेदित्यनेन पुत्रः स्विवाहं कुर्यात् । ग्रहस्वपदस्य संग्रहीतदार एव सुख्यार्थलात् । नतु ग्रहस्थात्रमविहितकर्मानुष्ठानयोग्यतापरलमस्तु? दित चेत् न । सचणाप्रमत्तेः सुख्यार्थमभवे सचणाया त्रनङ्गीकारात् । त्रच पूर्तिष्टयोः परिगणनं पूर्वाचार्येः कृतम् । त्रयाचाग्नेयपुराणे, — वापीकूपतङ्गगादिदेवतायतनानि च ।

श्रवप्रदानमारामाः पूर्त्तधमें च मुक्तिदम् ॥ तथा,— यहोपरागे यहानं सूर्यमङ्कमणेषु च । दादक्शादौ च यहानं पूर्त्तं तदिप नाकदम् ॥

कात्यायनः । श्राहिताग्नेः पिनर्ज्ञनं पिण्डेरेव, तथा ब्राह्मणा-नपि भोजयेत् पूर्त्तेरिति ।

दष्टकचणं महाभारते,—

एकाग्निहोचवहनं चेतायां यद्य ह्रयते । त्रन्तर्वेद्याञ्च यद्दानमिष्टं तद्भिधीयते ॥ जातुकर्षः,— त्रग्निहोचं तपः ग्रीचं वेदानाञ्चानुपासनम् । त्रातिष्यं वैश्वदेवस्य दृष्टमित्यभिधीयते ॥

दादश्यादीत्यादिपदेन जन्माष्टम्यादिवताङ्गदानमंगहः। एतेन चेत्रतीर्यादियानादीनां श्रवातुक्तेनं तत्करणं ममाचारस्वेवमेव।

तथा वचनवलात् भार्य्यायां विद्यमानायां विवाहान्तरकर्णा-भावः। एवं मातापिचोर्वर्षे सपिष्डीकरणे क्रते पिद्यचादितर्पण-श्राद्धादिकं न कार्य्यम्।

यमः, माङ्गस्यम् स्ववं चैव परपाके च भोजनम्।
प्रथमेऽब्दे न सुर्वीत योजनेऽपि कते मित ॥
मधु मां सं परास्त्र मैथुनं चान्यतर्पणम्।
प्रथमेऽब्दे न सुर्वीत मिपिष्डीकरणे कते॥

रहमतुः,— दीपदानं गयात्राह्यं त्राह्यञ्चापरपाचिकम् । प्रथमेऽब्दे न कुर्वीत योजनेऽपि हते सति॥

मैथुनमत्र विवाहः, विवाहं विना मिथुनलामभावात्। ननु

"ग्रह्म् ततो भवेत्" द्रामा विवाहः कार्य द्रामा। अत्र च निषेध द्राम्योः कथं मङ्गतिरिति चेदुच्यते । विद्यमानपत्नीकेन पत्यन्तरस्वीकारो न कार्य द्राम्योनं विरोधः । तथा च पूर्वम-विवाहितो स्तपत्नीकच्च विवहेदिति निष्कर्षः। तदेतत् विविच्य "नोदाहेदारमले" द्रामात्कारिकायां निविद्धम् । सद्रममूक्ती अपरपाचिकमिति अपरपचे विहितामावास्थात्राद्धम् । एतद्रस-कान्वस्रकायुगाद्यादीनासुपस्तचणम् । अतएव प्रेतपचत्राद्धमपि न कार्यम् तस्य नित्यकाम्यलात्। "पितर्युपरते" दति वच्यमाणोकेः । मातापित्वविषये सहस्रानुः,—

> पितर्थुपरते पुत्रो मातुः श्राद्धान्त्रिवर्त्तते । मातर्थपि च हत्तायां पितुः श्राद्धादृते समाः॥

ममाः मांवत्यरिकं वर्जयिला इत्यर्थः । इदं मिन्निहितवाक्येन मम्बध्यते, न पूर्ववाक्येनापि ।

> मातर्यपि च हत्तायां आद्धं कुर्वीत पैत्वकम् । तस्था न वसारं कुर्यात् प्रेते पितरि च कचित्॥

दित ग्रङ्कोत्रोः, दित क्रत्यकौसुदीकारादयः। कुर्यादिति पुनक्पादानात् नञः पूर्ववाक्ये सम्बन्धग्रङ्का नास्त्येवेति तनातं समी-चीनम्। तसात् जनकमरणाब्दे माहवार्षिकमपि न कार्यम्। माहमरणाब्दे तु पिहवार्षिकश्राद्धमानं कार्य्यमितौयानेव भेदः। श्रमावास्यादिनित्यश्राद्धानि उभयोरपाब्दे न कार्याणीति सिद्धान्तः। श्रम विप्रमित्रौः "स्ते समाः" द्रष्युभयनापि योजयिता श्रस्तादेशे निर्विशानं माहसावत्यरिकानुष्ठानास्यस्त्रद्भयवायाभावादनुसङ्गाधि-

कर्ण्न्यायमभवादुभयोः संवक्षरे उभयोः सांवक्षरिकं कार्यमिति यक्षिखितं तम्न विचारसङ्म् इत्यस्मत्पिष्टचर्णाः । तथाहि,—

श्रनुषङ्गाधिकरणेषु श्रमम्बद्ध्यवायाभावो नानुषङ्गनिमित्तम् ।
किन्तु श्राकाङ्गादिषद्भाव एव तिस्तिमत्तमिति विचारितं "पितर्युपरते" इति वाक्ये श्राकाङ्गादिविरहान्नानुषङ्गप्रमङ्गोऽपि। श्रनेनेवाखारखेन "मातर्यपि च" इति वाक्यस्य प्रामाण्ये माद्यमांवस्तरिके
विकस्प इति तैरणुक्रम् । ग्रङ्कास्मृतौ तद्दाक्यस्थोपान्तमाद्यमाण्यग्रङ्का दूरापान्तेव । यश्रोक्तं विकस्प इति तत्रापि प्रष्ट्यम् । किं
वाक्ययोविरोधादिकस्प इति कस्पनीयम् ? श्रथवा स्मृत्याचारयोरिति ? तत्र न प्रथमः, उभयोविक्ययोर्पि संवस्तरे माद्यमांवसिरकानुष्टानाभावस्य स्पष्टमभिहितन्तेन विरोधाभावात् तस्ताद्द् द्वितीयः पच श्राश्रयणीयः । सोऽप्ययुक्तः । तथाचारस्य कत्यकौमुद्यादिषु श्रस्तिखितनेन श्रनादृतन्तात् । स्मृत्यपेचयाद्यन्तरितप्रामाण्येनाषारस्य दुर्वन्नमिति सिद्धन्ताचेत्यसमितिविक्तरेण । विस्तरस्तु
श्रस्तिकते श्रद्धिमारे द्रष्ट्यः इति चतुष्कस्य ।

अय वाद्याभौचाः द्विः ।

मर्वे वर्ण ऋदोभिर्दशभिरिद्दगतैः सद्धराञ्चानुक्तोम्योत्पन्नाः ग्रध्धन्ययो तेऽभिषवणग्रुचयः प्रातिक्तोम्योद्भवाञ्चेत् ।
विश्वत्या स्त्री ग्रुचिः स्थात् स्तजनुषि दिनैस्तिंशताः स्त्रीप्रस्त्तौ,
योषित्पुंसोर्यमलाच्चनुषि ग्रह्मदृग्भागतस्तिंशतैव ॥
यद्यपि,— ग्रुध्वेद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।

वैद्यः पञ्चदशाहेन ग्रुट्रो सासेन ग्रुथिति ॥

दित सनुनोक्तम् ।

तथापि, - मर्वेधामेव वर्णानां सूतने स्तने तथा।

दशाहाच्हुद्धिरथ वा इति शातातपो उन्नवीत्॥

दत्यिक्तरोवाक्यात् श्रसादेगे मर्वेषां वर्णानां दशाहागौचममा-चारः । दशाहेन दत्यादौ गतेनेति ग्रेषः । श्रनुकोममङ्कराणामपि दशाहागौचम् ।

तथा च ब्राह्मे,-गौचागौचं प्रकुर्वीरन् ग्रुट्रवदर्णमङ्कराः ।

दित । प्रतिकोसमद्भराणान्तु सूत्रपुरीषोत्सर्गवत् सकापकर्ष-स्नानमात्रम् । "प्रतिकोमा धर्महीनाः" दति गौत्मोक्रेस्वेषां विध्वनिधकारात् । यन्तु,—

एका हा कुथित विश्रो योऽग्निवेदसमन्तिः।

त्यहात्केवलवेदच्चो निर्मुणो दमभिर्दिनैः॥

तथा,— सम्पर्कविनिष्टत्तानां न प्रैतं नैव स्तकम्।

दित परामरवाकां तत्कलीतरयुगविषयम्।

दमाह एव विष्रस्य सपिण्डमरणे सित।

कच्यान्तराणि कुर्वाणः कलौ स्थान्मोहिकिल्विषी॥

दति हारीतोकः । तेन गुणतारतम्यादिनाष्यगौचसङ्कोचो न कलौ । मरणग्रहणं जन्मनोऽप्युपलचणं, विष्रग्रहणं धन्नादेरपि । पैठीनिमः,— "स्तिकां पुचवतीं स्नातां विंग्रतिराचेण कार्येत् माचेन स्तीजननीम्" दति पुचवतीं, पुरुषजननीमित्यर्थः । मामोऽच सावनः, श्रग्रीचे तन्मासस्यैवोक्तजात् । तथा च महुन्यामी,-

स्तकादिपरिच्छेदो दिनमामाब्दपास्तथा । मध्यमग्रहभुक्तिय मावनेन प्रकीर्त्तिताः ॥ दति ।

नतु पुचकन्ययोर्थमजतया जनने तु मातुः केन ग्रुद्धिरिति चेत्? श्रव केचित् यमजतया पुचकन्ययोर्जनने प्रथमतो यद्यन्य स्तियाः पुंघो वा, तद्यननेनेव मातुर्भौचम् प्रथमतस्त्रस्थैव प्रवत्तवात्, दितीयस्य तद्यान्तरीयकवात् तद्वनुवन्थलेन पृथग-भौचप्रयोजकवाभावात् द्योर्प्येकसंप्रयोगजन्यग्रुकभोषितजन्यलेन एकलाच । तन्मन्दमेवेति श्रस्तत्पिष्टचर्णाः । तथा,—

गुरुणा सघु वाधीत सघुना नैव तद्ग्रहः ।
दित वच्छमाण्डहन्मनुवचनेन सघुनः पुचननाभौचस्य गुरुणा स्वीजननाभौचेन बाधात् मासेनैव मातुः ग्रुद्धिः ।
श्रयोच्यते,—

न वर्द्भयेदघाडानि निमित्तादागतान्यपि ।

दित वचनात् पुचजननाशीचस्य वज्ञवन्तिमिति। तदिप मन्दम्। ज्ञापुत्रविचारस्य उच्छेदापन्तेः। "न वर्द्धयेत्" द्रत्येतस्य तु श्रशी-चस्य दशाहप्रभातश्रवणे चिदिनदृद्धिनिषेधपरत्तिमिति वच्छते। तथाच कन्यापुचयोर्यमजतया जनने स्त्रीजननेनैव मातुरशीचिमिति सिद्धान्तः।

योषित् मामादृतौ स्थाच्छ् चिर्भिषवणात् स्पर्धने श्रीचक्तत्ये, तुर्यां हे पञ्चमाहे स्वविरहवती चेद्रतौ सार्त्तकत्थे। षण्मामान् माममञ्जीरपि गतदिवमेः मर्वथोद्धे सस्त्या- गौचोऽयो धर्वस्तौ दग्रदिवसपरं श्रौतक्रत्सर्थयोग्या ॥ विश्वष्ठः,—"चिराचे रजस्त्रसा ग्रुचिर्भवति" चिराचे गते दति ग्रेषः। ग्रह्वः,— ग्रद्धा भर्त्तुं खुतुर्थेऽक्ति न ग्रद्धा दैवपित्ययोः।

दैवे कर्मणि पिळे च पञ्चमेऽइनि ग्रुधिति॥

भर्तुरिप पाद्समाइनादिकापार एव ग्रुडा, न सार्त्तकर्मणि।
किन्तु श्रीतकर्मस् ग्रुड्सा। तथाच कात्यायनसूत्रम्,— "पत्था उद्क्ष्याया दीचारूपाणि विद्याय द्रत्युपक्रस्य चिराचान्ते गोमयमिश्रेण उदकेन स्नापयिका परिधानादि करोति" दति। पश्चमेऽहिन तु स्नार्त्तकर्मस् श्रीगमने चाधिकारवतीति सिद्धम्। चतुर्थदिनराची श्रीमगमने चाधिकारोऽस्यायुगुणरितपुचोत्पत्तिरूपदोषसिष्णो-रिति पूर्वं चिखितम्।
श्रव यद्यपि केचित्,—

एकाकिन्यो विवाहादौ देशभङ्गेऽथवापदि ।

उपोषणेन ग्रुध्यन्ति सद्यो नायो रजखलाः ॥ श्रविः,— रजखला यदा जाता पुनरेव रजखला ।

त्रष्टादग्रदिनाद्वांगग्रुचितं न विद्यते ॥

एकोनविंग्रतेरवींगेकाइं विंग्रतेर्ज्ञाइम् ।

यसासु नियमेनाष्टाद्मदिनमधे भूयो रजोद्मनम्, तस्याः स्वादेव चिराचामौचिमिति विज्ञानेश्वरा व्यवस्वापयामासुः । तथापि एकाकिस्त्यादौनामपि तथाचारो न दृश्वत दत्यसाभिः तत्किञ्चित्र निवद्भम् । यद्यपि स्रत्यन्तरे वर्णविभेषे लग्गौचविभिन्नलसुक्तम् ।

स्तौ तु न पृथक् ग्रीचं सर्ववर्णेव्वयं विधिः।

द्रित मनूकेः, धर्ववर्णस्तीमाधारणोऽयं विधिः ।

हतीयमासमारभ्य षण्मासान्तं तु व्यवस्था ब्राह्मो,—

षण्मासाभ्यन्तरे यावत् गर्भस्रावो भवेद्यदि ।

तदामाससमैस्तासां दिवसैः ग्रुद्धिरिव्यते ॥

श्रत कद्धें खजात्युक्तमग्रीचं तासु विद्यते ।

तासामिति वज्ञवचनात् खजात्युक्तमिति चिङ्गाच धर्ववर्णस्ती-साधारणमिदम्। त्रत ऊर्द्धमित्युक्तेः सप्तमादिसमस्त्रमासेषु जातस्ततौ स्टतजनेन च धर्वथा मातुः स्ततकाग्रीचमेव। "प्रजातायाय दग्र-राचाग्रीचम्" इति कात्यायनस्त्रात् स्तिकाया दग्रराचादूर्द्धे त्रौतेऽधिकारः।

यनु,— ब्राह्मणी चित्रया वैद्या प्रस्ता दमभिर्दिनैः।
गतैः ग्रुद्रा च मंखुम्या चयोदमभिरेव च ॥

इति ब्राह्मवचनम्। तद्नूढापरम्। यदा श्र्द्राणाम् मासाभौच-पचाभित्रायम्।

दग्राइमेवाग्रीचन्तु धर्वेषामपरे विदुः।
दति दग्रराचाग्रीचपचस्य श्रसहेग्रे धर्ववर्णानामादृतलात्।
स्रतिका धर्ववर्णानां दग्राहेन विद्युध्यति।
दति वचनान्तरेण च धर्वस्तीणामपि दग्रराचात्परं स्पर्शयोग्रालमेव।

सावः स्थानुर्यमामावधिर्यं कथितः पातं त्रावष्ठमामम्, मदःग्रौषं कुले स्थात् अवनमित्रं पितुः स्थादयापप्रस्तिः । षष्ठोर्द्धे मामयुग्गे म पिद्यकुलभुवां जातस्त्रत्यां स्तस्थोत्- पत्तौ तिस्रो निग्नाः स्युः श्विषिति यदि ग्रिग्नः पूर्णमवायगौचम् ॥ स्मृतिः,— त्राचतुर्णाङ्गवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्टयोः ।

श्रपप्रस्वसंज्ञा स्थात्सप्तमाष्ट्रममासयोः॥

स्रावपातयोः मिपिष्डानां सद्यः शौचम् । षण्मामाभ्यन्तर्मिति ब्राह्मोकौ वाक्यभेषे,—

सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति ।

द्रुकेः । गर्भस्रावे पितुः स्नानमानम् । "मप्तमाष्टममामयोस्त जाते स्टते स्ते जाते कुलस्य चिराचम्" दति हारीतोक्तौ जातग्रब्द-लिङ्गात् सपिष्डानां चिराचाग्रौचमेव । पितुर्यनयोर्मासयोस्य-हाग्रौचम् ।

> जीवन् जातो यदि प्रेयान स्तो वा यदि जायते । स्रतकं मातुरेव स्थात् विचादीनां चिराचकम् ॥

दति व्हन्मनुवचनात् हारीतोक्षतुष्वग्रव्ह्य पिचादिपर्वेन व्याख्यानाच। मात्रगौचं तु पूर्वञ्चोके लिखितम्। मप्तमाष्टममाम-योरपि वाजजीवने मिपिष्डानां ममानोदकानां यथायोग्यं मम्पूर्णा-ग्रीचं उत्पर्गसिद्धमेव।

मर्वेषां प्रेतजाते भवति हि नवमाद्येषु मासेषु पूर्ण,
जातप्रेते तु वप्तुर्जनुरविध दशाहाघमङ्गाग्रिचलं।
जातीनां नाघमाचं यदि तु शिश्रस्टतिः सूतिमधेऽपि नाड़ीहेदोद्धे तच ताते जनुरविध दशाहाघमन्येषु नाघम्॥
नवमादिमासे स्तजाते, पारस्करः,—

गर्भे यदि विपत्तिः खाइशाइं स्तकं भवेत्।

नवमादिमामजातस्तौ तु कौर्म,—
जातमाचस्य वाजस्य यदि स्थान्मरणं पितुः।
मातुस्य स्त्रतकं तत् स्थात् पिता लस्पृष्य एव च ॥
मद्यः भौचं मपिष्डानां कर्त्तवं मोदरस्य च।

तत् स्तकं जननाशौचिमत्यर्थः । तथाचाच पिचोर्जननाविध-दशराचम् । सपिष्डानां सद्य दति वचनात् पित्रपङ्गाशौचं दशाहान्तं दत्यसदेशे व्यवस्था सस्थिरा । श्रन्यप्रकारा व्यवस्था यथा वहत्रचेताः,—

> मुह्नभें जीवितो बाको यदि पञ्चलस्कृति । मातः ग्रुद्धिर्देशाहेन मद्यःगौचाम् गोचिणः ॥

सुह्रक्तमिप नाड़ीच्छेदोपलचणम्। या चायन्या व्यवस्या, नाड़ी-च्छेदात् पूर्वे बालमर्णे पुनर्हारीतः,— "जाते स्टते स्टते जाते पुनर्वादशाष्टं सिपण्डानां"। दृदं नवसदशमादिमासविषयम्। पुन-र्हारीतवचनस्य सप्तमाष्टममासयोः व्यक्तश्रीचविषयलेन व्यास्त्रानात्।

> द्याहाभ्यन्तरे बाले प्रस्थिते तस्य बान्धवैः । ग्रावागौचं न कर्त्तव्यं स्रत्यभौचं विधीयते ॥

दित रहनातुवचनाच सिपिष्डानां दशाहमेव । जातमाचिसेति कौर्मवचनात् नाड़ीच्छेदात् पूर्वमिप सद्यःशौचम् । दित व्यवस्था त्रसाहेशे नाद्रियते । धर्मसन्देहे "स्रस्य च प्रियमातानः दिति याज्ञवस्क्येन त्रातात्रष्टेधेर्म प्रामाष्यस्य सिद्धान्तितलात् । "यस्मिन् देशे य त्राचारः" दित मनूकेश्व । यच विज्ञानेश्वरैः पञ्चमषष्ट-मास्थोर्गर्भपाते कुलस्य चिराचं, सप्तमादिषु जातस्रते स्रतजाते वा

विशेषाद्द्रगराचं, द्रगराचान्तर्गाखमरणेऽपि कुलस्य सूतिकाशीचं स्मत्यन्तरसम्बादेन व्यवस्थापितम् तदपि नास्मदेशे श्राद्रियते । श्रथ "प्रकृतं जातमाचस्य" दत्यादिवचनात् सर्वेच जातशब्दानां जातमाच परत्वम् तथाच नाड़ीच्छेदोत्तरं द्रशाहमध्ये वालमर्णे मातापिचो-रित्यनुदृत्तौ पारस्करः "श्रनः सूतके चेदोत्यानादाशीचं सूतक-वत्" दति। श्रस्थार्थः। श्रा जत्यानादिति पद्दयम्। तथा पिचो-र्जननावधिद्गराचावमानपर्यन्तमेव श्रगीचं दत्यर्थः। श्रातिविषये तु श्रङ्कः,—

वासस्तर्नर्शाहे तु प्रेतलं यदि गच्छित ।
स्यःगोचं पिण्डानां न प्रेतं नैव स्तकम् ॥
एकः प्रेतः परश्चेच्छिसित यमजयोस्तददेकोऽच जातप्रेतोऽन्यः प्रेतजातस्तदिह जनिमनादृत्य स्त्योविस्तितात् ।
स्यःगोचाः पिण्डा जनुरविधदगाहं पिताङ्गाग्रचिः स्थात्
स्यः गोचे तु ग्रिष्टाविद्धित मक्तवे स्नानमावं न चान्यत् ॥
यमस्जननेऽयेकस्य जीवने श्रन्यस्त्रस्तो, तयेकस्य स्तजननेऽन्यस्य
जातस्तौ जातमाचस्य "वासस्त्वन्तर्द्भाहे तु" दत्यादिवाक्येभ्यो जननापेचया स्तेविस्त्यस्तस्य वस्त्यमाणताच ज्ञातीनां स्यः
गौचम् । पिचोर्द्भराचागौचं श्रङ्गागौचं च । मातुः सम्पूर्णागौचसुक्रमेव । श्रस्तद्देभे "दिसन्ध्यं सद्य दत्याद्यः" दत्यिकिमनादृत्य
सद्यःगौचे स्नानसमाचारः । "सद्यःगोचे स्नानमाचं पाकत्यागो न
विद्यते" दत्यिप ग्रिष्टाः ।

पुने पिनो रदालाङ् मृत उदितमइम्तलाइं तु वतात् प्राक्,

जातेः सद्योऽहरेकं व्यहसुदितमधोदन्तपूडावतेम्यः ।
सर्वेषां पूर्णमूर्द्धे लघमपि रदनचौरकर्म वतोक्तं,
काले तेषामभावेऽयध उत भवने तत्तदुक्तं द्वागौचम् ॥
एकादग्राहादुत्तरागौचिवचारः कौर्मे,—

श्रजातदन्तमरणे पित्रोरेकाऽइमियते । . जातदन्ते त्रिणत्रं सादिति ग्रास्त्रविनिश्चयः ॥ सपिण्डानां तु याज्ञवस्त्वः,—

त्रादन्तजनानः यद्य त्राचूड्रामेशिकी मता । चिराचमात्रतादेशाद्श्यराचमतः परम् ॥

श्रव दन्तश्रनगद्यः कास्रोपस्चका इति कल्पतस्काराद्यः।
तथाच दन्तश्रकासे दन्तानुत्पत्तावपि वासस्तावहरशौचम्।
एवं चूड़ाकासे चूड़ाया श्रभावेऽपित्यहाशौचम्।

त्रत एव हतीयाब्दे चूड़ाकरणाभावे त्रिङ्गराः । यद्यषक्रतचूड़ोऽपि जातदन्तस्य पंखितः । दाइयिवा तथापेन मगौचं व्यवमाचरेत् ॥ इति । एवं उपनयनकाले उपनयनाभावेऽपि सम्पूर्णागौचमेव । तथाच बाह्यो,—

> त्रनुपनीतो विषसु राजा चैवाधनुर्द्धरः । त्रग्रहीतप्रतोदस्तु वैग्धः श्रद्धस्ववस्त्रध्न् ॥ स्थिते यत्र तत्र स्थादगौषं त्यद्दसेव च । दिजनानामयं कालस्त्रयाणां च पड़ाब्दिकः ॥ पञ्चाब्दिकस्तु श्रद्धाणां स्वजात्युक्तमतः परम् ।

त्रत्र हि गर्भाष्टमवर्षे ब्राह्मणादिचवाणां उपनयनधनुर्धहण-प्रतोद्यहणकालः । एद्रस्य षष्ठेऽव्दे वस्त्रपहणकालः । ततः पूर्वं बालस्तौ चिराचम्। तदूर्द्धं वालस्तौ सम्पूर्णागौचं द्रत्युत्रं भवति। एवं चोपनयनस्य कालोपलचकलसुत्रम्। एवं दन्तजन्मादिषु बोध्यम्। यन्तु,— चतुर्थे पश्चमे मासे दन्तजन्म सदृष्यते।

एवं ब्रह्मवर्चमकामस्य पञ्चमेऽब्दे उपनयनम् । प्रथमेऽब्दे चूड़ा-करणं तच दन्तजन्मायुक्ताभौचमेव । तथाच जावालिः,—

> व्रतचूडादिजानान्तु प्रतौतिषु यथाक्रमम् । दशाहस्त्यह एकाहः ग्राध्वन्यपि हि निर्मुणाः ॥

दिजानां (दन्तानां) अव प्रतीतिपदीपादानादकालेऽपि तद्र्यने
ययोक्ताग्रीचम् । अन्यथा वतचूडादिके व्यित्युक्तं स्थात् ।
पिचीः पुचीम्हतावारदनमदरतः धर्वदोद्धे त्यदं स्थात्,
श्रातुः स्वानं तथादस्त्यदमपि रदनात् चौरतः प्राक्विवादात् ।
ज्ञातेः सद्यः चुरात् प्रागद्दर्परि च वाग्दानकाले अवदं स्थात्,
वाग्दानेऽनुष्ठिते तु त्यद्रसुभयकुले चेत् विवादो न पित्ये ॥
कन्याग्रीचे कौर्मी,—

त्रजातदत्तमरणे पित्रोरेकाइमुखते । दत्तजनोर्द्धे सात्यमारे,—

श्रप्रतासु च प्रत्तासु संख्यतासंख्यतासु च।

मातापिचोस्तिराचं स्वादितरेषां यथाविधि ॥

कन्यामरणाधिकारे पुनः कौर्म,—

श्रादन्तात्सोदरे सद्य श्राचूडादेकराचकम्।

त्राप्रदानात् विरावं स्थादिति ग्रास्तविनिश्चयः ॥ सपिष्डानां तु बाह्यो,—

त्राजनानस्त चूडानां सदःशौचं विधीयते।
ततो वाग्दानपर्यनां यावदेकाइमेव च ॥
त्रतःपरं प्रदृद्धानां चिराचमिति निथयः।
वाग्दाने तु क्रते तच श्रेयं चोभयतस्यहम् ॥
पितुर्वरस्य च ततोः दत्तानां भर्तुरेव च।
स्रजात्युक्तमश्रीचं स्थात् स्रतके स्तके तथा ॥

त्रसार्थः । चूड्रानन्तरं वाग्दानपर्यन्तं सिपण्डानामेकाहम् । वाग्दानकास्नानन्तरं वाग्दानकर्मानुष्ठानपर्यन्तं चहम् । तथाच मनुः,— स्त्रीणामसंस्कृतानां तु चहास्कुधान्ति वान्धवाः ।

त्रमंक्ततानां त्रविवाहितानां ।

तथाच विष्णुः,- "स्तीणां विवादः मंस्कारः"। दति।

"श्रह्मत् ग्रह्मन्तिवान्धवाः" इत्यनुहत्ती, श्रङ्क्नोऽपि,— "ऋषू-ढ़ानां तु कन्यानां" इति । वाग्दानकर्मध्यनुष्ठिते तु विवाहपर्यनां पिष्टकुले भाविभर्त्तृकुले श्रहम् । पितुर्वरस्य चेति पूर्वेणान्वयः । उभयत इत्युकाविप पितुर्वरस्य चेत्युक्तिः स्पष्टार्था । विवाहानन्तरं भर्त्तृकुल एवाश्रीचं, न पित्रकुले । तृहस्यतिः,—

पाणिग्रहणिका मन्ताः पित्रगोत्रापहारकाः ।
भर्त्तृगोत्रेण नारीणां देयं पिण्डोदकं ततः ॥
एवं सप्तपदीकरणानन्तरम्,—

नोदकेन न वाचा वा कन्याचाः पतिक्चाते ।

पाणियइणमंस्कारात् पतिलं भप्तमे पदे ॥ दित यमोक्रेः । तत्पूर्वं चिराचसुभयच । यद्यणादिपुराणे,— मापिण्ड्यं स्नानु कत्यानामदत्तानां चिपूरुषम् ।

द्रयुक्तम्,

तथापि मन्वर्थविरोधात् तथानादरसमाचारः । ततो दत्ताना-मिति ब्रह्मवाक्यात् पिटकुले सप्तपश्चनन्तरं नात्रौचिमित्यर्थः । केवलं तद्त्तरमपि पित्रोः श्रष्टं वच्यते च ।

षष्ठो आसो रदेषु चुरकरण रहाब्दसृतीयोऽब्दषट्कात्-सामदन्दाधिकात्यात्पर उपनयने वाक्प्रदाने च कालः । श्रब्देऽतीते दितीये दहनमथ पुनः श्रूद्रजातेरशौचे, भेदोऽयं षष्ठवर्षः परिणयसमयस्तत्तमारभ्य पूर्णम् ॥ - ब्राह्मो,— श्रजातदन्तो वा सामै र्द्यतः षड्भिर्गतो विहः ।

द्ति षएमामस्य दनाजनाकाललं। "दन्तजना मप्तमे मासि" दिति सहधरिलखनं तु वक्तनिवन्धविरोधात् सर्वेषा नादेयम्। मनुः,— चूड़ाकर्म दिजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।

प्रथमेऽन्दे तिये वा कर्त्तयं श्रुतिचोदनात् ॥ दिति ॥
तच "चूड़ा कार्या यथाकुचं" दिति याज्ञवक्कोक्रेरसाद्देगे
तिवर्ष एव चूड़ाकाच दिति सिद्धान्तितम् । यद्यपि,—

गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्थोपनायनम् । राज्ञामेकाद्ये लेके विश्वामेके यथा कुलम् ॥ दिन याज्ञवस्क्यविश्वामित्रौ । तथापि श्रशौचाधिकारे, दिजन्मनामयं कालः स्त्रीणां चैव पड़ास्दिकम् । पञ्चाब्दिकसु शृद्राणां स्वजात्युक्तमतः परम् ॥

दति ब्राह्मोन्नी चैवर्णिकद्भाद्याश्रीचपचाश्रयणेन श्रद्धाशीचस्य षष्ठवर्षाधिकतस्य उन्नतात्, गर्भाष्टमपचाश्रयणेन दिमासाधिकवर्ष-षद्गाननारं उपनयनकाल दति सिद्धम्। वाग्दानकालविषये श्रद्धिगुत्सकारः,—

'ऋष्टवर्षा भवेत् गौरी'।

गौरीं वा वरयेत्कन्यां नीलं वा त्रवसुत्वृजेत्।

त्राहवर्षीऽष्टवर्षा वा" दत्यादिवाकीः वाग्दानं प्रत्यष्टवर्षस्य सुनि भि-कालतावगमादित्युक्तम् । पश्चाननस्य वाग्दानकालस्य सुनि भि-रत्यक्ततात् उपनयनकालस्य वाक्प्रदानकालतेन प्रमाणसभाव दत्याद्य । वस्ततस्य दिमासाधिकषड्वर्षानन्तरं विवादकाल दति विवादप्रस्तावे प्रमाणान्युक्तानि । यत्तु ग्रुद्धिगुत्सकता उक्तं, तन्न दिचरम् । "त्र्यष्टवर्षां वा" दत्यस्य गर्भाष्टमपरत्नम् । "त्र-ष्टवर्षा भवेद्गौरी" दति वाक्यं तु कन्याया गौरीत्वप्रतिपादकम्, न तु विवादकासप्रतिपादकम् । गौरी वेतिवाक्ये फलातिग्रय उक्तः, न तु विवादकाल दति व्यास्थानात् ।

स्तीपुंस्तयोस्त सम्बन्धादरणं प्राग्विधीयते ।

इति नारदोक्तेः वाग्दानस्य विवादशाक्षानीनलसिद्धेः । सुतरां मासदयाधिकवर्षपद्भानन्तरं वाक्प्रदानस्य कान्त इति सिद्धम् ।

श्रथ वाखमरणे दाइकाखिवारः । दिवर्षमध्ये वाखमरणे निखननम्, याज्ञवन्काः,— जनदिवर्षे निखनेच कुर्यादुदकं ततः । मानवीये तु,— जनदिवर्षकं प्रेतं निद्ध्युर्वान्थवा विदः ।
नास्य कार्योऽस्थिपंस्कारो नास्य कार्योदकिकिया ॥
त्ररास्ये काष्ठवत् त्यक्काः चिपयुस्यहमेविहः । दति ।
"त्ररास्ये काष्ठवत् त्यक्का" दत्यनेन दृष्टान्नेनापूर्णदिवर्षं भूमौ
निधाय(१) त्रौर्द्धदेहिकेषु उदामौनै भीवितस्यमिति विज्ञानेश्वराद्यः।
त्राहाग्रौचोकिम्तु संवत्परचूड़ाभिप्राया दति ।

यवपक्षतचूड़ोऽपि जातदन्तय संस्थितः । दाहियात तथायेनमगौचं यहमाचरेत्॥

दत्यक्तिरोवाकां वर्षनयोद्धें चौकोत्कर्षे श्रेयं दित च। एवं "जनदिवर्षस्य दाइचेपौ पाचिकौ" दित नेषाश्चिष्मिखनं न सम्य-गित्यवधेयम्। "श्रदिवर्षे मातापिनोरेकरानं निरानं वा शरीर-मदग्ध्या निखनति" दित पारस्करसूचे तजातदन्ने एकरानं, जा-तदन्ने निरानमिति वाश्रब्दो व्यवस्थावाची। तथाच हतीया-दिवर्षे मरणे चूड़ायां कतायामकतायामि दाइ एवेति सिद्धम्। श्रद्राणां सर्वनाश्रीचे बाह्मणसाम्येऽपि षष्ठवर्षस्य विवाइकालतं, तदविध पूर्णाशौचं च दत्येव भेदः। तन प्रमाणवाकां प्राग्लिखितम्।

स्तौ स्तः समा चेत् स्टितरिप स्तको पूर्वजाशौचशेषा-हैः श्रद्धिर्दीर्घमाद्यं परमिप लघुनो वाधकं स्थात् सहक् चेत्। दौधं चान्यं पुरोजं परमिप स्टितकं शोधकं स्तकंस्थ त्यक्षोदक्यां क्रियाकत्स्तपतिविनतास्तिकाः पुचवध्यौ ॥ समानजातीयाशौचसित्रपाते विष्णुः,— "जननाशौचमध्ये यद्य-

<sup>(</sup>१) निखाय।

परं जननं सात्, पूर्वाश्रीचयपगमे शुद्धिः"। राचिमधे दाभ्यां, प्रभाते दिनचयेण त्रश्रीचमधे ज्ञातिमरणेऽयेवमेव। तथाच ज्ञाति मरणमध्ये स्वकान्तरेऽपि पूर्वश्रेषेण शुद्धः। "राचिश्रेषो त्रवशिष्टो यचेति युत्पत्था राचिश्रेषपदमन्याचोराचपरं" दति पञ्चाननः। तिसान् दाभ्यां प्रभाते दश्राहकच्ये दिनचयेण दत्यर्थः।
तथाच श्रद्धः,— "त्रथ चेदन्तरा प्रमीयेत जायेत वा त्रवशिष्टेरवदिवसेः शुश्चेद्दः श्रेषे दाभ्यां प्रभाते चिभिः" दति। तथाच दश्रमे
ऽचनि तद्षि च सजातीयनिमित्ताशौचत्रवणे दिचिदिनच्छाग्रद्धियंद्यपि स्तिषु विदिता, तथापि "नवर्ड्यद्घाद्यानि" दति
मनुनानिषद्धा। तथाच विदितप्रतिषेधाद् विकच्यः। तदुकं
भट्टैः,—

त्रथवान्तर्यदाश्रीचिनिमत्तं किञ्चिदापतेत्। तच्छेशेण विद्यद्धः स्थात्तच्छेषोऽयं भविव्यति॥ न वर्द्वयेदघाद्यानि निमित्तादागतान्यपि।

विकरो सति यथादेशाचारं व्यवस्था, इत्यसहेशे दशमाह-प्रभातप्रयुक्तदिचिदिनदिद्धनीद्रियते । तथा देवलः,—

> परतः परतः ग्रिड्सरघटड्रौ विधीयते । स्वात्चेत् पञ्चतमादक्षः पूर्वणायनुत्रियते ॥

श्रसार्थः । पञ्चतमादकः परतः पञ्चमदिवमानन्तरं मजाती-यागौचरुद्धौ मत्यां परतः परेणागौचेन ग्रुद्धः । पञ्चदिवमात् पूर्वं मजातीयागौचरुद्धौ पूर्वेणागौचेन ग्रुद्धिविधीयत इति । तथाच 'पूर्वेण' द्रायेतत्पदमारुत्या व्याख्येयमिति । दत्यादीन्यपि "न वर्ड्सचेदघाहानि" इत्येतेन निषिद्धलात् वैकस्पिकानि यथा-देशाचारं व्यवस्थितानीति नास्मदेशे विचार्यन्ते।

श्रतिकान्ते दशाहे तु विरावमग्रुचिभवेत्।

द्वादिमनाशुक्तमि श्रसाहेशे ममाचाराभावात् न व्यवस्था-यते । श्रतएव विद्यानेश्वरैर्नानादिवमशोधकवाकान्युदाह्वत्य" "स-माचाराभावात्र व्यवस्थायते" द्व्युक्तम् । श्रन्तरङ्गगुणवङ्गावेन ग्रुद्धि-विचारो न कन्नावस्तीत्ययाद्यः । श्रय मजातीयविषये उश्रनाः,—

खन्पागौत्रस्य मध्ये तु दीर्घागौत्रं भवेद्यदि ।

न त पूर्वेण गुइद्धिः स्थात् खकालेनैव गुध्यति ।

हहनातुर्पि,— गुरुणा सघु वाध्येत सघुना नैव तद्गुरुः ।

श्वतएव श्रन्थकासीनमर्णाशीचस दीर्घकासीनस्तकं वाध-कम्। इति हारसताकता यदुकं तन्नादेयमिति। तयोर्विजा-तीयलात् स्तेर्वसीयस्त्राच।

त्रिहिराः, त्रिनिर्देशा है मर्णे पञ्चात् स्थानारणं यदि । प्रितमुद्दिश्च कर्त्तव्यं तवाश्रीचं स्ववन्धुभिः ॥ देवसः, न्मर्णोत्पत्तियोगे तु गरीयो मर्णं भवेत् । षट्चिंशनाते, —

गावेन ग्रध्यते स्तिनं स्तिः गावगोधिनी । रहाचिः, स्तकात् दिगुणं गावं गावात् दिगुणमार्त्तवम् ॥ श्वार्त्तवात् दिगुणा स्तिस्ततोऽधिश्ववदाद्दकः ॥ श्ववदाद्दको दाद्दादिप्रेतकर्मकर्त्तां पुचादन्योऽपीत्यर्थः। पूर्वस्नादु-

त्तरोत्तरमग्रीचं वलवदित्यर्थः। ततोऽपीति पाठे स्रतितोऽपीत्यर्थः।

रद्धमनुः,—

प्रावस्रोपरि प्रावे तु स्तकोपरि स्तके।
प्रेषाहोभिर्भवेत् ग्रुद्धिहदक्यां स्तिकां विना ॥
श्रीरामायणे मीतां प्रति, श्रनुस्यावाक्यम्,—
नातोविष्यिष्टं पश्चामि वान्धवं वै कुलस्त्रियाः।
पतिर्वन्धर्गतिर्भक्तां दैवतं ग्रहरेवसः॥

तथाच क्रियाकत्तारं स्तिकां सियमाणपितकां रजखनां च स्तियं त्यक्ता अन्येषां पूर्वाभौचेन भ्रद्धिः । पुचं प्रति पिचभौचस्य वस्तवलेन वस्त्रमाणलात् तस्य क्रियाकर्त्तृतेऽपि श्रकर्त्तृतेऽपि पिल-मर्णेनेव भ्रद्धिः । तत्समानधर्मलात् तङ्कार्य्याया श्रपि । तथाच पुचवध्योरपि पूर्वाभौचभेषेण न भ्रद्धिरितिस्थूणानिखननन्यायेन उक्तम् । चतुर्भिः कुस्तकम्,—

पित्रोर्भृत्युं दशाहात्परमि ध्रृणुयाद्दूरगोऽषात्मजस्त् स्वालोपोस्पार्द्रवासास्त्विध च दशाहान्यशौची नियम्य । नित्यं स्वालाम् द्द्याद्य न यदि कतं प्रेतिपिष्डाद्यतीते ऽष्यन्दे सुर्याद्यौचे स्थितवित विदिते शेषधसैर्विग्रध्येत् ॥ पित्रोराशोचमाद्यं परमिष सक्ताशौचसंशोधकं स्थात् तत्रादौ मात्मस्त्यां पितुरूपिर्तने नाष्यशौचेन ग्रुद्धिः । तातस्यैकादशाहे भवित तदुभयोः सर्वमेकादशाहो-कं कर्मायो तयोः स्वस्त्यस्तितिषिदिनाद्येव कर्मापरं स्थात् ॥ माता ताताष्यमध्ये यदि भवित स्ता तस्यमाष्यादशाहा-नां सर्वं कर्म वप्नुदंशदिनपरतः पित्रिणीं वर्द्वियता । तवाद्यवीन् दितीयेऽहिन च वितन्त्यात् मप्तिपिष्डानयास्याः,

पिचोरेकादमाहोदितविधिमपराहे परं ख्रुखस्त्योः॥

मध्येऽव्हं चेदिमातः मरणिनममनं मक्जनं चोपवामः

पुचस्य स्थादमौषं दम्मदिवसमतीते तु वर्षे चिराचम् ।

पिचष्यन्तिमैंगैकाभित जमयदिने चाहरूकं विसन्ध्यं,

यावत् सूर्योदयं यित्रिम स्तकरजःस्तयोऽहस्तदेकम् ॥

पिचाद्यभौचे विभेषः।

पैठीनिमः,—पितरौ चेन्मृतौ स्थातां दूरस्थोऽपि हि पुचकः।

श्रुका तिद्दनमारभ्य दम्माहं स्तकी भवेत्॥

श्रामेये,—

पित्रमानुषघाते तु त्रार्ट्रवासा खुपोषितः । त्रतीतेऽन्दे प्रकुर्वीत प्रेतकार्यं यथाविधि ॥

त्रतः पुतः पित्रोर्द्गाहोत्तर्मर्णश्रवणे स्नालोदनं कलार्द्रवामाः
तदविध द्गाहोक्रिनियमान् कला नित्यं स्नानोदने च कला द्गाहमगौचमाचरेत्। वर्षे त्तरमिष मरणश्रवणे तथैव धवें सुर्यात्।
केनचित् क्रियायामकतायां तु धवें पिष्डादिकं कर्माषि सुर्यात्।
दग्गहमध्ये श्रवणे तु "प्रोषितश्चेत् प्रेयात् श्रवणप्रस्ति क्रतोदकाः
कासविभेषमाधीरन्" दति धवंधाधारण्येन पारस्करोतेः। केनचित्
क्रियायामारस्थायामिष धवंनियमवान् ग्रेषदिनैः ग्रुष्येत्। एवं
पित्रोर्देभान्तरमर्णे वर्षेऽतीतेऽपि द्गाहाद्यगौचविधानादस्यमाणनानानियमविधेश्च धर्वागौचापेस्रया पित्रभौचं गुक्तर्मेव। तस्मात्
तद्भौचं पूर्वं परमिष धर्वागौचसंग्रोधकमेव।

श्रवापि विशेषः स्रात्यनारे,-

मातर्थे प्रमीतायामग्रद्धी सियते पिता ।

पितः ग्रेषेण ग्रुद्धः स्थात् मातः कुर्यान्तु पिचणीम् ॥
दित माति स्तायां पद्यात् पिष्टमरणे उत्तरभाविनापि
पिष्टमरणेन एव ग्रुद्धः। दयोरेकाद्गाइक्तयं पित्रेकाद्गाइदिने
कार्यम्। "पिष्टमरणागौचमध्ये पद्यान्ताष्टमरणे तु पित्र्रगौचं
समाय पद्यात् पिचणीं प्रचिय ग्रुद्धः, न पूर्वग्रेषमाचेण, दग्नाहानन्तरं पिचणीं समाय दयोरेकादगाहकत्यं कार्यं दित विद्यानेयराः। एतदन्येऽप्यसदेशीया निवन्धकतः संमेनिरे। श्रव यत् केचित्
"पूर्वां वा परतोऽप्यवेवमनयोर्मातः पिताग्रोधकः"। दित
कारिकां निवध्य पिष्टवियोगमध्ये यच कुचापि दिने माष्टिवयोगे
माष्टिवयोगमध्ये यच कुचापि दिने पिष्टिवयोगे चोभयथापि पिष्टवियोगदिनमारभ्य दग्नाहोरानैः ग्रुद्धः।

तथाच' महाभारते,-

माता भस्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ।

भस्रा चर्मपुटिका, एतेन पित्तपुचयोरेकात्मलप्रदर्शनेन मातु-रपेचया पित्तरेव परमान्नरङ्गलं स्वचितं दित युक्तिम्चः। तम्न रचिरम्। "मातः कुर्यान्तु पचिंणों" दित वाचिनकेऽर्थे न्यायाव-तारस्थानुचितलात् युक्तिविरुद्धलाच। तथाच माता, भस्रा, दित नाभौचप्रकरणेऽभिद्दितम्। तथापि पितुराधिक्योक्तिर्यद्ययभौच-प्रयोजिका च स्थात्। श्रीरामायणे, स्वतौ, च, "खपाध्यायाद्य-पिता" दत्याद्युक्का, गर्भधारणपोषांभ्यामेभ्यो माता गरीयमी । रत्यादिना,

> उपाधायाद्गाचार्या त्राचार्याणां गतं पिता । सदसंतु पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते !

र्ति मानवभविष्यपुराणवाकोन च वन्दनादौ मातुराधि-क्यद्र्यनेन च मात्रशौचं किमिति वज्जवत्तरं न स्थात्।

किञ्च "त्रन्तरङ्गभावेन ग्रुद्धिविचारो न कलौ" दत्यपुतं किञ्च पिट्टद्यमेऽइनि पिट्टकर्मधमान्नौ खन्याविष्णद्यां एव माद्यमर्णे मातुर्दग्रदिनविद्दितकर्मणां खन्यकालेन कर्त्तुमग्रकालेन पिचणीप्रचेपं विनाऽनिर्वाद्यात् पिट्टवियोगमध्ये माट्टमर्णे पचि-णौप्रचेपो युक्ततमः। धर्ववायग्रौचपाते एकाद्याद्यकर्मानुष्ठानस्य त्रग्रौचान्तदिने मिद्धान्तितलात् पिचण्यनन्तरदिने द्योर्णेकाद्ग्रा- दक्तयं कार्यमिति विज्ञानेत्रराभिन्नायः। माधिकादौनि तु खख-मर्णितव्यवध्येव कार्याणि। वैपचिकं खमर्णदिनावध्येव। त्रव विमातुर्विग्रेषो दचेणोक्तः,—

पित्रपत्थामतीतायां मात्रवर्जं दिजोत्तमः। संवत्सरे यतौते तु चिराचमग्रक्मिवेत्॥ .

दति संवत्सरात् पूर्वं दशराचिमत्यर्थः । विमातुमाँ द्रलस्तात् श्रवणदिने स्नानोपवासावुत्सर्गसिद्धौ । श्रित्रराः,— दिसन्ध्यं सद्य दत्याङ्कस्त्रिसन्ध्यमहरूचाते । एका राचिर्दिने दे च पचिणीत्यभिधीयते ॥ पचिष्णां यथा पिण्डव्यवस्त्रा, सा पूर्वपद्ये निवद्वा । तच स्तिः ऋहागौचे,-

प्रथमेऽकि चयः पिछा दितीयेऽकि चतुष्टयम् । वितीयेऽकि चयः पिछाः पिछां प्रथमे चयम् ॥ दितीयेऽकि च सप्तस्पृरिति खछाग्रुचौ विधिः ।

सद्यः श्रीचे स्नानमाचसमाचारात् पद्येऽसामिनं निवद्धम्, विसन्ध्यमदिख्यान्। तच राचौ स्नतकादिपाते गणनं कथं स्थात्? दत्यपेचायां जावाजिः,—

राचावेव समुत्यके म्हते रंजिम सूतके।

पूर्वमेव दिनं ग्राद्यं यावकाभ्युदितो रिवः॥

चतुर्कां प्रमाणानि।

पत्नी पत्या महाग्निं प्रविश्वति यदि वाशौचमधेऽतुगच्छेत्भेदेऽणवोभयचोभयस्तदिनयोः पत्यशौतेन ग्रुद्धः ।
श्राशौचे चेदतीतेऽणतुगमनिम्हाशौचमेव चिराचम्
विप्रानेवानुगच्छेत्तदित्रविनता श्रव्ययुः चिचयद्याः ॥
व्यात्रपादः,— स्तं पतिमनुत्रच्य पत्नी चेत् ज्वन्ननं गता ।
तचापि दाइस्तन्तेण प्रथमस्तित्रया भवेत् ॥
नवश्राद्धं मिपण्डान्तं ममाण्यं स्थात् मक्टद्दयोः ।
श्रव स्वत्यद्वभेदेऽपि नवश्राद्धानि यद्दिने ॥
भत्तुर्थादिश्राद्धं, नवश्राद्धमिति पूर्वमुत्तम् ।
वेश्रम्यायनः,— एकचित्यां ममारूढ़ौ दम्यती निधनं गतौ ।
प्रथक् पिण्डं च श्राद्धं च श्रोदनं न प्रथक् प्रथक् ॥

एकपाचे श्रम्नं प्रक्वा दिधा विभिज्य दद्यात् इत्यर्थः।

एकचित्यां समारूढ़ौ सियेते दम्पती यदि।

तन्त्रेण अपणं क्रता प्रयक् पिण्डं समापयेत्॥

इति वाक्यान्तरात्। श्रचापि पिण्डपदं पूर्ववाक्यात् आङ्कोप
जन्तम्।

एकां चितिं ममामाद्य भक्तारं यानुगच्छति । तङ्गर्नुर्यः क्रियाकर्त्ता म तस्याद्य क्रियां चरेत्॥

द्त्यादिवाक्येर्भरणदिनभेदेऽपि मिष्णान्तकत्यस्य पत्या सहोको पत्यभोचेन ग्रुद्धिः कैसुतिकन्यायसिद्धा । पूर्वेद्युः स्रन्याविष्ठष्टायां राचौ भर्त्तृमृतौ परेद्युर्दाहार्स्य सहगमनेऽपि दिनभेदः सम्भवति । एवमग्रिप्रवेशं विना पत्या दाहाद्यापन्यर्णेऽप्यन्नमेकभाष्डे सम्पाद्य प्रथक् दद्यात् ।

> एकाहे तिथिभेदे तु नवश्राद्धेषु तन्त्रता । श्राद्धानि माधिकादौनि स्ततिक्योईयोः पृथक् ॥

द्ति वाक्यात्। सहगमनानुगमनयोरेकविधिलात् द्याहमध्ये-ऽनुगमने पत्यश्रीचेन ग्रुद्धिः। द्याहोत्तरमनुगमने तु पुचादीनां चिराचमश्रीचम्।

श्रिवतायाः प्रदातया द्रप्रिष्डास्यहेन तु । स्वाम्यभौचे यतीते तु तस्याः श्राद्धं विधीयते ॥ दित पैठीनसुक्तेः । श्रिवताया श्रतुगमनकत्त्राः । पुनः पैठीनिषः.—

म्हतातुगमनं नास्ति ब्राह्मका ब्रह्मप्रायनात्।

दतरेषां तु वर्णानां स्तीधर्मीऽयं परः स्थतः ॥

पृथक् चितिं समारुद्धा न विप्रा गन्तुमर्छति ।

प्रत्यासां चैव नारीणां स्तीधर्मोऽयं व्यवस्थितः ॥

प्रौताग्नेः पर्णदान्तो यदि भवति दणान्तान्तरे वा तदूर्द्धः,

घातीनां चात्मजानां तदवधि तदघं सर्वथैव विराचम् ।

पर्णा दान्नो निरग्नेथेदि भवति दणान्तान्तरे ग्रेषघस्तैः,

ग्रुद्धः स्थास्र व्यन्दैः स्थात् यदि भवति तदूर्द्धं तदैव व्यन्दैः स्थात् ॥

कन्दोगपरिणिष्टे "त्रस्थामन्ताभे" दित वाक्ये "ततः प्रस्ति

स्तकं" दित यदुकं, तत् त्रान्तिताग्निविषयम् ।

एतत् तु,— यस्य तु चयमग्नीनां तस्थोर्द्धं दान्दकर्मणः ।

दत्यस्थैवानुवादः । यद्यपि वान्नो त्रान्तिताग्नेरिक्षपक्रम्य,

"श्रनाहिताग्नेर्देहस्त'' दत्युक्ता,

एवं पर्णनरं दग्ध्वा चिराचमग्रुचिभवेत्।

दित साग्निरिग्नसाधारण्येन दाहाविध चिराचागौचनुकम्।
तथापि श्रौताग्नेर्दशाहावध्येवागौचिमत्युक्तलात् दशाहमध्येऽपि पणंदाहे तदुन्तराग्नोचस्य समानविषयलेन बाधकलम्। निरग्नेस्य
दगाहमध्ये पर्णदाहे मर्णज्ञानाविधकस्य श्रगौचस्य भिन्नविषयतया
पर्णदाहिनिम्ताग्नोचेन न बाधः। प्रत्युत दीर्घकालीनेन दगराचाग्नोचेन श्रन्थकालीनस्य पर्णदाहिनिमन्तिचराचाग्रोचस्य वाधः।
ननु निरग्नेरिप पर्णदाहिनिमन्तिचराचाग्रोचस्य
बाधकमस्त्रिति चेन्न। तस्य दगाहोर्द्धपतितपर्णदाहसावकाग्रलेन
भिन्नविषयंतया बाधकलासम्भवात्।

माग्नेरेवास्थिदाहो भवति चिथिनिनः कालिदामा अवोचन् तचाग्रीचं ऋइं खादिति निगमविदोऽन्ये दग्राइं ब्रवन्ति। जढ़ा पुत्री प्रसूते यदि पिल्षद्ने तिल्रा वं तु पित्रोः. तसा मृत्यां तयोवां चिदिनमपि मृतौ यच कुचापि वासे॥ विदेशस्थेत्यादि पूर्वोदाइतकात्यायनोक्तौ "पाचन्यासादिपूर्व-वत्" दृत्युक्तलात् पाचन्यामार्थमेव पुनर्दाष्ट्रप्रवृत्तेः । माग्नेरेवास्थि-दाइ: चिराचाग्रौचानुष्टचौ कालिदासचियिननः ''दम्धेऽस्थिपार्ण नरे" इति । तच टीकायाम् "एवं पर्णन्रं दग्ध्वेति," पर्णनर-दाहे ऋहागौ विधानात् तत्मियोगि ग्रिष्टास्विदाहे ऋहागौ चमेव इति बाखातं तदन्ये न महन्ते । पर्णदाहापेचया मुख्येऽस्थिदाहे पर्णदाहोक्रस त्रिरात्रागौतस्य कथमतिदेशः स्वादिति। तस्राद-खिदा हे द्याहमेवा भौचं। तथाच विश्वष्टः, "त्राहिता ग्रिखेत् प्रवसन् सियेत, पुनः संस्कारं कला ग्रव द्वाग्रीचं" दति। तच पुनः संस्कारपदोपादानादिखिदाइ एव न पर्णदाइ दित । पर्णदाइवि-चारः पूर्वीकः।

कौर्म, - दत्ता नारी पिल्रग्रहे प्रधाने सूचतेऽथवा ।

सियेत वा तदा तस्याः पिता ग्रध्येत्रिभिर्दिनै: ॥

प्रधाने संसर्गे, पितेति मात्र्पत्तचणम्। विश्वष्टः "प्रता-नां तु स्तीणां चिराचमशौचं विश्वायते" द्ति पिचोरिति श्रेषः। टह्स्पतिः,—

> भावाभीचं विराचं स्थान्महागुहनिपातने । दुष्टित्यणं तु विचानां मर्ववर्णेव्ययं विधिः॥

दुषित्वपदसमित्याद्वारात् महाग्रक् पितरौ विन्नामां विवाहितानां, तच खग्टह रत्युपादानाभावात् यच कुचापि खितौ दुष्टित्वणां पिचोश्च मृतावन्योऽन्यं च्यहं, रदोत्पत्त्वनन्तरं यदाकदाचिद्दुष्टित्वमर्णे पिचोः चिराचाग्रौचस उन्नलेऽपि पुनक्पादानं स्कृटलार्थं "यच कुचापि" रत्यस्य प्राष्ट्रार्थञ्च ।

यन्यामी प्रेति चेत्तिकामयति स्तसिहिने स्नानपूर्वे, नीरं द्वैव यदाः प्रजित्य यतिनोऽपातुरस्थाभियुक्ताः । मृत्यौ केचित्तयेति बुवत दृष्ट परे तिस्वरस्थैव पूर्णा-ग्रीचं दाष्टादिकत्यं परिमतर्ग्यष्टस्थाविशेषं वदन्ति ॥

"त्रिविज्ञलसंगामदेशान्तरस्वस्त्रास्वन्यनमहाध्वनिकानासुदकदानं कार्यम्" दित समन्तुवाक्यात्। "सन्त्राले सद्यः भोषं विधीयते" दित ब्रह्मवाक्याच सन्त्रासिस्ततौ पुत्रस्वापि तिद्दने उदकदानमात्रम्। श्रवणे सद्यः भौषमेव। भनुक्षोऽणुपवासः कार्यः।
यनु वद्यमाणप्रचेतोवाक्ये जलदानस्य निषिद्धलं तत्र्यसदिन्यतिरिक्रविषयम्। एवं श्रातुरसन्त्रासिमरणेऽपि सद्यः भौषिति
केचित्। वस्तुतस्तु समन्तृक्षौ सन्त्रासिपदोपादानेऽपि "सन्त्रस्ते सद्यः
भौषं विधीयते" दिति वाक्ये सन्त्रस्तपदे च निष्टान्ते साङ्गप्रधानक्रियोपरमप्रतीतिदौष्णितनियमे(१) साङ्गदीचाव्यापारोपरमप्रतीतिवसर्वेतिकर्त्तव्यतायुक्तस्य सन्त्रासस्य श्रपवर्गे मन्त्रस्त्वं दीचितत्ववदिति।
तदुक्तं पूर्वमौमांसापञ्चमाध्यायद्यतीयपादे। "परेणावेदनात् दौचितः
स्थात् सर्वे दौचाभिसम्बन्धादिति"। प्रैषोञ्चारणमावेण सन्न्यस्त्रले—

<sup>(</sup>१) प्रतीतेदीं चोपरमे।

भावात् मद्यस्ते मद्यः ग्रीचिमत्यस्थापवादस्थाभावात् द्रगाहाग्रीचमेव । एवं च सुमन्तूकौ मद्यासिपदं मद्यस्परं। किञ्च त्रातुर्म-व्यामिनो दैवाच्चीवने,

मग्रीन् परिचरेत् मस्यक् न त्यजेद्दाहकारणात् । दति श्रीधरखामिवाक्यात् मर्वे एव मरणोत्तरमंस्कारा ग्टइ-स्थाविग्रेषाः ।

मद्यः श्रोचे हि वर्णी वक्त भिरिभमतश्चोपकुर्वाणको यः, कैश्चित् मोऽपि व्रतेऽस्मिन् गतवित गदितोऽशौचवान् वा चिराचम्। पिचोर्म्ह्यां तु दाहादिकमखिलविधिं मोऽपि कुर्वीत किन्तु, प्रतास्नं नैव खादेश्चिजनियमयुतो ज्ञातिपम्पर्कहीनः॥

बन्दोगपरिग्रिष्टे,-

न त्यनेत् स्तके कर्म ब्रह्मचारी खकं कचित्। न दीचणात्परं यज्ञे न कच्छादितपञ्चरन्॥ पितर्यपि म्हते नेषां दोषो भवित कर्षिचित्। श्रगौचं कर्मणोऽन्ते स्थात् श्रष्टं तु ब्रह्मचारिणाम्॥ स्तकेऽग्रौचे खकं ब्रह्मचर्यात्रमविष्टितम्।

मनुर्पि,-

श्रादिष्टी नोदकं कुर्यादावतस्य समापनात्। संप्राप्ते द्व दकं कुर्यात् विराचमग्रुचिर्भवेत्॥ श्रादिष्टं वतं श्रस्थासीति श्रादिष्टी ब्रह्मचारी।

याच्यवस्यः,—

याचार्यपिनुपाधायात्रिईत्यापि वती वती।

सकटानं च नाश्रीयास च तैः सह संवसेत्॥

श्रव विज्ञानेश्वराः, माता च पिता च पितरौ, एति वर्षापि वती ब्रह्मचारी ब्रत्येव, न पुनरस्य व्रतभङ्गः । कटशब्देन श्रशौचं सद्धते । कटमहितमसं सकटासं ब्रह्मचारी नाश्रीयात् नचाशौ- चिभिः सह संबसेत् एवं वदता याज्ञवस्कोन श्राचार्यादियति- रिक्तप्रेतनिर्हर्णे ब्रह्मचारिणो व्रतभङ्ग द्रत्युक्तं ।

श्रतएव विश्व ( "ब्रह्मचारिण: ग्रवकर्मणो व्रतासिट त्तिरस्त्र मातापिचोः", इति विज्ञानेश्वराणामयमभिश्रायः । पिता माचे त्वेक्ष्रोषः । कटग्रब्दः ग्रववाची, तचाग्रीचे सच्छोति । श्रस्तद्देशे श्राचार्योपाध्यायाग्रीचस्थानादृतलात्तदिषये न किञ्चिन्नवद्धं "पित र्येप स्ते नेषां" इति वाक्यं हि ब्रह्मचारिणः पित्रमात्तस्ताविप तदाश्रमविहितकर्मप्रतिपादकम् । न तु पित्रमात्त्रप्रेतकर्मनिवार कम्, श्रत्यथा याज्ञवस्क्यविश्ववाक्यविरोधः स्थात् ।

ब्रह्मचारी दिविधः,—

दिविधो ब्रह्मचारी स्थादाद्यो सुपकुर्वाणकः। दितीयो नैष्ठिकस्यैव तस्मिन्नेव व्रते स्थितः॥

इति दचोकः॥

एकाइं स्थात् प्रयाते मरणमनुपनीतामिषिखेऽय मद्यः-ग्रीवास्तवादिशिन्पिदिजनिषयमतौ सूपकारादिकारः। श्रन्थानिर्वाद्यकार्येष्वपतिषु च निजेष्वेकस्मीपतीष्टो, वैद्यः सची च सूपानुचरनृपतयो दामदास्थावमात्यः। इारीतः "एकाइमसपिख्यतः" ददमनुपनीतासिष्छपरम्। यद्यः ग्रीचे विष्णुः, — नाग्रीचं राजां राजकर्मणि, न व्रतीनां व्रते, न यचिणां यचे, खकर्मणि च राजाज्ञाकारिणां, न कारूणां कार्क्मणि।

प्रचेताः, — कारवः भिन्धिनो वैद्या दामदास्यस्ययेव च। राजानो राजस्रत्यास्य मद्यः भौचाः प्रकीर्त्तिताः ॥

कारवः स्रूपकाराद्यः । गिन्धिनो वर्द्धकिचित्रकारगौचिक-चेन्ननिर्णेत्रकतन्तुवायाद्यः ।

दामस्त, - प्रधिकारी तं यो यस्य म दामस्तस्य की र्त्तितः। दित समुदारीतोकसम्बद्धः।

थामः, - चिकित्सको यत् कुक्ते तद्न्येन न प्रकाते।

तस्मात् चिकित्मकः स्पर्धे ग्रुद्धो भवति नित्यमः॥

पराग्ररः, ''यस्य चेक्नित् ब्राह्मणाः । वहवो ब्राह्मणाः सम्भूय यस्य ग्रुद्धिमिच्छन्ति तस्य सद्यागौचिमत्यर्थः ।

याज्ञवस्त्रः,—"यस चेक्क्ति भूमिपः" श्रतएव "यस चेक्क्ति नरेन्द्राः" इति प्रातातपोक्तौ वज्जनमिवविचितम् । तसादेकेनापि मूर्द्धाभिषिकोन यस दस्रते, तस्र मद्यः प्रौचम् । पराप्ररः, "वैद्या-मात्यास्त्रथेव च" । श्रप्रौचेऽपि प्रिन्पादिकर्मणामन्यानिर्वाष्ट्रे तैरेव प्रिन्पिप्रस्तिभियंज्ञपाचादितचणादिकं कार्यित्वा तत् कर्म कार्यं, इति तेषां तत्कर्मस् तात्कास्तिकौ ग्रद्धिरित्यर्थः । एवं सित श्री-पुरुषोत्तमवेचे श्रीजगन्नायादिमूर्त्तिनर्माणादौ तिक्किन्पिनां श्रप्रौ-चाभावसमाचारः तन्त्रुस एव ॥

कोपादेः खेक्याभोविषसगुपतनोदस्वेनैवैद्युताम्य-

स्ताम्याधिदीिपिष्टिश्यपचभुजगगोग्रहिददादि हिंसी: ।

राजा विषेण नष्टेऽनग्रनम्हतमहापापिनोश्याभिग्रसी,

मधःगौरं तु पूर्ण लनवहिततया दुर्म्हतौ स्थास वैध्याम् ॥

कोपादिरिति श्रपमानादेः संग्रहः । वैध्यां दुर्गताविप विधिविहिते दुर्मरणेऽपीत्यर्थः।

पराग्ररः,—

श्रपमानाद्य कोधात् खेदात् परिभवात् भयात् । उद्दश्य सियते नारी पुरुषो वा कथञ्चन ॥ पूयग्रोणितसंपूर्णे श्रन्धेतमसि दाद्यो । पष्टिमदस्तवर्षाणि<sup>(१)</sup> हत्वात्मानं वसेन्नरः ॥

गौतमः,—

प्रायोऽनगनग्रस्ताशिविषोदकोदन्थनपतनेशे क्ताम् ।
प्रक्षः, स्वन्यनग्रनाभोभिर्म्धतानामात्मघातिनाम् ।
पतितानाञ्च नागौचं ग्रस्तविद्युद्धताञ्चये ॥
तथा, चापादयेदयात्मानं ख्यं योऽन्युदकादिषु ।
विदितं तथा नागौचं नाग्निनायुदकिया ॥
विष्णुपुराणे, —

वाने देशानारखे च पतिते च मुनौ मृते । मद्यः शौचं तथेच्छातोः जन्नाम्युदत्यनादिषु ॥ स्रत्यन्तरे,— खेच्छया मरणे विशाच्छृङ्गिदंद्रिमरीस्पैः । श्रन्यान्यज<sup>(१)</sup>विषोदस्येरात्मना चैव ताड़नैः ॥

<sup>(</sup>१) खन्यान्यन।

<sup>(</sup>२) यखिवधैसहसासि।

संपूर्णं सर्वगात्राणां विषाद्याक्षर्णेऽपि वा ।
विषाग्निर्मपातेश्व रोहारोहादिभिस्तथा ॥
येषामेव भवेत्ते वे कथिताः पापकर्मिणः ।
पाषण्डमाश्रिताश्चेव महापातिकनस्तथा ॥
स्तिथश्व व्यभिचारिष्य श्रास्ट्रपतितास्तथा ।
न तेषां स्नानसंस्कारौ न श्राह्वं न सपिण्डता ॥
सद्यःगौचे मतः,—

डिमाइवहतानाञ्च विद्युता पार्थिवेन च। त्राहवे हतस्रोति पराङ्मुखहतस्रोति वोध्यम्।

श्रन्थथा, महाभारते, महता प्रवन्धेन उक्ता उदकादिकिया वर्षा छात्। ददं मद्यः भौषं कोधादिना बुद्धिपूर्वतया यत्र मरण-ग्रद्धा, तत्राविख्यतं भवति । प्रमादेन यदा विधिवाक्येन विहित-स्रगुपातादिना दुर्मरणेऽपि समूर्णागौत्रमेव।

तथाच प्रङ्काङ्गिर्मौ,—

त्रय कश्चित् प्रमादेन मियतेऽग्युदकादिषु ।
तस्यागौरं विधातयं कार्या चास्योदकिकया ॥
दुश्चिकिकैर्महारोगैः पीड़ितय पुमानपि ।
प्रविभेत् ज्वलनं दीप्तं करोत्यनगनं तथा ॥
तथा,— खयं देहिवनागे तु काले प्राप्ते महामितः ।
उत्तमानाप्रयाक्षोकान् नात्मघाती भवेन्नरः ॥
यन्तु,— खद्भवे कियानुप्रशत्यास्थातिभवक्कियः ।
त्रात्मानं घातयेत् यस्तु स्थ्यग्यनगनाम्बुभिः ॥

तस्य विराजमाशौरं दितीये लिखसञ्चयः।
हतीये द्वदकं दला चतुर्थे श्राह्माचरेत्॥

दित ग्रातातपवाकां, तस्य सगुण निर्गुणलविचारस्य कसीतर-विषयलात् किल्युगेतरविषयलम् । एवं का सिद्धिमचिथिनिभिर्युद्धे पराङ्मुखदतस्यापि का सांनारे म्हतौ थन्नारहागौचं सिखितं, त्रन्य-चापि यद्वावस्यापितं, तत्सर्वे कंसौतरविषयभेवेति जीयम् ॥

नष्टे मातामहे त यग्र्रगुर्षु वा मात् लेऽगी चमुक्तं, त्यक्षा खानोपवामी विद्धति स्थियसत्प्रियाणां च नागे। नागौची ब्रह्मवित्यात् मकल दृष्ट् यतिर्नेष्टिक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थोऽष्यदृत्तिर्हरिभजनपरः त्यक्रमद्मापि ग्र्ट्रः॥

यद्यपि स्तिषु मातामस्यग्ररग्रसमातुलानां मातामसीययूग्स्पत्नीमातुलीनां व्यस्पिल्याद्यभौत्रम् । तथापि तदनादृत्य स्वयः तन्तरणेऽपि वार्त्तात्रवणेऽपि वा सानोपवासावेव ममाचर-नीति भिष्टाः । पूर्वं तत्तत्कर्मणां तत्तत्कर्मिस् श्रभौत्राभावसुत्वा ददानीं पतिप्रस्तीनां नेवाभौत्रमित्याद नाभौत्रीत्यादिना । यद्यपि,— मतीव्रतिवद्यात्रारिदाहबद्याविदां तथा ।

श्रापद्यपि च कष्टायां मद्यागीचं विधीयते ॥

दित याज्ञवस्कायुक्तिषु वितिप्रस्तीनामपि मद्यागीचं माधा
रखीनोक्रम् । तथापि,—

नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् । नागौचं कीर्च्यते मङ्गः-

द्रत्यादिवाक्यादेकदण्खादिमकलमञ्जामिनां नैष्ठिकब्रह्मचारि-

दाहमद्वाविदां प्रतिग्रहिन हत्त्वानप्रस्थानां च धर्वथा नागौचम् । नागौचं विद्यते कचिदित्यनुहत्तौ, वानप्रस्थस्य धर्वदा,—

प्रतियहाधिकार् स्व निष्टत्तस्य न विद्यत द्रति
कन्दोगपरिणिष्टोकोः । प्रतियहनिष्टत्तसं वनस्थानामिति वाकोऽप्यन्ति । तथाच सप्टत्तिवानप्रस्थो नाभौचं कुर्यात् । उपकुर्वाणकन्नद्वाचारिणोऽभौचाभावेऽपि पित्वविषयेऽभौचस्थोक्रसात् नैष्ठिकनद्वाचारिण एवाभौचाभाव उक्तः । यदि श्रृद्रोऽपि पुत्रकचन्नादिकं
त्यक्षा वैष्णवो भवति तदा तस्थापि यतिवदभौचाभावः ।

सर्वधर्मान् परित्यच्य मामेकं गर्णं वज ।

द्ति मर्ववर्णाश्रममाधारण्येन श्रीभगवदुक्तेरिति वदन्ति। इरि-पद्ख उपस्चणलात्, इराद्दिमर्वदेवैकभक्तानां त्यक्रग्रहाणां नाग्रीचम्।

यो यो यां वां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चित् भिक्किति। तस्य तस्याचनां श्रद्धां तामेव विद्धाम्यहम्॥ इत्यादिभगवद्कोः।

मर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ।

दति पुराणान्तरोक्तेश्व॥

दाहे वाहे प्रवस्थानुगमनकरणे स्नानप्राणायमाञ्चा द्रांस्थिस्पर्पे धजातेरिदमिष स्दिते यावद्ग्युश्चितिः स्नात्। ऊर्द्धे चाचाममात्राद्भवति हि ग्रुचिताऽयो न शृद्रस्य विषा दाहं वाहं प्रवस्थानुगममिष तथा रोदनं जातु कुर्युः॥ सजातीयप्रवस्य दहनवहनानुगमने च केवनस्पर्गे च सजाती- याद्रास्त्रिस्पर्गं च श्रस्थिमञ्चयावधि(१) रोट्ने च जातिभिन्नानां निर्हर्णाद्यगौचापगमार्थं स्नानं प्राणायामाञ्च ।

तथाच याज्ञवस्काः,—

प्रवेधनादिनं कर्म प्रेतमंस्पर्धिनामपि ।
दक्कतां तत्चणाच्छुद्धिः परेषां स्नानमंयमात् ॥
संयमात् प्राणायामात्, परेषां ज्ञातीनां ।
अङ्गिराः,—प्रेतमंस्पर्धसंस्कारे बांद्वाणो नैव दूखित ।

त्रिय वाष्यिद्याता च मद्यः खाला ग्रेंचिभवेत् ॥ तत्राग्निद्यातुः खानेन मद्यःगौचं तत्कर्मध्येव नान्यतः।

बोधायनः,— प्रवीपसार्थानेऽनिभसिन्धपूर्वं सचेलोऽपः स्पृद्धा सद्यः प्राचिर्भवति, श्रिभमिन्धपूर्वे चिराचम्हत्मत्याञ्च। श्रिभसिन्धः धानादिनेच्छा, सचेलोऽपः स्पृद्धा स्नालेत्यर्थः।

श्रमिण्डं दिजं प्रेतं विप्रोनिर्हत्य बन्धुवत् । विग्रध्यति चिराचेण मात्रराप्तांस्य बान्धवान् ॥ यद्यक्षमत्ति तेषास्य दणाहेनैव ग्रध्यति । श्रनश्रक्षमञ्जेव न चैतिसान् ग्रहे व्हेत् ॥ दित मनूकिस्त कसीतरविषया ।

श्रनुकर्मे इच्च्या प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा । स्नात्ना मचेनं सृद्दाग्निं हतं प्राय्य विश्वधिति ॥ दतिवाक्यान्तराच नाग्नौचाधिकः दर दत्यसहिगीयाः ।

<sup>(</sup>१) चास्यसंचयनावधि।

#### याज्ञवस्यः,—

नारं सृद्दास्ति मसेहं स्नाला विशे विश्वधित । श्राचम्यैव तु निःश्वेष्टं गामासभ्यार्कमीचते ॥ एतत् मजातीयास्त्रिविषयम् ।

ब्राह्मे, - स्टतस्य यावदस्यीनि ब्राह्मणस्याद्दतान्यपि । तावत्तदान्धवस्तव रौति चेदान्धवैः षदः ॥ ततः स्नाला भवेष्कुद्धिसत्सृक्षाचमनं चरेत्॥

जर्द्धमाचमनमिति । यावदिख्यमञ्चयनं न क्रियते, तावदान्धवः उदामीनोऽपि रौति चेदित्यर्थः । मजातीयविषयञ्चेतत् । चित्रय-वैष्ययोः किख्युगेऽभावात्तच्छवस्य विचारो न कृतः । श्रुद्राणां वद्दनदृद्दनादिकं ब्राह्मणैः सर्वथा न कार्यम् ।

ब्राह्मणो न दहेत् श्रद्धं मित्रं वाष्यन्यसेव वा ।

मोहाइग्ध्वा ततः खातः सृष्टाग्निं प्राथयेद्ष्तम् ॥

उपवासरतः पञ्चात्चिराचेण विश्वधित ।

इति प्रायक्षित्तोकोः,

त्राञ्चाणो नानुगन्तयो न तु शूट्रो कथञ्चन। इति याज्ञवस्क्योकीः।

विप्रेर्दम्धाय ये ग्र्ट्रा गति तेषां व्रजाम्यहम्।
दित जैमिनीयरामायणे भरतवाक्ये दोषोत्रेश्चेत्यसमिति
विस्तरेण॥

प्रेतस्पर्भी दिवा चेन्निशि निशि तु दिवा ग्राम उक्तः प्रवेशो यदादाय दिजाज्ञामतिविपदि पुनः सोऽवधिर्न प्रतीच्यः । पुत्राणामाञ्चरेते अवनमिति परे धर्वमापिण्डाभाजां

केचित् प्रेतावराणां स्टित्यमदिनेऽय स्वियसिनिषद्भम् ॥

पारस्करः,— "प्रेतस्पर्धिनो ग्रामं न प्रविधेयुरानस्वदर्धनात्,
राचौ चेदादित्यस्य" । प्रेतस्पर्धानुहन्तौ हारीतः,— "ब्राह्मणानामनुमत्या वा" तथाच यदा ग्रामप्रवेधं विना त्रात्यन्तिकः कार्यनाम्
त्रापद्यते(१), स्पर्धानोऽप्रक्रिवां, तदा ब्राह्मणाद्यां स्टहीला पूर्वीकाविश्वश्रंष्य ग्रामप्रवेधेऽप्रदोषः ।

सत्यनारे,-

गङ्गायां भारकरे चेचे मातापित्रोगुरोर्मृते । मुख्डनं चोपवास्य सर्वतीर्थेव्वयं विधिः ॥ वर्जयिला कुरुचेचं विधासं विरजां गयां ।

स्ते मरणे नैमिषं पुष्करं गयां इति पाठान्तरम्। श्रव यमुण्डनमुक्तं तन्त्रातापिकोर्भरणाविधदशमाच एव। उपवामो स्ताच एवित्यसाद्देशसमाचारः। पित्रमाचुपधात इति श्रामेयोक्तेः। देशविशेषे तु गङ्गायामिति वाक्ये मातापिकोर्मृतेऽचनि इति पठिला मात्रपित्रमरणदिनेऽपि चौरं कुर्वन्ति।

श्रसहेंगे तु,—

त्रार्द्रवासाय मिलनः यात्रुको द्राभिर्दिनैः।
मातापित्रोः क्रियां कुर्यात् ज्ञातिवन्धुसमन्तितः॥
त रहस्यस्यकौ सम्बन्धः क्रियां कर्यादिस्यसम्बन्धः

इति रहस्य त्युक्तौ आश्रुक्तः क्रियां कुर्यादित्यभिधानात् क्रिया-कर्त्तुर्देशमदिनात् पूर्वे चौराभावसमाचार इति। क्रियाकर्त्तुर्वपनम्।

<sup>(</sup>१) खापचेत ।

पारस्करः,—"वपनञ्चानुभाविनां" श्रनु पश्चाङ्गावयन्तीति श्रनुभाविनः, प्रेतकनीयां बसेषां तथाच प्रेतच्येष्ठानां न वपनिम्याः । केचिनु,— तच त्याच्यानि वाषां चि केग्रयस्त्रुनखानि च ।

रति याज्ञवस्कोकोः सर्वमपिण्डानां चौरमिति। पचनयेऽपि स्त्रीणां नैव चौरम्।

> प्रायखित्ते समुत्पक्षे प्रेतकत्ये तु योषिताम् । निषद्धं वपनं केचित् तीर्थेष्वपि यथेष्क्या ॥

> > रति स्रतेः।

न खादाचार्यमातापित्रमरणिद्नात् दाद्याद्याचानधीति,
र्न खात् भिय्ये गुरौ ऋतिजि च म्हितमित चौणि न खुर्दिनानि।
यामान्तस्ये भवे नाध्यनमभिद्यितं नीयमाने च दृष्टे,
ख्यामीणे मृते नाभनमितिनकट्यामगेऽपि भमीते॥

श्रनधायातुरक्ती श्रापसमः,— "वैरमरणं गुरुष्वष्ठाख्ये व्यहम् तथा मातरि पितर्याचार्ये च दाद्गाइं" दति । वीरमरणमेव वैरमरणमिति श्रध्यननिरुक्तिरित्यर्थः । गुरुषु प्रेतेव्यित्यतुषङ्गः । श्रष्टाख्ये (श्रष्टकायां) ।

उपनीय वरेदेरं श्राचार्यः म उदाइतः ।

दत्युमसचणे त्राचार्ये। "चितिक् यज्ञकदुचते" दत्युमसचणे चितिजि।

याज्ञवन्त्रः, — त्यत्रं प्रेतेष्वनधायः शिष्यर्तिगृदवन्धुषु ।
तथा, — त्रमेध्यप्रवश्द्रान्यस्मग्रानपतितान्तिके ॥
त्रमध्यमानुदत्तौ नार्सिहे, — "नौयमानं प्रवं दृष्टेति" ।

मतुः, — ख्यामे यामतो वापि मिल्रहे मृतेऽपि वा।

न भुज्जीतामनं धौमाना धमंमोककारणात्॥

ख्यामे (ख्यामीणे)। यामतः मिल्रहे मिल्रहृष्यामीणे द्रत्यर्थः।
वर्षान् पञ्चोत्तरांश्चेत् पितिर दम्म गते नागितर्नापि वार्त्ताः,
लन्येषु दादमान्दान् तदुपरि निख्तिलं प्रेतकर्मादि कार्य्यम्।
जीवंश्चेत् कश्चिदायात्तमपि एतघटे प्रास्य चोदास्य कार्य्यम्,
जाताद्यं कर्म नेहाजिनध्तिवपने मेखलादण्डिभचाः॥
दत्येवं मंख्नतः मोऽयाचल उपवसेत् दादमाहं व्यवं वा,
तस्मादागत्य पूर्वां स्तियमपि विवहेत्तदिनामे तथान्याम्।
माग्नेरायुमतीष्टिस्तिह भवति पुरोड़ामकोऽष्टाकपाल,
श्वेत्राग्नेयो निरमेश्चर्राह तु मतः मोऽयमायुमताखाः॥
प्रास्त एतवुभी चिद्या, भवले (पर्वते) जाताद्यं कर्म, जातकर्मादि—
पुनःसंस्तार दत्यर्थः।

मार्कछ्यः,—

गतस्य न भवेदात्ता यस्य दादग्रवार्षिकी।

प्रेतावधारणं तस्य कर्त्त्यं सुतवान्थवैः ॥

पिता प्रविसतो यसः न च वार्त्ता न चागमः।

जर्द्धं पश्चदगादर्षात् कार्या पिष्डोदकिकया ॥

स्ततुत्त्या वान्थवाः सुतवान्थवाः दित मध्यपदलोपिसमासः।

प्रन्यया पितेत्यादितदनन्तरवाक्यस्यसंखग्नता स्थात्।

तथाच जातुकर्णः,—

पितिर प्रोषिते यस्य न वार्त्ता नैव चागति:।

जर्ड पञ्चद्गादर्षात् इता तत् प्रतिक्पकम् ॥ कुर्यात्तस्य च मंस्कारं यथोक्रविधिना ततः। तदानी मेव भवीणि प्रेतकार्याणि मञ्चरेत्॥ धारीतेन तु,- प्रोषितस्तु पिता पुनैः प्रतीच्छो विंग्रतिः समाः। तीर्णः पञ्चद्यादापि पञ्चानातवदाचरेत्॥ द्ति विंग्रतिवर्षपच उक्तः । म पची नाद्रियते दति । विश्वित क्रियस जीवतः तस दैवादागमने, दृश्चमतुः,-जीवन् यदि समागच्छेद् इतकुभी नियोच्य तम्। उद्भाष्ट स्थापयिलास जातकर्मादि कार्येत्॥ दादशाइं वृतं कुर्याचिराचमयवासा तु। बालोदहेत्ततो भार्यामन्यां वा तद्भावतः॥ त्रग्नीनाधाय विधिवद्वात्यस्तोमेन वा यजेत्। तथैवैन्द्राग्निपश्चना गिरिंगला च तच तु॥ रिष्टिमायुषाती कुर्यादिपितां व कत्ंस्तया।

द्दं साग्नेः। निर्मेसु चर्रेव स चैन्द्राग्नेयः। तदुक्तं यञ्चप्राय-यित्ते,—"श्रादिताग्नेः पुरोडाभ एव श्रनादिताग्नेयर्भवति, दति"। पुनरूपनयने वर्ज्याष्ट्राह्म मनुः,—

वपनं नेखलादण्डो भैच्छाचर्या व्रतानि च ।
न वर्त्तन्ते दिजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥
तत्र रहनानूक्षवचनस्थार्थक्रमः कालदर्शकारिकायां स्फुटसुक्तः ।
यदा गच्छेत् पुमान् जीवन् स पैत्येऽधिकसंस्कृतः ।
हतकुमी स्वापयिला तसुदास्य ग्रुभे चणे ॥

संस्तृतं जातकमां श्रेष्यनीतं विधानतः ।
दादशादं चिरावं वा विद्यितोषोषणं व्रतम् ॥
गिरावागत्य पूर्वां वा तदभावे परां स्त्रियम् ।
काद्वन्तं च संस्तुर्यात् चरणायुष्यतेन च ॥
दित कारिकयोः । द्रत्यशौचकारिका ।
प्रय क्रतानशनादिप्रतिज्ञापूर्वकान्तर्जनस्य दैवाच्जीवने ग्रहा-

श्रय कतानग्रनादिप्रतिज्ञापूर्वकान्तर्जेक्षस्य देवाच्जीवने ग्रहा-श्रमं कर्ज्ञकामते प्रायक्षित्तं श्रमग्रमधिकत्य श्राग्नेयवाराइयोः,— कार्येत् श्रीणि कष्क्राणि श्रीणि जान्द्रायणानि वा । जातकर्मादिसंस्कारेः संस्कुर्यात् तं तथा पुनः ॥ श्रतुगमनेऽग्रीषस्य जक्षत्वात् तत्रमङ्गादनुगमनं विचार्यते ।

श्रिप्रवेशं प्रकृत्य व्याषः,—

यदि प्रविष्टो नर्तं यदा पागैः सुदाइणैः ।

संप्राप्तो यातनास्तानं ग्रहीतो यमिकिङ्गरैः ॥

तिष्ठते विवग्रो दीनो वेद्यमानः स्वकर्मभिः ।

व्यालग्राही यथा यासं वसादुद्धरते विसात् ॥

तदद्वर्त्तारमानीय दिवं याति च सा वसात् ।

प्रिक्तरः,— स्ते भर्त्तरि या नारी समारोहेत् इताग्रनम् ।

सार-धतिसमाचारा स्वर्गनोके महीयते ॥

तिस्कोव्योऽर्द्धकोटी च यानि सोमानि मानुषे ।

तावन्यव्दानि सा स्वर्ग रमते चोमया सह ॥

व्यानगाहीत्यादि । तथा,— माहकं पहिकं चैव यच कन्या प्रदीयते । पुनाति चिकुषं नारी भर्तारं यानुगच्छति ॥ तत्र या भर्तृपरमा परा परमलालया ।

क्रीड़ते पितना याईं याविद्द्रायतुर्द्ग्र ॥

ब्रह्मप्तो वा पित्रप्तो वा कतन्नो वापि मानवः।

तं वे पुनाति या नारी रत्याङ्गिरमभाषितम् ॥

याध्वीनामेव नारीणामग्रौ प्रतपनादृते ।

नान्यो धर्मी चि विज्ञेयो स्ते भत्तरि कर्षिचित् ॥

यावन्नाग्रौ दहेत्देषं स्ते पत्यौ पितवता ।

तावन्न सुच्यते नारी स्त्रीग्ररीरात् कथञ्चन ॥

याध्वीनामिति यर्ववर्णमाध्वीनामित्यर्थः।

महाभारते,—

श्राक्तीं सुदिते इष्टा प्रोषिते मिलना ह्या ।

मृते सियेत या पत्यौ मा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता ॥

इति सर्ववर्णभाधारप्येन तस्रवणोक्तेः । तत्र वासापत्यादिस्त्रीणां
नाधिकारः ।

तथाच याप्रपादः,—

न सियेत समं भन्नां ब्राह्मणी ग्रोकमोहिता।
प्रव्रम्यागितमाप्नोति मरणादात्मघातिनी ॥
प्रत्यव,— उपकारं चरेद्भर्नुर्जीवन्ती न तथा स्ता।
करोति ब्राह्मणी श्रेयो भन्नुः ग्रोकवती सती॥
तथा,— स्वैरिणीनाञ्च नारीणां पतितानाञ्च योषिताम्।
नास्ति पत्याग्निसमेगः पतितौ हि तथा हि तौ॥

पितिदिट् खैरिणी नारी नानुगच्छेत् कदाचन ।
वाक्षापत्याख गर्भिण्यो छाष्ट्रहरजभक्षणा ॥
रजखका राजसुते नारोहिन्त चितां ग्रुभे ।
पारस्करः,— वाक्षमंवर्द्धनं त्यह्मा वाक्षापत्या न गच्छित ।
रजखका स्तिका च रचेद्रभंख गर्भिणी ॥
प्रन्यच,— व्रतीयेक्कि उदक्याया स्ते भर्त्तरि वै दिजाः ।
तस्रानुमरणार्थाय स्थापयेदेकराचकम ॥

तथाच,— "रजञ्चतुर्थदिने सहगमनेऽधिकारः" ब्राह्मणस्तीणां पितदिहदाहकास्ते एकचितावेव सहगमनं नान्यचितौ । तच "स्टतानुगमनं नास्ति" दति पैठीनिसवाकां सिखितम् ।

पुनस्तदाकामपि,-

या स्त्री ब्राह्मणजातीया स्टतं पतिमनुष्रजेत् । सा स्त्रगेमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत् ॥

पृथक् चितिमिति उप्रनोवाकामपि लिखितम्। तथाच चित्रयादिस्तीणामेव पतिदाहाननारं यदा कदाचिदपि चिक्रानि गटहीलानुगमनमिति सिद्धं।

तदिधिय बाह्ये,-

देशान्तरगते तिसान् साध्वी तत्पादुकादयम् ।
निधायोरिम तिचित्ता प्रविशेत् जातवेदमम् ॥
यत्तु केश्विदुक्तम्,— "स्रःकामा प्रेयादिति श्रुतेः",
श्रतिप्रदृद्धमांत्रिकामाया<sup>(१)</sup> एव श्रयमनुगमनोपदेश दति

<sup>(</sup>१) खर्गादिकामाया एव।

पुरुषाणामिव स्तीणामणाताहननस्य प्रतिषेधादाताहत्याप्रायश्चित्तं कार्य्यमित्यागिद्धतं, तन्न, स्तीणामनुगमनस्य प्रायश्चित्तत्वात्। तथाच प्रायश्चित्तप्रकर्णे, गारुड़े,—

ब्रह्मप्तं वा कतम् वा महापातकदृषितम् ।
भक्तार्मुद्धरेचारौ प्रविष्टा महपावकम् ॥
एतदेव परं स्त्रीणां प्रायश्चिक्तं विदुर्वृधाः ।
प्रचेताः— वितौ परिष्यच्य विचेतनं पितम्,
प्रयाति या मुञ्चित देष्टमात्मनः ।
कता हि पापं ग्रतकचमयमौ,
पितं ग्रहौला परकोकमाप्नुयात् ॥
मत्यनुगमने त्रात्महत्यादोषाभावः स्फुटमुको ब्राह्मो,—
स्थान्यन्तेदवादात् माध्यौ स्त्रौ न भवेदात्मघातिनौ
सहगमननियुक्तमन्त्रक्तिङ्गादित्यर्थः ।
तथाच मन्तः,—

"द्मा नारीरविधवाः सपत्नीराञ्चनेन सर्पंषा संविधन्तु, श्रनश्रवो<sup>(१)</sup> श्रनमीवाः सुरत्ना श्रारोहन्तु जनयो योनिमग्ने" दति। दमाः नारीः नार्यः श्रविधवाः भर्त्तृवियोगर्हिताः सम्बिधन्तु संगरतां किंविधिष्टाः सपत्नीः पतित्रताः। श्राञ्चनेन श्रञ्चनसंबन्धिना सर्पंषा विधिष्टा दति ग्रेषः क्रताञ्चनादिप्रसाधना दत्यर्थः। श्रनश्रवो श्रकतरोदनाः ग्रोकमोहरहिताः संहष्टा दति यावत्। श्रनभीवाः श्ररोगाः, सुरताः ग्रोभनाभरणाः। किमर्थमारोहन्तु दत्याग्रङ्खाह

<sup>(</sup>१) चनसवो।

त्रग्रेयोनिमुत्तमयोनिं जनयो जनयन्यः त्रारोहन्तु, त्रारोहण-मचानुयानम् । एवं रजखबादियतिरिकानां सर्वामां महमर्णे-ऽधिकारः ।

नन् कार्यकार्णयोः मामानाधिकरणस्य ग्रास्त्रसिद्धलात् कथं पत्नीगतान्गमनेन पतिगतदुरितापूर्वस्य चय इति चेन । पति-पत्थोः महकर्त्तृत्वेन श्रिवाहोचादिसाध्यस्तर्गादिवदुपपत्तेः । श्रार्त्ते-त्यादिवाक्ये पत्यनुकूत्वायाः पतिनतालात् महमर्णे तस्या एवाधि-कारे भिद्धेऽपि,—

श्रवमित च याः पूर्व पितं दुष्टेन चेतमा । वर्त्तन्ते यास मततं भर्त्तृषां प्रतिकू खतः ॥ भर्त्वानुमरणे काले याः कुर्वित्त तथाविधाः । कामात् कोधात् भयान्त्रोद्दात् मर्वाः पूता भवन्युत ॥ श्रादिप्रस्ति या मध्वी भर्त्तुः प्रियपरायणा । कर्द्वे ग्रुक्ति मा नारी भर्त्वानुमरणे गते (१) ॥

दति उत्रमन्द्रश्रवणात् पत्यवमाननकत्त्रांदीनामपि पर्चोक-प्राप्तिः पापचयश्चेति तत्साधक्रलेन चारितार्थ्यमिति। पत्यौ स्टते या स्थिते सा पतित्रतेत्यनेन सहगमनस्य नित्यलाद्रजोगर्भादिना पतित्रताया श्रपि सहगमनाभावेऽपि ब्रह्मचर्य्याचरणास्त्र त्रतचितः।

तथाच विष्णुः,— "मृते भर्त्तरि ब्रह्मचर्यं तदचारोहणं वेति" स्रायन्तरे, मर्वविधवाधर्मानुह्मा,—

एवं धर्मसमायुका विधवापि पतिवता ।

पतिस्रोकमवाप्तोति न भवेत् कापि दुःखिता ॥
तया, — प्रेतक्रत्यं समाप्येव ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ।
प्रवच्यागतिमाप्त्रोति हरिं स्वामिवदाचरेत् ॥
दत्यग्रिप्रवेणविचारः ।

त्रचैतत् प्रामङ्गिकतया मर्वे दाइभेदा किखान्ते। तचादौ
मिनिहितलादग्निप्रवेगदाहिविधिः। नारदः,—

श्रियिषवेशे नारीणां किं कर्त्तव्यं महासुने।
स्नानमङ्गलसंस्कारश्रवणाञ्चनधारणम्॥
मङ्गलञ्च तथा सूवं पादालक्रकसेव च।
शक्ता दानं शियोक्तिश्व प्रशंसासलसेव च॥
नानामङ्गलवाद्यानां श्रवणं गीतकस्य च।

मङ्गलसंस्कारो नूतनवस्तालंकारादिः। दानं ब्राह्मणदीनानाथा-र्थिभाः, प्रियोक्तिः मर्वेच प्रियभाषणम्। प्रशंसामलं गुणैककीर्त्तनपरम्।

स्तं पतिं समाजिङ्ग या विक्तं प्रविविद्यते ।
सा स्नाला पूर्ववत् कला प्रायिश्वतादिकं कमात् ॥
वैतर्णादिदानानि दला पाण्येयकान्यपि ।
नववस्तयुगच्छना गन्धमान्यादिम्हिषता ॥
सिन्दूरकञ्जलोपेता प्रताकासकस्रिषता ।
प्रोकमोद्दादिरिता नानावाद्यरवान्वता ॥
विपन्ति पथि साजादीन् चितायाः सन्निधिङ्गता ।
तत्र प्रेते चितारूढ़े पात्रन्यासे तु साग्निके ॥

श्रामीना प्राङ्मुखी तोयपाचमादाय माचतम् । श्रवेहित्यादिदेवानां वाकामुचार्य पूर्ववत् ॥

मम समर्चृकाया ब्रह्महत्यादिनानाविधपापचयपूर्वकचतुई ग्रे-न्द्रकालावं च्छित्रविशिष्टखर्गप्राप्तये पतिग्ररीरेण सद श्रिमवेश-महं करियो।

> दति सङ्कल्प मन्तेण प्रार्थयेक्जातवेदसम् । लमग्निः सर्वभावज्ञ ऋन्तयारी जगहुरः ॥ कर्मसाची ऋतवदः पावकोऽसि प्रधानतः । यथाइं खं निजं कान्तं मनसा कर्मणा गिरा ॥ . ऋनुरक्ता तथा देव देषि जन्मान्तरे पतिम् ।

"लमग्ने ह्रो ऋसुरो महोदिवस्तं ग्रङ्कोमाहतं एचो द्रैणिवो-तं वातरहणैर्याणिषं गत्यस्तं पूषा विद्धतः श्रामिनुन्ना" (१)।

दति प्रार्थ्य चितामि चिः परिक्रम्य प्रद्विणम् ।

"इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्चनेन सर्पिषा संविधना श्रन-श्रवोऽनमीवाः सुरत्ना श्रारोहन्तु जनयो योनिमये"।

> द्न्द्राद्योऽष्टदिक्पालाः साचिणः सन्तु कर्मणि। दिन्द्रयाणि च भ्तानि मनो भ्तानि पञ्च च॥ प्रत्यागन्तुमना नाकं प्रविभामि इताभनम्। सर्वेन्द्रियाणि द्ञ्ञामि प्रविभाग्यश्मिषद्म्॥ पत्या सहैव यास्थामि स्वर्तीकं पतिदेवता। पतिपावकरूपाय साहेमं मम वियहम्॥

<sup>(</sup>१) ग्रासिनूलना।

द्मं मन्त्रं ममुचार्य्य पावकां प्रविशेत् मती। पतिदिट् खैरिणी नारी नानुगच्छेत् कदाचन ॥ त्रय तखां स्तायान्, पुत्रो मन्त्रमनूहितम्। मकत् पठिला मन्त्रेण्<sup>(१)</sup> जुड्डयादाङतिं दयोः॥ तौ प्रयम्कत्य दम्धयौ प्रथमस्विचिते कते। श्रन्यसर्ववाक्यानि लिखितानि । इति महगमनविधिः(१) ॥ श्रय सूतिर जखलयोदी हे विशेषः। स्नापियता चतुर्चेऽक्कि स्तास्तुमतौं दहेत्। श्रतिकानो तु द्रामे खापियला प्रसृतिकाम्॥ दाइच्छा चेत्तयोर्जाता मध्ये यहदगाहयोः। तदा तामस्प्राचिद्धाः सापियवा घटे जसम्॥ प्रपूर्व पञ्चगर्येन पुष्यिर्भिर्भिमन्त्र तत्। स्वापियला दहेत् कच्छं ततः सुर्य्युः प्रवस्पृत्रः॥ पुषार्चेन्त,- "पावमानीः खत्वयनीः सुदुघाञ्च घतञ्चतः । चिभिः संस्तरमो ब्राह्मणेव्यस्तं हितम्॥ पावमानी दिशत न दमं लोकमथोऽप्यसुम्। कामात् सम्बर्द्धयनु नो देवीदेवैः समाहिताः॥ येन देवाः पवित्राणा श्रात्मानं पुनते मदा। तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुननु माम्॥ प्राजापत्यं पवित्रञ्च शतोद्दामिरएसयम्। तेन ब्रह्मविदो वयं पूतं ब्रह्म पुनीमहे॥

<sup>(</sup>१) तन्त्रेगा। (२) इति अग्निप्रवेशविधः।

दन्द्रः पुनाति यहमा पुनातु

योगः खन्तवरूणः प्रमीत्या।

यमो राजा प्रसूनाभिः पुनातु

मा जातवेदा मोजयन्या पुनातु॥

ख्ययन्त्रमयन्तो (१) मे सर्वं सर्वजिगीयमाः।

तपयन्तपे गीवं पावमानी ऋचोऽत्रवीत्॥

यन्त्रो गर्भे वसतः पापसुयं

यव्यायमानस्य च किञ्चिद्न्यत्।

जातस्य यचापि च वर्द्धतो मे

तत् पावमानीभिरहं पुनामि॥

यदन्तिकाञ्च (१) दूरजा भयं विदन्ति मामिह।

पवमानसु मोऽद्य नः पविचेण विचर्षणाः॥

यः पाता म पुनातु नः। यत्ते पवित्रमर्चिथ्यमग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनीहि नः। यत्ते पवित्रमर्चिवद्ग्ने तेन पुनीहि। ब्रह्म मर्वैः पुनीहि नः। उमाम्यां देवमविताः पवित्रेण मर्वेण च<sup>(२)</sup>। मा पुनीहि विश्वतः। त्रिभिष्टं देव मर्वतो विश्वष्टेः—मोमधामिभः। त्रग्ने ? द्वैः पुनीहि नः। पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनमा धिया।

विश्वदेवा पुनीत मा जातवेदः पुनी हि माम् । हिरण्यवर्णाः ग्रज्यः पावकाः प्रचक्रमु हिंता वन्द्यमापः॥

<sup>(</sup>१) तपसत्ताप।

<sup>(</sup>२) यदन्ति यच दूरचे।

<sup>(</sup>३) सवेन।

गतं पवित्रा वितता हा<sup>(१)</sup> सुनाभिः ला देव सविता पुनातु । हिरण्यवर्णाः ग्रुच्यः पावका यासु जातः कम्मपो या खिन्नः। या अग्निं गभें दिधिरे सुवर्णासासा आपः गं९ स्थोना भवन्तु । यामां राजा वहणो जातिमध्ये मत्यानृते अवपयं जनानाम्। यामां देवादि विक्रण्वन्ति भिचया अन्तरीचे वक्षधा निविष्टाः। या अग्निं गभें दिधिरे सुवर्णासासा आपः गं९ स्थोना भवन्तु । ग्रिवेन वा चनुषा पम्मन्या जिवया तस्रोपसृगन्तु लचन्ते। इत-स्रुतः ग्रुच्यो याः पावकाः तासां आपः गं९ स्थोना भवन्तु । आपोहिष्टेति स्व्त्वयम्,—

वस्त्रान्तरहतं क्वला दाइयेदिधिपूर्वकम् । उदक्यां वा प्रसूतां वा यद्यभौचां दहेन्गृताम् ॥ कच्छ्रमेकं प्रकुर्वीत पञ्चगयेन ग्रध्यति। दाइकत्तां कच्छ्रेकं प्रायश्चित्तं कुर्य्यात्। दति सूतकोदक्यादाइविधिः॥

ंत्रय गिर्भणीदाइविधिः।
गिर्भणाञ्च स्तायाञ्च गर्भजीवनग्रद्भया।
विमोच्च गर्भं दम्धया निचिष्य स्रोतमां परे॥
स्तगर्भभित्रवर्त्ता पतिः कक्कं समाचरेत्।
त्रन्यस्त कक्कंदयं कक्कें दाइवाइवाः॥
निचिष्य गर्भं स्रोतस्यां परे नद्यां परे जनाः॥

पत्यादिना मगोत्रिणा श्रगौतानन्तरं प्रायश्चित्तं कर्त्तथम्। यथाइ विष्णुधर्मात्तरे,—

चतुणीमिव वर्णानां गर्भिणीं प्रेततां गताम्।
दहेत् वहेच यसस्य कयं ग्रुद्धिर्विधीयते॥
भक्तां तस्याः पृथक् कला गर्भस्थोलेखनं स्वयम्।
प्रतेन मधुनाभ्यकं प्रवधर्मेण दाद्यत्॥
प्रावागौचेन भूतेन प्राणायामग्रतेन च।
उपोध्य पञ्चगयञ्च सगर्भाञ्चेव दिचणाम्॥
दला ब्राह्मणमुख्याय ग्रुध्यते नाच संगयः।

ं गर्भभेदकत्ता पितः क्रच्छैकं क्रवा त्रन्यसेत् क्रच्छदयं क्रवा तिह्नं उपोध्य त्रपरिहनप्रभाते प्राणायामग्रतेन पूतः पश्चगय-पानानन्तरं तदङ्गदिचणां मगर्भां गां दत्ता ग्राङ्को भवति । दति गर्भिणीदाइविधिः।

त्रथ त्रनुपनीताविवादितकन्ययोर्दाहविचारः।
स्मिषंस्कारवन्न स्थात् हिरस्थ्यमक्वैविंना।
त्रमंस्कतप्रमीतस्य दाहः कार्य्या निरम्निवत्॥
त्रस्थोदकिक्रया कार्या दम्मपिष्डाञ्च पूरकाः।
विना दमेर्दमदिनेस्त्रिभिवां नास्थिषञ्चयः॥
मद्यःग्रीचे सद्य एव दम्मपिष्डास्यहाग्रुचे।
प्रथमेऽक्ति चयः पिष्डा दितीयेऽक्ति चत्रप्रयम्॥
हतीयेऽक्ति चयः पिष्डाः पचिष्यां प्रथमे चयम्।
दितीयेऽहिन सप्त स्थ्रिति खण्डाग्रुचे विधिः॥

पूर्ववत् कन्यकां दग्या पिता कलोदकिष्ठियाम् ।
विनास्त्रि मिश्चतं दद्यात् द्रप्रपिण्डान् चिभिर्दिनैः ॥
प्रदिवर्षम्यतं ग्रामात् विहः प्रचाच्य वारिणा ।
यमगायां ततो गायन् यमसूक्तमपि स्तरन् ॥
गन्धमान्धौरचङ्गत्य एताकं निखनेद्ववि ।
वने हि काष्ठवत् (१) चिश्वा न कुर्वीतोदकिष्ठियाम् ॥
प्रिप वा दहनं कार्यं पचेऽस्मिन्नुदकियां।
दत्यसंस्त्रतप्रमीतदाहः ।

त्रत्र पुत्रस्य उपनयनकाले प्राप्तेऽयुपनयनाभावे एवं प्रेतकत्य-माचर्यते मंपूर्णागौचञ्च चिभिर्वेति यो विकस्य उक्तः, स चूड़ा-कासानृन्तरं व्रतकासपर्यन्ताभिप्रायकः ; ददानीन्त् ग्रिष्टेरिप चूड़ाकासप्रवेशानन्तरं दाइमाचं क्रियते न पिष्डादिकम्। एवं दुहितुर्विवाहकाले प्राप्ताशौचस्य चिदिनलादेव चिभिर्दिनैः पिष्डा-दिकं कार्यम्। दत्यमंद्धतप्रमीतकत्यम्॥

श्रथ पतितप्रेतकत्यम्

निया मधेन मरणसुहिम्य खात्मघातिनम् । नीलान्यजा विद्यामात् चिपेयुरग्रिचिखले ॥ ऋनुहिम्यात्मदन्तारं पतितं ब्राह्मयकीर्त्तितम् । गङ्गादितीर्थं प्रचिष्य तप्तकच्छं समाचरेत् ॥ कर्त्ता दासीं समाह्रय कुन्नटादन्तवेतनाम् । ऋग्रद्धघटदस्तां चिः प्रबूषात् प्रेतद्वप्तये ॥

3

<sup>(</sup>१) काखवच्चह्यात्।

हे दासि! गच्छ मूखेन तिलानगदाय सलरम्। प्रपूर्य तिस्तोयेन तं घटं द्चिणासुखीम् ॥ मंकीर्त्य पापिनो नाम विनयख जलं पदा। इति संप्रेषिता दासी ब्रह्मइस्रमुकाभिधा॥ तिलोदकं पिवेति दिर्भिधाय घटीजलम्। यतिसं वामपादेन विनयेदगुचिखले॥ ममाप्तेऽब्दे क्रियाकत्ता मृताहे जातिभिः सह। दग्धा पर्णनरं कुर्योद्शाइविहितां क्रियाम्॥ दशाशादतारं यावत् खे खे काले तु घोड़शा। श्राद्धानि कला कुर्यानु नारायणविकं ततः॥ त्रव्यमध्ये यदा चैषामौर्द्धदे हिकमिन्छति । तदा मृताचात्तत् कुर्यात् प्रायिवत्तपुरः सरः। द्र चान्द्रायणं तप्रक्रच्छदयसमन्वितम्॥ प्रत्याचायविधावष्टधेनुदानं प्रकीर्त्तितम् । दाहेऽस्थ्रां दिगुणं कार्यं तदा पर्धेषिते प्रवे॥ त्रभावेऽस्थ्रां (१)पर्णनरदाइयोत्तचतुर्ण्णम् । श्रन्यजाति इतं तुणीं दग्धा क्रलोक्तनिष्कृतिम्॥ मन्त्रवद्दनं कुर्यात्तदिख्यु यथाविधि। सामियेत् पतितः प्रेतस्तद्भिमस् निचिपेत्। पाचाणि दग्धा कुर्वीत प्राग्नकपतितिकियाम्॥ इति पतिनप्रेतक्षयम्।

## त्रथ पर्णमरदाइविधिः।

### इन्दोगपरिजिष्टे,-

त्रस्थामन्ताभे पर्णानि (<sup>१)</sup>मकन्त्रम्थावाता। दाइयेदस्थिमंख्यानि ततःप्रमृति स्तकम्॥ त्राद्यता परिपाव्या। त्रस्थिमंख्यातु षव्याधिकं ग्रतचयम्। तथाचादित्यपुराणे,—

> तदभावे पनाभोत्येः पनैः कार्यः पुमानि । गतैस्तिभिन्तयावद्या गर्पनैर्विधानतः ॥ वेष्टितयस्त्रया यज्ञात् कष्णमारस्य चर्मणा । ऊर्णास्त्रेण वध्वा तु प्रलेप्तयस्त्रया यवैः ॥ सिपष्टैर्जनसंमिन्नैर्द्गधयस्य तथाग्निना ।

[(१)तद्भावे ऋख्यामलाभे सहन्तपलाशपवाणां षशुत्तरविश्वतैः पुरुषप्रतिनिधिं कुर्यात् । तथाच पराश्वरः,—

> श्राहिताग्निर्दिजः किथ्त् प्रवासे कालचोदिते। देशमामद्यनुप्राप्ते तस्याग्निर्वर्त्तते ग्रहे॥ प्रेताग्निहोत्रसंज्ञेयं श्रूयतां सुनिपुङ्गवाः। कृष्णाजिनं समास्तीर्यं कुशैस्त पुरुषाकृतिम्॥ पृलाश्चानां सरमानां विभागं बृहि याज्ञिक।

<sup>(</sup>१) प्रकलानि।

<sup>(</sup>२) [] बन्धनिमध्यगताः पङ्कयः कियति पुक्तके न सन्ति ।

पनारिंग्रज्ञवेन्यूर्ड्वि ग्रीवायाञ्च दंगेव च ॥

उरिश्व चिंग्रतं दशादुदरे विंग्रतिस्तथा ।

वाक्रोस्वैव ग्रतं दशादृष्टु सिषु दग्नैव तु ॥

पड्वै दृषणयोर्दशादृष्टाद्धें मेळू एव च ।

उर्वेश्वेव ग्रतं दशान्तिंग्रतं जानुजङ्गयोः ॥

पादाङ्गु सिषु दग्न च यज्ञपाचं ततोन्यसेत् ।

कर्णासूचेण वध्वा तु प्रसिष्य च तथा यवैः ॥

प्रिष्टिर्जन्नसंमिन्नदेर्भ्यय्च तथाग्निना ।]

त्रमौ स्वर्गाय स्रोकाय स्वाहेत्युक्ता स्ववान्धवैः ॥

एवं पर्णनरं दम्स्वा चिराचमग्रु चिर्भवेत् ॥

त्रयं दाइः साग्निन्श्रिमाधारणः। "गतस्य न भवेदात्तां" दत्यादिवचनमध्ये तथा निणीतलात्। एवं पर्णनरं संपाद्य पूर्ववद्ध-स्तोद्रे (१) चन्दनादिवस्त्रयज्ञोपवीतमास्त्रष्टतादि दला त्राञ्चेन त्रण-मादाय प्रदक्षिणं कला मुखाग्निमन्त्रेण त्रपमयस्त्रमग्निं प्रिरःस्त्राने निरग्ने देशात्। चिभिरश्रत्यपचैर्दर्भचयेण प्रताक्तेन श्रग्निं प्रज्ञास्य ग्रिरःस्त्राने दशात्। एवं दाहे कते त्रयणीमुदकधारां परितो दशात्। साग्निकानामन्यत् पाचासादनादिकं सवं वस्त्रमाणा-हिताग्निविधना सुर्यात्। एतसिक्त्रभौचे चिदिनाभौचवत् पिण्डव्यवस्त्रा,

प्रथमे दिवसे देयास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः। दितीये चतुरो दद्यादस्त्रिमञ्चयनं तथा॥

<sup>(</sup>१) इत्तदये।

# चीन् प्रदद्यात् वतीयेऽिक वस्तादिचालनं तथा। दति पर्णनरदाद्विधिः।

#### श्रथ निरग्निदाइ:।

तवादी ग्रहाभ्यन्तरस्रतस्य विशेषः। यदि ग्रहाभ्यन्तरे दुर्वलस्य प्राणा गतास्तदा बान्धवैर्ग्रहात् शीघं ब्राह्मणानग्निञ्च पुरस्कृत्य धान्यपिधानमन्नपिधानं नवकपदीञ्च ग्रहीला शवो विह्नियः। समाचारादर्द्धमार्गे शनैः शनैर्गला श्रव्नपिधानादिकं प्रचेष्ठ्यं ततो जलाशये कर्त्त्वस्,

यच देशे जलं नास्ति मरमी वा न विद्यते। नदीनाञ्च कथा कार्या वक्तव्यं वा हिमं हिमम्॥

तद्ग्रहस्तिभुकाभुक्तमर्वम् नायभाष्डानि त्यजेत्। इति विश्वेषः। दाहार्थं स्णकाष्टादीनि मर्वथा श्रद्भद्वारा न नेतव्यानि, प्रमादात् श्रद्भदारा नयने तत्कालं बाह्यणैर्नेयम्। "क्षेत्रायुवान्धवेर्मुकं" दत्यादिस्मृतेः, मर्वथा रोदनं कार्य्यम्। पुत्रादिबाह्यणदारा निर्या-सप्रधानवनस्पतिवटश्वचोदुम्बराणामन्यतमस्य निर्यासमानीय चन्दना-गृहकपूरम्मद्रजातिकलानि पिद्वा मित्रीक्तत्य ग्रवस्य समीपे कला म्हळालेन संगोधयेत्। ततः स्नाला स्ततेलाभ्यां स्थापित-निर्यासगन्धस्तिताभ्यां ग्रवसभ्यञ्च जलसमीपं नयेत्।

तत्र कुणानासीर्थ दिचणिणारमं ममाचारादुत्तरिणारमं वा उत्तानदेषं स्थापयिलाः

> ॐ गयादीनि च तीर्थानि ये च पुष्णाः शिकोचयाः। कुरुवेचञ्च गङ्गा च यमुना च मरिदरा॥

कौ शिकी चन्द्रभागा च सर्वपापप्रणाशिनी।
भद्रा च काशी सरजूर्गण्डकी पद्मगा तथा॥
भैरवञ्च वराइञ्च तौथं पिष्डारकं तथा।
पृथियां यानि तौर्थानि चलारः सागरास्तथा॥

इति पठिला मनसा तानि तीर्थानि धाला गन्धमाखौरलङ्गल नासिकादयचचुर्दयकर्णदयेषु सप्तच्चिद्रेषु सप्तचिर्षात्रकाका (१)नि चिष्ठा वस्त्रेणाच्छादा कोलाइसवादं(१) समादा त्रामपानेणासमा-दाय श्रिप्रदः मरं प्रेतमनुगम्याई पर्ये ई सुत्स्च्य सागानं गला पुत्रादिः यापाने त्रामीनो दिचलामुखः मयं जानाकुद्य रेखाकरणावनेजनकुगास्तरणपिण्डदानप्रत्यवनेजनजलाञ्चलीन् नाम-गोचाभ्यां कुर्यात्। ततः क्रियाकक्तां स्नाला ब्राह्मणदारा दाहमञ्चयं मणाद्य ममे भूमिप्रदेशे वक्तकारणे दुर्वादिकसुत्याच्य गोमयेनोपिक्ते प्राचीनावीती द्विणासुखः सयं जानाचा कुप्रगोसयकुष्रोद्कपाच-(श-यामादिपरिममूहनादौन् पञ्चभूमंस्कारान् मक्षत् कला श्रग्निमुप-ममाधायाग्नेर्दे चिण्भागे चन्दनादिसुगन्धिकाष्ठेन चितां रचयिला ममाचाराचतुर्भिः सइ प्रवं ग्रहीला वार्चयमग्निं प्रद्विणीकत्य नामोचार्यं वारचयमाह्य चितायां कुणानासीर्यं उत्तानं द्विण-ग्रिर्ममुत्तरिंगरमं वा निपात्य ज्वलमानमग्निं क्रवा,

> ॐ क्रवा तु दुष्कृतं कर्म जानता वायजानता। स्तत्युकालवर्गं प्राप्य नरं पञ्चलमागतम्॥

<sup>(</sup>१) हिरखायक जम्।

<sup>(</sup>२) कोलाइवाद्यम्।

<sup>(</sup>३) ॰पात्राखासादा।

धर्माधर्मसमायुकं लोभमोइसमायुतम्।

देश्यं मर्वगात्राणि दिव्यान् स्रोकान् स गच्छत् खादा॥
दिख्यका ग्रीप्रमिन्नं प्रदिख्णिकत्य ज्वसमानमिन्नं ग्रिरःखाने
प्रामीनो द्धात्। ग्रवसम्बन्धपरिधानोत्तरीयव्यतिरिक्तं वस्तं
खद्वादिस्तितं एकदेगं वा प्रागानवासिभ्यञ्चाण्डालेभ्यो द्धात्।
साधु दग्धा ज्वस्तिकाष्ठचयद्ग्धव्यस्य ग्रवस्य किञ्चिदविग्रष्टमवस्त्राप्य
दाहकैः सह प्रादेशप्रमाणानि सप्तकाष्टानि ग्रहीवा चितायां सप्तप्रदिख्णानि कता प्रत्येकं तानि प्रचिष्य कुठारेणोत्मुकोपरि सप्तप्रहारान् इता "क्रवादाय तुभ्यं नमः" दति सप्तक्रतः पठिला
सव्यमाद्यय पुनादिदाहकाञ्च सर्वे चितां प्रथन्तः पद्भिक्रमेण,—

श्रहरहनीयमानोऽपि गामश्रं पुरुषं पश्र्न्। वैवस्ततो न त्रयति सुराप दव दुर्भतिः॥

द्रति यमगायां यमसूत्रञ्च पठन्तो वालानयतः कला जना-प्रयान्तं गच्छेयुः।

## इति निरमिदाहः।

## त्रय नेवलसार्ताग्रिमहारः।

प्राजाग्नी चर्ममगोचेण अपियता प्राजाग्निं सार्त्तपाचाणि चर्ह च प्रथक् प्रवं च प्रकटे मंखाय "अपेत, दत्यध्यायं जपन् दिचणां दिशं गच्छन्(१) अर्द्धपये चरोरईं दला स्मागने प्रेषं पिण्डं दद्यात्। परिसमूद्दनादिमंस्कृतस्मौ विक्तं निधाय चितां विरचय्य पूर्व्वत् प्रवं खानादिभिः संस्कृत्य,

<sup>(</sup>१) गच्छेत्।

चितौ प्राग्गीवमजिनमासौर्थोत्तरसोमकं।
तत्र प्राक्षिप्रसं प्रेतं निधायोत्तानप्रायिनं॥
हिरण्याकलान्यस्य मुखे नामिकयोर्दृग्रोः।
कर्णयोश्च विनिचिष्य मष्टतामुरिम सुनं॥
सुवं नामिकयोः मान्यं चमसं प्रिरसोऽन्तिकं।
पार्श्वयोः सूर्गमकले(१) मुष्कयोररिणद्वयं॥
दिख्णे च करे वज्रम्वीर्मध्ये उन्तृस्तं।
फर्वश्चौ मुष्तं चाच मन्तं चापि विनिचिपेत्॥
महम्मयान्यप् निचिष्य श्वसिं द्द्याद्दिजातये।

चितिमधे मादयिता दिषणामुखः सर्वं जान्याचा एताकां कुप्रमुष्टिं,

त्रसात् लमधिजातोऽसि लद्यं जायते पुनः ।

"त्रमौ खर्गाय सोकाय खाद्दा" दत्युक्ता जुड्डयात् । ग्रेषं च
पूर्ववत् सार्त्ताग्रिकच्दोगपत्यासु निरग्नेरिव "कला तु दुष्कृतं
कर्म" दत्यनेन वराइपुराणोक्रमन्त्रेण दादः ॥

दति सार्त्ताग्रिमहारः।

#### श्रय साग्निकदाइ: ।

तच विशेषः । सायमाज्ञत्यां ज्ञतायां प्रातराज्ञतेः प्राक् यजमानस्टितिशङ्कायां तदैव प्रातराज्ञतिर्देया । तस्य होमस्य सायमादिप्रातरपवर्गलेन एककर्मणोऽविशिष्टलात् । जीवेत चेद्यज-मानः पुन निप्रातहोंमं कुर्यात् । अग्निहोचमध्ये हिवर्षहणादि

<sup>(</sup>१) स्पंध्रकते।

प्रागासादानाचेनार्णग्रङ्का, तदा इविषो गाईपत्ये दाइः। श्रासना-दूर्झें चेदाइवनीये दाइ:। श्रारअपदार्थे चेन्मृतिसादा स पदार्थः ममायः। एवं क्रते पौर्णमास्यां दर्शात् पूर्वं मर्णग्रद्धा तदैव पिण्ड-पिव्यज्ञरिकतां दर्गेष्टिं सुर्यात्। पौर्णमास्यदिदर्गान्तवादिष्टेः। दयमन्येष्टिरित्युचाते, एवं प्रारभ्यातुर्मास्यस्य सुनासिर्ौयानां ममापनं, यदि माङ्गप्रधानं कर्त्तुमसमर्थस्तदा चतुर्ग्रहीतेनाच्येन पुरोऽनुवाकायाञ्चाभ्यां प्रधानयागाः कार्याः, नायनयोः करण-पचस्थानादृतलात्, तर्देककरणविचारो न जिख्यते, एकस्वैव ममाचारात् । दुर्वसस्य यजमानस्य गाईपत्यपुरसात् स्थापनमुचित-मपि नानाग्रद्भया न कियते तथा करु ते। मरणानन्तरं पुत्रः स्नाला प्राचीनावीतौ दिचिणामुखः सक्तत् सक्तत् परिसमूहनादि-पञ्चभ्रमंस्कारान् कला श्राइवनीयद्विणाग्री उद्घ्या गंस्थनर्या-धायोषु करीषचूर्णगास्मलीद्रलषणादिगभांस्तिस्रो उखा ऋधि-श्रित्य तावत् संताष्येत्, यावत्तास्वग्निस्त्पचेतः।

श्रावसको श्रन्यगोत्रेण चर्मिधश्रयेत्। ततो स्तदेहं पूर्ववत् संखाण नववस्तं परिधाण यद्योपवीतं दत्ना श्रन्नद्वारिकङ्गत्य सगन्धिद्रवेरिपन्थिण प्रकटे निवेश्व सन्तापजानग्नीन् उखास्त्रान् पृथक् श्रमन्तापजौ पात्रस्त्रो सभ्योपासनाग्नी पृषदाच्यमाच्यं कुगांस्तिकान् सर्वाणि च श्रौतसात्तंयद्यपात्राणि सप्त हिरस्त्रप्रक्रकानि नापि चुरकाष्ठादिसर्वसुपयुक्तं प्रकटे तस्मिन्नादाय घरं तु श्रमगोत्रेण ग्राह्मिता तं प्रकटं दक्षिणां नयनाः।

सपिष्डाः,- ऋइरहनीयमानोऽपि गामश्चं पुरुषं पग्रः।

वैवखतो न ह्यपति सुरापं दव दुर्मतिः॥ यमाय लाङ्गिरस्पते<sup>(१)</sup> पिह्नमते स्वादा ।

दित च। त्रपेताधायं च्यवेदप्रसिद्धं यमसूतं च पठनोऽनुगच्हेयुः। त्रग्नीनां यथा निर्वापो न भवेत्तथा रचेयुः। यदि
नद्यादौ स्रतिः, तदा प्राग्नतेन विधिना प्रकटेन दाइदेगं प्रति
नयेयुः। तत त्रावसयाग्निं चरोर्द्धमागं त्रचं द्यात् ततो नद्यादिसमीपे ग्रचौ हणवज्जले उद्भृतचीरिण सतौषधिकदुर्वामुन्जायगन्धापृत्रिपणीसावपणीविष्णाखानुणिकाध्यष्ठातके देगे पञ्चस्रसंस्कृतं कता गाईपत्यं संस्थाय ततः त्रष्टप्रकसे पञ्चस्रसंस्कारपूर्वकं
त्राच्यनीयं द्विणाग्निं हतीये द्विणाग्निं स्थापयेत्। सभ्यावसय्ययोरीग्रान्यां निधानं। तथा च साव्यायनः (१)- 'सभ्यावसय्यावाहिताग्नेदेश्वनकर्म न प्रयुक्येत' ।

दिति, चितादेशात् प्रागृदिचां दिशि पञ्च प्रक्रमानातिकम्योत्स्कृतीति। ततो नर्यश्रांस्थान्तरा काष्ठानुचितिं कला प्रेतस्थ केशस्कृत्यान्यच्चेदनं कला दच्चयातोद्धरणेन तं विपूरिषं कला प्रचाच्य
सर्पिषान्तरभ्यच्य पुरीषकेशादीनि निखनेत्। ततसं पूर्ववन्नववस्त्रादिभिरसङ्ख्य प्राग्यीवं क्रच्णाजिनमास्तीर्यास्मिन् प्रेतं प्राक्श्रिरसमुत्तानं निवेशयेत्। ततः सप्त हिरच्यश्रकचानि स्वनामिकादयदृग्दयकणदयेषु निचिष्य स्तदेहे श्रौतानि यज्ञपाचाणि उत्तानानि कला सादयेत्।

<sup>(</sup>१) चाङ्गिरस्रते।

<sup>(</sup>२) भाशायनः।

<sup>(</sup>३) ग्रालाकाः।

तद्यथा,—

हतपूर्णं जुई दिचणकरे, करस्यपुष्करामनुवाइद्र हिका-मुप<sup>(१)</sup> इतं वामकरे। उरिम प्रत्यक्दण्डां ध्रुवां। वामनामिकायाः<sup>(१)</sup> प्रत्यक्दण्डं वैकंकतं सुवं। कर्णयोः प्रत्यक्दण्डे प्राधिच<sup>(२)</sup> इरिण । णिरिम प्रणीतां। स्वर्गे<sup>(४)</sup> दिधा कला पार्श्वयोः। उदरे पृषदाच्य-पूर्णं प्रत्यग्दण्डामिकापाचें। णिश्ने भ्रम्यां तृषण्योरर्णी। वज्ञा-भिद्योचहरणीखादिरस्रुवाणां श्राइत्यर्थे स्थापनं।

श्रविष्ठानां दार्वपात्राणां उर्वीर्मध्ये सादनं स्नायासमय-पात्राणां कपालानां च श्रमु निचेपः। श्रयोमयानां ब्राह्मणाय दानं, स्मार्त्तपात्राणामपि स्मार्त्ताद्रिमत द्वामादनं, दाइस तेनाभ्रिनेव। ततो दिचिणतोऽग्निमिरादीपनं चितायाः। तत श्राज्यस्थाली कुशाः स्ववं सुक् श्राज्यमिति एतानुपकस्य श्राज्यस्थाल्यामाल्यं निरूप्य गार्हपत्ये श्रधिश्रित्य खादिरस्वाभिहोत्तहवणौ संस्व्याज्यसुद्रास्य कुगैहत्यूयावेत्त्य्य(ध)सुवेण मक्षद्रृहीलाऽभिहोत्तहवणुपिर सिमधं दत्त्वा वज्रोपग्रह श्राहवनीये समिधं दत्ता दिचणामुखः प्राचीनावीती सर्यं जान्वाच्य प्रेतमुखसंलग्ने वक्षावाद्धतिं जुड्यात्।

तद्यथा,-

श्रसातमित्यस्य मन्त्रस्य । श्रादित्य स्विः । गायश्रा निरुन्ति-म्क्न्दः । श्रिग्निर्देवता । श्रस्नातमधिजातोऽमि इति मन्त्रेण होम इति । इदमग्रये इति त्यागः ।

<sup>(</sup>१) उपस्तं।

<sup>(</sup>२) वामनासिकायां।

<sup>(</sup>३) प्राणित।

<sup>(</sup>८) स्पें।

<sup>(</sup>प) च।

त्रसालम्

श्रसालमन्त्रेणामाविति प्रथमास्रा पत्था श्रपि स्त्रीसीङ्गानूहेनैव होमः। ग्रवं रही कला प्रागयं वज्रद्चिणहस्ते। प्रत्यगद्खामग्रि-होनहवणीं मुखे प्रत्यग्दण्डं खादिरस्वं दिवणनामायां।

> एवसेषोऽग्रिमान् यज्ञपाधा<sup>(१)</sup>युधसमन्वितः। शोकानन्दानतिकस्य परं ब्रह्म स विन्दति॥

एवं ऋदिताग्निजीवद्गर्मुका पत्नी यदि सियेत, तदा चौर-रिहतः सर्वे विधिः कार्यः। पाहिताग्योर्दमस्योरेकस्यादौ मर्णे त्रपर्सार्यन्तरं निर्माय पानैदीं कार्यः।

किन्तु पत्था श्रादी मरणे पुमान् पत्थनारं उदाच्चाग्रिकोचं यदि कुर्यात्तस्य मपाचकदारः पूर्वत् स्थात्<sup>(१)</sup>।

श्रथ दाइकाले श्रम्युपप्रमे दाइविधिः।

यदि विक्रिविंनग्रेत दश्चमानेऽग्निषीचिण । दम्धावित्रिष्टारिषकविक्रना तं पुनर्दे हेत्॥ सकतार िकामें तु भवमेषं जले चिपेत्॥(२)

त्रथ विदेशस्तमाग्रिशवसा<sup>(8)</sup>नयनाशको तचैव महं(१) हला त्रिस्य त्रानीय पुनः मपाचकतयाऽस्थिदाइः कार्यः। तथा च परागरः,-

ग्रवसानयनागकौ तदसीनि समाहरेत्।

<sup>(</sup>१) भा।

<sup>(</sup>२, इत्याहितायिदाहः।

<sup>(</sup>३) इत्वमुगगमनिधिः। (४) चय विदेशस्तसाधिकदाइः।

<sup>(</sup>४) दाई।

सामानभूमी चेताग्रीन् विद्या रचये चिताम् ॥
त्रास्तीर्यं क्रण्यमिनिनं तदस्थीनि पुमाकतिम् ।
निर्मायाज्येन चाम्यज्य मादयेदुन्नयेत् पुनः ॥
यज्ञपाचाणि विन्यस्य दहेदा क्रतिपूर्वकम् ।
ग्रेषं भवें माग्निकदाहे जन्नम् ।

द्रत्यसिदाइः॥

य च माग्रिकसैवेति पूर्वमुक्तम्।

• श्रथोत्सनाग्निदाष्टः । अक्कसाग्निर्दिविधः । मार्णिपाचको-ऽरक्षादिरिहतस्रेति, तत्र मपाचपचो मर्णानन्तरं प्तः प्राचीना-वीती दिखणामुखो पश्चभूसंस्कारान् पूर्ववळाला तत्र पूर्वार्णी स्वापयिला श्रग्निं मन्यौयात् ।

तच मन्तः,—

"येऽस्वाग्रये जुइतो माएं मकामाः मंकल्ययने यजमान माएं मंजायन्त ते हिवये मादनाय खर्गकोकं प्रेतिममं नयन्तु" दति । मियता ह्यणीं गाईपत्यं मंखाण त्राहवनीयदिविणाम्योः पश्चभ्रमंस्कारपूर्वकं ह्यणीं विहरणम् । तत त्राज्यस्वाकी, कुणाः, सुवः, सुक्, एका मित्, त्राज्यं चेत्यामाद्य स्वात्यां तदभावे प्रराव्यादिपाचे त्राज्यं निह्य गाईपत्ये त्रधित्रित्य कुणैः सुवस्रक्-मंमार्जनं त्राज्यकोत्पवनावेचणं च कला सुचि दिधा हताइतिं कला त्राहवनीये प्रजापतिं ध्याला खाहेति सुचा जुइयात् । ततो गाईपत्याहवनीयदिवणाग्निषु ग्रष्ककरीयवृणह्मवणादिगर्भास्तिसः खवा त्रधित्रित्य यावक्तास्वग्निक्त्यद्येत तावत् मन्तापयेत् । ततः मंस्कारपूर्वकं सात्तांग्निं मिथलाऽग्निं भंपाद्य स्वापियला तेनाग्निनां श्रमगोचेण चर्तं मंपादयेत्। ततो म्हतदेष्ठं मंस्वाप्य गन्धादिनां मंस्कृत्य नववस्तं परिधाय प्रकटे निवेष्य तान् मन्तापजानग्नीन्, मर्वयज्ञपाचाणि कुप्रतिलादिमप्रस्वर्णप्रकलानि<sup>(१)</sup> च स्वापियला दाष्ट्रेगं नयेत्। श्रमगोचः सार्त्ताग्निं पक्षचरं ग्रहीला पुरतो गच्चेत् प्रमनात् प्राक्।

श्रहरहर्नीयमानोऽि गामश्रं पुरुषं पश्चम्। वैवखतो न व्ययति सुराप दव दुर्मतिः॥

"यमाय लाङ्गिर्साते पित्नमते खाहा" दत्यादि पूर्ववत् पिठला,—
भर्वे अनुगच्छेयुः । तसाचरोः पथार्ड्डपथान्नदानं प्रकृतवत् ।

भूसंस्कारपूर्वेकं चितिं कृत्वा प्राक्तिरसं दिचणादिपूर्वेकं प्रकृतवत्
स्थापियता सुखनामादयचनुर्देश्यकणद्वयेषु खर्णप्रकृतानि दला

अरण्यादिखापनपूर्वेकं पाचदानं प्रकृतवत् कुर्यात् । दिचणतोऽग्निभिरादीपनं चितायां अग्नीनां तच स्थापनम् । आञ्चं पूर्णा
इतिवत् संस्तृत्य चतुर्यदेशैतं कृत्वा अपस्थो दिचणासुखो वारयतः

सथं जान्वाच्य । अस्मालिमित्यस्य मन्त्रस्य, आदित्य ऋषिः, गायद्याः

निक्तिन्दन्दः, अग्निर्देवता, होसे विनियोगः ।

श्रसालमधिजातोऽसि यदयं जायतां पुनः। श्रमी स्वर्गाय स्नोकाय स्नाहा। इति मन्त्रेण द्विण्देशे जुड्डयात् "इदमग्रये" इति त्यागः। श्रन्यत् सर्वे प्रकृतवत्।

<sup>(</sup>१) ग्रानाकाः।

त्रराष्ट्रादिरहितलपचे तु नवीनारणिद्धयं सुवसुची च संपाद्य तेनाऽग्रिना पूर्ववत् मर्वे कुर्यात् । इति विभेषः ।

दत्युत्सनाग्निदाइः।

श्रथ पुष्करेषु दाइ:,—

भद्रातिथौ पापवारे चिपादर्चे यदा स्टितः।
तदा चितौ ग्रवारोपे कते कुर्यादिमं विधिम्॥
कुग्नैः प्रतिकृतिं कला स्तौ चिचयवप्रयोः।
वैग्रस्य पिष्टैः शृद्धस्य गोमयेनाकृतिं तथा॥
संयोज्य मध्दध्याज्यैः ग्रवेन सह दाहयेत्।
चिप्रस्तरे दे संयुक्ते दहेदेकादिपुष्करे॥

द्ति 'पुष्करदाइः।

एतत् ग्रान्तिरेकादगाहे वच्छते । त्रथ कियाकर्त्तुविचारः ।

मनु मरीची,—

स्ते पितिर पुनेण किया कार्या विधानतः।

बह्दः सुर्यदा पुनाः पितुरेक नवािमनः॥

सर्वेषान्तु मितं कत्वा ज्येष्ठेनैव तु यस्ततम्।

द्रेश्येण चािवभक्तेन सर्वेरेव कतं भवेत्॥

ज्ञाषुहारीतः,— सिप्छीकर्णं यावत् प्रेतश्राद्धानि षोड्गा।

पृथक् नैव सुताः कुर्युः पृथक्द्रया श्रिप किचित्॥

मरीचिः,— नवश्राद्धं सिप्छञ्च श्राद्धान्यपि च षोड्गा।

एकेनैव च कर्त्त्यं संविभक्षधनेस्विषि॥

एतेन सर्वपुत्राणां विभक्तानामविभक्तानाञ्च मध्ये ज्येष्ठेनैव कार्यम् । दैवात्तदभावेऽन्यपुत्रस्थाधिकारः । तत्रापि विशेषः,—

दादग्रविधेषु पुचेषु विद्यमानेषु श्रीरमः कनिष्ठोऽपि कुर्यात्। श्रीरमपुचिकापुचचेचलगूदलकानीनपौनर्भवदत्तकीतक्ततकस्वयंदत्त-महोदापविद्वान् दादग्र पुचानुक्का "पिष्डहरस्रीषां पूर्वाभावे परः परः" दति याचनस्काकेः।

दैवात् पुचाभावे, त्राग्नेयदारीत स्ट्रह्योः,—
त्रमगोचोऽष्यमंबद्धः प्रेताग्निं प्रद्दाति यः।
उदकं पिण्डदानञ्च स दग्नादं समापयेत्॥
बाह्मे,— त्रमगोचः सगोचो वा स्त्री दद्याद्यदि वा पुमान्।
प्रथमेऽहनि यो द्यात् स दग्नादं समापयेत्॥
विष्णुपुराणेऽधिकारिणः,—

पुतः पोतः प्रपोत्तो वा तददा श्राहसन्तिः।

सपिण्डमन्तिवांपि क्रियाद्दी नृप जायते॥

तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्तिः।

माहपत्रस्य पिण्डेन संबद्घो योजनेन च॥

कुलदयेऽपि चोत्सन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप।
संघातान्तर्गतैर्वापि कार्या प्रेतस्य सिक्तया॥

डत्सन्नवन्धुरिच्छव्दा कारयेदवनीपितः।

पूर्वाः क्रिया मध्यमास्र तथा चैवोत्तरिक्रयाः॥

विप्रकाराः क्रिया स्रोतास्तेषां भेदान् प्रहणुस्त मे।

श्रादाहाब्दायां युधादिसा ग्रांचना य याः क्रियाः ॥
ताः पूर्वा मध्यमा मासि मास्त्रेकोद्दिष्टमं जिताः ।
प्रेते पित्रलमापन्ने सपिण्डीकरणादनु ॥
क्रियन्ते याः क्रियाः पिश्राः प्रोच्चन्ते ताः नृपोत्तराः ।
पित्रमात्र पिण्डीमु समानम सिलेस्या ॥
तस्म ज्ञान्नर्गतिर्वापि राज्ञा वा धनहारिणा ।
पूर्वा क्रियामु कर्त्तव्याः पुत्राचैरेव चोत्तराः ॥
दौहिनैर्वा नृपश्रेष्ठ कार्य्यास्तन्तनयैस्तया ।

श्रव कत्त्रतर्काराः, माह्यपचस्य पिण्डेन संबद्घो माहसपिण्डः।
माह्यपचस्य जलेन संबद्घो माहसमानोदकः। जल्ला बन्धवो यस्य
स तया, तस्य रिक्याद्धनात् तस्य क्रिया, श्रन्तो मरणं तत्र भवाः।
मासि मामीति एकाद्माहादिसपिण्डीकरणान्तपूर्विक्रयोपचचणम्।
तत्र च पिह्माह्यपिण्डाः पूर्विक्रयामेव कुर्धुनीन्तराः। मध्यमक्रियायां ह्येतेषामनियमः। उत्तरिक्रयायान्तु पुत्रा वा भ्राहसन्तितपर्यान्ताः। दौहिनैस्तन्तनथैरिति पुत्रिकापुत्रविषयम्।
तत श्रपुत्रविमाहित्रविधिक्रियायां स्वमाहकर्मणि द्रव सपत्नीपुत्रस्वाधिकारः।

वक्रीन। सेकपत्नीनां यद्येका पुचिणी भवेत्। सर्वास्त्रेनैव पुचेण प्राह पुचवती सनुः॥

दति मनूकोः । सर्वाभावे संघातान्तर्गतानां राजनियुकानां येषां केषाश्चिदणधिकारः ।

गुरः करोति शिष्याणां पिण्डनिर्वपणं मदा।

क्रला तु पैद्यकं ग्रीचं खजातिविहितं च यत्॥ भातुर्भाता खयं चने तद्भार्या चेन विद्यते। तस्य आतुः सुतश्चके यस्य नास्ति महोदरः॥ दत्तानामणदत्तानां कन्यानां कुरुतेऽपि वा(१)। चतुर्चेऽहिन तास्तेषां कुर्वीरन् सुममाहिताः॥ मातामहानां दौहियाः कुर्वनयहनि चापरे। तेऽपि तेषां प्रकुर्वन्ति दितीयेऽइनि सर्वदा॥ जामातः यशुराखनुस्तेषां तेऽपि च संयताः। मिचाणां तद्पत्यानां श्रोत्रियाणां गुरोस्तया॥ भागिनेयसुतानाञ्च सर्वेषां लपरेऽइनि । याद्धं कार्यन् प्रथमं स्नाला कला जलकियाम्॥ राजि महते मिपा तु निरपत्ये पुरोहितः। मन्त्रं वा तदगौचन्तु चिला<sup>(१)</sup> पद्यात् करोति सः॥ ब्राह्मणस्वन्यवर्णानां न करोति कदाचन। कामासोभाद्मयाचो हालाला तन्नातितां व्रजेत्॥ पुचाः कुर्वन्ति विप्राय चचविट्शूद्रयोनयः। स ताष्ट्रग्रेभ्यः पुत्रेभ्यो न करोति कदाचन॥ खमाता कुर्ते तेषां तेऽपि तसाय कुर्वते। मास्ये, — भाता वा भाद्यपुचय भागिनेयोऽय विट्पति:। दौहिनसैन भिष्यस पड़ेते पिष्डदाः सृताः॥ च्यारङ्गः, पुत्रो भाता पिता वापि मातुलो गुर्देव च।

एते पिष्डप्रदा जियाः मगोचार्येव बान्धवाः ॥

एतद्त्यन्तामभवविषयम् ।

मभवे तु इन्दोगपरिणिष्टे,—

तथा,— कुर्यादनुपनीतोऽपि श्राह्ममेकोऽपि यः सुतः ।

पित्रयज्ञाङ्गतिं पाणी जुङ्गयान्त्रनपूर्वकम् ॥

न पुत्रस्य पिता दद्यान्तानुजस्य तथागजः ।

न जायायाः पितः कुर्यादपुत्राया श्रिप क्वित् ॥

मार्कण्डेये,— मर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तृणाममन्त्रकम् ।

तदभावे च नृपितः कार्यत् स्त्रकुटुम्बवत् ॥

तथा स्तीणामण्येवमेवैतदिति। धर्वाभावे स्तिय इति पत्नीयितिरिक्तावरद्वादिस्तीविषयम्। भातुर्भातेति वाक्ये प्रवांगेव
पत्यधिकारदर्भनात्। स्तीणामण्येवमिति यादृभेन सम्बन्धेन पित्यादीनां पुरुषाणां एकादभाहादि, तादृभेन सम्बन्धेन स्तीणामिप
कार्य्यमिति। श्राचारसु सगोचादिसद्वावे पत्नी नैव करोति,
"सर्वाभावे" इति मार्कण्डयोक्तः। स्तीणामिप यचमन्त्रवत्सुर्यादिति विधिस्तच मन्त्रपाठे दोषाभाव इति श्रौर्द्वदेशिके
मन्त्रवत् पाठोऽण्यविरुद्ध इति पूर्वं नीर्णीतम्। परन्तु केषाञ्चिस्त्रूद्राणां ग्रहे विवाहितस्तीणां श्राद्वादिकर्त्तृत्वसमाचारो दृश्यते,
सोऽपि युक्तः।

मजातीयैर्नरैः सम्यक् दाहाद्याः सकताः क्रियाः।

पितः पुत्रेण कर्त्ताचाः पिण्डदानोदकिकयाः। तद्भावे तु पत्नी स्थान्तद्भावे तु सोदरः॥ दति ब्राह्मोक्तेः। ऋष्यग्रङ्गोक्तौ बान्धवा दति बद्धवचनोक्ते-स्तिविधा श्रयधिकार्णः। ते च कन्दोगपरिशिष्टे,—

त्रात्ममातुः खसुः पुत्रा त्रात्मितिः खसुः सुताः । त्रात्ममातुत्तपुत्राञ्च विज्ञेया त्रात्मबान्धवाः ॥ पितुः पितुः खसुः पुत्रा पित्मात्स्खसुः सुताः । पित्मातुत्तपुत्राञ्च विज्ञेया पित्वबान्धवाः ॥ मातुर्मातुः खसुः पुत्रा मातुः पितुः खसुः सुताः । मातुर्मातुत्तपुत्राञ्च विज्ञेया मात्ववान्धवाः ॥ श्रनः पुत्तः,— प्रथमेऽद्दनि यद्व्यं तदेव स्थात् द्शाद्दिकम् ।

पुत्रान्तराभावेऽनुपनीतस्थापि पुत्रस्थ हतीयाब्दश्कतचूड्ले दग्रहान्तवर्मस मन्त्रपाठपूर्वकमधिकारः।

तथा च मतुः, - न ह्यासान् युज्यते कर्म यावनाहि निवन्धनात्। नाभियाद्वारयेद्वह्य खधानिनयनादृते॥

क्रद्वा वेदः खधानिनयनं प्रेतकर्म । सुमन्तुः,— ऋतुपनीतोऽपि कुर्वीत मन्त्रवत् पैत्नमेधिकम् ।

यद्यमौ क्षतचूड़ः स्वाद्यदि स्वानु निवत्सरः॥

तथा,— कुर्यादनुपनौतोऽपि श्राद्धसेकोऽपि यः सुतः। पित्यशाक्तिति पाणौ जुक्तयान् मन्त्रपूर्वकम्॥

एवं हितीयाब्दहतचूड्स मन्त्रवदौर्द्धदैहिनकरणे सिद्धे कत-पश्चमाब्दचूड्स कैसुतिकन्यायेन सिद्धोऽधिकारः। यनु,— कतचूड्स कुर्वीत उदकं पिण्डमेव च। स्वधाकारं प्रयुक्तीत वेदोचारं न कारयेत्॥

दति व्याचवाक्यम्। तत्प्रथमाव्दकतचूड्विषयमिति काचादर्भकाराः।

त्रय द्याद्वाभ्यन्तर्कार्य्यविचारः।

विशिष्ठः, — ग्रहाण्, प्रविज्ञायप्रसारे ऋहमनश्रमः श्रामीरन्। क्रीतोत्पन्नेन वा वर्त्तरन्। श्रपप्रसारः श्रगीचिनां प्रयनामनार्थ-सृणमयः प्रसारः।

त्रतः चितिग्रयनविधिः खट्वादिनिषेधपरः। वृहस्पतिः,— त्रधःग्रय्यासना दीना मस्तिना भोगवर्जिताः।

श्रवार् विषानाः खुर्बश्विशिषनास्तथा ॥ प्रथमेऽक्ति त्रीये च पद्ममे पप्तमेऽपि च। मवमे वासमां त्यागो नखलोन्नां तथाऽन्तिमे ॥ गौतमः,— "ब्रह्मचारिणः सर्वे"।

विष्णुपुराणे,— प्रव्यामनोपभोगश्च मिपाङानामपीयते । तस्त्रास्त्रिमञ्चयादृद्धें संयोगो न तु योषिताम्॥

मार्कण्डेय पुराणे,-

तैना खङ्गो बान्धवाना मङ्गमं वाहनन्तु यत्। तेन चाषायते जन्तुर्यचाश्रन्ति खबान्धवाः॥ पुनर्गीतमः,—

"मांसं न भचयेयुराप्रदानात्" श्रन्यच मर्वेण मार्जयेयुर्न मांसं भचयेयुराप्रदानात्। श्रामेये, सङ्ख्या बन्धवः प्रेतमपम्बेन तां चितिम्। परिक्रम्य ततः स्नानं कुर्युः सर्वे सवासमः॥

प्रेताय च ततो द्युस्तौँस्तीन् चैवोदकाञ्चलीन्।
दार्यमानि पदं दला प्रविशेयुस्ततो ग्रहम्॥

प्रचतानिचिपेदक्रो निम्मपचं विदस्त वा।

दत्युक्ता पुचस्राधिककार्यमुक्तम्।

ष्ट्रयम् ग्रयीत भूमौ च कीतस्थामनो भवेत्। याज्ञवस्त्र्येनापि,— कीतस्थामनायुद्धाः,—

पित्रधज्ञकता देयं प्रेतायाचं दिनवयम्।

द्ति पुचेणिति ग्रेषः। मङ्गस्य दाइं क्वला तथा च पुचाणां तङ्गिचित्राकर्दणां वा मर्वे नियमाः। स्नानोदकदानमांमानग्रन-पराचानग्रनान्येव मिण्डानामिति समाचारः।

विणुः, — धर्वपापविद्यद्वार्थमध्वश्रमविनागनम् । तसानिधेयमाकाग्रे दगराचं पयस्तवा॥

द्रामदिनपर्यनाम्। श्रन्यच,-

प्रथमेऽहिन यह्यं तदेव खाइग्राहिकम् ।
ब्राह्मे, - त्रग्रौचमध्ये यह्नेन भोजयेच खगोवजान् ।
त्रप्रक्रौ मरीचिः, - प्रथमेऽह्नि तुरीये तु पञ्चमे नवमेऽिप वा ।
जातिभिः सह भोक्रयमेतत् प्रेतेषु दुर्चभम् ॥

ब्राह्मे, समाय दशमं पिण्डं यथाशास्त्रसुदाइतम्। यामादिस्तितो गला प्रेतसृष्टे च वामसी॥ श्रन्धनामाश्रितानाञ्च त्यक्का स्नानं करोति च। केशस्त्रश्रुनखानान्तु यत्याच्यं तक्जहात्यपि॥ द्त्यादिविधिः। प्रेतिकयाकालस्पृष्टे प्रेतस्पृष्टे। यत्त्याज्यमित्य-नेन वचःकचित्रखोपख्यरोन्नां न वपनम्। नखानामग्रभागकर्त्तनं एव। प्रथमदिने क्रियाया श्रनारको चतुर्थादिदिनेषु श्रस्थिसञ्चय-नस्रोक्तलात्तदन्यतमदिने क्रियारक्षः।

> प्रथमेऽक्रित्रियों वा सप्तमे नवमे तथा। ऋस्थिसञ्चयनं कार्यं दिजैस्तृ तोचजैर्यहे॥ संवत्सरे वा कर्त्त्रयं यावत्तन्त्र प्रदीयते।

दति संवर्त्तीकोः। त्रत एव वर्षमध्ये यदा कदापि प्राप्ते दग्र-माचे सुतरां कियाकरणसमाचारः।

मन्यामिनां दाचाद्यभावः।

ब्राह्मे, चयाणामाश्रमाणाञ्च कुर्य्यादाहादिकां कियाम्। यतेः किञ्चित्र कर्त्त्यं न चान्येषां करोति सः॥ महाभारते, च दम्धयो न दम्धयो विदुरोऽयं कदाचन। ज्ञानदम्धमरीरस्य पुनर्दाहो न विद्यते॥

किञ्चिदिति दाहादिमिपिष्डान्तिवियमिति कन्यतर्काराः ।
प्रचेताः,— एकोदिष्टं जनं पिष्डमागौचं प्रेतमित्कयाम् ।
न कुर्य्यात् पार्वणादन्यत् प्रेतस्ताय भिचवे ॥
कुर्य्यादेकादगाहेऽस्य पार्वणं न मिपिष्डनम् ।
एकोदिष्टं यतेर्नास्ति चिद्ष्डग्रहणादिह ॥
मिपिष्डीकरणाभावात्पार्वणं तस्य सर्वदा ।

एकदण्डिमन्यासिनां न श्राद्धम् । ब्राह्मणादिइते ताते पतिते सङ्गवर्जिते । ब्लामाच ततो देयं येभ्य एव ददात्यमौ॥

इत्युक्तेः, एवसुकास पूर्वमध्यमोत्तर्द्भपास तिस्षु कियास एकेन क्रियमाणाखिप ये केवित् पुत्रनियमा उक्तास्ते सर्वे सर्वेषां कार्या एव। पलमंस्काराणां पलमामानाधिकरण्यनियमात्। एकेनापि कतया कियया भर्वेषां प्रयक् प्रयक् फलप्राप्तः। अन्यया तेषां प्रत्यवायपरिदाराभावात् । मर्वेषां श्रिधिकारिलेन मन्वन्धात् । यत्तु "सर्वेषान्तु मतं कला" दत्यादि। ज्येष्टस्य कर्त्वंगे नियमः। त्रतएव तस्य यावदुक्तमासि<sup>(१)</sup> ब्रह्मचर्यमतुख्यलादिति न्याये फिलिसंस्कारावचनेन खबस्थापिताः(१) ते सर्वेषामपि फिलिलादा-वर्त्तन इत्युक्तम् । तथा च फलिमंस्कारजनकानां नियमानामकतौ श्रत्येषां किञ्चित्संस्कारदानौ फलतारतस्यमेव स्थादिति। यजमानस्थात्राक्षौ यद्यनेन नेनचिच्छाद्वादिकं क्रियेत, तदा यज-मानखेव पूर्वदिनोक्ततिह्नविहितसर्वनियमकरणं, न तु कर्त्तुः, त्रत्यस्य कर्त्तुः पत्तित्वाभावात्। ननु यजमानस्यात्रकौ अन्याङ्गव-दन्योऽपि नियमान् कुर्यादिति चेत् न। फिलमंस्काराणामन्य-कतानां यजमानयो<sup>(२</sup> म्यतापादकलात्। तथा चीकां षष्टाधाये, फिलिएंस्कारास्त्रन्येन क्रियमाणा<sup>(8)</sup> यजमानस्य योग्यतां जनयिना दति"। ननु मने कथं चलिजां फलिसंस्कारा दति चेत्, उचाते। तत्र मिलमंस्कारा न तेषां योग्यताममादनाय, किल् मंस्काराणां कर्नृषप्तद्यतासम्यादनायेति दिक्।

<sup>(</sup>१) यावदुक्त खाग्रीः।

<sup>(</sup>२) खव्यवस्थापिताः।

<sup>(</sup>३) योग्यतानापादकत्वात्।

<sup>(8)</sup> न।

त्रय गङ्गायामस्त्रित्रचेपविचारः।

विष्णुः,— "वतुर्ये दिवसेऽस्त्रिमञ्चयनं कुर्युक्तेषाञ्च गङ्गाभिष प्रचेपः।"

यावदस्त्रिमनुष्यस्य गङ्गाभिषि च तिष्ठति।

तावदर्यमङ्गाणि स्वर्गनोनेऽधितिष्ठति॥

दग्राहाभ्यन्तरे यस्य गङ्गातोयेऽस्त्रि मन्नित।

गङ्गायां मर्णे यादृक् तादृक्षन्नमवाप्र्यात्॥

यमः,— गङ्गातोयेषु यस्त्रास्त्रि वर्त्तते ग्रुभकर्मणः।
न तस्त्र पुनरादृक्तिर्द्वाकोकात्कथञ्चन॥
श्रादित्यपुराणे(९), तस्रयनाधिकारिणः,—

पखीन मातापितपूर्वजानां नयिन गङ्गाभिष ये कदाचित्। सद्भावकस्थापि द्याभिभृता-स्तेषां तु तीर्यानि फसप्रदानि॥ कुसदयं वाष्य्य वर्जयित्वा मातापिचोर्जन्मभूम्यात्रयञ्च। ऋसीनि पान्यस्य नरो वर्षस्य भाग्यचयं सभते दुष्कृतं च॥

सङ्गावकस्य ग्राह्मभावस्य त्रतिसद् इति यावत् । जनाभूम्यात्रयं चेत्यनेनापि प्रायिकत्वात् सददेवोच्यत इति नारा-यणभायो ।

तथा, मातुः कुनं पित्रकुनं वर्जियला नराधमः।

<sup>(</sup>१) चादिप्राके।

श्रसीन्यन्यकुत्तोत्यस्य नीता चान्द्रायणाच्कुचिः ॥
तत्स्थानात् सकत्तेनीता कदाचिज्ञाक्कवीजन्ते ।
कश्चित् चिपति सत्पुचो दौहिचो वा सहोदरः ॥
तत्स्थानात् श्रस्थिमञ्चयनात् ।
तत्रचेपविधिरादिपुराणे,—

स्राला ततः पञ्चगवीन सिक्का

हिरण्यमध्याच्यतिसीय योच्य<sup>(१)</sup>।

ततस्त म्टत्पिण्डपुटे निधाय

पग्यन् दिशं प्रेतगणोपगूढाम्॥

नमोऽस्त धर्माय वदन् प्रविग्य

जसं समे प्रीत रति चिपेच।

उत्थाय भाखन्तमवेद्य सूर्यं

स दचिणां विप्रमुखाय दद्यात्।

एवं इते प्रेतपुरे स्थितस्य

स्वर्गे गतिः स्थाच महेन्द्रतुस्था॥

श्रक्षार्थः,— गङ्गयां स्नाला ततोऽस्वीनि पञ्चगव्येन सिक्का काञ्चन-मध्याच्यतिलेः संयोज्य स्टित्पण्डे निधाय दिचणास्खो"नमोऽस्त धर्मायेति" वदन् जलं प्रविष्य "समे प्रीतो भवतु" इति जले चिपेत्। ततः उत्याय स्थ्यं दृष्टा वत्ताध्ययनसम्पन्नाय ब्राह्मणाय दिचणां किश्चिद्द्यात्, इति।

श्रय श्राद्धकालो निरूषते।

तचादौ श्राद्धस्तुतिः।

<sup>(</sup>१) योच्यं।

थमः, - ये यजन्ति पितृन् देवान् ब्राह्मणान् सक्तताश्रनान् । सर्वभूतान्तरातानं विष्णुमेव यजन्ति ते ॥ दलानेन विधानेन सभनो चतुरी वरान्। धनमन्नं सतानायुर्दरते पितरो भूवि॥ श्रायुः पुत्रान् यग्नः स्वर्गं कान्तिं पुष्टिं वसं तथा। पग्रन् सुखं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पित्रपूजनात् ॥ श्रन्यत्र, - रतिगतिर्वरा कान्ता भोज्यं भोजनगतिता । दानग्रितः सविभवा रूपमारोग्यमेव च ॥ श्राद्भप्रयमिदं प्रोक्तं फलं ब्रह्मसमागमः। हारीतः, - य सर्वकामसंयुक्तो ह्यस्तलं च विन्दति। य एवं वेत्ति मतिमान् तस्य श्राद्धफ्तं भवेत् ॥ उपदेष्टानुमना च स्रोके तुन्यपसी सातौ। श्रकरणे दोषं तु स एवाइ,-न च श्रेयोऽधिगच्छिना यच श्राह्मं विवर्जितम् । ऋपि मूलीः फलीर्वापि तथा द्युद्कतर्पणैः॥ श्रविद्यमाने कुर्वीत नैव श्राद्धं विवर्जयेत्। श्राद्धसद्धपं मनुः,—

विप्रस्तीकारपर्य्यन्तस्यागो द्रव्यस्य यः पितृन् ।

उद्दिश्य सुख्यं श्राद्धं तत्तदङ्गमितरं स्तृतम् ॥

ऋतएवापस्तम्बः, — तथैतनानुः (१), श्राद्धश्रम्दं कर्म प्रोवाच प्रजापतिः निःश्रेयमार्थं, तत्र पितरो देवताः ब्राह्मणास्वादवनीयार्थे

<sup>(</sup>१) खयैतन्मनुः।

मासि मासि कार्योऽपरपचः। छादपराषः श्रेयानिति। श्राह्मिति ग्रन्दो वाचको यस्य तत् तथा। ब्राह्मणास्वाचनीयार्थ इति त्यक्तस्य (१) द्रव्यप्रतिपत्तिस्थानत्वेनेत्यर्थः। तथा च पितृ चुद्यि द्रव्यत्यागो विप्रस्वीकारपर्यनाः श्राह्मिति चचणं। विष्टरब्राह्मणकश्राह्मेऽपि पश्चात् ब्राह्मणस्वीकाराक्षचणसमन्वयः।

दैविकश्राद्धेऽपि,—

वस्तर्रादितिस्ताः पितरः श्राह्वदेवताः । इति सृतेः, एते वै पितरो देवा देवास्य पितरः पुनः ।

द्ति मन्त्रिक्वाच, देवानां पित्रक्षोकसम्बन्धेन पित्रतात् यमायमादीनां पित्रताक्षचणमङ्गतिः । श्राद्धानुकस्पिहरण्यदाने तु यथोक्तकचणसत्तात् सम्यगेव सचणमङ्गतिः ।

एतेन श्राहुस दानलं भिह्नमिति। गङ्गातौरेऽन्यपुष्यसानेषु च प्रतिग्रह्स निष्ठित्वाच्छाह्ननिमन्त्रणम् तेषु न स्वीकार्य्यम्। ननु गयाश्राह्मारो नेवसपिष्डदाने खस्त्वस्थं मपरस्रवापित्तप्रस्रकत्याग-रूपस्य दानस्थाभावात् कथं दानतेति चेत्, उच्यते। परस्रवा-पत्तिनं दानपदार्थान्तर्गता, प्रतिग्रहस्य द्वत्यर्थवात् प्राप्तवेन विधे-यवाभावात्। न चैवं प्रौतिद्त्तादिस्तीकार दव मन्त्रादिनियमो न स्थादिति वाच्यं। भोजनादौ दिङ्मुखादिनियमस्थेवादृष्टार्थ-वात्। किंच, यदि परस्रवापत्तेर्दानपदार्थान्तर्गतलं स्थात्तर्ह् विवाहप्रकर्णे "पिता प्रत्तामादाय" दित पारस्करसूचे प्रत्तामित्यनेन प्रतिग्रहिस्हिरादायेति स्रथं स्थात्। किञ्च,—

<sup>(</sup>१) त्यसम्य।

मनमा पात्रसुद्दिश्य ततो भूमौ जलं चिपेत्। विद्यते मागरखान्तस्यान्तो न हि विद्यते ॥

द्युक्तत्यागमाचस्य दानलं न स्वात्, दित प्राञ्चः । वस्तः प्रति-यद्याङ्गलादङ्गनां प्रधानदेशकाकाच्यिलात् दानकाले प्रतियद्दे समयफ्तं प्रतियद्दाकर्णे तु श्रङ्गवैगुष्णं । वचनान्तु परोचदानस्यस्वे काम्यकर्मध्यपङ्गवेगुष्णे फक्तमिति निष्कर्षः । मैथिसास्त यागदान-दोमविस्त्रचणं असर्गाभिधमपि त्यागमाङः । पुष्करिष्णुत्सर्गादौ श्राबद्धान्तम्यपर्यन्तानां स्वीकाराभावेन दानलाभावात् । श्रयमेव न्यायः परोचदानस्यस्य दित । तिसद्धं श्राद्धस्य दानलम्। तथा,—

श्राद्धं नामादनीयस्य द्रव्यस्य प्रेतोदेशेन श्रद्धया त्याग इति वदद्भिविं ज्ञानेयरैरपि दानलसुक्तम् । तथा,—

पित्रभो ददातीति प्रत्यच्युताविष दानलम्। नन्त्रच पित्रणां प्रतिग्रहीत्वलाभावात् ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहीत्वलेऽपि दानविधी उद्देश्यलाभावादुद्देश्यले सित प्रतीग्रहीतुरेव सम्प्रदानलात् सम्प्रदान-रहिते ददात्यर्थः, कथं सङ्गच्छते रति चेत् उच्चते । उद्देश्यलं च तस्वेदिमिति ज्ञानविषयलं तच ब्राह्मणस्यादित ।

श्रपमयं ततः कला पित्यणामप्रदिचणम् । दिग्रणांसु कुमान् कला उमन्तस्तित्वृषा पितृन् ॥ श्रावाद्य तदनुजातो जपेदायन्तुनस्ततः ।

द्ति याज्ञवस्कोक्तादावावाचनेन प्रतिमाया<sup>(१)</sup> देवतालवत् ब्राह्मणस्थापि पिललादुद्देग्यलोपपत्तेः<sup>(९)</sup>; ऋन्यथा प्रोचेत्यादिब्राह्मणा-

<sup>(</sup>१) प्रतिमायां। (२

<sup>(</sup>२) उद्देश्यलोगपत्तः।

नुज्ञादिकममंद्रतं स्थात् । "पित्रभ्यो रोचतां, यथासुखं वाग्यताजुषध्य"मित्याद्ययमङ्गतं स्थात् । श्रतएव "(१) श्रमुकसगोत्रितनुभ्यमस्रं
स्वधा नमः" दित ब्रह्मपुराणोक्तौ पित्रगोत्रोच्चारणमेव, न तु
निमन्त्रितबाद्यायस्य । ननु "पित्रन् यजते"(१) दिति श्रुतेः श्राद्धस्य
यागलमिति चेत्, न । तत्र यजतेर्दानार्थलपचाश्रयणात् ।
दानार्थले तु पित्रनिति दितीयाविभिक्तरनुपपन्नेति चेत्र ।
पित्रनुद्य्य यजते(१) दिति व्याख्यानस्थाङ्गीकरणात्। "त्यागो द्रव्यस्य
यः पित्रन्" उद्देग्येति मनूक्तिरेवाच प्रमाणं। एतेन यजत दित
वचनमवस्रस्य श्राद्धस्य त्यागलं यागदानोभयस्य लं चेति युक्तिजासं
वितत्य वदन्तो निरस्ता एव। तत्र ब्राह्मणभोजनं प्रधानं, उत
पिष्डदानं श्राह्मोखत् सभयम्।

यदा पितृत्दिश्य द्रयायाग एव, दति मन्देहे। "विप्रसी-कार्पर्यानः" दत्युक्तेर्बाद्याणभोजनमेव प्रधानं, पिण्डदानमिति च केचित्। अन्ये तु पङ्किपावननिमन्त्रणापाङ्काभोजनदोषामद्रयक-श्राद्धदर्भनश्राद्धिकप्रतियहानध्यायादिदर्भनात् ब्राह्मणभोजनं प्रधान-मिति। कर्काचार्यासु,— गयाश्राद्धभौद्मपिण्डदाने श्रान्तनुहस्तो-त्यानदर्भनकेवलपिण्डदानविधिभ्यः पिण्डदानं प्रधानमिति।

नारायणभदृत्रस्तयसु "उभयं प्रधानं" द्ति । तथा च,— त्रम्रौ इतेन देवस्याः पित्रस्या दिजतपंषैः । नरकस्यास्य त्यपन्ति पिष्डेर्दन्तीस्त्रिभिर्भवि ॥

<sup>(</sup>१) चमुकामुकगोजैतत्तुभ्यमझ । (२) यमेत । (३) थनेतेति ।

दित ब्राह्मणभोजनिष्ण्डदानयोः समकचतया फलअवणं।
नन्ववं सित अग्नौकरणस्थापि प्राधान्यमिति चेत्, अस्तु नाम,
नैतावताऽनयोः प्राधान्यदानिरिति। नतु मघादौ पिण्डाभावात्
कथं आद्धफलिस्डिरिति चेत्, उच्यते, असोमयाजिनः सान्नाय्यविरहेऽपि प्रधानसिद्धिवत् फलिसिद्धः। वस्तुतस्तु पितृतृद्द्य्य
द्रवात्याग एव प्रधानं, स च गयाआद्धादिविद्दितकेवलपिण्डदानेऽयस्ति "विप्रस्तीकारपर्य्यन्तः" दित मनूक्तिस्तु दानक्ष्पे आद्धे
प्रतिग्रद्धाङ्गलेनार्थप्राप्तलादेव विप्रस्तीकारांग्रेऽनुवाद एव। अन्यथा
"त्यागोद्रवस्य यः पितृन्" उद्देग्येति व्यथं स्थात्। तच अमुक्त(एमगोनैतदित्यादिवाद्वोक्तिः प्रमाणम्।

नत् पिण्डदानमहितत्राद्धे हत्स्य पाकस त्रादावेव पिनुदेशेन त्यक्तलात् कणं पिण्डदानमिति चेत्, अचाते। वपाप्रचार्षद-याद्यक्तप्रचारविप्रकर्षवत्तावत्काख्यापी प्रधानपदार्थः पिण्डदानं। उत्पत्तिविधावेकत्वत्रवणात् सोमवत् वा एक एवाभ्यस्यते। यदा-पग्रपुरोडाभवत् देवतास्मारकत्वेन तत्सिन्नपातिमंस्कारविभेषोऽङ्गं पिण्डदानम्। ब्राह्मणभोजनकास एव हत्स्त्रपाकस्य पिनुदेशेन त्यक्त-त्वेऽपि पिण्डदानकासे पुनः स्वीकरणं स्विष्टहाददविषद्धमिति सर्वं समञ्चसम्।

ऋष श्राद्धकालाः ।

याज्ञवस्काः,— श्रमावस्वाष्टकारुद्धिः खण्णपचेऽयनद्वयम् । द्रयं ब्राह्मणमम्पत्तिविषुवत्सूर्य्यंकंकमः ॥

<sup>(</sup>१) अमुकामुकगोचैतत्तुभ्यमन्।

यतिपातो गज्ञस्या यहले चन्द्रसूर्ययोः। श्राद्धं प्रतिक्चियेव श्राद्धकाना प्रकीर्त्तताः।

सूर्याचन्द्रमधोः संक्रान्तिसाम्यं यतीपात रति सन्तीधरः। योगविशेष दत्यर्थः। ऋख पारिभाषिकं सचणम् ऋसभयोग-प्रकर्णे लेख्यम्। गजच्छायासचणं तं महासयश्राद्धप्रकर्णे लेख्यम्। श्राद्धं प्रतिक्चिरित्यस्थार्थः श्राद्धं कार्य्यमिति यदा क्चिर्जायते तदैव श्राद्धकास दत्यर्थः।

श्रथ श्राद्धभ्रब्दार्थः।

मरीचिः, - प्रेतं पित्वं च निर्द्धिः त्याच्यं चित्रयमात्मनः ।

अद्भया दीयते यद्यत्तत्त्राद्धं परिकीर्त्तितम् ॥

वृहस्पतिरपि, - मंख्नतं भोजनाईश्च पयोद्धिवतान्वितम्।

श्रद्धया दीयते यसाच्छाद्धं तेन निगद्यते ॥

तच श्राइं नित्यनेमित्तिककाम्यभेदेन चिविधम् । तच प्रति-दिनश्राद्वामावस्थाष्टकात्वष्टकायुगादिश्राद्वानि नित्यानि । तच प्रमाणं वच्छते ।

नैमित्तिकानि काम्यान्यपाइ गासवः — प्रेतत्राद्धं भिष्डान्तं संक्रान्तियइणेषु च । संबत्धरोदकुमञ्ज दक्कित्राद्धं निमित्ततः ॥ तथा,— तिथादिषु च यच्छाद्धं मन्तादिषु युगादिषु ।

प्रज्ञभ्येषु च योगेषु तत्काम्यं समुदाइतम् ॥

युगादीनां नित्यकाम्यलादनापि ग्रहणमविषद्भम् । तिथादि-व्यिति तिथितारनचनयोगकरणेव्यित्यर्थः । तानि च वच्छन्ते । विश्वामिनः, श्राद्धानि दाद्गेत्याइ—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं रुद्धिशाह्यं मिपिष्डनम् । पार्वणं चिति विज्ञेयं गोष्ठ्यं (१) शुद्धार्थमप्टमं ॥ कर्माङ्गं नवमं प्रोक्तं दैविकं दश्रमं सृतम् । यात्रास्वेकादशं प्रोक्तं पुष्ठ्ययें दादशं पुनः ॥ विद्यतच्चैतत् भविष्ये,—

त्रहत्यहनि चच्छाद्धं तिल्यमिति कीर्त्तितम् । वैयदेविवहीनन्तदग्रकावुदकेन तु॥ एको दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्निमित्तिकमुच्यते । तदणदैवं कर्त्तव्यं ऋयुग्मानाग्रयेद्विजान् ॥ कामाय विह्तिं काम्यमभिप्रेतार्थमिद्भये। पार्वणेन विधानेन तद्युक्तं खगाधिप ॥ वृद्धौ यत् क्रियते श्राद्धं वृद्धिश्राद्धं तद्खते । सर्वे प्रदिचणं काय्ये पूर्वाक्रे द्वपवीतिना ॥ गन्धोदकतिलेंधुंकं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् । श्रघीर्थं पिह्रपाचेषु प्रेतपाचं प्रसेचयेत् ॥ ये ममाना इति दाभ्यामेतद्ज्ञेयं मपिण्डनम्। नित्येन तुल्यं ग्रेषं सादेकोदिष्टं स्त्रिया ऋषि ॥ श्रमावास्थां यत् क्रियते तत्पार्वणमुदाइतम्। क्रियते पर्वणि यत्त् तत्पार्वणमिति स्थिति:॥

<sup>(</sup>१) खाः।

गोष्ठ्यां यत्कियते श्राह्मं गोष्ठीश्राह्मं तदुच्यते ।
बह्नां विदुषां मन्यसुखार्थं पित्रह्मये ॥
क्रियते ग्रद्धये यन्तु ब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ।
ग्रद्धार्थमिति तत्प्रोक्तं वैनतेय मनीषिभिः ॥
निषेककाले सोसे च सीमन्तोन्नयने तथा ।
जीयं पुंसवने चैव श्राह्मं कर्माङ्गसेव च ॥
देवानुह्म्य तु श्राह्मं यत्तहैविकसुच्यते ।
हवियोण विग्रिष्टेन सप्तम्यादिषु यत्पुनः ॥
गच्छन् देग्रान्तरं यन्तु श्राह्मं कुर्यान्तु सिष्धा ।
याचार्थमिति तत्प्रोक्तं प्रवेग्रे च न संग्रयः ॥
गरीरोपचये श्राह्ममर्थापचय एव च ।
पुद्यार्थमेतत् विज्ञेयमीपचायिकसुच्यते ॥

उपवीतिनेत्यनं रुद्धिश्राद्धे योज्यम् । रुद्धिः पुत्रजन्मादि । ग्रेषं स्वादित्यनं सपिष्डने योज्यम् । श्रिपकारेण स्वियाः सपिष्डनं कार्यं, एको द्दिष्टपदेन वार्षिकं स्वियाः कार्यमित्यर्थः । तथा च याज्ञवस्त्रः,—

एतत् मपिष्डीकर्णमेकोहिष्टं स्त्रिया ऋपि।

श्रमावास्थामत्यन्तमंथोंगे दितीया। च तेनामावास्थां प्राप्येति बाख्या। क्रियते वेत्यत्र पर्वपदेन मंक्रान्धाद्यष्टकान्वष्टकादिपरि-ग्रहः। गोष्ठीश्राद्धं कर्त्तृषसुदायः, मन्यत्सुखार्थं श्राद्धसामग्रीसन्यदा यत्सुखं तद्थं बह्ननां विदुषां केनापि निमित्तेन युगपत्तीर्थश्राद्धे कर्त्त्रये देशकालादिवशात् ष्टयक्पाकाद्यसम्भवे सम्भूय श्राद्धसामग्री- मन्पादनेन यत् श्राह्मं तद्गोष्ठीश्राह्ममित्यर्थः । निषेककाल इत्यादि
श्रौतसार्त्तकमीपचलणम् । एतच कर्माङ्गश्राह्मं दृद्धिश्राह्मवत्कार्यम् ।
"कर्माङ्गं दृद्धिकतं" दित पारस्करसूचात् । कर्माङ्गमज्ञाकरणं
श्रकरणे कर्मवैगुष्पद्योतनार्थम् । दैविकं तु नित्यश्राह्मवत् । तदनुदृत्तौ "नित्यश्राह्मवत् कुर्यादिति" पारस्करोक्तेः । गच्छित्रत्यादितौर्थयाचार्थं देशान्तर्गमनममये, याचां ममाप्यागमनानन्तरं
ग्रहप्रवेग्ने चेत्यर्थः । मर्पिषा मर्पिःप्राधान्येन याचाङ्गश्राह्ममित्यर्थः ।
ग्रारेत्यच ग्रारोपचयद्वेतौ रमायनादौ कर्त्तये द्रत्यर्थः । एतत्वचनक्रमेण श्राह्मकाला विचार्यन्ते । तचाष्ट्रधाविभक्तस्य दिवमस्य
पञ्चमो भागो नित्यश्राद्धकालः ।

तथा च द्त्तः,-

पञ्चमे च तथाभागे मंविभागो यथाईतः।
देवपित्रमनुखाणां कीटानां चोपदिखते॥
मंविभागं ततः क्रता ग्टइखः ग्रेषभुक् भवेत्।
यथाईतो यथायोग्यम्,

कंविभागो विभज्यान्नस्य प्रतिपादनम् । यद्यपि नित्यत्राद्धे "त्रप्तिनैः पाणिनैवार्घः" दत्यादिविधिरस्ति, तथापि ऋषुद्धृत्येत्या-युक्ताग्रक्तपचमेवाश्रित्य ऋनादिकं स्वापयिता कुग्रमस्तिजनेन वा उत्पर्गमाचरत् नान्यत् किञ्चित्।

तथा च इन्दोगपरिणिष्टे,-

श्रणेकमात्रयेत् विष्रं विष्टयज्ञार्थमिद्धये । श्रह्मैवं नास्ति चेदन्यो भोका भोज्यमयापि वा ॥ त्रषुद्धृत्य यथाग्रिक किञ्चिदन्यो (१) यथाविधि । पित्रभय मनुष्येभ्यो दद्याद्षरहर्दिनः ॥ पित्रभ्य ददसित्युक्का खधाकारमुदाहरेत् । हन्तकारं मनुष्येभ्यस्तदन्ते निवपेदपः (१) ॥

त्रनोत्सर्गार्थमन्ते जलं चिपेदित्यर्थः। तथा च मनकायन्नदान-मपि नित्यत्राद्वाक्नं।

तच वाक्रं सृव्यनारे,—

नित्यश्राद्धमदैवं सामानुष्यैः मह गौयते ।

कुल विशेषे एत सित्यश्रा हुं एक सिन्नेव पत्रे षट्पुरुषात्मकतया कुर्वन्ति । केचित् पित्रादीनां एक पत्रं माता महादीनां एक पत्रं कुर्व-न्ति । श्रक्षादादिकुलेषु प्रथक् प्रथक् पत्रदयं, षाट्पुरुषिकं चान्य-दिति पत्रत्रयं (१) कुर्वन्ति । श्रत्र कर्त्तुर्मां साशिले मत्यमां सादिकं देयम् ।

देवान् पितृन् ममभ्यर्च खादन् मांमं न दोषभाक् । दित नित्यत्राद्धाभिप्रायेण मनुनाभ्यनुज्ञातलात् । एवं च,— द्यादश्रः श्राद्धमन्नायेनोदकेन वा । पयोमूलफलैर्वापि मांसवर्जमदैवतम् ॥

दति वाकां वानप्रस्थविषयम्। काम्यमां मवर्जनमङ्करणकर्नृविषयं वेति ज्ञेयम्। त्रसादादिकुलेषु तु एतदुभयवाक्यानुरोधेन चैपुक्-

<sup>(</sup>१) स्थन्य ।

<sup>(</sup>२) निनयेव्।

<sup>(</sup>३) पत्रवयात्मकः।

षिकपत्रयोर्नेव मांमदानम् । षाट्पुरुषिकपत्रे एव मांमदानमिति समाचारः समीचीनः ।

मांममनं तथा आद्धं ग्रहे यचीपसाधितम्।

द्रत्युक्तेय । एतिक्रत्ययाद्धं त्रपुत्रभात्विपत्रयादीनां एकपुरुषा-त्मकं कार्यम् । भात्रादीनामुत्तरिक्रयाखिप कर्त्तृत्वोक्तेः ।

नेचित्त जीवत्पित्वकस्थापि सामिकले,-

न जीविष्यहकः आहुं कुर्याद्मिसते दिजः।

येभ्यो वापि पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्तु माग्निकः।

इति समन्त्रुकवैकन्यिकमिति तन्।

"न जीवनामतिद्द्यात्"

इति प्रत्यच्युतेः।

मिपतुः पित्रकृत्येषु ऋधिकारो न विद्यते ।

दति विष्णुकृतिविरोधात्। तथा च जीपत्पित्वकस्य माग्निकले-ऽपि पचान्तमेव वैश्वदेवं निष्यश्राद्धाभावश्चेति ममाचारः समीचीनः निष्यश्राद्धवैश्वदेवादिकं तु पित्रपुचभावादीनामविभक्तानामेकेन कर्णे सर्वेषां प्रत्यवायपरिचारात् सर्वैः पृथक् पृथक् न कार्य्यम्।

एकपाके निवमतां पिह्नदेवदिजार्चनम् ।

एकं भवेत् विभक्तानां तदेव खाद् ग्रहे ग्रहे ॥ इत्युक्तेः । यद्यपि,—

एवं मद्द वसेयुर्वा पृथक् वा धर्माकाङ्क्षया । पृथक् दि बर्द्धते धर्मासस्मात् धर्म्याः पृथक् क्रियाः ॥ दति ब्रह्मकोकप्राष्ट्रादिफकार्थे पुनः काम्यतया पृथक् पृथक् करणं श्रविभक्तानां मनुनोकं। तथापि तथाचारः कदापि न दृग्धते। तथापि,—

पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ऋषि ।

दित गौतमोक्ते मांतामहादिश्राद्धस्य पित्रश्राद्धाधीनलेन श्रवि-भक्तसपत्नीश्रातृणामपि एकेन नित्यश्राद्धे कते श्रन्थेन स्वमाता-महावर्थं पुनः पचान्तरं न क्रियते । एवममावास्यादिश्राद्धेस्वपि पृथक्करणस्माचाराभावः ।

ब्रह्मचारी भवेच्छाद्धे सुक्ता श्राद्धं तु नैमित्तकम् । दृश्युक्तेर्नित्यश्राद्धे श्राद्धदिनविद्दितश्राद्धनियमाभावः । ग्रह-खामिनोऽनुपनीतने तु नित्यश्राद्धस्थास्य पञ्चयज्ञान्तर्गतलात् करणा-भावः । पारस्करसूने समावर्त्तनसुक्ता,— "श्रयातः पञ्चयज्ञा दृति" समावर्त्तनानन्तरमेव पञ्चयज्ञेव्यधिकारोकोः ।

श्रिप वा वेदतुस्थतादुपायेन निवर्त्तरन्। इति षष्ठे च जैमिनीयसूचास,—

स्मृतीनां वेदतुः खालादुपायेन उपनयनादू द्वें स्नार्त्तधर्माः प्रवर्त्ति-रिच्निति तस्मार्थः। श्रविभक्तानां प्रावासे ग्रहान्तरावस्थाने प्रयक्-पाने सत्यपि न पृथक्वैश्वदेवकरणम्।

> सौकिने वैदिने वापि इतोस्किष्टे असे चितौ। वैश्वदेवस्त कर्त्तायः पञ्चसूनापनुत्तये॥

द्ति गातातपायुक्तौ पञ्चस्नादोषस्वैव वैश्वदेवनिमित्तलमिति एकेन यत्र कुत्रापि तत्कर्णे<sup>(२)</sup> दोषनिष्टत्तेकत्पन्नलात् । एतेन

<sup>(</sup>१) करगे।

पाकस्य वैश्वदेवनिमित्तलमाणङ्खा पृथक्षाके यदैश्वदेवान्तरकरणं तिम्नरस्तम् । पाकस्य वैश्वदेवनिमित्तलात् श्रुतेः ।

श्रथ क्रमप्राप्तनेमित्तितश्राद्धस्य कास्तविचारः । श्राद्धकासनिगमोक्तकारिका याः खदेशबुधतोषकारिकाः । श्रन्यदेशमततापकासिकासास्तनोम्युदितयुक्तिकासिकाः । तथा च,—

मुह्नतीत् मप्तमादूर्द्धे मुह्नतीत् दशमाद्धः। एको इष्टिख कालोऽयं मुझर्त्तात् दग्रमात् परम्॥ मुहर्त्ते चितयं काल श्रमावाख्य मप्तमात्। परतः पञ्च सुङ्क्ताः पार्वणखेतरस्य तु ॥ पूर्वाक्रे प्रथमादूईं यनुहर्त्तचतुष्टयम्। तदाभुदियकश्राद्धकामलेनावधारितम्॥ एकोहिएस कास्येन सभीत दिनद्ये। मुद्धर्त्ते दग्रमादावणेको दिष्टं तदा भवेत्॥ पार्वणस्य तु सुहर्त्ताः पञ्च ये परिकीर्त्तिताः । तेषां परेऽष्टमाच्छला त्रष्टमत्तदसभवे॥ दिनदयेऽपि सभ्येत कासचित् प्रथमादरः। पूर्वं वा मुख्यचोदना लोकवत् प्राइ जैमिनिः॥ तवादी नैमित्तिकस्य वार्षिकश्राद्धस्यावग्रकतं भवियो,-मृतेऽइनि पितुर्येसु न कुर्याच्छाद्भमादरात्। मातु श्वेव वरारो हे वत्सरान्ते मृते उहिन ॥ नाइं तस्य महादेवि पूजां गटझामि नो इरि:।

तथा,— पण्डिता ज्ञानिनो वापि मूर्खा योषित एव वा॥
मृताइं समतिकम्य चण्डालाः सप्तजनासु ।
ग्रतानन्दसंग्हे,—

श्राह्वाना चैव सर्वेषां श्रेष्ठं साम्बस्तरं स्नृतम् ।
तत् प्रयत्नेन सुर्वेति श्रकुर्वन्नरकं मजेत् ॥
पत्नं चाह हरिहर्ममुचये,—
यहणानां महस्तेषु श्रमावास्त्राप्रतेषु च ।
ततोऽचयतरं याति यस्त सुर्यान्मृतेऽहनि ।
तच दिविधम्,—

एकोहिष्टं पार्वणं चेति ।

यमः, मिप्छीकरणादूर्ई प्रतिसंवत्वरं सुतैः ।

सातापित्रोः पृथक् कार्यमेकोहिष्टं स्टतेऽइनि ॥

श्रव भविष्योक्तिरणुका । यमद्ग्निः, —

श्रापाद्य सहिष्णुक्तमौर्मो विधिवत्सुतः ।

कुर्वीत दर्शवच्छाद्धं मातापित्रोः चचेऽहिन ।

पार्वणविधिनेत्यर्थः । एवं याज्ञवंक्कोन एकोद्दिष्टमुक्तं । मनुना पार्वणमुक्तम् । एवं च उभयोर्यवकौद्दिवत् विकन्यः । ननु यवकौद्दि-विकन्ये निन्दोक्तिर्नास्ति ।

दृह तु,— ततः प्रस्ति मंक्रान्तावुपरागादिपर्वसु । चिपिष्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोदिष्टं स्तेऽहिन ॥ एकोदिष्टं परित्यच्य पार्वेषं यः समाचरेत् । स देवपित्हा स स्थानातिभातिवागकः ॥ स्ता है पार्वणं कुर्वस्रधोऽधो याति मानवः। संप्रक्तेव्वाकु जीभावः प्रेतेषु तु ततो भवेत्॥

दति मात्योक्तौ निन्दोक्तः, कणं विकच दति चेत्, उचाते।
न हि निन्दाऽनिन्दां निन्दितं प्रवक्तते। श्रिप तर्षं स्तत्यं स्तोतुमिति न्यायेन उदितानुदितहोमविदकस्योऽस्त । श्रतएव कस्यतद्दकारैसुख्यवस्रवादिकस्य द्रत्येवोक्तम्। कर्काचार्यर्प देशकुस्नाचार्यवस्ययेत्युक्तम्।

कत्पतरौ श्रौरमचेत्रजपुत्रमाम्यनग्नीनां याऽत्र व्यवस्था उक्ता, माऽसादेगे नैवाद्रियते, विज्ञानेश्वरैरपि नादृता । एवं देशकुला-चार्यवस्थया उभयोर्विकस्य इति ।

> यच यच प्रदातयं मिपिष्डीकर्णात्परम् । पार्वणेन विधानेन देयमग्रिमता सदा ॥

द्ति मात्येऽपि प्रतिप्रमवोक्तेरेको दिष्टकुलेऽपि माग्निपुदेण म्हताइश्राद्धं पार्वणविधिनैव कार्य्यम्। तथा चिद्ग्छिसन्यासिनो-म्हताइश्राद्धं पार्वणमेव।

श्रापस्तम्बः,-

एकोहिष्टं न कुर्वीत सन्यासिनां च सर्वदा।
ऋचन्येकाद्मे प्राप्ते पार्वणन्तु विधीयते ॥
सपिण्डीकरण्याद्धं न कर्त्तव्यं सुतेन वै।
चिद्ण्डग्रहणादेव प्रेतलं नैवगक्कति ॥

तत्पत्नीनामपि स्ताइत्राद्धम् । तथा प्रेतपचामावास्थ्योर्म्ताइ-त्राद्धपाते पार्वणमेवेति वच्छते। श्रथ पार्वणि कुचेऽप्येको द्दिष्टविधिः। श्रापस्तमः, —श्रपुता ये स्ता केचित् स्तियो वा पुरुषास्य ये।
तिषामिष च देयं स्थादेकोद्दिष्टं न पार्वणम्॥ इति।
तिषा च श्राद्धाचीणामिष पुत्रिष्टस्यादीनां तत्पत्नीनामिष
स्ताइश्राद्धम् सर्वकुलेस्विष एकोद्दिष्टमेव। तथा माग्निकानिमेकैः सर्वैरिष श्रामावास्थाप्रेतपचयोरिष तन्मृताहे एकोद्दिष्टमेव कार्य्यम्।
श्रनयोर्क्चणम्।

कखः, - एकसुद्दिश्य यच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं प्रकीर्त्तितम्।

चीनुहिस्य तु यत्ति पार्वणं मुनयो विदुः॥ इति।
त्रतएव पर्वण्यमावास्थायां भवं पार्वणमिति, यौगिकार्थस्य
स्ताहादौ त्रभावेऽपि पारिभाषिकपार्वणलं चिपुरुषोद्देशेन विहितलादमावास्थासाम्येन प्रयत्तम्। एवं काम्ययाद्वेष्वपि श्रीयम्।

श्रथ स्ताइखरूपम्।

थामः,— मामपत्रतिथिसृष्टे यो यस्मिन् मियतेऽहनि ।

प्रत्यब्दन्तुः,तथाभृतंःचयाहं तस्य तदिदुः॥ दति ।

त्रयैकोहिष्टश्राद्धकासः।

यामः, एक मुह्य यच्छा द्वं दैवही नं विधीयते।

एको हिष्टन्तु तल्पोक्तं मधाक्रे तल्पकी क्तिम्॥

कुतपप्रथमे भागे एको हिष्टमुपकसेत्।

त्रावर्त्तनमभीपे वा तबैव नियतात्मवान्॥ इति।

तथा च पूर्वाक्तपञ्चदग्रधा विभक्तस्य दिवसस्य, गन्धर्व-कुतपरोडिणमंज्ञकानां. सप्तमाष्टमनवमसुह्रत्तानामेकोद्दिष्टकाललेन प्रतीतावपि,— श्रारम्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादारोहिणं बुधः।
विधिन्नो विधिमास्त्राय रोहिणं तु न सङ्घयेत्॥
रोहिणं सङ्घयेसस्य ज्ञानाद्ज्ञानतोऽपि वा।
श्रासुरं तद्भवेच्हाद्धं पितृणां नोपतिष्ठति॥
दित स्रोकगौतमोकोः कुतपरोहिणावेव कर्मकास्त्रेन व्यवस्थितौ।
श्रत एव,— सुह्रक्तीत् सप्तमादूर्द्धं सुह्रक्तीद्शमाद्धः।
दित शिष्टाः।

कुतपलचणं वायवीये,-

दिवमसाष्टमे भागे मन्दीभवति भास्तरः।

स कालः सुतपो ज्ञेयः पितृणां दत्तमस्यम्॥

इति। तथा च तन्मुह्रत्तंदययापिनी तिथिरेकोहिष्टे ग्रास्त्रैव।

तच षोढ़ाभेटे मित पूर्वेद्युरेव तद्वाप्तौ न मन्देहः। परेद्युरेव

तद्वाप्तौ परेद्युरेव। समयच तद्वाप्तौ सभयच तद्वाष्ट्रभावे वा

पूर्वेद्युरेव।

तच हारीतः,-

त्रपराक्तः पितृषान्तु यापराक्तानुयायिनी।

सा गाह्या पित्रकार्ये च न पूर्वाक्तानुयायिनी॥

वृष्टकानुः,—यस्थामसं रितर्याति पितरस्तामुपासते।

तिथिस्तेभ्यो यतो दत्ता द्यपराक्तः स्वयंभुवा॥

वौधायनः,—उदिते दैवतं भानौ पित्र्यंञ्चास्तिनिते रवौ।

दिमुहत्तें निरक्त्य सा तिथिईव्यक्रव्ययोः॥

द्वाद्यपराक्तमायाक्तास्तमयवाप्तिविषयसामान्यवचनवस्तात्।

तथा जभयवाप्तिपचे मनुर्पि,—

द्याक्रवापिनी चेत् सान्गृताहे तु (१)वया तिथिः। पूर्वविद्धैव कर्त्तवा चिमुहर्त्ता भवेद्यदि॥

खमयदिने साम्येनेकदेशक्याशौ तिथेः साम्ये च रही च पर-दिने आह्म। तिथेः चये तु पूर्वेद्युः आहूं, पूर्वादाचतखर्वादि-वचनात्। तदचनस्य दैविपश्चसाधारस्थेन निर्णीतलात्। खमयदिने वैषम्येसैकदेशक्याशौ यहिने महती क्याप्तिः, तिहने एव आहुम्। महतेन निर्णयः पार्वस्त्राह्वे वक्तवः॥

> इति एको द्दिष्टश्राद्धकास्त्रिणियः। त्रय पार्वणश्राद्धकासः।

तच यथाकालप्राप्तश्राद्धिवषये "श्रपराक्तः विद्यणान्तु" इति धारीतोक्तिः, "यस्यामस्तं रिवर्याति" इति वहत्रमृक्तिः "छिदते दैवतं भागविति" बोधायनोक्तयः साधारस्येन पूर्वमुक्ताः "श्रपर्दाक्तः पिद्यणां" इति श्रुतिस्र (१)।

रह्मगौतमः, - मधाज्ञवापिनौ या सात्येकोहिष्टे तिथिभवेत्। रति,

त्रपराक्रयापिनी या पार्वणे सा तिथिभवेत्॥ इति।

तथा चापराक्ष एव पार्वणश्राद्धकालः। श्रपराक्षसु पञ्चद्रमधा-विभक्षस्य दिवषस्य दममैकादमदादमात्मकः चतुर्थी भागः। नतु मनुना तु,—

तथा श्राद्धस्य पूर्वाझादपराझी विशिष्यते। रति दिवशापरार्द्धमेवापराझलेनोक्रम् रति चेत्, उचाते।

<sup>(</sup>१) यदा।

कदाचित् कार्य्यवज्ञात् पार्वणश्राद्धस्य महसा कार्य्यते मित दिवसा-परभाग एव कार्य्यतं न पूर्वभाग दत्यचेव तात्पर्यम्, तद्दचनस्रोति बोध्यम्। यच्च,—

त्रक्षो सुहर्त्ता विख्याता दग्र पञ्च च सर्वदा।
तचाष्टमो सुहर्त्ती यः स कालः कुतपः स्रतः॥
त्रष्टमे भास्करो यसान्यन्दीभवति सर्वदा।
तस्मादनन्तपलदस्तचारभो विशिय्यते॥
कार्द्वे सुहर्त्तात् कुतपात् यन्युहर्त्तचतुष्ट्यम्।
सुहर्त्तपञ्चकं वापि खधाभवनमिय्यते॥

द्ति मात्योकौ यथाकालप्राप्तश्राद्धविषये कुतपस्य प्रारम्भकालल-मुक्का नवमादिगुइर्त्तानां श्राद्धकाललगुक्तम् । तेन मध्याक्रमम्बन्धि-नमपि नवमगुइर्त्तमादायैवामावास्थेतरपार्वणश्राद्धकालो निर्णयः ।

त्रत एव ऋसदेशीयशिष्टाः,—

पार्वणस्य<sup>(१)</sup> तु सुहर्त्ताः पञ्च ये परिकीर्त्तिताः । तेषां परेऽष्टमाच्छसा श्रष्टमस्तदसभावे ॥ दति ।

तथा च मित श्रमावास्थेतरपार्वणेऽधिकं नवममुह्र्त्तस्य प्रवेशो न प्रकृतापराक्रस्य दानिः। किञ्च, मप्तमात् परतः दति यदम्प-देशीयशिष्टैः प्रागुक्तं तदप्यष्टममुह्र्त्तस्थारमाभिप्रायमित्यवधेयम्। तच षोढा भेदा उच्चेयाः। तच पूर्वेधुरेव तादृशापराक्रस्याप्ती पूर्वेधुरेव। परेधुरेव तद्वाप्ती परेधुरेव श्राद्धम्। दिनदयेऽप्यपराक्र-स्थाप्ती पूर्वेधुरेव। "मुख्यं वा पूर्वचोदनेति" जैमिनीयन्यायात्,

<sup>(</sup>१) पावंगस्य मुझत्तांस्त पश्च ये परिकौत्तिंताः।

दयाच्यापिनीत्यादि मनूक्षेत्र । दिनदयेऽपीति संग्रर्डक्तौ स्कुटलाच । यदा दिनदयेऽप्पपराक्ते याष्ट्रभावस्तदा पूर्वेद्युरेव । तत्र मतुः,— "यस्थामसं रविर्यातीत्यादिना" ।

गिवर्ह्यभौरपुराणयोर्पि,—

प्रायः प्रातस्पोच्या हि तिथिदैंवफलेपुभिः। मूलं हि पिल्लस्प्र्थं पैन (१) ञ्चोकं महर्विभिः॥

मूलं तिथिमूलम्। "पैत्रं मूलं तिथेः प्रोप्तं ग्रास्त्रज्ञैः काल-कोविदैः"। इति नारदीयोक्तेः।

यामः, न्यद्भास्तमनवेत्तायां कत्तामाचापि या तिथिः।
सेव प्रत्याब्दिने त्राद्धे नेतरा पुष्पद्यानिदा॥
नारदीये, पारणे मरणे नॄणां तिथिस्तात्कात्तिकी सृता।
पित्येऽस्तमनवेत्तायां सृष्टा पूर्णा निगद्यते॥

दति साकस्त्रमपि प्रतिपादितम्। गोभिसः,— सायाक्रयापिनी या तु पार्वणे सा उदाह्यता।

भिवर इस्प्रवृद्धविक्तनार दीयसीर पुराणेषु,— दर्भेश्च पूर्णमासञ्च<sup>(२)</sup> पितः साम्बत्सरं दिनम्। पूर्वविद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते॥

ननु अपराक्ष्याष्ट्रभावे परेद्युः कुतपकाले मलात्तिहिन एवाम्त दित चेन्न, पूर्वेद्युक्तिथिमूललास्त्रमययाप्तिरूपग्रणदयमङ्गावात्, कुतप-स्थारभकाललेनोपादानात् यवस्थापकलाभावाच । यदा दिनदये वैषस्येणैकदेशयाप्तिस्तदा यद्दिने महती याप्तिस्तद्दिन एव आद्धम् ।

<sup>(</sup>१) पैत्यं।

दिपराक्रवापिनी चेदाब्दिकसः यदा तिथिः।

महती यच तिद्धां प्रशंपन्ति महर्षयः॥

दित मरीचुकः।

दिनद्वेऽप्यपराक्नैकदेशव्याप्तौ माम्येन एकदेशव्याप्तियेत् तिव तिथेः माम्ये रह्तौ च परेखुः श्राद्धं। तिमन्नेव पचे तिथेः चये पूर्वेद्युः श्राद्धं खर्वदर्गादिवाक्यात्।

एतेन, - श्रपराझदययापिन्यतीतस्य तु या तिथि:। चये पूर्वा तु कर्त्तया रही कार्या त्रयोत्तरा॥

द्ति, बौधायनोक्तिरेतत्समानार्थिकैव। ऋतीतस्य स्तस्थेत्यर्थः। ऋत्र यत्साम्ये किञ्चिन्नोक्तम्, तद्दृद्धिपचोन्नेखेनैव चारितार्थ्यादिति बोध्यम्।

न्तु,— तिथ्यादौ तु भवेद्यावान् क्लामो रहिः परेऽइनि । तावान् गाद्यः स पूर्वेद्युरदृष्टोऽपि खक्तमीणि ॥

दति स्मृतिसुपजीय उत्तर्तिथिगतरिद्धचयप्रचेपेण क्रतस्य प्रेचाविच्छ्खामणिमाधवाचार्य्यनिर्णयस्य किमित्यनादरः क्रत दति चेत्, उच्यते ।

श्रधाः स्तिर्मू लाभावेऽपि स्वदेशाचारोपष्टकोनैव माधवाचार्ये-सादृशो निर्णयः इतः । कन्यत्रकृष्णसृतिभिक्षथाऽसादेशीयैः प्राचीनैरन्यशिष्टैरपि स्वदेशाचारविषद्धः म निर्णयो न इत दति श्रसाभिरपि नादृतः । ननु श्रस्तदेशेऽपि केश्विन्नवीनैर्भहतां माधवाचार्याणां निर्णयः कयं न स्वीकार्य्य दत्याग्रहः क्रियत दति चेत्। न किञ्चिदेतत्। यदि माधवाचार्य्यववस्था मर्वनैवादरणीया,

to me among .

तर्षि वच्छमाणामावास्त्रात्राद्धेऽपराक्रकासीनो दर्भ श्राब्दिकवनात दति पञ्चधाविभागपसमादृत्य तत्कतां स्ववस्तामनादृत्य विधा-विभागपसः किमिति तैरयाद्रियेत ।

त्रय तैर्वक्रयम्,—

येनास पितरो याता येन याताः पितामहाः। तेन गच्छेत् सतां मार्गं तेन गच्छंसरियति॥

द्ति मनूकेरमावाकायां खदेशाचार एव ग्रज्ञत दति। तर्षि खदेशाचारोपष्टमोनेव तज्ञवस्या नादरणीयेव। तसादसादेशसमा-चारविषद्धा माधवाचार्ययवस्यासादेशीयेः श्राद्धविषये नाद्रियत एव। द्रायमावास्थेतरपार्वणश्राद्धकासनिर्णयः पार्वणिभिः साम्बस्रिके योज्यः। विष्नवगादपराक्रासमावे सायाक्रेऽपि सर्वपार्वणश्राद्धकरणे-ऽप्यदोषः।

तथा च खामः, — खकालातिकमे कुर्याद्रात्रेः पूर्वं यथाविधि । बाचपादोऽपि, —

> विधिन्नः श्रद्धयोपेतः सम्यक्पाचिनयोजकः। राचेरन्यच कुर्वाणः श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम्॥ श्रेयः श्राद्धकरणोक्तफलम्।

त्रतएव सायाक्रस्य गौणकास्त्विमिति न कश्चिदिरोधः। तथा दिवारश्यस्य तस्य राचौ समापनेऽप्यदोषः। "न च नक्तवच्छ्राद्धं सुर्वित त्रारश्चे चाक्ति वा भोजनमासमापनादिति त्रापस्तम्बोक्तेः।" यत्तु स्कान्दे,— उपसन्ध्यं न सुर्वित पिष्टपूजां कथञ्चन।

स कास श्रासुरः प्रोक्तः श्राद्धं तच विवर्जयेत्॥

इति । तत् सति सभावे तत्र नादरणौयसिक्षेव परम् । किन्तु,—

> राची आहूं न कुर्वीत राचमी कीर्त्तिता हि सा। सन्ध्ययोद्दभयोश्वीव सूर्ये चैवाचिरोदिते॥

दित मनूत्रधा राज्यादिषु श्राद्धारमाः धर्वथा न (१) कार्यः। श्रजा-सम्भवपचा ये उकास्ते काम्यश्राद्धेषु नादेयाः। श्रावश्यककर्माणामेव गौणकाचाभ्यनुज्ञानात्।

तथा च मण्डनाचार्याः,-

मुख्यकाले यदावय्यं कर्म कर्त्तुं न प्रकाते। गौणकालेऽपि तत्कार्थं गौणोऽयेतादृशो मतः॥

दति । एतादृग्गो सुख्यसदृगः । तथा यव यव दिनदयापराक्ष-याप्तौ पूर्वेशुः श्राद्धं निर्णीतम् । तच केनचित्रिमित्तेन पूर्वेशुरकर्षे परेशुरव्यत्रक्षेयम् । श्रङ्गकोपादरमङ्गवेगुष्यसचनमिति तिथिग्रेष-कर्णपचोऽयं काम्यनित्योभयसाधारणः ।

तथाच, काम्यवतप्रसङ्गे माधवाचार्याः,—

मुख्यतिय्यन्तराये त तिथिशेषोऽपि यञ्चते(१)।

दित । यन्तु माधवाचार्य्येराब्दिकपरित्याने प्रत्यवायवाड-च्यादमभवे रात्रावि तदारमः कार्यः दत्युकं तदसाहेशीयैः कदाचित्<sup>(२)</sup> नाचर्यते ।

श्रख्यं जोकविदिष्टं धर्ममणाचरेत्र तु। द्ति याज्ञवक्कोकोः, "राचेः पूर्वं यथाविधि। राचेरन्यच

<sup>(</sup>१) खीकार्यः। (२) मञ्जूता । (३) कदाचिदिय।

कुर्बाणः" इत्यादि मनूत्रादेश्व। नतु तर्हि श्राब्दिकलोपः प्रमञ्चेत इति चेत्, न। श्राद्धविघ्ने कालस्य विहितलात्।

तथाच मरीचिः,—

श्राद्धविष्ठे समुत्पन्ने श्रविज्ञाते स्तेऽहिन । एकाद्यान्तु कर्त्रव्यं कृष्णपचे विशेषतः ॥ इति सर्वविष्ठोदेशेनोद्धा पुनर्द्रव्याद्यसम्पत्तौ, म एव,—

त्राद्धविष्ने ममुत्पन्नेऽविज्ञाते च स्तेऽइनि । कुर्याद्नेन कष्णायामेकाद्यां विधुचये॥

विधुचये दर्शे। एतस्त्रः श्वेतादयामसभावे "दर्शे वापि मनी-षिणः", इति स्रत्यन्तरात्।

कार्णाजिनिर्धक्तमाइ,-

श्रापन्नोऽप्याब्दिनं नैव कुर्य्यादामेन कर्षिचित्। श्रक्षेन तदमायान्तु कृष्णे वा हरिवासरे॥

इरिवासर एकादगी। तथा भार्यायां रजखबायामपि श्राब्दिकं पकान्त्रेनैव कार्यं, नामेन न इसा वापि।

तथा च लोपाचिः,—

पुष्पवत् स्विप दारेषु विदेशस्योऽष्यनिश्वकः । श्रम्भेनेवाब्दिकं कुर्याद्धेमा वासेन न कचित्॥ इारीतोऽपि,—श्राद्धविन्ने दिजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्त्तितम् ।

श्रभावास्त्रादिनियतं माससम्बत्धराष्ट्रते ॥

मार्षं मासिकं सम्बत्धरमान्दिकं दत्यर्थः । एवमन्यान्यिप हेमामश्राद्धविधायकवचनानि श्रान्दिकेतरपराष्येव । ननु,— श्राब्दिने समनुप्राप्ते यस भार्या रजस्ता।

पञ्चमेऽइनि तत्कार्यं न तत् कुर्यान्मृतेऽइनि ॥

दत्युक्तेः का गतिरिति चेत्, उच्यते,

श्रपुत्रा तु यदा भार्या संप्राप्ते पत्युराब्दिने ।

रजस्त्रचा भवेत् सा तु कुर्यात्तत्पञ्चमेऽइनि ॥

दिति श्लोकगौतमोक्तिसमानार्यमेवेति वोध्यम् । नेवलं चन्द्रसूर्योपरागदिने श्राब्दिकपाते श्लामेन देखा वा तच्छाद्धं कार्यम् ।

तथाच गोभिलः,—

दर्भे रिवयक्वे पित्रोः प्रत्याब्दिकमुपिस्थितम्। श्रत्नेनामभवे हेमा कुर्यादामेन वा सुतः॥

द्र्ये रिवयहणे तत्पूर्व्यामचतुष्के पाकाभावादकासभवा-दामेन हेका वा आद्भकरणं, मुक्काननरं आद्भकाक्षमभवे पकाचेनैव तत्करणं खतःसिद्धमेव दत्यभिप्रायः। चन्द्रग्रहणे तु ग्रहणात् पूर्वं पौर्णमास्यां कदाचित् आद्भकाक्षमभवे पकाचेनैव, कदाचिद्सभवे तु तचापि हेक्षामेन वाब्दिकआद्भम्।

तथा च बौधायनः.—

श्रम्नाभावे दिजाभावे प्रवासे पुत्रजनानि । हेमत्राद्धं संग्रहे च दिजः शृद्रः स्टाचरेत् ॥ इति । श्रातातपोऽपि,—

श्रापद्यनग्नौ तीर्थं च चन्द्रसूर्यगडे तथा। श्रामश्राद्धं दिजो दद्याच्छूद्रो दद्यात् मदैव हि॥ एवमादिवाक्यानि विश्वनाथमिश्रादिभिरचैव जिखिला एवं यस्तास्ति तन्त्रे यावत् सान्नोदयस्तन नान्नीयादित्यमनिषेधाद-नापि बाह्मणामभवेन हेन्नामेन वा सुर्व्वादिति सप्टमुक्तम्। श्राद्धा-नन्तरं प्रतिपत्तिकर्मणः स्वभोजनस्यायभावादित्यसमितिवसरेण।

त्रामादिसचणमाच विशिष्टः,-

ग्रस्थं चेचगतं प्राष्ठः सत्यं धान्यसुच्यते ।
श्रामं वित्यमित्युक्तं खिन्नमन्तसुदाइतम् ॥
श्रागोचेन विघ्ने तु श्रागोचगतदिन एवाब्दिकम् ।
तथा च च्य्यप्रहन्नः,—

श्राब्दिके चैत्र संप्राप्ते श्राभीचं जायते यदि।
श्राभीचे तु व्यतिकान्ते तेभ्यः श्राद्धं प्रदीयते॥
तथा— ग्राचिभ्रतेन दातव्यं या तिथिः प्रतिपद्यते।
सा तिथिस्तस्य कर्त्तव्या न लन्या वे कदाचन॥
श्राभीचानन्तरदिनेऽपि विव्रे तदुत्तरदर्भे श्राब्दिककरणम्।
तदाइ गोभिस्तः,—

देये प्रत्याब्दिके श्राद्धे लन्तरा स्तस्तके।
श्रेणीयानन्तरं कुर्य्यात् तन्मायेन्दुचयेऽपि वा॥
रन्दुचयेऽमावास्थायाम्। देयेऽवस्यकर्त्त्रये। श्रेणीयान्तरिने
मस्तमायपाते तु मस्तमायानन्तरभाविद्र्ण एवाब्दिकम्।
मस्तमायस्तानान्तु श्राद्धं यस्तिवत्यरम्।
मस्तमायेऽपि कर्त्त्रयं नान्येषान्तु कदाचन॥
रति पैठीनस्त्रक्तेयीं यस्मित्मस्तमाये स्ततः कास्तान्तरे तस्मिन्नेव
मस्तमाये यति तस्यैव तत्र श्राद्धमिति। मस्तमायप्रकर्णे सस्यिन-

चारितलात्। श्रद्धेण तु त्रब्दिकमि त्रामेनैव इसैव वा कार्यं, न मर्व्वया पकानेन।

तथा च गालव:,-

तीर्चेऽनग्नावापदि च देशभङ्गे रजस्वि । हेमश्राद्धं दिजः कुर्याच्चूदः कुर्यात् मदैव हि॥

शातातपादिवचनमणुक्तम् । श्रृद्रः सदैव हीत्युकेः सतरां श्रृद्रस्य दर्शादिशाद्धं वच्छमाणप्रेतश्राद्धानि च हेम्बामेन वा। हेमामयोर्विकच्यो ब्रीहियववत् समवन्तः।

नतु,— त्रामत्राद्धन्तु पूर्व्वाक्त एकोदिष्टन्तु मध्यमे । पार्व्वणञ्चापराक्ते तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ॥

दित प्रातातपोक्तेरपराक्षं वाघिला पूर्व्वाक्ष एव श्रामश्राद्धं विहितमिति चेत्र। एवमादिवाक्यानां कन्यतस्प्रस्तिष्वनादृत्त्वेनानुष्ठानक्षचणाप्रामाण्यात्, दित वहवः। वस्ततस्त प्रायिश्वनदानादौ श्रामद्रयकवैण्णवश्राद्धविषयत्नेनास्य वाक्यस्थोपपित्तः। दानस्य दैवत्नेन पूर्व्वाक्ष एव कर्त्त्रयत्ते तदङ्गस्य श्राद्धस्य सतरां तच विधानात्। श्रन्यचाय्येवमृद्धम्। एवच्च सति कालादर्श्वे महता प्रवन्धेनासिन् विषये यित्तिखितं तस्यव्वं निरस्तमेव। तथा च श्रामश्राद्धं यच यच प्रसन्नं स्थात् तच तचापराक्षादिकाल एव कार्यं न सर्व्यथा पूर्व्वाक्षे। श्रद्धस्य तु सतरामपराक्षाद्विवाल एव कार्यं न सर्व्यथा पूर्व्वाक्षे। श्रद्धस्य तु सतरामपराक्षाद्विवा हेमश्राद्धन्तु प्रत्येकं पित्वनुद्दिश्य हिरण्योत्सर्गमाचम्। तचितिकर्त्त्व्यतायाः कैरण्यक्रिस्तनात्।

दत्यामश्राद्धनिरूपणम्।

## श्रयाज्ञातस्ताहादिनिर्णयः।

प्रवासमृतस्य मासाधाजाने वृहस्पतिः,—

यदा मासो न विज्ञातो विज्ञातं दिनसेव तु।
तदा ह्यापाढ़के मासि माघे वा तिह्नं भवेत्॥
न ज्ञायते मृताइश्चेत् प्रोधिते मंस्थिते सित।
मासश्चेद्य विज्ञातसाइर्गे च तथाब्दिकम्॥
दिनमासौ न विज्ञातौ मरणस्य यदा पुनः।
प्रम्यानमासदिवसौ पाद्यौ पूर्व्वोक्तया दिगा॥
भवियो,— दिनसेव तु जानाति मासं नैव तु यो नरः।

मार्गशीर्षे तथा भाद्रे माचे वा तिह्नं भवेत्॥

पूर्वितिया दिगेति स्ताहाद्यज्ञाने यथा व्यवस्था तथानापीत्यर्थः। तेन प्रस्थानमामदिनज्ञाने तद्ग्रहणं। प्रस्थानमाममानज्ञाने
तन्मामीयदर्गस्य ग्रहणम्। प्रस्थानितिथिमानज्ञाने त्राषाढाद्यन्यतममामेषु तस्थास्तिथेर्ग्रहणम्। मर्णमाममरणदिनप्रस्थानमामप्रस्थानदिनानां मर्विषामज्ञाने तु अवणदिने तद्मभवे अवणमासम्बन्धिदर्भे
आद्भम्। तदाह प्रचेताः,-''अपरिज्ञाते स्तेऽमावास्थायां अवणदिवसे वेति"। स्ते स्ताहे।

नैमित्तिकत्राद्धे मघायोगेऽपि (१)पिण्डदानम्,— स्टते नैमित्तिकं काम्यं त्राद्धं यस्त मघेऽहिन । द्यात्तञ्ज्येष्ठपुत्रस्य नागः स्वादिति निद्धितम् ॥ दति कार्ष्णाजिन्युकेः, त्राद्धपदमत्र पिण्डदानपरम् ।

<sup>(</sup>१) मघायोगे पिगडदानं।

ऋते नैमित्तकं काम्यं श्राद्धं यस्तु मघेऽहिन । दद्यात् पिष्डच तसीव ज्येष्ठपुत्रो विनय्यति ॥

दति स्रत्यन्तरात्। दति नैमित्तिकलेन खितसाब्दिकस्य एको दिष्टपार्वणभेदेन काखौ निरूपितौ। त्रयमापराक्तिकत्राद्ध-काखोऽमावास्थान्यतिरिक्तसर्वपार्वणत्राद्धेषु ज्ञेयः। सपिष्डीकरणान्न-प्रेतत्राद्धानां रुद्धित्राद्धस्य नैमित्तिकलेऽपि प्रयगुपादानान्नाच तिस्रिखितम्।

### त्रय काम्यश्राद्धकालाः।

विणु:,—मादित्यभंकमणं विषुवद्दयं विग्रेषेण।यनदयं खतीपातो जनार्चमभ्यद्ययः,—

> एतांस्तु श्राद्धकालान् वे काम्यानात्त प्रजापितः। श्राद्धकेतेषु यद्त्तं तदानन्याय कल्पते॥

विषुवती, सेषत् सामंकान्ती, श्रथनद्यं, मकरकर्षट मंक्रान्ती, रिविषंक्षान्तिपदेनेतासं<sup>(१)</sup> प्राप्ताविष पुनर्गद्यं फलातिश्रयार्थम् । दृदं मंक्रान्तिश्राद्धं यद्दिने दानं भवेत्तदिन एव, श्राद्धस्य दानल-निर्णयात्।

त्रय रवादिवारेषु रहस्पतिः,—
त्रारोग्यञ्चेव मौभाग्यं प्रत्रूणाञ्चापराजयः।
मर्वान् कामान् प्रियां विद्यां धनमायुर्यथाकमम्॥
सूर्यादिषु वारेष्वेतच्छाद्धकसभते फल्लम्।
ववादिकरणेष्वेवं त्राद्धकसभते चणम्(१)॥

<sup>(</sup>१) रिवसंक्रान्तिपदेनैव तासां। (२) फलं।

तथा प्रतिपत्प्रसृतिषु याज्ञवस्काः,—

कन्याः कन्यावेदिनस्य पश्चद्रस्यं सुतानिष । द्यूतं कृषिश्च बाणिज्यं दिग्रफ्रीकग्रफांस्त्रया ॥ ब्रह्मवर्चस्विनः पुचान् स्वर्णरीय्ये स्कूर्यके । श्वातिश्रेष्ठ्यं सर्वकामानाप्रोति श्राद्धदः सदा ॥ प्रतिपत्प्रस्तिस्वेकां वर्जियत्वा चतुर्द्शीम् । ग्रस्तेण तु इता ये वै तेषां तच प्रदीयते ॥

कन्यावेदिनो, जामातृन्, पग्नवोऽजादयस्तद्रूपं द्रवं, द्यूतं, द्यूतं, चूत-जयमित्यर्थः । क्रविवाणिज्ये तयोर्षाभौ । दिग्रपाः, गवादयः । एकप्रपाः, त्रश्चादयः । ब्रह्मवर्चस्विनः ।

वृत्ताध्ययनसम्पत्तिरियते ब्रह्मवर्षसम्।

द्रत्यूक्रतेजोयुकान् । मकूष्ये, ताम्रमीमकादिमहिते, खर्षकृष्ये । कामान् काम्यन्ते ये ते कामा दति युत्पत्था खर्गपुचपयादीन् एतानि चतुर्द्गप्रकानि कृष्णपचप्रतिपदादिष्विति विज्ञानेयुराः । "कृष्णः पित्ये विभिष्यते" दित् स्कृतेरिति तेषामिभप्रायः । चतु-द्विभीनिषेधिविचारो महास्रये लेखाः ।

श्रय कत्तिकादिनचनेषु याज्ञबस्कः,—
स्वर्ग ह्यापत्यमोजय श्रौर्यं चेत्रं वसं तथा।
पुत्रान् श्रेष्ठ्यश्च मौभाग्यं सम्हिद्धं सुख्यतां श्रभम्॥
प्रवृत्तचकताश्चैव वाणिज्यप्रस्तीनिष।
श्ररोगिलं यशो वीतशोकतां परमां गतिम्॥
धनं वेदान् भिषक्षिद्धं कूष्णङ्गामष्णजाविकम्।

भयानायुख विधिवद्यो वा त्राद्धं प्रयक्कित ॥ कत्तिकादिभरत्वनं म कामानाप्तुयादिमान्। प्रास्तिकः त्रद्धानस्य व्यपेतमदमस्यरः॥

स्वर्गा निर्तिग्रयसुखं, तेजः त्रात्मग्रह्मतिग्रयः, ग्रौर्यं निर्भय-लम्, चेत्रं द्रीद्यादिपालवत्, वलं ग्ररीरदार्थ्यं, श्रष्ठ्यं ज्ञातिषु, ज्ञाति-श्रष्ठ्यमिति पूर्विक्तेः । सौभाग्यं, जनप्रियलम्, सुख्यता श्रयणीलं, प्रवत्तच्यता प्रवत्तं चक्रं सिख् वं येन स तथोक्तस्य भावस्तत्ता श्रप्रतिस्ताज्ञेत्यर्थः । परमागितः ब्रह्मसोकप्राप्तिः ।

त्रथ योगेषु मरीचि:,—

कत्तिकादिषु खचेषु श्राद्धे यत्फलमीरितम्। दित। विद्युम्मादिषु योगेषु तदेव फलमीरितम्॥ दित। ववादिकरणे श्राद्धफलं रथादिवारवत्, तनैवोक्तम्। श्रय मन्वादिश्राद्धान्यपि काम्यानि, भविष्यमात्स्ययोः,— श्रययुक्-ग्रक्तनवमी कार्त्तिकी दादणी णिता(१)। वतीया चैनमामस्य तथा भाद्रपदस्य च॥ फाल्गुनस्यायमावास्या पौषस्यैकादणी मिता। श्रावावस्यापि दणमी माघमामस्य मत्रमी॥ श्रावणस्याप्रमी कृष्णा श्रावावस्यापि पूर्णिमा। कार्त्तिकी फाल्गुनी ज्येष्ठी चैची पश्चदणीति च॥ मन्वन्तरादयस्यता दन्तस्याचयहेतवः।

<sup>(</sup>१) सिता।

श्रव दादशी सितेति शितशब्दकृतीयायामधन्वेति । दादशी सितेति दशम्यामिति । तथा चामावास्थाष्टमीयतिरिक्ताद्याः तिथयः श्रुक्ताः, पुनः पुनस्त्रथाशब्दोपादानात् । यस्त्रव श्रय्युक्शक्तनवमी-त्यादिरुद्धगर्गोक्तौ तिथिभेद उक्तः, स सङ्क्यान्तरविषयः ।

मनादिषु फर्स मास्ये,—

हतं त्राह्वं विधानेन मनादिषु युगादिषु । हायनादिदिषाहासं पितृणां व्यक्तिमादरात्<sup>(१)</sup> ॥ भारते,— या मनाद्या युगाद्यास्य तिथयस्तासु मानवः । स्नाला ज्ञला च दला च ज्ञानन्तपसं सभेत्॥

काम्येषु युगादीनां ग्रहणेऽपि तत्र श्राद्धानां नित्यत्वमपीति अभयात्मकलात् विचारो नित्यप्रकरणे लेखाः। तथा वच्यमाणेषु श्रद्धेदियाद्यसभययोगेषु।

तथा,— त्राकामावेषु यक्काइं यबदानं यथाविधि।

उपवासादिकं यच तदनन्तफलं स्रतम्॥

द्रत्यादीनि बह्ननि काम्यश्राह्वानि तच तच द्रष्ट्यानि, विस्त-रभयाच सिख्यनो।

श्रय रहिश्राहं, तच नैमित्तिकम् । नैमित्तिकमतो वच्छे श्राह्मम्युद्यात्मकम् । इति मार्कण्डेयपुराणोकेः । तचावश्रकम् । तथाच भरदाजः,—

रिद्धिश्राद्धमङ्गला यो रिद्धिकर्म समाचरेत्।

<sup>(</sup>१) मावहेत्।

ष्टद्धिनी वर्द्धते तस्य स्वयञ्च नर्तः वजित् ॥ भारतेऽपि,—

त्रष्टका ये चाम्युद्यासीर्थयानीपपत्तयः।

पित्रणामितरेकोऽयं मासिकार्याद् ध्रुवः स्नृतः॥ इति ।

मासिकार्याद्र्यत्राद्वादित्यर्थः। एतान्यावस्त्रकानौत्यर्थः। दृद्धिः
पुचजन्मादिशुभं तच श्राद्धमिति बन्दोगपरिभिष्टविष्णुपुराणाधुक्तश्रौतस्मार्त्तविषयम्।

तथाच इन्दोगपरिशिष्टे,—

कर्मादिषु च सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः ।

पूजनीयाः प्रयक्षेन पूजिताः पूजयिनः ताः ॥

पूजयिनः ऋभ्युद्यसाधनेन श्रीणयनौति पूजाफकोकोः ।

पूजास्थानतदुपकरणानि तचैवारः,—

प्रतिमास च ग्रभास चिखिता वा पटादिषु ।
त्रिप वाचतपुञ्जेषु नैवेद्येश्व प्रथग्विधैः ॥
तच प्रतिमादिपचे स्कटिकादिनिर्मितलं, ग्राभपदोक्तेः । समाचारस्त त्रचतपूञ्जपच एव । तथा,—

कुद्यसमां वसोद्वीरां सप्तवारान् घतेन तु । कारयेत् पञ्चवारान् वा नातिनीचां न चोच्छिताम् ॥ श्रायुष्याणि च भान्यथें जप्ता तच समाहितः ।

षड्भाः पित्नभास्तदत्त आद्भदानसुपक्षमेत् ॥
तथा, असक्तद्यानि कर्माणि क्रियेरन् कर्मकारिणा ।
प्रतिप्रयोगं नैव सुमितरः आद्भक्तमं स ॥

एतदेव तत्र विद्याति,—

श्राधानहोमयोश्चेव वैश्वदेवे तथैव च । विक्तर्मणि दर्भे च पौर्णमाचे तथैव च ॥ नवयज्ञे च यज्ञज्ञा वदन्येवं मनौषिणः । एकमेव भवेत् श्राद्धमेतेषु न पृथक् पृथक् ॥

त्रतएव सोमयागे तु पुनः पुनः प्रयोगे माहपूत्रादिकं भवत्येव।
नवयज्ञोऽच त्राग्रहायणापरनामिका नवाचेष्टिः।
कर्मादिष्यित्यस्थापवादस्त्रचैव,—

नाष्टकासु भवेत्राहुं न त्राहु त्राह्मस्यते । न सोखन्ती जातकर्म प्रोषिता गतकर्मसु ॥ सोखन्ती त्रासन्त्रसवायाः सुखप्रसवार्थं विहितहोसः ।

विवाहादिः कर्मगणो य उक्तो
गर्भाधानं ग्रुश्रुम यस्य चान्ते ।
विवाहादावेकमेवाच कुर्यात्
श्राह्रं नादौ कर्मणः कर्मणा स्थात् ॥
प्रदोषे श्राह्रमेकं स्थोद्गोनिष्कासप्रविश्रयोः, ।
न श्राह्रं युज्यते कर्न्तुं प्रथमे पुष्टिकर्मणि ॥
हस्तामियोगादिषु तु षट्सु कुर्य्यात् पृथक् पृथक् ॥
प्रतिप्रयोगमन्येषामादावेकन्तु कारयेत् ।
वहत्पच्चुद्रपग्रस्वस्यर्थं परिविद्यः(१)तोः ॥
सूर्यन्दोः कर्मणी ये तु तयोः श्राह्रं न विद्यते ।

न दगायिन्यनेकेन विषमइष्टकर्मणि ॥
क्विमदष्टिचिकत्वायां न वे ग्रेषेषु विद्यते ।
मात्वपूजायामिपि<sup>(१)</sup> गणकर्मण्णपवादस्तनेव,—
गणगः क्रियमाणे तु मात्वणां पूजनं सक्तत् ।
सक्तदेव भवेच्छाद्धमादौ न पृथगादिषु ॥
यव यव भवेच्छाद्धं तव तव च मातरः ।
बाह्मे,— कर्मण्याभुद्यिके माङ्गच्यवित ग्रोभने ॥
जन्मन्ययोपनयने विवाहे पुत्रकस्य वा ।
पित्वचान्दीसुखान्नाम तर्पयेदिधिपूर्वकम् ॥
विष्णुपुराणे,—

कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशे नववेसानः । नामकर्मणि वासानां चूडाकर्मादिकं तथा ॥ सीमन्तोत्रयने चैव पुचादिसुखदर्शने । नान्दीसुखं पिद्धगणं पूजयेत् प्रयतो ग्टही ॥

चूड़ादिकं रत्यादिगन्दस्य संस्कारमाचोपसचणतादिहिर्निष्क्रम-णानप्राग्रनादिव्यपि रहित्रग्रहं।

तथा,-

यज्ञोद्वाहप्रतिष्ठासु मेखसावन्धमोचयोः । पुचजनारुषोत्सर्गे रिद्धित्राह्यं समाचरेत् ॥ इत्यच यज्ञप्रब्दोपादानात् महादानादावपि रुद्धित्राह्यं कार्यः।

<sup>(</sup>१) माल्यूजाया चपि।

एवञ्च, नानिद्या तु पितृन् श्राह्मे कर्म वैदिकमाचरेत्।
दित जातातपोक्तौ वैदिककर्मपदेन सामान्यविधिः स्पष्टः,
संक्रियेत विशेषत दित न्यायात्,।

पुरोडागं चतुर्झ् करोति, श्राग्नेयं चतुर्झ् करोति, इति उप-मंद्दारवच्छन्दोगपरिग्रिष्टादिगणितवैदिककर्मपरं बोध्यम् । ननु इन्दोगपरिग्रिष्टादौ "तथातो गोभिस्तोन्नाना" मित्यभिधानात्,

गोभिलोक्तग्रद्यमाचे रुद्धिश्राद्धं विधीयते ।

इति श्राह्वादिव्वपि तदुक्तेः । प्रसङ्गान्तिषेधो न ग्रह्मान्तरकर्म-णीति चेन्न, ग्राखान्तराधिकरणन्यायेन ग्रह्मान्तरकर्मण्यपि श्राह्य-विधिनिषेधप्रवृत्तेः ।

नेवलं तु,—

यन्नामातं स्वशासायां पारकामविरोधि यत् । विदक्षिसदुनुष्ठेयमग्निहोनादिकर्मवत् ॥

दति तदुक्तेः । षड्भः पित्रभः दत्यादीनां ग्रह्मान्तरकर्मणि न प्रवृक्तिः । तदुपरिष्टात् सुटं भविष्यति । एवं यथाश्रुतार्थावस्तितौ यानि कर्माणि विधिवभेनार्थवभेन वा एकसिन् दिने क्रियन्ते । श्राधानं होमस्, यदोत्कस्य क्रियमाणं जातकर्मादि, तत्र प्रतिकर्म-मात्वपूजादिनान्दीसुखश्राद्धान्तकर्मणामारभ्याचारः (१) संगच्छत एव । श्रत एवोत्कस्यैकदिनक्रियमाणेषु कर्मस तत्र न्यायेन सक्रत्करणमिति यद्माचीनैरपि केश्विक्षिखितं तत् केरपि नाद्रियते ।

तत्र कर्तृनिरूपणम्,—

<sup>(</sup>१) चारुचाचारः।

स्विष्टिभ्यः पिता दद्यात् स्तर्गस्कारकर्मस् ।

पिष्डानोदद्दनात्तेषां तस्याभावेऽपि तत्कमात् ॥ इति ।

श्वा उदद्दनादित्यचाङोऽभिविध्यर्थता, कन्यापुचविवादेष्टिति
विष्णुपुराणोकोः । तथाच विवादमभिव्यायेत्यर्थः ।

तत्र,-नान्दीश्राद्भविधं कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे बुधः ।

त्रत ऊर्ड सतः कुर्यात् खयमेव तु नान्दिकम्॥ दित सृतेः। सृतसंस्कारकमंस्तियुक्तेश्च पुत्रस्य संस्कारक्षपप्रथमिववाद्य एव पिता कुर्यात्। दितीयादिविवादेषु पुत्रः खयमेव, जीवित्पादक त्राद्धविग्नेषाधिकारप्रतिपादक वच्छामाणद्वारीतोकः। पितरि जीवव्यपि पितामद्वादीनां नान्दीत्राहं कुर्यादिति सिहं। एवं पुत्रमातामद्वादीनां दितीयादिविवादे नान्दीसुखत्राह्मितिच सिहं। तत्र परिणिष्टं वाक्यं वच्छाते। एवं सति खिपत्रस्य दत्यत्र खण्रब्देन सुतमातामद्वादिव्यादितः तस्य पितुरभावे तत्क्रमात् संस्कार्यपुत्र दृष्टिचादिकमात् संस्कार्यपिचादिस्थो माचादिस्थोऽपि द्या-दित्यर्थः। त्रतप्व,

भाता वा भात्युची वा मिपण्डः ग्रिष्य एव वा। मद्रपिष्डकियां कला कुर्योद्भ्युद्यं ततः॥

दति सघु हारी तो क्रेश्वीचा देः कन्याप्रदले उपनयन कर्नृते वा विवाहोपनयना वर्षे मंस्कार्यक न्यापुचादि पित्र मात्र मिण्डी करणं कता मंस्कार्य पिचादिभ्यो दशादा भुद्धिक श्राद्ध मिति गम्यते । तसात् पितु कपरमे मंस्कार्य पिचादिभ्य एवा भुद्धिकं श्राद्धं दशादि ति मिद्धं । वायवीये,— . श्रवष्टकासु हङ्को च गयायां च म्हतेऽइनि । श्रव मातुः पृथक् श्राह्मम्यव पतिना सह ॥ गौतम्मातातपौ,—

मात्रशाहुं तु पूर्वे खात् पितृषां तदनन्तरम् ।
ततो मातामद्दानां च दृद्धौ श्राह्मत्रयं सृतम् ॥
चिष्वपितेषु युग्गांस्तु भोजयेत् ब्राह्मणान् ग्रुचिः ।

तथाच, नवपुरुषाताकमाभुद्धिकं श्राद्धम्। एवं सति षड्भ्यः पित्रभ्य दृत्युक्तिन्छान्दोग्यविषयेवेति श्रेयं।

> न योषिद्धाः पृथग् दद्यादवसानदिनादृते । स्वभक्तृपिष्टमाचेभ्यसृप्तिरासां यतः स्रता ॥

दित बन्दोगपरिशिष्टोक्यन्तरेण तत्स्तीणां साम्बस्रिकश्राद्धं विना श्राद्धान्तराभावात् । श्रव पित्यितामद्यपितामद्यानां ना-न्दीसुखनामकता। तथाच, कात्यायनसूत्रम्,- "नान्दीसुखाः पितरः पितामद्याः प्रिपतामद्याय प्रीयन्तां दित न खधां प्रयुक्तीत युग्मा-नाग्रये"दिति । श्रव पितर दत्यादीनासुपज्जणलान्मात्वर्गस्य मातामद्वर्गस्य च नान्दीसुखनामकलम् । "श्रय नान्दीसुखेभ्यस्य मात्रभ्यः श्राद्धसुत्तमं" दित मात्स्योक्तेः, "नान्दीसुखेभ्यः पित्रभ्यः पितामहेभ्यः प्रिपतामहेभ्यो मातामहेभ्यः प्रमातामहेभ्ये वद्ध-प्रमातामहेभ्यः प्रीयन्तां" दिति गोभिनसूत्रञ्च ।

यत्तु, ब्राह्ममात्ययोः,—

पिता पितामश्यीव तथैव प्रपितामशः। चयोऽयत्रुमुखास्रेते पितरः परिकीर्त्तिताः॥ तेभ्यः पूर्वतरा ये च प्रजावनाः सुखैधिताः । ते त नान्दीसुखा नान्दीसमृद्धिरिति भण्यते ॥ ये खुः पितामहादूर्द्धं ये खुर्नान्दीसुखास्तिति । प्रसन्नसुखमंज्ञास्त माङ्गसीया यतस्त ते ।

दित यत् रुद्धिपितामहादीनां नान्दी मुखलमुत्रम् । तत्पिचा-दिषु चिषु जीवत् रद्धप्रियामहादिचयाणां त्राम्युद्यिकत्राद्धं कार्यमित्येवं परं ज्ञेयमिति कन्यतक्काराः। म। हपूजावसोद्धारायुख-मन्त्रजपनान्दीमुखत्राद्वानां पर्त्यरममश्रेलेन नान्दीमुखत्राद्वस्था-वम्यकलात्, रति नान्दीसुखत्राद्भस्य मात्रपूत्रापूर्वकलं दन्दोगप-रिशिष्टादौ सक्तमेव। श्रतएवाच विप्रमिश्रेः पिचादिचिके श्रीवति न नान्दीमुखश्राद्धं नेवलं मालपूजामाचं कार्यमिति यक्तिखितं तद्दूरा-पासं। चिषु जीवत्स विष्णुना पार्वणनिषेधात् विक्रतिलाच रहि-श्राद्धस्थिति नारायणभाय्ये यिक्कितितं तदपि न इविरं त्राह्यादि-वाकास विजेवविधिलेन कन्यतर्कार्याखानादाचार्विरोधाच। एवं माचादिचये जीवति उपरितनपुरुषचयस्य याद्धं। एवं माता-महादि चिकस्यापि । एवं च तच कस्यचिनारणे उपरितनपुरुषं प्रवेश्व आद्भं कार्य्यम् । तद्भविक्ये, "पुर्वोक्तः काल" दति यदुक्तं, तच प्रथम-मुहर्त्तादूर्डी मुहर्त्तचतुष्टयविमिति ज्ञेयम् । तच्छाद्भवानः गातात-पौये,- "प्रातर्रेद्धिनिमत्तनं" इति पूर्वेमुक्तः ।

मात्यो,— उत्सवानन्दमन्ताने यज्ञोदाचादिमङ्गले ।

मातरः प्रथमं पूज्याः पितरसादनन्तरम् ॥ ततो मातामहानाञ्च विश्वेदेवांस्त्रथैव च। त्रव यद्यपि प्रातातपाद्युक्तविधिर्स्ति। तथापि त्रप्रको पिष्डदानिहर्ष्यदानब्राह्मणभोजनोत्धर्गाणां उक्तलात्, त्रष्टब्राह्मणभोजनोत्धर्गाणां उक्तलाच त्रष्टब्राह्मणभोजनोत्धर्गमाचरिना ग्रिष्टाः।
ग्राम्युद्यिकश्राद्धस्य नेमित्तिकलेऽपि सत्यो नान्दीमुखे वस्तरिति
वच्चमाणवाक्यात्सत्यवसुमंज्ञयोर्विश्वदेवलं। त्रष्टब्राह्मणभोजनं कृत
दित चेत्, उच्यते। त्रिष्ययेतेष्विष्युक्तरेकैकमेकैकस्य दौ दौ
चौस्तीन् वा दृद्धौ फलभूयस्त्वमिति त्राश्वकायनसूचे दौ दाविति
त्राम्युद्यिकश्राद्धविषयमिति कन्यतस्थास्थानाद्ष्टपार्वणाद्ययुग्यब्राह्मणनियमादिति स्नृत्यन्तरात् पार्वणे श्राद्धे काम्ये त्राम्युद्यिके
दत्यभिधानाच । माचादिचिकस्य पिचादिचिकस्य मातामहादिचिकस्य च श्राद्धस्थानेषु प्रत्येकं भोजनद्वयं भोजनद्वयं भोजनद्वयमिति भोजनद्वद्वं विश्वदेवानां स्थाने भोजनद्वयं भोजनद्वयमिति भोजनद्वद्वं विश्वदेवानां स्थाने भोजनद्वयं मिति त्रष्टभोजनानि सिद्धानि। सभवे उक्तविधिना करणं समीचीनम्। नाच
तिथिदैधविचारावकाणः दृद्धिदिन एव तदिधानात्।

रात्रो स्नानं न सुर्वीत दानश्चेव विशेषतः।
नैमित्तिकन्तु सुर्वीत स्नानं दानश्च रात्रिष्ठ॥
यत्रे विवाहे बात्रायां तथा पुस्तकश्चने।
दानान्येतानि श्रस्तानि निश्चि देवास्ये तथा॥

दति भविष्योक्ते रात्रौ विवाहे रुद्धिश्राद्धं प्राप्तमिप दिवैव समाचरिन्त । भविष्यदिवाहस्य दिवसस्य निमित्तलाद्राचिष्रसङ्गा-भावात्, प्रातर्रेद्धिनिमित्तकमिति कालविधानात् रात्रौ श्राद्धस्य निषेधलाच । ददं रुद्धिश्राद्धं यलामाधं क्रियते तत्र दैवादिन्नपाते पुनर्यसिन् दिने विवाहादिकर्मकरणं, तिह्ने तदङ्गानां माल-पूजावमोधीरायुख्यमन्त्रजपटिङ्किश्राद्वानां पुनः करणम्।

प्रधानस्वाक्रिया यच साङ्गंतत् क्रियते पुनः।
इति इन्दोगपरिभिष्टोक्तेः।

श्रय षिपाङीकरणविचारप्राप्ती तस्वैकादग्राश्वादिश्राद्भपूर्व-कलात् एकादग्राश्वादिश्राद्भान्युचान्ते।

याज्ञवस्कारङ्कणातातपौ,—

म्हतेऽइनि तु कर्त्तव्यं प्रतिमामञ्च<sup>(१)</sup> वत्सरम् । प्रतिमन्तस्त्रेचनाथमेकाद्गेऽइनि ॥

श्रवादः गब्दस्य तिथिपर लेनेव स्तितियो मामिकान्याब्दिकं च। श्राचश्राद्धं तु एकादग्राद्द एव, तच सावनमासोकः (१)। श्रत-एव नैपचिके च न तिथिदैधविचारावकाशः।

इन्दोगपरिगिष्टे,-

द्वाद्म प्रतिमास्यानि श्राद्यं वाएमाधिके तथा।
सपिएडीकरण्झैव श्राद्धान्येवन्तु योड्म ॥
श्रव वाएमाधिके जनवाएमाधिको न वार्षिके।

एकाहेन तु षएमामा यदा खुरपि वा चिभिः। न्यूनाः मम्बल्परयेव खातां षाएमामिके तदा॥

इति तदुकोः । षण्मामदयान्तिकयमाणतथा षाण्मामिक इति नारायणभायो । षाण्मामिकयोः चिदिनन्यूनलात् वाक्यान्तरोक्तदि-दिनलपचौ नादियेते ।

<sup>(</sup>१) प्रतिमासं तु।

<sup>(</sup>२) सावनमानोक्तेः।

दादग प्रतिमास्मानि त्राद्यं षाएमासिके तथा। वैपिचकाब्दिके चेति श्राद्धान्येतानि षोड्ग ॥ इति जातुकार्यन,—

ऋर्वाक् सपिण्डीकरणात् कुर्याच्छ्। द्वानि घोड्ण । इति पैठीनसिना,—

त्राद्धानि घोड्य कला नैव कुर्यात् सपिण्डनम् । इति गोभिलेनापि चैपचिनं प्रवेग्य सपिण्डीकरणं त्यक्का घोड्यत्राद्धानि उक्तानि । यनु,—

दादगाहे चिपचे वा षण्माचे माधिकाब्दिके।
आद्धानि षोड़गैतानि संस्तृतानि<sup>(१)</sup> मनौषिभिः॥
दित व्यासोक्तौ दादगाहोपादानं तदेकादगाहे दैवादाद्यप्रेतैको दिष्टश्राद्धकरणे बोध्यम्।

एकाद्गेऽिक कुर्वीत प्रेतसृहिया भारत । दाद्गे वाक्रि कुर्वीत श्रनिन्दे लथवाइनि ॥ दित कौर्मोक्रे: । यञ्च,—

जनवाएमाधिकं षष्ठे माखाद्ये चोनमाधिकम् ।
चैपचिकं चिपचे खादूनाब्दं दाद्गे तथा ॥
दति गाचनोकौ जनमाधिकोपादानं तदेकादग्राद्य दादग्राद्य वा नामान्तरम् ।

मरणात् दादगाचे सानासूने चीनमासिकम्।

<sup>(</sup>१) संस्कृतावि।

द्ति गोभिलोत्रोः। एतत् कालादर्गेऽनुमन्धेयम्। श्रनयैव दिगा श्रन्यान्यपि वाक्यानि समाधेयानि ।

सिपिष्डीकरणाद्वीक् यानि श्राद्वानि षोड्ग ।

एको द्दिष्टविधानेन कुर्यात् धर्वाणि तानि च ॥

सिपिष्डीकरणादूर्द्वें यदा कुर्यात्तदा पुनः ।

प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात् तथा कुर्यात् म तान्यपि ॥

रित पैठीनस्काः सिपिष्डीकरणश्राद्वपूर्वश्राद्वानां पूर्विकौको दिष्टकालवत् कालव्यवस्था । माग्नेस्त तद्दाहावध्येव चिपचानां
सर्वकर्म कार्यम ।

तथा च जातुकर्षः,—

ऊर्ड निपचात् यक्काद्धं स्ताइन्येव तङ्गवेत् । श्रधसात्कारयेद्शीमान् (१) श्राहिताग्नेर्दिजकनः ॥ कन्दोगपरित्रिष्ठेऽपि,—

त्राद्धमग्निमतः कार्यं दाहादेकादगेऽहिन । इति । त्रिनः,— प्रेतार्यं स्त्तकान्ते तु ब्राह्मणान् भोजयेद्ग्र ।

श्राद्यश्राद्धनिमित्तेन चैकमेकादश्रेऽहिन ॥
सत्यवतः,— एकादश्रेऽक्कि प्रातक्त्याय प्रेतार्थमेकादशवाद्याणानामक्त्रं
मध्याक्के नानाभद्धरसपानाद्येः भोजयिला विधिवत् पिष्डदानं। यथा
श्रिप्रहोचं जुहोति यवागुं पचतीत्यत्र पाठकमादर्थक्रमोवस्रवत्तर-दति न्यायात् यवागुपाकानन्तरमग्निहोच्होमः तददचापि श्राद्धा-नन्तरं दानं दला दश्रदानपाचाणां भोजनिमत्यर्थः। श्रीरामायणे

<sup>(</sup>१) कारयेदाहादाहिवाधिं।

श्राद्धाननारमेव नानादानानि प्रतिपादितानि । तचादौ नग्नाच्छा-दनम् ।

प्रेतस्याच्छादनार्थन्तु प्रथमं वाससी ग्रुभे ।
दलान्यानि च देयानि प्रेतकालोचितानि च ॥
दति पैठीनस्युक्तेः । ग्रुभे नवे । ततो स्वतग्रय्यादानं भवियोचरविधिना । विस्तरभयात् स न लिखितः ।
स्मृतिः,— गोभ्रहिर्ण्यवासांसि दीपमन्नं जलं तिसाः ।
ग्रय्या प्रपानकं चैवं प्रेतदानानि वै दग्र ॥

भवियोत्तरविणुधर्मात्तरयोः,-

वस्तयानाश्वगोश्वमीययाच्छ्वासन। नि च ।
प्रेतकाले प्रयसानि दानान्यष्टी विशेषतः ॥
श्राप्तेये, — श्राप्तनं तेजसं पात्रं सवणं गन्धचन्दनम् ।
धूपं दीपञ्च ताम्नूसं सोइं रूपञ्च रत्नकम् ॥

श्रन्यानि काष्ठपादुकादीनि स्कान्दादिषूकानि पद्धत्यनुसारेण देयानि । तानि विक्तरभयात्र किखितानि । यदि दैवान्तरण-दिने स्ताइपञ्चकस्य दानाभावः तदा सर्वेषामादौ तत्पञ्चकदानं । एकाद्याइश्राद्धमपि चिद्षिङ्गन्यासिनः पार्वणमेवेति प्राक्-किखितम् ।

**बीद्यादिनानाद्रवाणि दला स्थात् भुक्तिमुक्तिभाक्।** 

श्रय दृषोत्सर्गः ।

यमः, - एकाद्या हे प्रेतस्य यस चीत्स्त्र्ञाते हवः । सुचाते प्रेतन्त्रोकात् स स्वर्गनोकञ्च गच्छति॥ विक्रिपुराणे,— ये प्रतभावमापन्ना ये चान्ये आद्भवर्जिताः। त्रधोत्सर्गेण ते भर्वे गच्छन्ति परमां गतिम्॥

तद्वरणे प्रत्यवायोऽन्यच,—

एकादगाहे प्रेतस्य यदि नोत्स्न्यते हषः । प्रेतलं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धगतैरिप ॥ श्रुतिरिपि,— न करोति हषोत्सर्गं सुतीर्थे वा जलाञ्चलिम् ।

न प्रयच्छिति यः पुत्रः पितुष्चार एव सः ॥ एकादगाहि दैवादकर्णे, त्राग्नेये,—

एकादगाहे प्रेतस्य यदि नोत्स्च्यते दृषः । सुच्यते प्रेतभावात्स पत्साचेऽप्यादिकादिषु ॥

तवाणशामर्थे, भवियोत्तरे,-

कार्त्तिकामथवा माघ्यामयने वा युधिष्टिर । चैत्यामथ हतीयायां वैशाख्यां दादगेऽक्ति वा ॥ अत्र दादगाहोकिः।

दाद्शाहे वृषोत्सर्गः कर्त्तवः चित्रवेण तु।

द्ति वाक्यात् चित्रयविषय एवेति चेत्, न। दाद्भाष्टे चित्रयाभीचस्य मचात्। तर्षं तदचनस्य का गतिरिति चेत्। तस्य प्रामाण्ये चित्रयस्य द्गाहाभीचपचाश्रयणादिति ममाधेयम्।

विष्णुक्तृतौ त त्राययुच्यां वा दत्युत्रम् । पुनर्यमः.—

एष्ट्या वहवः पुत्रास्त्रवेकोऽपि गयां वजेत्। यजेत वायमेधेन नीलं वा ट्रषमुत्स्जेत्॥ सोहितो यस्त वर्णैन मिरः पुच्छस्त पाण्डरः।

तामः खुर्विषाणाभ्यां म नीको दृष उच्यते ॥

श्वेतः खुरविषाणाभ्यां रत्यधिकं दृष्णतिराष्ठ । मात्यविष्णुधर्मोत्तर्योः,—

चरणाञ्च मुखं पुच्छं येतानि यसा गोपतेः। सुज्ञाचार्मवर्णस्तु म नीलो तृष उच्यते॥

नीजरुषाभावे ऋन्येऽपि रुषा देयाः । विक्रपुराणे,- "भाग्य-भौत्यप्रदः ग्रुक्तः" रत्यादिना सर्ववर्णानासुक्रावात् । विधवायाः स्त्रियो मर्णे रुषोत्सर्गः, न जीवत्पतिकायाः ।

> यदि पुचवती नारी स्रियेत पत्युर्यतः। वृषं नैवोत्स्रुजेत्तस्या यावत्तिष्ठति तत्पतिः॥

> > इति गोभिलोकः।

श्रव पूर्वाक्वादिकालस्थानुकाविप मौकर्यार्थमादावुत्स्च्य श्राहुं सुर्विना। इति ।

श्रथ पुष्कर्विचारः।

वराइमंहितायाम्,-

पुनर्वसूत्तराषाढाक्वतिकोत्तरफाल्गुनी।
पूर्वभाद्रविगाखे च षडेते च्चपुष्कराः॥
दितिया मप्तमी चैव दादशी तिथिरेव च।
श्रानिभीमो रविर्यंच तिथिवाराः प्रकीर्त्तिताः॥
द्यानिर्वा यदि वा चिद्धभ्यं रोगोऽथवा भवेत्।
स्रतोऽपि निर्गुणो वापि श्रवो येषु ग्रहेषु च॥

चिपुष्करे चीन् यद्वाति ग्रवो दाभ्यां दयं तथा ।

एकेन तु भवेद्रोगी (१) द्वार्थहानिं च निर्दिगेत्॥

तस्मात् वारञ्च ऋचञ्च तिथिं यत्नेन खचयेत् ।

राजमार्त्त एके,—

विग्रणा स्थान्तिभि योगो दाभ्याञ्च दिग्रणी भवेत्।

एकेनेव भवेद्धानी रोगर्येव प्रजायते॥

तथा,— विपुष्करन्तु यद्वन्तं धर्वच विगुणी भवेत्।

प्रोको वा जायते तच चिगुणस्य न संगयः॥

श्रव शान्तिर्वराष्ययुक्तविधिना कार्या दति। तिह्नेऽसभावे श्रीषं शुभदिने कार्या।

दादगाहे ब्राह्मणभोजनं कुर्वन्ति । एकादगाहोक्तभोजनस्य तिह्ने प्रेतश्राद्धग्रेषस्य राचिपर्यन्तं मलेन करणासभावात् ।

श्रमौ क्रला ततो विप्रान् भोजयेदपरेऽहनि । इति पैठीनसुक्रेय । श्रपरेऽहनि दादमाहे दित निवन्धकतः।

ऋय मासिकनिर्णयः।

मासिकानां प्रतिमासकर्त्तव्यवं प्रागुक्तं । तत्र कर्णाणको मरीचिः,—

मुख्यं श्राद्धं मासि भासि श्रपयां प्रावतं प्रति । दाद्गाहेन वा कुर्याहेकाहे दाद्गापि वा ॥

मासि मासि दति सुख्यः पचः । ऋपर्याप्तावसमावे मासदयान-न्तरं श्राद्धदयं । तवाष्यगक्तौ दादगभिर्दिनेदाद्य श्राद्धानि । तद-

<sup>(</sup>१) भवेद्रोगा।

समाने एक सिम्निप दिने दादणश्राद्वानीत्यर्थः । एवं च मासिकाप-कर्षे तकाध्ये तदन्तका जकर्त्तव्यलेन चैपचिकोनपाएसासिकोनसाम्ब-स्मरिकसपिण्डीकरणापकर्षः सिध्यति ।

त्रय मासिनेषु सामिनेकामिनरामीनां व्यवस्था। प्रथममासिनं सामेद्दिवावध्येव। कर्द्धं चिपचादिति पूर्विकेः। निरमिवदेकामेरपि मरणावधि।

एकाग्नेर्मरणादूर्ड्डमधौचं श्राद्धमेव च । यस्य तु त्रयमग्नीनां तस्त्रोर्ड्डं दास्कर्मणः ॥

इति जातुकर्ष्णिकः । दितीयमाधिकादिकं तु षाग्नेरिप स्त-तिथिय्वेत । चैपचिके तु नैव स्ततिथ्यादरः । षट्चलारिंग्रह्नि एव तस्यानुष्ठानम् ।

तथाच कार्णाजिनिः,-

जनान्यूनेषु मासेषु बर्ड्साने<sup>(१)</sup> समेऽपि वा। वैपिचकं विपचे खान्मृताहे लितराणि तु॥ भविखे,— वैपिचकं भवेद्वते विपचे तदनन्तरम्।

ब्रे प्रवृत्ते।

कात्यायनोऽपि,-

यन वा तन वा मासि षष्ठे घाएमासिकं भवेत्। चैपचिकं निपचे च पूर्णे स्थान्तदनन्तरम्॥

यत्र वा तत्र वा इति ग्रुद्धे मिस्ति । प्रति वा तदनन्तरं षट्चला-रिंग्रदकीत्यर्थः ।

<sup>(</sup>१) विषमाहै।

श्रय षाएमासिकम् । तत्पूर्वदिने जनषाएमासिकम् । तत्र पैठीनसिः,—

पाएमाधिकाब्दिके आहे स्थातां पूर्वेद्युरेव हि।
एकाहेन तु इति वचनमणुक्तम्। अतएव प्रथमपएमाधाभ्यन्तरेऽधिमाधपाते तु, अधिमासं ग्रहीलैव षष्टमासपूर्वेतिथावेव
जनपाएमाधिकं कार्यम्, यच वा तच वा इति पूर्वेकिः।

श्रथ दितीयषाएमासिकम्।

तस्य जनसाम्बत्धरिकमिति नामान्तरम् । पूर्वेद्युराब्दिकं श्राह्वं परेद्युः पुनराब्दिकम् ।

दित गङ्खानेकः । एतत्यत्मामाभ्यन्तरेऽधिमामपाते मित चयो-द्गमामिकपूर्वतियावेव जनमाम्बसिरिकम्। "दाद्यमामाः सम्ब-स्मरः कचित्रयोद्यमामाः सम्बस्परः" दित श्रुतेः ।

नतु श्रब्दमध्ये श्रधिमासपाते तच सर्वकर्मनिषेधात् तच मासिकं श्राद्धं न कार्यं, किं वा कुच वा कार्यं, इति सन्देहे, गभिक्तः,— एको दिष्टं तु यच्छाद्धं तस्त्रेमे त्तिकसुच्यते।

तत् कार्यं पूर्वमासेऽपि कालाधिको च धर्मतः ॥ पूर्वमासे मलीखुचे। विष्णुधर्मोत्तरे,—

सम्तरस्य मध्ये तु यदि स्थाद्धिमामिकम् ।
तदा चयोदग्रे मामि क्रिया प्रेतस्य वार्षिकी ॥
भरदाजः,— ऋधिमामे तु यच्छाद्धं कुर्यात्तद्धिमामिकम् । इति
ऋधिमामिविद्दितं श्राद्धं ऋधिमाम एव कार्यम् ।

मरीचिरपि,-

प्रतिमार्ग स्ता हे च यच्छा द्धं प्रतिवत्तरम्। मामद्येऽपि कर्त्तव्यमन्यथा किल्विषी भवेत्॥

दादशमासे ऋधिमामपाते दादशमासमृताइपूर्वदिने जनसामस्वितं कार्य्यम्, तस्य सिपण्डनपूर्वदिने विधानात्, सिपण्डनस्य च मसमामेऽपि विधानात् । तदाकां सिपण्डीकरणप्रसावे वास्यम् ।

मासिकादीनां दैवादकरणे ख्यायद्वाः,-

माधिकाव्हे तु सम्प्राप्ते यदि विष्नः प्रजायते ।

माधेऽन्यस्मिन् तिथौ तिस्मिन् कुर्यादन्तरितं तदा ॥

काखोऽपि, नवश्राद्धं माधिकञ्च यद्यदन्तरितं भवेत् ।

तत्तदुत्तरमात्तन्त्यादनुष्ठेयं प्रचचते ॥

श्रनितं श्रक्ततं मातन्त्रात् समानतन्त्रलात् श्रक्तनमासिकं उत्तरमासिकञ्च उत्तरमासम्हताहे कार्य्यमित्यर्थः । श्रन्यच,—एकादग्रे नवश्राद्धे ष्यासे मासिकेऽपि वा।

त्राब्दिने च निपने च त्राह्येऽतीते कथझन ॥
कुर्यात्तत्कमणो दर्णे यदा कार्यवणाद्वुधः ।
एकदैव समसं तत् सपिण्डीकरणानकम् ॥
समारभ्य विधानेन पकान्नेन समापनम् ।

त्रभौतेन विन्ने तु त्रभौचानन्तर्दिन एव कार्थं, दत्यभौच-प्रस्ताव उक्तम् । प्रेतत्राद्धानां मध्ये एकस्य अमादकर्णे पद्यात्कर्ण-मेव । समक्षणां योज्भश्वाद्धानां एकतमाकर्णे योज्भानाम-पूर्वाणामनुद्ये प्रधानापूर्वस्य दर्भापूर्ववदिसद्धेः । न च, यथाक्रमेण पुत्रेण कार्या प्रेतिक्रिया सदा।
पिततापितिता वापि एकोदिष्टविधानतः॥
दिति जावास्युक्तेः।

तथा, - खुत्क्रमात् प्रेतश्राङ्कानि यो नरो धर्ममोहितः। ददाति नरकं याति पिल्लभिः सह ग्रायतम्॥

द्ति देवलोक्तेश्च, क्रमक्ष्पाङ्गसिङ्कौ कथमपूर्वोत्पत्तिरिति वाच्यम् । सर्वेशक्षधिकरणे नित्यकर्मण्यङ्गानां यथाशकानुष्ठानस्य सिद्धान्तवात् ।

तथाच क्रन्दोगपरिणिष्ठे, मर्वकर्मसु दैवादन्यथाक्रियायां तस्मिन् कर्मणि सद्येव सुकर्ले यत्कार्थं तदाइ,—

(१) प्रवृत्तिमन्यथा कुर्यान् यदि मोधान् कथश्चन । यतः तदन्यथा जातं<sup>(१)</sup> तत एव समापयेत्॥

श्रन्ययाक्रतेः तत्प्रयोगमध्ये लज्ञाने यत्कार्यं तत्त्रचैव,— समाप्ते यदि जानीयान्ययैतद्न्यया कतम् ।

तावदेव पुनः कुर्यात् नाष्टत्तिः सर्वेकर्मणः॥

नावृत्तिः न माङ्गप्रधानावृत्तिः । दैवात् प्रधानकर्मणो कतौ, श्रङ्गस्याकृतौ च यत्कर्त्तव्यं, तत्त्तवैव,—

प्रधानस्याकिया यच भाक्नं तत् कियते पुनः।
तदक्तस्याकियायान्तु नाष्टित्तर्नं च तत्किया ॥
तदैगुष्यसमाधानायैं विष्णुसारणम्। तथाच योगौ याज्ञवस्काः, —

<sup>(</sup>१) प्रवत्ता।

श्रज्ञानात् यदि वा मोहात् प्रच्यवेदध्यरेषु यत् ।
सरणादेव तदिष्णोः सम्पूर्णं स्वादिति स्नृतिः ॥
तथाच क्रमक्षपाङ्गसिद्धये विष्णुस्मरणं कार्यम् ।
ननु,— सपिण्डीकरणे दृत्ते पृथक्लेनोपपद्यते ।
पृथक्ले तु कृते पृथात् पुनः कुर्यात्(१) सपिण्डनम् ॥

द्रित द्वारीतोक्ता यपिष्डनानन्तरं पतितमाधिककरणे पुनः यपिष्डनप्रसङ्ग<sup>(२)</sup> द्रित चेत्, न । एतदाकास्य प्राप्तपिढलोकप्रेतप्रा-स्तोसंघनपूर्वकप्रयक्करणपरतात् ।

तयाच, — प्रेतानामिष्ठ सर्वेषां ये च मन्त्रेनियोजिताः ।

हतार्थासे ष्ठि समृत्ताः सपिण्डीकरणे हते ॥

प्रेतभावात् विनिस्तीर्णाः प्राप्ताः पित्रगणन्तु ते ।

यः सपिण्डीहतं प्रेतं पृथक्पिण्डे नियोजयेत् ॥

विधिन्नस्तेन भवति पित्रहा चोपजायते ।

दति ग्रातातपोक्त्या पिल्लप्राप्यनन्तरं सपिण्डीकरणं निषिद्धं, मासिके पतिते योड्गश्राद्धासम्यन्या पिल्लोकप्राप्यसिद्धौ पृथक्कर-णेऽपि न दोषः।

नचेवं सित, चस्य सम्बत्सरादर्वाक् सिपण्डीकरणं कृतम् । मासिकं चोदकुशं च देयं तस्यापि वत्सरम् ॥

दत्यङ्गिरोवाकास का गतिरिति चेदुस्यते। मासिकं मासि मासि ब्राह्मणभोजनं न तु श्राद्धिमत्यर्थः।

<sup>(</sup>१) कार्यं।

<sup>(</sup>२) सपिगडीकरगप्रसङ्घः।

#### तथाच भरदाजः,—

त्रवीक् सिपिष्डीकणं यस्य सम्बत्धरात् भवेत् । ब्राह्मणान् भोजयेत्रो वा प्रतिमासन्तु वत्सरम् ॥ दति । नोवेति त्राद्धनिषेधः, दति निवन्धक्षतः । श्रत्र वाग्रब्द एवका-रार्थः । पिष्टमरणाब्दे कर्त्तयाकर्त्तयविचारोऽग्रोचप्रसावे लिखितः । त्रथ सिपिष्डीकरणविचारः ।

पाद्मे, श्रमपिष्डीकतः प्रेतः चुत्तृषापरिपी जितः । श्राक्तीं दुःखान्यवाप्तोति यातनां निर्येष्वपि ॥ ततः पिद्धलमापन्नः सर्वभोगसमन्वितः । श्रीय्राक्तादिमधस्यः प्राप्तोत्यस्तमुक्तमम् ।

# विष्णुधर्मीत्तरे,-

क्रते सिपाष्डीकरणे नरः सम्बसरात् परम्। प्रेतदेहं ससुत्सृच्य भोगदेहं प्रपद्यते ॥ श्रथ सिपाष्डीकरणकालाः।

#### ग्रातातपः,--

मम्बस्परे तु वेज्ञेयं मिपिण्डीकरणं लिह ।

सिपण्डीकरणान्ता च ज्ञेया प्रेतिकया बुधैः ॥

सिपण्डीकरणश्राद्धं दैवपूर्वं नियोजयेत् । इति ।

तथाच, सिपण्डीकरणश्राद्धस्य पार्वणलिमिति श्रमावास्रेतर-

तथाच, सापण्डाकरणश्राद्भस्य पानणलामात श्रमावास्य पार्वणकालेनेव व्यवस्था।

वौधायनः,—"श्रथ मम्बस्र पूर्ण मिपाडीकरणं निपचे वा हतीयें मासि षष्ठे वा एकाद्गे वा दादभा हे वा एकादभा हे वा" दति। त्राश्वतायनः,— "त्रथ मिपाङीकरणं मम्पूर्णं सम्बत्धरे त्रिपचे वा यददर्वा दृद्धिलमापद्यते" दृति ।

श्रत एव गातातपः,—

त्रर्वाक् सम्बत्सराहङ्कौ सम्पूर्णे वत्सरेऽपि वा।

पैठी निषः,— "स्तस्य माधि माधि श्राद्धं सुर्यात् सम्बत्सरान्ते विसर्जनं नवमास्यं" दत्येते । विसर्जनं सिपण्डीकरणं नवमास्यं नवभिर्मामे निष्पाद्यमित्यर्थः । एवं सिपण्डीकरणस्य स्वातन्त्र्यण्वे नव
कासाः। यत्तु कन्यतरावुकं(१) उत्तरमासि दृद्धौ निश्चितायां पिण्डपित्रयज्ञानुरोधेन च सिपण्डीकरणापकषं दति । तत् वर्षान्तपचप्राधान्यप्रदर्शनार्थं न तु स्वातन्त्र्यनिदृत्त्ययें । एवं गयायाचार्यं सपिण्डनापकर्षः(१) ।

वृद्धियाद्वी गयां गच्छन् मद्यः कुर्यात् मिषिष्डनम् । दति हेमाद्रिष्टतवचनात् । श्रव गच्छित्रियुक्का दीपदानं गयात्राद्धिमिति वर्षमध्ये गयात्राद्धस्य निषेधाच गयात्राद्धं न । कार्य्यम् । गयायाचैव कर्त्त्रं द्रायसहेश्रममाचारः । देशविशेषे तु गयात्राद्धमि कुर्वन्ति ।

यत्तु,— त्रानन्वात् कुलधर्माणां पुंचां चैवायुषः चयात् ।

द्रति उग्रनोवचनं तद्देग्रविञ्चवज्यौतिषिकावधारितायुःममाप्त-विषयम् । तेषु कालेषु कर्त्तृविग्रेषा भविय्ये,—

मिपिष्डीकरणं कुर्यात् यजमानस्वनिम्रमान्।

<sup>(</sup>१) कल्पतरकारादावुक्तं।

<sup>(</sup>२) सिपाडीकर गापकर्यः।

त्रनाहिताग्नेः प्रेतस्य पूर्णेऽच्दे भरतर्षभ ॥

कर्त्तरि साग्निके तु कार्थ्णाजिनिः,—

मिपण्डीकरणं कुर्य्यात् पूर्ववचाग्निमान् सुतः ।

परतो दशराचाचेत् कुह्नरव्दोपरौतरः ॥

दगराचात्परतः कुङ्गश्चेत् एकादगाहे कुङ्गश्चेत् दत्यर्थः । दत-रोऽनग्निः । त्रब्दोपरीत्यर्थः । "त्रमावास्यायामपराहे पिण्डपित्यज्ञेन चरन्ति" दति श्रुत्या माग्नेः पिण्डपित्यज्ञस्यावकम्बकात् । तथाच गासवः.—

सिपिण्डीकरणास्त्रेते पैद्धकं पदमास्त्रिते । श्राहिताग्नेः शनीवास्त्रां पिद्धयज्ञः प्रवर्त्तते ॥ श्रव यत् सिपिण्डीकरणसुक्तं, तदेकादशाहे दर्शपात एव बोध्यम् । तथाच भवियो,—

यजमानोऽग्निमान् राजन् प्रेतञ्चानग्निमान् भवेत्। दादगाहे तदा काय्ये सिपण्डीकरणं सुतैः॥ यजमानः, कर्ता। कन्दोगपरिणिष्टे,—

एकादगाइं निर्वत्त्य पूर्वं दर्भाद्यथाविधि ।

निर्वर्त्त्यं श्राद्धं कता दादगाई सिपिष्डनं कार्य्यम् ।

गोभिनः— साग्नित्य यदा कत्तां प्रेतद्यानग्निमान् भवेत् ।

दादगाई तदा कार्य्यं सिपिष्डीकरणं सुतैः ॥

तथाच दादगाई दर्भपाते तु साग्निनापि एकादगाई एकादग्राइशाद्धं क्रवा दादगाई सिपिष्डनं कार्य्यं, श्रत एव दादग्रीका-

द्शे वाक्ति इति वच्छमाण्टहस्यत्युकौ एकादशाहस्य पश्चादुकिः। एकादशाहं निर्वर्त्त्यं इति स्फुटमुकं च।

त्रवीक् सिपण्डीकरणात् कुर्यात् त्राङ्कानि षोड्ण । दत्युक्तेः, एकादशाचे दादशापि वा दत्युक्तेस एकदिने घोड्ण-त्राङ्कानां करणमविषद्धमिति श्र्लपाष्यादयः ।

> दादणाहादिकालेषु मपिण्डीकरणेव्यिमे । साम्यनग्निवविधयः कर्त्तुरेव नियामकाः॥

दति सृतिसङ्घात्रोतः दाद्शैकादशादयोरन्यतरिक्षस्रेव साग्निकः कर्त्ता कुर्यास्त्रान्यत्र । विस्तरस्त कासादर्शे द्रष्टयः ।

एवं च सित निरग्नेरिप कार्य्यवणात् दादणाहादिषु सिपिछी-करणाचारोऽपि अविरुद्धः । एवं चिपचेऽपि बोध्यम्: ।

तथा च सुमन्तुः,—

प्रेतश्चेदा हिताग्निः स्थात् कर्त्तानग्निर्यदाः अनेत्र्र पिण्डीकरणं तस्य कुर्यात्पचे वतीयके ॥

किन्तु निरिधिकेन साधिकस्य पितुः सिपिष्डीकरणं निपच एव काय्यं द्रत्यर्थः । यदा कदाचिद्पि प्रमादात् साधिको दादणाचे एकादणाचे वा सिपिष्डनं न कुर्य्यात्, निरिधिरिप साधिकस्य पितुः निपचे सिपिष्डनं न कुर्य्यात् । तसिन्निहितोत्तरकाले कुर्य्यात् । तथा च गोभिलः,—

दादगाहादिकालेषु प्रमादादननुष्ठितम् ।

मिण्डीकरणं कुर्य्यात् कालेषूत्तरभाविषु ॥

दगाहमध्ये तु दर्गपाते पिण्डिपित्यज्ञयितिरिक्तदर्गीकमर्वश्रीत-

कर्मानुष्ठानम् । तथा माहसपिष्डानन्तरमेव पिष्डपिहयञ्चकर्णं,
माहद्गाइमधेऽयेवं दर्भानुरोधेन अभौचप्रकर्णे किस्तितमनुमन्धेयम् । आदिताग्नेजीवित्पहकते तु पिष्डपिहयञ्चानारम्भपचस्थेवादृतत्वात् माहसपिष्डनं अनादिताग्निपुचवत् पूर्णेऽब्दे चिपचादौ वा
कुर्य्यात्, पिष्डपिहयञ्चाभावात् । एतेन प्रमौतिपिहकस्थापि माग्निकस्य विमाचादेः स्वकाच एव मिष्डनिमिति मिद्धम् । पुचस्य
माग्निकते एकाद्गाइदादणाइयोर्द्भपातेऽभौचेऽपि दर्भानुरोधेन
मिष्डनित्यभौचप्रस्तावे किस्तितं । अभौचानन्तरं दर्भपाते तु
अभौचानन्तरमेव(१) मिष्डनम् च्येष्टभातुक्तस्त्रान्नाग्निते यदा भार्यामरणादिना आधानानधिकारिते माग्निकेन किन्छभाचापि पिष्डपिहयञ्चानुरोधेन एकाद्गाद्दादौ मिष्डनं कार्यम् ।

च्येष्ठो आतानग्निमां खेत् किनष्टः साग्निको भवेत् । किनष्टेनैव कर्त्तच्या सिपण्डीकरणिकया ॥ इति स्पृतेः।

एमिधे विषये किनिष्ठेनैव उत्तर्षोड़गकं कार्यं द्रत्यर्थतो भवित, साम्रिकस्य कर्नुर्दाविंग्रतिदिने दर्गपाते तु, दादगाहेन (१) वा सुर्यात्, द्रित वाक्यात् आद्भविवेककारा एकादगाहादिदादग्रसु दिनेषु व्यवस्थामाङः। तथाच एकादगाहे एकादगाहआद्धं कला तद्दिन एव प्रथममासिकम्। दादगाहे चेपिककं कला तचैव दितीयमासिकं। चयोदग-चतुर्दग-पञ्चदगाहेषु व्यतीय-चतुर्थ-पञ्च-ममासिकानि। षोड़गाहे जनषाएसासिकपष्ठमासिके। सप्तद्गा-

<sup>(</sup>१) अभीवापगमदिने सिपछनमित्यपि पूर्वमुक्तां।

<sup>(</sup>२) दादणाहेऽपि।

ष्टाद्योनविंगविंगेकविंगा हेष् सप्तमाष्टम-नवम-दग्रमैकादग्रमासि-कानि। दाविंगाहे जनमाम्बलरिकदादममासिके सला तत्रैव सपिण्डनं, तिथिरहौ तु दाविंगेऽिक जनसामत्सरिकं चयोविंगेऽिक दादग्रमाधिकषपिण्डने कार्ये। यदा लेतदब्दमधेऽन्तिममासं त्यक्षा मध्येऽधिमाषपातः, तदा तत्तं ख्यकदिने त्राधिमाधिकत्राद्धं। ततः परदिनेव्यपरमासिकश्राद्धानि। दादश्रमासे लिधमासपाते दाविंगेऽक्ति भाधिमासिकानसाम्बत्सरिकदादग्रमासिकसपिण्डनानि कार्याणि । त्रयमाचारः सर्वप्रिष्टसस्रतः । यनु के खिद्व चिखितं वृद्धिनिमित्ताभुद्यिकश्राद्धेऽपि श्रनयैव रौत्या एकादगाइमारभ्य दाद्शदिने सपिष्डनं कार्य्यम्, दति । तद्भानितमूलम् । तत्त्रयो-विंगेऽज्ञीव रही दाविंगेऽज्ञीव सभावति, नान्यच। तथाहि, "यद-इर्वा बद्धिरापद्यते" दति गोभिलसूने, "श्रथ सपिण्डीकरणं" दति त्रायनायनसूचे च यो रुद्धिनिमित्तः सपिण्डनापकर्षः उत्तः, तच, "प्रागावर्त्तनात् श्रहः कालं विद्यात्", इति गोभिलसूचान्तरेण, "पूर्वाक्रे दैवतं कर्म" इति मातातपोक्त्या च बद्धिश्राद्धस्य पूर्वाक्रे विधानात्, सपिण्डनस्य पार्वणलेन श्रपराक्ने विधानात्, तयोः समा-धानाय तसि चितपूर्व दिने एव स्पिण्डनापकर्ष इति सर्वे निंखीत-मिति, दादगाहैन वा कुर्यादित्यसान्यच प्रवित्तरेव।

त्रत एव तथाचारो न दृष्यते हहीं । हिंहं निश्चित्य सिपिष्डने कते तच विव्रवणात् हह्यभावेऽपि पुनः सिपिष्डनं कार्यम्।

<sup>(</sup>१) तथाचारो न दृख्यते।

"प्रेतानामिह सर्वेषां" दति पूर्वेकिणातातपोक्त्या पिहलप्राष्ट्र-नन्तरमेव सपिण्डनस्य निषिद्धलात्।

त्रय दादशमामस्याधिमामते मिपण्डनविचारः । तच,— त्रमंकान्ते हि कर्त्तव्यमाब्दिकं प्रथमं दिजैः।

दित हारीतादिवज्ञवचनैः पूर्वोक्तमसमामसिखितव्यवस्थायां (१) दाद्यमामस्थाधिमामलेऽपि तद्धिमासिकदाद्यमासिविहितश्राद्ध-सपिष्डनानि कार्याष्ट्रेव । ईदृगे विषये ग्रुद्धे चयोद्ये मासि वार्षिकश्राद्धं पुनः कार्यम् ।

त्राब्दिकं प्रथमं यस्य प्रकुर्वीत मली स्तुचे ।
चयोदग्रे तु सम्प्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम् ॥
दति व्यासोक्तेः। एवं त्रपक्तव्याब्दमध्ये सपिष्डने कतेऽपि पूर्णेऽब्दे
पुनराब्दिकशाद्भकरणम् ।

श्रव यत्तु गौडैः तिथितत्ताकारैः,—

पूर्षे सम्बद्धरे श्राद्धं पाड़शं परिकीर्त्तितम् ।

तेनैव च सिपछलं तेनैवाब्दिकमिखते ॥

द्ति हेमाद्रिध्तवाकात् पूर्णेऽब्दे क्रियमाणात् आद्वात् यथोभयं निर्व्वहति, तथा अपक्षष्टमपिण्डनाद्पि उभयोर्निर्वाहः, न पूर्णे वस्तरे आब्दिकान्तरं । गोभिन्नेन पूर्णेऽब्दे सपिण्डीकरणमभिधाय अत-ऊर्डं सम्बद्धरे सम्बद्धरे प्रेतायान्नं द्वात् यस्मिन्नहनि प्रेतः स्थात् दित सूने आद्याब्दादूर्डं साम्बद्धरिकविधानान्न, दित, तन्न युक्तिमहं।

<sup>(</sup>१) पूर्वितामलमासलिखितव्यवस्यया।

पूर्णंऽच्टे सपिण्डने तिह्ने पुनरान्दिककरणग्रद्भायां तेनैवाब्दिकं तन्त्रसिद्धमिति हेमाद्रिधतवाकास्थाभिशायः।

त्रत एव पूर्णे द्रायेवोक्तं न लपकर्ष दति यनु सूत्रे त्रत-जर्द्धमित्युक्तं तदार्षिकत्राद्धस्य प्रत्यब्दमवय्यकरणार्थमिति । यसिन् त्रहनि स्ततिचेरपराश्ववापिलं (१) तिसिन्नहिन सपिण्डीकरणस्य (२) उक्ततात् तदनुरोधेन तिह्ने तत्पूर्वमासिकस्यापि त्रन्यतियौ (२) करणम् ।

त्रपुत्रस्थापि सपिखीकरणं।

तथा च सोपाचिः,—

सर्वाभावे खर्च पत्थः खभर्त्तृषाममन्त्रकम् । सपिण्डीकरणं कुर्युक्ततः पार्वणमेव च । इति

एवं ऋषुचायाः स्तिया ऋषि,

तथा च पैठीनसिः,-

त्रपुचायाश्च पत्थास्त पतिः कुर्य्यात् सपिण्डताम् । श्वश्वादिभिः सहैवास्थाः सपिण्डीकरणं भवेत्॥ एतदपि सर्व्वाभावेऽपि बोध्यम् ।

ननु, न्यपुचस्य परे तस्य नैव कुर्य्यात् सपिण्डताम् !

श्रिणौचसुदक्षं पिण्डमेकोहिष्टं न पार्वणम् । दति ।

श्रिपुचा ये स्टताः केचित् पुरुषा वा स्त्रियोऽपि वा ।

तेषां सपिण्डनाभावादेकोहिष्टं न पार्वणम् ॥

<sup>(</sup>१) व्यपराह्याप्तः।

<sup>(</sup>२) सिपाडीकरयानुष्ठानस्य।

<sup>(</sup>३) चन्यतियावपि।

द्रत्युक्तिदयेनापि सपिण्डीकरणाभावः प्रतीयते, दति चेन तदुक्तोः प्रजाः चोत्पाद्यितयाः द्रत्यर्थवादकतया निर्धयात् ।

त्रविवाहितस्य तु सपिष्डनाभावः।

दाद्यात् वत्यरादर्वक् पौगण्डमर्णे सति । सिपण्डीकरणं न स्यादेकोदिष्टादि कारयेत्॥

द्त्यन्यचोक्तेः । पौगण्डो वालकः । श्रादिपदेन एकादशाइ<sup>(१)</sup>-श्राद्वाद्यपसङ्घदः ।

यसैतानि न कुशैत एकोहिष्टानि षोड्ण ।

पिणापलं<sup>(१)</sup> भवेत्तस्य दत्तैः श्राह्मणतैरपि ॥

दति जावास्युक्ता स्पिष्डनं विनापि एकादणाहश्राद्धाभिधानात्॥

पितामहादिभिः पितः स्पिष्डनम् ।

तथाच भरदाजः,—

पितः सपिण्डीकरणं तस्य पित्रादिभिः सद ।
पुरुषाणां च सर्वेषां तदत्कुर्यात् सपिण्डताम् ॥
पुरुषाणां पित्रव्यादीनां । एतेन यः कश्चिद्धिकारी प्रेतस्क
पित्रादिभिः सद कुर्यात् द्रत्यर्थः ।

स्त्रीणामपि सपिण्डनमावयवकं।

तथा च विष्णुः,—

मिपिष्डीकरणं स्तीणां कार्य्यमेव यथा भवेत्। यावज्जीवं तथा कुर्यात् आद्धं तु प्रतिवत्सरम् ॥ तामां मिपिष्डीकरणं पितामद्यादिभिः मह।

<sup>(</sup>१) एकादग्राइश्राद्धरागद्यपसंग्रहः।

तथाच ग्रह्यः,-

मातः सिपाडीकरणं कयं कार्यं भवेत् सतैः । पितामद्यादिभिः साद्वें सिपाडीकरणं स्मतम् ॥ दति । पत्या चैकेन कर्त्तवं सिपाडीकरणं स्तियाः । सा स्तापि हि तेनैकां गता मन्त्राङ्गतिव्रतैः ॥

द्ति यमवाकाम्।

यच, मृतं यानुगता नाथं सा तेन सहपण्डिताम् । श्रहंति खर्गवासञ्च यावदास्त्रतविश्ववम् ॥ इति ।

श्रन्यारोहेऽपि ग्रातातपवाकाम् तत्पास्त्रवाषात् काम्यं, दति तन्नाद्रियते । एवमन्येऽपि ये स्त्रीविषये भेदाः सृतिषु उन्नाः, ते दैवादिविवाहोत्पन्नपुचिषया दति कैर्पि नाद्रियन्ते ।

पितामहादिजीवने बाह्मकन्दोगपरिशिष्टयोः,-

म्हते पितिर यस्थाय विद्यते च पितामइः ।

तेन देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामचपूर्वकाः ॥

सुमन्त्रपि, चयाणामपि पिष्डानामे केनापि सपिष्डनम् ।

पिहलमञ्जूते प्रेत इति धर्मी व्यवस्थितः ॥

एवं पुरुषचयस्य नियतलात् पितामहे जीवति प्रपितामहा-दिचयेण पितामहप्रपितामहयोजीवतोर्छद्वप्रपितामहादिचयेण सह स्पिण्डनम् ।

मावविषयेऽपि बाह्ये,-

मातर्यय मृतायां तु विद्यते चेत्पितामही। प्रपितामहीपूर्वन्तु कार्य्यस्तवाययं विधिः॥ द्ति पूर्ववत् । मद्यासिनां सपिष्डनाभावोऽगौचप्रस्तवेऽलेखि । दैवात्पितः पञ्चात् पितामहादिसर्णे तेषां पुचान्तराभावे पौचा-दिभिः सपिष्डनं कार्ये । तथा च क्रन्दोगपरिभिष्टे,—

> पितामरः पितः पञ्चात् पञ्चलं यदि गच्छति । पौत्रेणैकादगारादि कर्त्तयं श्राद्भषोड्गं ॥ नैतत् पौत्रेण कर्त्तयं पुत्रवांश्चेत् पितामरः ।

इति पितामहपौचगव्दः प्रिपतामहप्रपौचाद्यपन्नचणम्। घोड्ग-ग्रब्दस्य घोड्गने जचणा। तथा च, एकादगाहादिसपिण्डीकरणा-न्तानि श्राद्धान्येव कुर्यात्, न दर्गाब्दिकानि इत्यर्थः। सपिण्डी-करणाननारं पित्ररेव तस्वैवोक्तौ तद्विधानात्॥

तथा च,-

पितः सपिष्डतां कता कुर्यानासानुमासिनम् ॥ र.ति ।

मासानुमासिनं दर्पश्राद्धमित्यर्थः। एतच श्राद्धमाचोपलचणिमिति

नारायणभाष्यम् । यस्य पिताग्रे स्तः तद्वर्षमध्ये पितामहप्रपिता
महौ पद्यानृतौ, तस्य पित्रसपिष्डनकालप्राप्तौ श्रक्तकपिष्डनाभ्या
मेव ताभ्यां सह पितः सपिष्डनं कार्य्यम् ॥

तत्रैव,—

श्रमंख्नती न मंस्कार्थी पूर्वी पौत्रपौत्रकैः।

पितरं तत्र मंस्कुर्यात् दति कात्यायनोऽत्रवीत्॥

पापिष्टमपि श्रद्धेन श्रद्धं पापक्रतापि वा।

पितामहेन पितरं कुर्यादिति विनिश्रयः॥

श्रव नारायणभाष्यम् प्रेतभावापत्रमपि पितरं निस्तीर्षप्रेत-भावेन श्रनिस्तीर्षप्रेतभावेन वा पितामहेन सह शुद्धं खुर्थात्, सपिण्डयेदिति प्रास्तीयो विनिश्चयः । ततश्च प्रास्तवोधिते कानुप-पत्तिः । यदा तु संस्कुर्यात् इति निश्चय इति पाठः तदायमर्थः । विष्णुधमोत्तरे,—

> यैरिष्ठं विविधेर्यज्ञैः पूजितो येख केशवः । प्रेतकोकं न ते यान्ति तथा ये श्रिशकोत्रिणः ॥

ये चान्ये समरे इता दित पाठान्तरम् । दित अग्निहोत्रादेः प्रेतदेहप्राप्तिर्नास्ति । अतोऽसौ ग्रद्धसमपि पितामहेन ग्रद्धेन अग्निहे च संस्कुर्यात् सपिष्डयेदित्यर्थः दित । एवं पितामहीप्रपितामहीभ्यां असंस्कृताभ्यामपि सह मातरं सपिष्डयेत् दत्यर्थः। "कार्यः तचाष्ययं विधिः", दित बाह्मोक्तेः । दमानि सपिष्डनान्तप्रेतकर्माणि ग्रहण-दिनेऽपि पकान्नेन एव कार्याणि ।

प्रेतत्राद्धं प्रकुर्वीतं पक्तां नेव सर्वदा । खयं पाकं प्रकुर्वीत सगी वं वापि कारयेत् ॥ त्रपत्नीकोऽपि सिद्धां नेः कुर्य्यात् त्राद्धानि षोड्गा । दित प्रचेतोवाको सर्वदापदोपादानात् ।

श्रय पुनिकापुनकर्त्तृक (१) सपिण्डीकरणविचारः । तत्र पुनिकापुनप्रशंसा, याज्ञवस्त्वः,—

त्रौरसो धर्मपत्नीत्रस्तसमः पुत्रिकासृतः । पुत्रिका एव पुत्र दति वेति विज्ञानेयुरा ऋर्यान्तरमणाङः ।

<sup>(</sup>१) सिपाडीकरणादिविचारः।

मनुः, भाज्यं विना यथा तैलं सिद्धः प्रतिनिधीकतम् ।
तथैकादगपुनाः स्युः पुनिकौरसयोर्विना ॥
दौद्दिनो ह्यखिलं रिक्यमपुनस्य पितुर्दरेत् ।
स एव दद्याद्दौ पिष्डौ पिने मातामहाय च ॥
पितुर्मातामहस्येति यावत् । मातुः प्रथमतः पिष्डं रत्यादि

पितुर्मातामरुखेति यावत् । मातुः प्रथमतः विण्डं इत्यादि वच्छमाणवचनञ्च ।

क्दोगपरि ग्रिष्टे;-

मातः सपिण्डीकरणं पितामद्या सहोदितम् । यथोक्रेनैव कस्पेन पुल्लिकाया न चेत्सुतः ॥ इत्युक्ता पुनस्तच मानवीये च,—

मातः प्रथमतः पिण्डं निर्वयेत्पुचिकास्रतः । दितीयन् पितुस्तरास्त्रतीयन् पितः पितः ॥ तस्याः पितुर्मातामस्य तस्याः पितः पितः

प्रमातामहस्य । श्रव नारायणभाष्यम्,— "पार्वणे प्रथमं मातु-र्दद्यात् तदनुप्रमातामहस्य तदनु मातामहस्य" । श्रवेन पार्वणोप-

देशेन सपिष्डनसुपदिष्टम् । श्रतएव,—

ततः प्रस्ति वै प्रेतः पित्वसामान्यमाप्नुयात् । इति दारीतेनोक्रम् ।

तथाचोश्रनाः,-

पितः पितामचे यन्दत्पूर्षं समस्यरे स्तः ।

मातुर्मातामचे तन्ददेषा कार्या पिण्डता ॥

मातामचे मातामचादिचये, पितामचे दन्ददित्यभिधानात् ।

बौधायनः,-

श्रादिशेत् प्रथमे पिण्डे मातरं पुत्रिकास्तः । दितीये पितरं तस्यासृतीये च पितामहं ॥ दति स्तोपाचिः.—

मातामहस्य गोनेण मातुः पिष्डोदकिष्रया ।
कुनीत पुनिकापुन एवमाह प्रजापितः ॥
एवं मित व्यवस्था कियते । पुनिकापुनो दिविधः । मातामहेनैव सम्बन्धो मातामहेन खपिना च सम्बन्धयेति ।
कमेण तक्कवणं, तत्र विश्रष्टः,—

त्रश्नाह्यको प्रदाखामि तुभ्यं कन्यामलंकतां। त्रखां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविय्यति॥ मनुरपि,— यदपत्यं भवेत्तखां<sup>(१)</sup> तन्मम खात् खधाकरं। दत्याद्यः। कात्यायनः,—

श्रपुत्रोऽहं प्रदास्त्रामि तुभ्यं कन्यां भवानिष । पुत्रायौ चेदिहोत्पन्नः म नौ पुत्रो भविष्यति ॥ इति दितीयः ।

तत्र मातुः प्रथमतः पिण्डं दत्यादिविधिर्मातामहेनैव सम्बन्धस्य। उभयसम्बन्धस्य तु उपनाः,—

> मातामद्यं तु माचादि पैत्वकं पित्वपूर्वकम् । मात्रतः पित्वतो यस्मादिधकारोऽस्ति धर्मतः ॥

<sup>(</sup>१) मवेदस्याः।

मातामह्यं मातामह्यादिदेवताकं कर्म, मातामह्यादि, उभय-सम्बन्धो वर्गदयस्य, श्राद्धं कुर्य्यात् मातामहश्राद्धपूर्वकं चेत्यर्थः । तदाह ऋथारङ्कः,—

> यसादुभयसम्बन्धः पुचिकायाः सुतोह्यसौ । पूर्वं मातामस्त्राद्धं पश्चात्पैहकमाचरेत् ॥

तथाच मातुः सिपण्डीकरणं मातामद्यादिचयेण दिविधाभ्यामिप कार्य्यं। पार्वणश्राद्धं तु मातामद्वैकसम्बन्धेन माहमातामद्दप्रमाता-मद्दानामेव कार्य्यं। उभयसम्बन्धेन तु श्रादौ माहमातामद्दप्रमाता-मद्दानां ततः पिह्यपितामद्दप्रितामद्दानां च श्राद्धं कार्य्ये। द्रित पुचिकापुचकर्त्तृकसिपण्डनादिविचारः।

उन्नकालेषु स्पाण्डनामभवे गालवः,—

सपिष्डीकरणश्राद्धसुक्रकाले न चेत् इतं। रौद्रे इस्ते च रोहिष्यां मिचभे वा समाचरेत्॥ व्यासोऽपि.—

> सिपिष्डीकरणश्राद्धं प्राप्तकाने न चेत् इतम् । रौद्रे इन्तेऽथवा मैचे कर्त्तव्यं वा स्ताहिन ॥ दति सिपिष्डीकरणावचारः ।

त्रपक्षय सिपां कित नित्ययाद्भवत् किञ्चिद्धं जलकुशं च प्रतिदिनं सम्बद्धरं यावदेयं । तथा च पारस्करः,—"त्रहरहरत्रमसी ब्राह्मणायोदकुशं द्यात् पिण्डमेने निग्रणनौति"।

तच पिष्डपचस्य नाचारः।

श्रवीक् सापण्डीकरणं यस्य सम्बत्सरात्भवेत्।

तस्यायत्रं मोदकुमं दद्यात् सम्बत्सरं दिने ॥ इति याज्ञवस्कारोक्रेः। फलं च मात्स्ये,—

यावदब्दं च यो दशादुदकुमं विमत्सरः। प्रेतायात्रसमायुक्तं सोऽश्वमेधफस सभेत्॥ श्रब्दममुघटं दशादसं चामिषसंयुतं। दति।

द्ति यदामिषदानमुक्तं, तदस्रिदेशे नाद्रियते । वक्तवु वाक्येषु त्रामिषाभावात् । पुत्रस्य तसित्रसन्दे त्रामिषभोजनाभावाच ॥ • ॥

श्रय क्रमप्राप्तममावास्थादिपार्वणश्राद्धं।

विष्णुः,—त्रमावास्थाः तिस्रोऽष्टकाः तिस्रोऽचष्टकाः, माघी-प्रौष्टपण्ड्रें कृष्णवयोदग्री बीहियवपाकौ च । दति । एतांसु त्राद्धकालान् वै नित्यानाह प्रजापतिः ।

श्राद्धनेतेव्यकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥

इति प्रत्यवायत्रवणात्, नित्यभन्दोपादानाञ्च। एवं वच्छमाणो-प्रानोवाक्यादिषु वीप्सात्रवणाञ्च दर्भत्राद्धादीनां नित्यलं। पार्वणलञ्च भविष्ये स्फुटसुक्तं। ऋहन्यहनीति भविष्ये, प्रतिदिन-विहितस्य यन्त्रियुलसुक्तं, एतेषां तु पार्वणलसुक्तं तदितिकर्त्तंयता-प्रदर्भनार्थाय इति न विरोधः।

तथाचोत्रानाः,-

. कुर्याद्हरहः आहं प्रमीतिपित्वको दिजः । साग्निको निग्निको वापि द्र्ये द्र्ये विशेषतः ॥ तच सर्वेषां आह्वानां श्रमावस्था प्रकृतिरिति श्रदावुपद्दिष्टलास सा विचार्याते। तत्र साग्निको निर्ग्निक्य प्रमीतिपित्वकोऽधिकारी एतचा-मावास्त्रात्राद्धं साग्निकेन पिण्डपित्वयज्ञानन्तरं कार्य्यमिति विग्रेषः। मनुः,— पित्वयज्ञं तु निर्वर्त्त्यं विष्रयुद्धस्योऽग्निमान्।

> पिण्डानाचार्यकं श्राद्धं कुर्य्यान्त्रामानुमासिकम् ॥ पिण्डानां मासिकं श्राद्धमनाचार्ये विद्र्वेधाः ॥

इति पिण्डानां पित्रयञ्चसम्बन्धिनामनु पञ्चादाद्दार्थं कार्य्य-मिति दर्गत्राद्धं वुधा विदुरित्यर्थः ।

यदा,— ततः प्रसृति पितरः विष्डमंज्ञां तु लेभिरे ।

द्ति मास्योक्तेः, पिष्डानां पितृषां श्रवाहार्थं मासिकत्तिन् जनकमिति श्रवाहार्थं मासिकं दति कोषात्। श्रयमर्थः,— माग्निनिरग्निसाधारणः पिष्डानां मनुक्तानुगतस्ति समीचीनः। चन्द्रचये चन्द्रचयोपलचितकाले श्रमावास्त्रायामित्यर्थः।

तथा च श्रुति:,—"तदेतदेष वै सोमो राजा यचन्द्रमाः स एता १९ राचि चीयते तत्चीणे देवानामन्ने पित्रभ्योददाति" इति । श्रुत्यन्तरं च,— "मासि मासिनेऽग्रन"मिति (१) । संविशेषं हन्दो-गपरिणिष्टे।

कात्यायनोऽपि,-

पिण्डान्वाद्यर्थकं श्राद्धं चौणे राजनि भस्तते । वासरस्य हतीयांगे नातिसन्ध्यासमीपतः ॥

राजनि चन्द्रे चौणे श्रत्यन्तं विनष्टे श्रमावास्यायामित्यर्थः दर्भश्राद्धं प्रभस्तते । किं इतर्पार्वणवदस्यापि कालो ग्राह्यो नेत्या इ,—

<sup>(</sup>१) गासि मासि वोऽग्रनमिति।

वासरस द्त्यादि, पूर्वाक्षो वै देवानां मधंदिनं मनुष्याणां त्रपराक्षः पितृणां दित श्रुत्युक्तविधाविभक्तदिवसस्य हतीयभागक्षपेऽपराक्षे दर्भश्राद्धं। ननु तर्षि पञ्चधाविभागे श्राद्धे निषिद्धस्य सायाक्षसायच यहणं दत्यागद्भ्याह नातिसम्ध्येति। श्रतिसन्ध्यासमीपलेन
सायंकालात् पूर्वं सुहर्त्तदयं दर्भश्राद्धे वर्च्यं। सुहर्त्तदयत्यागे किं
विनिगमकिमिति चेत् उच्यते।

मायान्दः चिमुह्रर्त्तेस्त तत्र याह्रं न कारयेत्। दति मात्स्योक्त्या,

जर्डे मुहर्त्तात् कुतपात् यनुहर्त्तपत्र्यम् । मुहर्त्तपञ्चनं वापि खधाभवनमियते ॥

द्ति श्रत्यसमावे चयोद्गमुहर्त्तपर्यन्तं श्राद्धे सामन्येन विकन्ति-तस्थापि कार्त्तस्य विनिगमकलं।

श्रतएव श्रक्षदेशीयप्राचीनानां मङ्गाहकारिका । सुह र्ताद्शमात् परं।

मुह्रतंत्रितयं काल श्रमावाख्यः । इति ।

एतेन नारायणभाषानुगतितिथितते श्रितिग्रब्द्खारस्थात् मुह्नर्त्तमानं त्याच्यं दिति यदुक्तं, तन्नाद्रियते, नापि तन्मतं युक्ति-महं, यदि श्रितिग्रब्देन मुह्नर्त्तमानस्य परिग्रहः, त्यागे तर्हि विनिग-मनाविरहात् दण्डादेरिप त्याच्यतं किं न स्थात् द्रित । तथा च मुह्नर्त्तदयमेव त्याच्यं। ननु मर्वतिथीनां चयमाम्बरुद्धयः सिद्धाः तन कयं दर्गे व्यवस्थेत्याकांचायां चयपचे श्राह म एव ।

यदा चतुई गीयामं तुरीयमनुपूरयेत्।

श्रमावास्ता चीयमाणा तदेव श्राद्धमिखते ॥

चतुर्द्गीपदेनाच पूर्वदिवसो ग्रद्धते ।

वर्द्धमानाममावास्तां चचयेदपरेऽइनि ।

यामांस्तींनधिकान् वापि पित्तयज्ञस्ततो भवेत् ॥

दति वस्त्यमाणोक्तन्त्रोधात् । चतुर्द्गीयामं दत्येकं पदं ।

तुरीयं चतुर्थं, चयादिकं पूर्वतिष्यपेचयेव ।

तिथिचये भिनीवाकी तिथिवद्धी सुहर्मता। साम्बेऽपि च सुहर्जीया वेदवेदाङ्गवेदिभिः॥

दति प्राचेतसीयोक्ती स्कुटलात् । तथा च चीयमाणा पूर्वा-परदिवसीययावचतुर्द्ग्यपेचया चयवती श्रमावास्था यदा चतुर्थे पूर्वदिवसीययामं श्रनुपूरयेत् । तदैव चतुर्द्ग्गीपूर्वदिन एव श्राद्धं, एतेन भाष्यानुगतिथितवे चीयमाणा न्यूनकाल्यापिनी-त्यादि यक्तिखतं, तत्सर्वे परास्तमेवित वुद्धिमद्भिर्विभावं।

नतु यदहस्ते चन्द्रमा न दृश्वते तनामावास्तां कुर्वीत, दति श्रुतौ, चौणे राजनीति लदुकौ, माननीयोक्तौ च चन्द्रादर्भने श्राद्ध-मुक्तं, तत्क्रयं पूर्वदिने चतुर्द्भौसले चन्द्रदर्भनेऽपि श्राद्धमिति-विरोधमाश्रद्धा परिहरति स एव,—

> यदुक्तं यदइस्त्वेव दर्भनं नेति चन्द्रमाः। तत्त्वयापेचयाः ज्ञेयं चीणे राजनि चेत्यपि॥

यिसमहिन चन्द्रचयो भवतीत्यभिषायात् यदहस्तित्यादि शुत्या चीण दत्यादिस्तत्या च चन्द्रचयरूपायां श्रमावास्यायां दर्भश्राद्धस्य कार्य्यता प्रतिपाद्यते न तु चतुईशीमिश्रा निविध्यते दत्यर्थः। श्रतएव दृश्यमानेऽधेकदा इति गोभिनस्यं। इत्यं भूतचत्र्दंभीविषयतां स्कुटयतीति स एवाद । यद्योत्तं दृश्यमानेऽपि तचत्र्दंश्यपेचया। नतु तर्षि त्रमावास्या प्रतीचणीया न वा? इत्याप्रद्वायां स एवाद,—

श्रमावाखां प्रतीचेत तद्नी वापि निर्वपेत् । तद्नी चतुर्द्शीशेषे निर्वपेत् श्राद्धं सुर्यात् । इति । नतु श्रमावाखायां चन्द्रचयो भवति, तत्कयं चतुर्द्शीशेष द्रायपुचतद्राशस्त्र चन्द्रचयकासमादः,—

त्रष्टमेऽंगे चतुर्द्घाः चीणो भवति चन्द्रमाः । त्रमावास्याष्टमांगे च ततः किस भवेदणुः ॥ चतुर्द्घष्टमयाममारभ्य त्रमावास्यामप्तमयामान्ते ममूर्षः चयः । ततोऽमावास्याष्टमयामे चन्द्रोत्पत्तेरारमः दत्यर्थः । किसेति त्रागमवात्त्रायां । एवं दग्रस त्रमावस्यास व्यवस्यासुक्षा मार्गगीर्ष-च्येष्टामावास्ययोर्विंगेषं स एवाइ,—

> त्राग्रहायक्षमाः । स्था तथा च्येष्ठस्य या भवेत् । विग्रेषमाभ्यां मुवते चन्द्रचार्विदो जनाः ॥

श्राभ्यामिति ख्यक्षोपे पश्चमी। दमे श्रमावास्ये प्राप्य द्र्यार्थः।
चन्द्रचारविदो च्योतिर्विदः श्रच श्रक्षप्रतिपदादिमामाश्रयणेन
मार्गग्रीर्षपौर्षमास्युत्तरच्येष्ठपौर्षमास्युत्तरामावास्ये ग्राच्चे। सर्वग्रन्थकारिक्षखनादाचाराञ्च। श्रच विग्रेषं स एवाइ,—

श्रवेन्दुरा हो प्रहरेऽवितष्ठते चतुर्थभागो न कलाविश्रष्टः। तदना एव चयमेति कत्स्त्रमेवं च्योतिश्वकविदो वदन्ति॥ श्रव श्रिम् मायदये दन्दुयन्त श्राधे प्रहरे श्रन्यद्र्येषु तु चन्द्रचयका क्रिन् श्रीमते चतुर्द्य्यष्टमयामक्षे दत्यर्थः। चतुर्थ-भागो न क्रकाविष्य दत्यादि। क्रन्यतुर्थभागः चतुर्थभागाः हुँ चतुर्द्य्याः क्रकाया श्रष्टमो भाग दित यावत्। क्रका पञ्चद्रशी-क्रका चतुर्थभागो नस्र क्रजाचित दन्द्रममासः। ते श्रविष्यष्टे श्रविनष्टे यस्य स तथोकः। तदन्ते चतुर्द्य्यन्ते श्रमावास्थाया-मित्यर्थः। क्रत्नं समयं चयं पञ्चद्याः क्रकाया श्रपचय-यापारं एति प्राप्तोति। श्रनयोरमावास्थयोः चन्द्रगितवेक्षच्यात् न चतुर्द्य्यष्टमयामे चयः। क्रिन्तु दर्शाद्ययामप्रस्तिदर्शाष्टमयाम-साधः चयः। श्रनयोर्षि दर्शयोर्मक्रमासयुक्ते वर्षेऽन्यद्शिस्त्वि चय दिति विशेषमान्त स एव, -

यसिष्ठ द्वाद्यीतस्य यसाः
तिसिं कृतीयापरिदृश्यो नोपजायते ।
एवं चारं चन्द्रमसो विदिला
चीणे तिसिन्नपराहे च दद्यात्॥

यव्यमन्दो मासवाची। यिक्तन् वर्षे दादमयया एको यव्यस्य दित चयोदममासा दत्यर्थः। मलमासः पततीति यावत्। तिस्तिन् वर्षे चन्द्र त्राचे प्रहरे दिति पूर्वसादनुषङ्गः हतीयापरिदृष्यः हतीय-माचया परिदृष्यः नोपजायते चतुर्थभागो न कलाविष्यष्टो न भवतीत्यर्थः। मलमासयुकाष्ट्रस्य एकस्रान्मसमासात् ऋद्दया-नन्तरात्मकः। हतीयवर्षे मलमासस्यावश्यंभावात्। चारः गति-

<sup>(</sup>१) प्रथमलेन ।

विश्रेषः तिसम् चन्द्रे श्रपराचे पूर्विकिचिधाविभक्तदिवसस्य हतीय-भागाद्यसुहर्त्तचयक्षे ।

एवं चौयमाणापचं, तत्राग्रद्धया चन्द्रचयं च विचार्य द्दानीं समापचे व्यवस्थामार स एव,—

> भिक्षित्रा या चतुर्द्ग्या त्रमावास्या भवेत् कचित्। खर्वतां तां विदुः केचित् उपेध्वमिति चापरे॥

या त्रमावासा तिथिः चयदिह्ररहिता सा समेत्युच्यते । सम्मोनावस्थितेति सम्भितेति कस्यत्रकरादयसामाञ्चः, या समा-मावास्या चतुर्द्य्या संमित्रा भवेत् । तां खर्वतां खर्वा समितिथि- र्ज्ञयेति बौधायनोकेः समामित्यर्थः । किचित् उभयदिनापराष्ट्रय-सम्बन्धसभावे दत्यर्थः । केचित् वृधाः विदुः जानिन्त त्राद्धाय दति ग्रेषः, त्राद्धां स्वीकुर्वन्तीति यावत् । त्रपरे च वृधाः यूयमिति ग्रेषः, दति हेतोः त्रन्येषां स्वीकाराद्धेतोः दति ग्रेषः, उपेध्व-सुपगच्छत त्राद्धाय स्वीकुर्वत दत्यर्थः । केवलं न विदाः । त्रपरे-चिति चकारः समुचये, "सास्येऽपि च कुद्धर्ज्ञयेति" प्रचेतोवचने पूर्वदिनस्य निधिद्धलात्, कात्यायनोऽपि भौतदव क्रचिदित्यादि त्रव्यते । एतेषां वाक्यानां सावकाग्रलं वद्यते ।

वर्द्धमानापचे व्यवस्थां स एवाइ,-

वर्ड्सानाममावास्यां सचयेदपरेऽहिन ।
यामांस्त्रीनिधिकान् वापि पिल्लयज्ञस्ततो भवेत्॥
प्रतिपद्यपि कुर्वीत श्राह्यं श्राद्धविदो विदुः।
प्रतिपदि चन्द्राद्यकसोपचयव्यापारिविभिष्टे काले श्रमावास्या-

ष्टमांगे रत्यर्थः। श्रव तदेतदेष वै दित पूर्विक्तप्रत्यचश्रुतिविरोधात् विरोधाधिकरणन्यायेन स्ततेर्दुर्वज्ञलं मला वर्द्धमानास्तिरनादर-णीया दित केचित्, तन्न । तथाहि श्रौदुम्बरी धर्वा वेष्टितव्या दित स्तितः, श्रौदम्बरीं सृक्षोग्दाता गायेत दित श्रुतिः, तन्न धर्ववेष्टने सित श्रुत्युक्तस्पर्भनस्य श्रत्यनासम्भव दित श्रुतिस्तत्यो विरोधे श्रुतेर्वज्ञीयस्त्वं निणीतं।

प्रकृते तु वर्डुमानास्ग्रत्यविरोधेन चीवमाणाश्रुतेः सावका-ग्रतात् विरोधाधिकरणविषयलाभाव दित केश्वित् समाहितं। वस्तुतस्त तदेतदेव व दित श्रुतिः श्रमावास्त्राश्राद्धं कार्य्यमिति प्रतिपाद्यति, नलमावास्त्रायां चीयमाणालं प्रतिपाद्यतीति, यदुक्तं यद्हस्त्वेव दत्यादि पूर्विक्तवचनेन दर्गश्राद्धस्त्र कार्य्यलं निश्चित्य श्रमावास्त्रातिचेस्त्रेविधं कात्यायनेनेव उक्तमिति न कश्चित् विरोध-प्रमङ्गः। चयविषये नारायणभाष्यानुगतिचितलादौ तुरीय-भागो नकलाविग्रिष्टता विनाग्रस्य दित दयं चयपदवाच्यं दत्यादि महता प्रवन्थेन यक्तिस्तितं तदुर्घटं दित श्रसादिगीयपूर्वा-चार्य्यसिखित्वतचयप्रकारः सविभेषस्तच्छाद्धकालविचारस्य स्पष्टतया सिख्यते,—

चन्द्रचयः चन्द्रान्यकलाया त्रत्यन्तं विनागः स चार्कसंक्रमणवद्ति-सूक्षकालमात्रयोगात् त्रन्यकलापचयमात्रमित्येवं । तत्र पौर्णमास्थां त्रन्तिमकलोपचयक्रमेण पौर्षमास्थान्तिमचणे संपूर्णः चन्द्रो भवति। ततःप्रस्ति चिंग्रासित्रिकोनायां प्रतिपदादितियौ एकैकादि<sup>(९)</sup>-

<sup>(</sup>१) रक्तैककणाद्मयक्रमेगा।

कसाचयक्रमेण चतुर्द्याः सप्तमयामान्ते चतुर्द्शानां कसानां चयात् श्रन्तिमैककला तिष्ठति । तस्यास ततः प्रस्ति क्रमेण चये श्रमा-वास्त्रायाः सप्तमयामान्यचणे श्रत्यन्यं चथ द्त्येवं श्रन्यकलायाः चयः सम्पूर्णतिथिसाध्यः । ततः विंग्रसित्रिकाधिकासु प्रतिपदाद्ये-कैकितिथिष्वेकैककतोपचयक्रमेण पौर्णमास्यन्ते संपूर्णसम्हो भवति द्रत्यृक्षर्गः । मार्गजीर्षपौर्षमामीकौष्ठपौर्षमास्यनन्तरयोस्वपरपचयोः प्रतितिथिक नैको पचयक्रमेण चतुई ग्रष्टमे प्रस्रे चतुई ग्याः कलाया-श्रष्टमो भागः पञ्चद्गी कला च तिष्ठिति। तच कन्नाष्टमांगः चतुर्द्यष्टमप्रकरान्ते विनयाति। पञ्चद्भी तु कला अमावास्याद्य-चणप्रस्त्यपचयक्रमेण त्रमावास्थान्यचण एव त्रत्यन्तं विनम्यति । श्रनयोर्थमावास्योर्भनमामयुक्ताब्दे श्रन्थामावास्याखिव चतुईस्थ-ष्टमयामाद्दिर्भम्शमयामान्तः चयः। तदेनत् सर्वे च्योति:-प्रास्तादवधार्थे<sup>(१)</sup>। एष चन्द्रचयोपलचितः कास्रो यसिन्दर्शन विधाविभक्तदिवसहतीयभागाद्यसुह्नर्त्तवये सभ्यते तदैव आद्धं। वासरसेत्याचुकेः, तचापि यदि पूर्वेद्युरमावास्या चतुईष्यष्टमयामं त्रतिक्रम्य त्राद्भयोग्यकाच्यापिनी स्थात्, तदा चतुर्द्शीशेषसमाप्ति-रपेबणीया। अन्यथा चतुई ग्रष्टमयाम एव आहूं, श्रमावास्था-मित्याच्याः।

चीयमाणापचे तु यदा चतुर्द्गी पूर्वेद्युः श्राद्धयोग्यकाल-यापिनी परेद्युः श्रमावास्या ह्रामवणात् श्राद्धकाले चन्द्रचय-विभिष्टा न स्थात्। यदा १) ह्रामस्यादन्यलात् चन्द्रचयविभिष्टापि

<sup>(</sup>१) खबगन्तयं।

स्रात्, तच उभयचापि चतुर्द्य्यष्टमयाम एव श्राह्नं, यदा चतुर्द्गी-यामं दत्याधुकेः।

यदा तु पूर्वेद्युः चतुर्द्भी दिवभयापिनी यदा राचिमपि स्मृमति, परेद्युर्द्धास्थिकात् श्रमावास्या श्राद्धकाले चयविभिष्टा न स्मात्, तदापि समूर्षायां चतुर्द्भा श्राद्धं, चन्द्रचयविभिष्ट-काललाभात्।

यदा तु पूर्वेद्युः चन्द्रचयविशिष्टा चतुर्द्शी श्राह्मकाले न स्थात्.
परेद्युः च्रामाधिकात् श्रमावास्यापि श्राह्मकाले चन्द्रचयविशिष्टा
न स्थात्। तदा केवलायां श्रमावास्यायामयेव श्राह्मं । चीणे
राजनि ग्रस्थते दति चन्द्रचयविशिष्टकालस्य प्राग्रस्थावगमेन चयनाभे
श्रमावास्थातियिमाचमप्रगतं न याद्यं। तद्भावे लर्थादेव प्रतिनिधिवत् श्रमावास्थामाचमेव श्राश्रयणीयं।

समापचे तु यदा लमावस्या पूर्वेशुः श्राद्धयोग्यकाचे चय-विश्रिष्ठाधिककाच्यापिनी स्थात्, परेशुरस्पकाच्यापिनी स्थात् तदा पूर्वेशुः श्राद्धम्।

दर्गञ्च पौर्णमासञ्च पितः साम्बत्धरं दिनं।
पूर्वविद्धर्मकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते॥
इति नारदीयोक्रेः,

मिस्त्रा या चतुईस्था दत्याद्युकेस कस्पतराविष यदा स्रमा-वास्थाया न रिद्धिचयौ किन्तु स्तक्षेनोभयदिनयोः श्रपराक्र-सम्बद्धामावास्थासम्भवः। तदा पूर्वदिन एव श्राद्धं कार्यः। चीणे

<sup>(</sup>१) खमावास्थायां श्राद्धं।

राजिन ग्रस्ते इति सिखितं। यदा तु पूर्वेषुः श्राद्धकालेऽन्य-कास्रयापिनी श्रममाऽमावास्त्रा<sup>(१)</sup> स्थात्, वा परेद्युरिधककास-यापिनी स्थात्, तदा परेद्युरेव श्राद्धं। माम्येऽपि च कुहर्ज्ञया-इति प्राचेतमीयोकेः श्रिकियाप्तिर्वस्रवलासः।

वर्द्धमाना पचे तु यदा दिनदयेऽपि श्राह्मकाचे चन्द्रचय-विश्रिष्ठकाललाभः, तदा परेद्युः श्राह्मं, उभयच चन्द्रचयवैशिष्ठास्य समानवेऽपि परेद्युर्धिकममावस्थातिष्विलाभात्। यदा परेद्युः श्राह्मकाचे चन्द्रचयविशिष्टा न स्थात्, केवलं वर्द्धमानामावास्था यामचयात् किंचित् श्रिष्ठकं यामचयं वा व्याप्त्रयात् तदा चन्द्र-चयमनादृत्य केवलामावास्थामाचे परेद्युः श्राह्मं, वर्द्धमानाममा-वास्थामित्याद्युक्तेः। मलमास्युक्ताब्देतरवर्षेषु मार्गशीर्षपौर्णमासीज्यैष्ठ-पौर्णमास्युक्तरयोस्लमावास्थ्योद्यन्द्रचयवेलचस्य दर्शितलाचतुर्द्दश्यां श्राद्धमभावनाऽपि नास्ति। तेनाच यदा चिधाविभक्तदिवसस्था-पराद्धप्रथमसुह्यक्तंचयेऽमावास्था तदिन एव श्राद्धं। यदि तु तच हृत्यवाद्धकादिनदये श्रपि चिधाविभक्तदिवसद्वतीयभागाद्यसुहर्क्त-चये श्रमावास्था न सभ्यते तदा दिधाविभक्तदिवसदितीयभाग-स्पापराह्म यचैव सुहर्क्तं श्रमावास्था सभ्यते तचैव श्राद्धिति सवैं समञ्जसम्।

दर्गिष्टिकालस्य दर्भश्राद्धाधीनलात् तत्कालो विचार्यते । चन्द्र-चयोत्तरदिन एव दर्गिष्टिकालः । "पूर्वेद्युः पित्रभ्यो निक्कीय परेद्यु-देवेभ्यो ददाती"ति श्रुतेः । श्रतएव मम्प्रदायग्रन्थे जीवत्पित्वकस्य

<sup>(</sup>१) व्यमावास्या स्थात्, परेद्यः।

पिव्यज्ञाभावात् श्रमावास्यायामेवेष्टिः, इत्यभिषेत्य चतुर्द्य्यामे-वोपवाम इत्युक्तम् ।

यागकालखरूपमाह रहूणातातपः,—

पार्वणो यश्चतुर्थांग्र श्राद्याः प्रतिपद्ख्यः ।

यागकालः स विज्ञेयः प्रातर्युक्तो मनीषिभिः ॥

तन,— न यष्ट्यं चतुर्थांग्रे यागैः प्रतिपदः कचित् ।

रचांसि तदिलुम्पन्ति श्रुतिरेषा सनातनी ॥

दिति कात्यायनोकेः चतुर्थांग्रस्य दुष्टलेऽपि,—

सन्धिर्यद्पराहे स्थात् यागः प्रातः परेऽहिन ।

कुर्वाणः प्रतिपद्गागे चतुर्थेऽपि न दुखति ॥

दित खुक्रमातातपोक्तेः, चतुर्षभागेऽप्यदोषः । कुर्वाणः प्रति-पद्गागे दित खुक्तं, तत् मार्गमीर्षन्येष्ठपूर्षिमोत्तरदर्मयोः, चौय-माणापचेऽपि प्रतिपदि सर्वदर्भेषु, वर्द्धमानापचेऽपि प्रतिपदि सर्वदर्भेषु, कदाचित् समापचेऽपिवेति बोध्यम्। सर्वत्र चौयमाणापचे विमेषो यथा, यदा चन्द्रचयानुरोधेन चतुर्द्यां श्राद्धं, तदा यदि त्रमावास्त्रायां पर्वचतुर्थांभप्रतिपदाद्यंभचयरूपयागकाको न सभ्यते, तदा पर्वद्यतौयांभेऽपि यागः कार्यः ।

तथाच हारीतः,-

पर्वणोऽंगे हतीये वा कार्या दष्टिर्दिजातिभिः। दितीयामहितं यसात् दूषयन्यायसायनाः॥ इति। श्रायसायनाः स्ति। श्रायसायनाः दर्युको ऋग्वेद्विषयमेतदिति केचित्, तस्। श्रविद्युपारकाधमोदपरस्या अदुष्टलात्।

तथाच बन्दोगपरिजिष्टे,—

यज्ञामातं खगाखायां पारकामविरोधि यत्। विदक्षिप्तदनुष्टेयमग्निदोचादि धर्मवत्॥ दति।

ऋत्र प्रसङ्गात् पौर्षमासेष्टिकासोऽपि निरूषते। कात्यायनः,— मन्धिस्रेत् मङ्गवादूर्द्धे प्रागेवावर्त्तनाद्रवेः।

सा पौर्श्वमासी विज्ञेया सद्यः कालविधौ तिथिः॥

श्रथ विक्रतेष्टिविचारः।

यदा पूर्वा मधाक्रे वा सन्धिः तदा प्रातरेव प्राप्तयोः प्रकृति-विक्रत्योः कस्या त्रादौ कार्यता द्रत्यपेचायां त्राष्ठ त्रापस्तम्बः,— प्रकृतेः पूर्वोक्तलात् त्रपूर्वं त्रन्ते स्थात् द्रति । त्रपूर्वा विकृतिः प्रकृतेः समाप्तौ स्थान्, प्रकृतेः पूर्वोक्तलादित्यर्थः ।

तच कात्यायनो विशेषमाइ,—

त्रावर्त्तनात् प्राक् यदि पर्वमन्धः

कला तु तस्मिन् प्रकृतिं विक्रत्याः।

तर्वेव यागः परतो यदि स्थात्

तसिन् विकत्याः प्रक्रतेः पर्च॥

त्रावर्त्तनात् परतः सन्धिः स्थात् चेत्, तदा केवस्रो विक्रति-यागः सन्धिदिने कार्यः। प्रकृतियागः परचेत्यर्थः। सर्वासामिष्टीनां दर्भपौर्स्तमासौ प्रकृतिः। त्रायद्वायस्थाद्यो विकृतयः, काम्या-दृष्टयोऽपि।

पचादिचतुःकालः(१) छन्दोगपरिशिष्टे,—

<sup>(</sup>१) पद्मादिचरकालः।

पचादावेव कुर्वीत मदा पचादिकं चहं। पूर्वाच एव कुर्वीत विद्वेऽयन्ये मनी विणः॥

पचादौ प्रतिपदि विद्धेऽपीति दितीयारिहतेष्टिकालस्य प्राप्तौ सत्यां दितीयासिहतो निन्दितः। श्रप्राप्तौ तु स एव यागाङ्ग-मिति। श्रत्र सस विज्ञापनम्।

> नारायणीयभाष्यार्थविषद्धं यनायोदितम् । खदेणाचार्य्यमर्यादाखापनायैव तद्दुधाः॥ श्रमावाखानिषिद्वानि ।

त्रमावास्त्रायां नाधीयीत नाधापयेन्ना<sup>(१)</sup>न्नमदात् परस्य च । स्वतिः, ज्ञमावास्त्रायां न किन्द्यात् कुगांश्च मिधस्त्रया । वीक्षावस्थिते<sup>(१)</sup> मोमे हिंगायां ब्रह्महा भवेत् ॥ गौडीयचिन्तामणी तु,—

सायंबन्ध्यां परास्तं च राची भोजनसैधुने ।
तेसं मांसं तिसापिष्टं (१) श्रमावस्थादिने त्यजेत्॥

एतद्वनस्य देशान्तरे श्रादरः । तसादसाहेशे सायंसन्ध्यां
सुर्वन्ति ।

गातातपः,-

वनस्पतिगते सोसे परासं ये तु भुझते।

<sup>(</sup>१) न क्टिन्दात्।

<sup>(</sup>२) सर्वजावस्थिते।

<sup>(</sup>३) तिजविष्यममायां च विवर्जयेत्।

तेषां मायकतो होमो दातारमनुगक्कति । । होमग्रव्दोपादानादिदं साग्निकपरिमिति केचित् । मामकतं पुष्यमिति केचित् पठिना । वस्तुतस्तु होमग्रव्देन वैश्वदेवहोगस्य यहणात् निरग्नेरिप निषेधः । पराक्षे श्रपवादोऽन्यच । ग्रवंश्रं मातुसास्त्रं च श्वग्रुराश्रं तथैव च । पितः पुचस्य यञ्चाश्रं न पराश्रमिति स्मृतं ॥ एवं सितः,

श्राइरानं तु यो भुंतो स भुंतो पृथिवीमलं

दित बौधायनोक्तिर्गर्श्वितश्राइरधनोपजीवनविषया<sup>(२)</sup>॥

श्राइराच्च दित्तः स्थादिप्रसैन्यं करोति यः।

दित महाभारते दित्तिनिषेधात्। एतेनासत्ति ने कार्या।

सृतिः,— व्हिनत्ति वीक्धो यसु वीक्षांस्थे निष्ठाकरे।

पुनं वा पातयत्येकं ब्रह्महत्यां स विन्दति॥

न पर्वणि हणमपि किन्दात्। द्दं पुष्पपचक्केदनं पूजार्थ-ग्रहग्रश्रूषाव्यतिरिक्तपरम्। पर्येषतपुष्पपचयोनिषेधात्, प्रतिदिनाद-रणस्य विदितलाच, विदितस्य निषेधायोगाच। समिधादिक्केदनं तु निषिद्धमेव तस्यान्यदिनेऽपि सम्भवात्।

कुगं पवं च पुष्यं च गवामर्थे त्यानि च।

द्रुकोपे न दुष्यन्ति केदने मिभधमाया ॥

द्रायाच मिभादानममभावपरम् । वीक्रतंस्य द्रति ।

<sup>(</sup>१) चाधितिष्ठति।

<sup>(</sup>२) मर्ছितश्वश्वरधनोपजीवनपरा।

श्रम् तसिम्बहोराचे पूर्वं विग्रति चन्द्रमाः। ततो वीरुत्सु वसति प्रयात्यर्कं ततः क्रमात्॥

द्ति विष्णुपुराणवाकात् श्रमावास्वामध्यभाग एव श्रयं दोषः । नाद्यन्तयोरिति केचत् । वस्तुतस्तु श्रमावास्वातिधिमाचेऽयं दोषः । निषेधोऽमावास्वायामिति कस्पत्रक्रद्यास्वानात्, श्रमावास्वातिधौ चन्द्रप्रवेशंश्रवणाच । तथा च श्रुतिः,— म एता९१ राचिं षोड्ग्या कस्त्रया भर्वमिदं प्राणस्दनुप्रविष्य ततः प्रातर्शयते । तस्मादेता९१ राचिं प्राणस्तः प्राणान् न विकिन्द्यात् श्रिप क्रकसाग्रस्थेति तस्माद्यं निषेधः पुरुषार्थं एव ।

दर्भ स्नाला पित्रभ्यस दद्यात् कृष्णतिसोदकं। असं च विधिवद् दद्यात् सन्ततिसोन वर्द्धते॥

द्रति वचनात् मन्तिकामस्य स्नानिस्तर्पणश्राद्वानि ममुदि-तान्येव काम्यतया सुर्य्यात् । श्रन्यनिषिद्धममावास्यातिश्विप्रकर्णे सिखितमनुषक्षेयम् । पत्यौ प्रवामस्ये तु स्वष्टुदारीतः,—

श्रमावास्थादिनियतं प्रोविते धर्मचारिसी।
पत्यौ तु कारयेश्वित्यमन्येनाप्यृतिगादिना॥
दति दर्भश्राद्धममाचारः॥

श्रथ सप्तपित्वकामावास्या । भाद्रपदामावास्या सप्तित्वकामावास्थेत्युस्यते । तथाच कन्पतरौ,—

श्रमावास्था च पित्र्येण नचचेण च मंयुता। सप्तप्रकाराः पितरो जाताः कमलमक्षवात्॥ तेभ्यः पूजा च कर्त्तया तत्र सर्वात्मना बुधैः । पिष्डो देयस्तथाष्टाङ्गः आद्धं कार्यं च सर्वदा ॥

पित्रचं मघा, तद्युक्तामावास्या भाद्रपदामावास्येव। श्रन्यासु तद्योगाभावात्। स्वते नैमित्तिकं काम्यं इति पूर्वलिखितकार्ष्णा- जिनाद्युकोर्नित्यश्राद्धे मघायोगे यः पिष्डदाननिषेधः, तिस्रवत्त्र्थं पुनः पिष्डदानमत्रोकं, श्रन्यया श्राद्धं कार्य्यं इत्येतावदुकं स्थात्। पिष्डसाष्टाङ्गानि ब्राह्मो,—

मधु मान्यं जलं चाघं पुष्पं धूपं विलेपनं।
विलं द्द्याच विधिवत् पिण्डोऽष्टाङ्गो भवेत्तया ॥ इति
वकुलामावास्या ।

श्रमावाखां प्रक्रत्य धवन्नसंग्रहे,—

पौषे तु वनुन्नीरपायमैः तर्पयेत् पितृ ।
श्रयाष्टकात्रष्टकात्राद्धं ।
वायुपुराणे,—

पित्रदानाय मूले खुरष्टकासिस एव च।
कृष्णपचे वरिष्ठा हि पूर्वा चैन्द्रीति भायते ॥
प्राजापत्या दितीया स्थात् त्रतीया वैयदैविकी।
प्राचा पूपेः सदा कार्या मांग्रेरन्या भवेत्तया ॥
प्राक्तेः कार्या त्रतीया स्थादेष द्रव्यगतो विधिः।
प्रष्टका हि पित्रणां वै नित्यमेव विधीयते॥
या चायन्या चतुर्थी स्थान्तां च कुर्यात् विभीषतः।
तास आद्धं बुधः कुर्यात् सर्वस्नेनापि नित्यभः॥

नित्यं प्राप्तोति श्रेयां सि परचे इ च मोदते।

पितरः पर्वकालेषु तिथिकालेषु देवताः ॥

सर्वे ग्रहस्यमायान्ति निपानमिव धेनवः।

यस्य ते प्रतिगच्छेयुरष्टकासु ह्यपूजिताः।

मोघासस्य भवन्याशाः परचे इ च नित्यशः॥

मूले त्रादी प्रधानस्थाने त्रमावास्थायाः स्थाने द्रत्यर्थः। तस्थाद्रानग्रब्दोपादानाच त्रष्टकासु त्रमावास्थात्राद्ध्र<sup>(१)</sup>वदच कर्त्तव्यता,
द्रति वोध्यम्। त्रच प्रजविगोषकामस्थेव चतुर्थी त्रष्टका कार्य्या। नतु
सा नित्या। तस्यां या चायान्येति विगोषत द्रति पदाभ्यां नित्यलाभावस्य प्रतीतेः। विष्णुस्तृतौ, त्रष्टकाचयस्य त्रन्वष्टकाचयस्थेव च
नित्यलेनाभिधानात्। हमन्तिग्रिग्रिर्योस्त्रयाणामपरपद्याणामष्टम्यां
त्रष्टका द्रति गौनकसूचात्।

पौषादिचिषु माचेषु क्रव्यपचेऽछका(१) सृता।

दति सृते । ऋष्ठकाश्राद्वात् परिदेने ऋष्ठकाश्राद्वं। श्रम्भातोऽष्वष्टका (३) दति वचनात्, श्रोऽष्वष्टकासु दित पारस्करस्चा । श्रा ऋष्टस्या उत्तरेषुः ऋष्ठकामन् भवन्तीति ऋष्ठका दित इरि-इर्भाष्यम्। तथाच तिथि देधे यि दिने ऋष्टकाश्राद्धं तत्परेषु रेवाष्य्यका-आहुं न तु नवमीतिथिनियतता। ऋतएव श्रापदसुपात्तं न तु नवमीति तस्नाश्रवस्यनुरोधेन मध्ये एकदिनं विद्याय तस्त्राद्धं सर्वथा न कार्यम्। न चाष्टकादिने श्राद्धदयमिति सिद्धम्।

<sup>(</sup>१) खमावास्थावत् श्राद्धेतिकत्तं खतेति बोध्यम्।

<sup>(</sup>२) च्यष्टकाभवेत्। (३) चान्तयस्य इति वचनात्।

नतु चतुर्यीमष्टकामिभधाय पर्वाष्टकामाधार खेन फलस्य दोषस्य च उक्तेरष्टकाचयस्थेन श्रस्था श्रिप कार्य्यलं रति के स्थित् लिखित-मिति चेत्? उच्यते । यदि तिच्चतयसाम्यमस्याः स्थात् । तदा वायुपुराणे, देवताद्रस्यविधिरुकः स्थात्, किं च तत्त्रयानन्तरं श्रष्टका होति वचनेन नित्यलमिभधाय तदन्तरं चतुर्यी उक्तेति तस्या श्रनित्यलं स्पष्टमेव । उपक्रममध्ये यत्कथनं, तत्तस्या श्रष्टका-नामकलकथनार्यमिति श्रेयम् ।

एवं च .कालादर्शे,—

मार्गजीर्वे च माघे च पौषे प्रौष्ठे च फास्गुने।
हिष्णपचेषु पूर्वेद्युरत्वष्टकां तथाष्टमी ॥ दति।

त्रष्टकापश्चकमिति यमिखितं तद्नयैव दिशा परास्तम्। एव-सुपाष्टकायां यच्छाद्धं सिखितं, तदपि वानित्यम् (१)।

> पितरो यत्र पूज्यनो तत्र मातामधा ऋषि । ऋविभेषेण कर्त्तव्यं विभेषास्त्रकं व्रजेत् ॥

दति गौतमोक्रेः, षट्पुरुषात्मकपार्वण्याद्भमष्टकासु कार्यम् । श्रन्वष्टकायां मातरि स्तायां मात्रादिभिः सह दति वचनात्, "श्रन्वष्टकासु रुद्धौ च" दति वायवीयपुराणोक्रेश्च श्रन्वष्टकायां मात्रादिपुरुषवयमधिकम्। तथाच नवपुरुषात्मकं श्राद्धम्। कान्दोग्येसु मातरि स्तायामपि श्रन्वष्टकायां षट्पुरुषात्मकमेव श्राद्धं कार्य्यम् ॥

कर्षुसमन्वितं सुद्धाः तथाद्यं त्राद्धघोड्गः।

<sup>(</sup>१) तदपि न नित्यम्।

प्रत्याब्दिकं च ग्रेषेषु पिष्डाः स्युः पड़िति स्थितिः॥ तत्रा,

न योषिद्धाः ष्टथग्दद्यादवमानदिनादृते ।
दित कन्दोगपरिभिष्टोकोः । कर्षूममन्त्रितं मिण्डीकरणस्राद्धम् ।
स्रव

मातामहानां यः क्ला मातृषां मम्प्रयम्कति । तर्पणं पिण्डदानं च नरकं चैव गच्छति ॥

दित वचनात् पित्रवर्गश्राङ्कानन्तरमेव मात्रवर्गश्राङ्गम् । तद-नन्तरं मातामद्वर्गश्राङ्गम् ।

श्रव केशित् यक्कितम्, एतदचनस्थाम् जलेन श्रागन्तुकानामन्ते निवेश इति न्यायेन मातामस्वर्गानन्तरं कार्य्यमिति । तदाचार-विसङ्कलादनादर्गीयमेव। एतदचनस्य सर्वश्रिष्टादृतलेन प्रामाण्यात्।

(१) ऋत्वष्टकाख्वष्टकामनग्नेः आद्विमयते ।
देवेभ्यस्य पित्रभयः मात्रभयः यथाकमम् ॥
वृद्धिआद्वे च माचादि गयायां पित्रपूर्वकम् ।
पिता पितामस्येव तथेव प्रपितामसः ॥
माता पितामसी चैव तथेव प्रपितामसी ।
मातामस्प्रमातामस्वद्धप्रमातामसः ॥
तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यचयमुपतिष्ठताम् ।
दिति भाव्यायनवचनाः ।

<sup>(</sup>१) अयका सन्वयकामनमेः।

यन् विप्रसिन्धः पुराणसृत्यपेचया ग्रह्मसूचस्य बस्तवनात् मन्त्य स्वासु सर्वासां पार्श्वस्वयस्याभां परिष्टते पिण्डपित्यम्बन्त् स्वीभ्ययोपसेचनं कर्षुषु इति वचनादन्त एव कर्त्त्र्यम् । मन्त्रष्टका-कर्मणि तथा दर्भनादिति । तस्र क्चिरम् । तथा दि यज्ञवदित्यन्त-मेकं सूचम्, स्वीभ्यखेळोकम् । उपसेचनं च कर्षुषु सुर्या तर्पणेन लाञ्चनेनानुस्तेपन्धुः सम्बद्धेत्येकम् ।

तच प्रथमखार्थः, श्रन्यष्टकासु सर्वासामष्टकानां कर्म भवति इति
ग्रेषः । केन द्रवेणेत्याकाङ्गायां पार्श्वपिक्यसव्याभ्यामिति । सव्यग्रव्दस्य
उत्तरंपद्वं कान्दसम् । पश्चमनिक्षभ्यामिति ग्रेषः । परिवृते
सर्वतः प्रच्छादिते श्रावसव्याग्रिसद्ने । इतिकर्त्तव्यतापेचयामाइ
पिण्डपित्वयज्ञवत्, श्रपराक्षे पिण्डपित्वयज्ञविधिना ।

त्रय दितीयसूचार्थः । पिष्डपित्यज्ञविद्त्यनेन पिचादिचयस्य पिष्डदानं प्राप्तम् । ततोऽधिकसुच्यते स्त्रीभ्यश्चेति । मात्त्वितामही-प्रिपतामहीभ्यः पिष्डान् ददातीति शेषः । चकारः समुच्चये । श्रव सामान्योऽपि स्त्रीशब्दः पिचादिसान्निध्यात् माचादिपरः ।

त्रय हतीयसार्थः, न केवलं स्तीभाः पिण्डान् द्यात् किन्तु उपसेवनं कुर्यात् । कयेत्याकांचायां सुर्या मदीन । कुनेत्याकांचायां कर्षुषु ख्याते व्यित्यर्थः । न केवलं सुर्या किन्तु तर्पयत्यनेन इति तर्पणसाधनं सन्यगदि, तेन । त्रज्ञनं वीराज्ञनं तदभावे लौकिन्काञ्चनम् । त्रनुलेपनं सुगन्धिद्रव्यं चन्दनादि । स्रजः त्रतिप्रविद्ध-सर्भिपुष्पमालाः । चकारः समुचये । द्यादिति ग्रेषः । तथाच ददमावस्थाग्निसदने कर्मान्तरं न लष्टकात्राद्धविषयम् । त्रनेनैवा-

खारखेन श्रन्यष्टकाकर्मण इति यो हेत्रपन्यकः मोऽयमंत्रग्नः । एतत्कर्मानन्तरं श्राद्धे यदि योज्यं तर्हि एतत्कर्मपद्धतौ भाष्येऽपि प्रथमरेखायां, श्रम्पत्पितः श्रमुक्तगर्मन्, एवं पितामहप्रपितामहयो-रित्यवनेत्रनादिकं लिखिला दितीयरेखायां श्रमुक्तगोचे श्रमुकदेवि श्रमुक्तातः इत्यादि लिखिला, एवं पितामहीप्रपितामह्योरित्येव लिखितम्। न तु मातामहादीनां किंचिदिहितमिति माता-महादिश्राद्धलोपापत्तिरिति मुधीभिरवधेयम्।

## त्रय युगादिनिरूपणम् ।

माचीत्यादिविष्णुस्पतिवचो व्याखायते। माघी माघपौर्ण-माधी मघायुक्ता पौर्णमाधी माघीति निह्कोः। प्रौष्ठपयूद्धें कृष्ण-चयोद्गी श्राश्चिनकृष्णचयोद्गीत्यर्थः। ब्रीहियवपाकौ च हत्यच ब्रीहियवपाकोपखचितकासमाचाश्रयणे व्यवस्थापन्तिः। इति कार्त्तिकग्रक्तनवमी वैशाखग्रक्तवतीया च याद्या। इति युगादि-चतुष्टयमित्यर्थः।

तथाच ब्राह्मे,-

वैशाखग्रक्तपचे तु हतीयायां कतं युगम् ।

कार्त्तिके ग्रक्तपचे तु देता च नवमेऽहिन ॥

तथा भाद्रपदे कृष्णचयोद्द्यां च दापरम् ।

माघे तु पौर्णमास्यां च घोरं किलयुगं कृतम् ॥

युगारभाम् तिथयो युगाद्याम्तेन विश्रुताः। दति ।

श्रव भाद्रपदे कृष्णच्योद्यां दति ग्रक्तादिमाशश्रयणेनाश्विनकृष्णचयोदशीत्यर्थः ।

भविष्येऽपि,-

वैशाखग्रक्तस्य तु या वृतीया,
नवस्यभी कार्त्तिकग्रक्तपचे।
नभस्यमामस्य तिमस्यचे,
चयोदशी पश्चदशी च माघे॥
एता युगाद्याः कथिताः पुराणे,
श्रनन्तपुद्यास्तिथयश्चतस्यः।
पानीयमध्य तिलैर्विमिश्रं,
दद्यात् पिव्रभ्यः प्रयतो मनुष्यः॥
श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं,
रहस्रमेतत् पितरो वदन्ति।
श्रत्र मासेऽपिकारेण श्राद्धे सुतरां फलातिशयः।
तथाचमात्ये,—

· क्वतं श्राद्धं विधानेन मनादिषु युगादिषु । हायनादिदिसाइसं पितृणां तृप्तिमावहेत्॥ श्रासु स्वानं नपो होमः पुष्णानन्याय कस्पते। इति

एवमादिवाकानां श्रिष्ठाचादिनित्यकर्मसु फलोकिवत् प्रशंसा-परलात् न प्रथक्क्मापादकलम्। तसादिप्रमिश्रैरेतच्छाद्धचतुष्कं प्रथक् काम्यं च तेन धुरिरोचनथोर्देवतालमित्यादि यस्निखितं, तत्ववं प्रतिकुशाण्डायितमिति मन्तव्यम्। तसात् पुरूरवोमाद्रवसोरेव<sup>(१)</sup> देवतालसमाचारः समीचिनः।

<sup>(</sup>१) प्रवरवोमादवयोरेव।

यत्तु भवियो पुनः कुचित्,—
नवन्यां ग्रुक्तपचस्य कार्त्तिके निरगात् इतम् ।
दत्यादिमात्यवाक्यमपि तत्कच्यान्तरविषयमेव । इतं सत्ययुगः निरगार्किर्गतमुत्पन्नसित्यर्थः ।

त्रथ महालयशाद्भम्।

वृह्यानु:,—

नभस्यस्थापरः पचो यच कन्यां विनेद्रविः । स महालयमंत्रः स्थात् गजच्छायाक्रयस्त्रथा ॥ तच नित्यं काम्यञ्च । तच त्राद्धाकरणे दोषमाह, गार्ग्यः,— सूर्ये कन्यागते त्राद्धं यो न सुर्यात् ग्रहात्रमी । धनं पुचाः सुतसस्य पित्रनिःश्वासपीड्या ॥

गाव्यायनिः पतात्रवणमान्,-

नभस्यस्थापरे पचे तिथिषोड्ग्रकं च यत्। कन्यागतान्वितं चेत्स्यात् च कालः श्राद्धकर्मस्॥ लन्ते वा यदि वा मध्ये यच कन्यां रविर्वश्चेत्। स पचः मकलः पुष्यस्तच श्राद्धं विधीयते॥ तथाच,—

पुष्णः कन्यागतः सूर्यः पुष्णः पचय पञ्चमः । कन्यास्यार्कान्वितः पचः मोऽत्यन्तं पुष्ण उच्चते ॥ यहन्मनुः,—

त्रावादीमवधिं कला पञ्चमं पचमात्रिताः ।

काङ्गिन्ति पितरः क्तिष्टा श्रन्नमयन्तरं जलम् ॥
तस्मात्त्रेव दातयं दत्तमन्यत्र निष्पत्तम् ।
फलमाइ जावालिः,—

पुत्रानायुक्तथारोग्यमैश्वर्यमतुकं तथा ।

प्राप्नोति पश्चमे दला श्राद्धकामांक्रथापरान् ॥

श्रव न कन्यानियमः,

त्राषाड़ीमवधि ज्ञता यः स्थात् पचसु पञ्चमः। तच त्राद्धं प्रकुर्वीत कन्यास्थोऽकी भवेषवा॥ इति मनूकेः।

तच पचत्राहुं मात्ये,—

कन्यां गते सवितिरि दिनानि दग्न पञ्च च । पार्विषेन विधानेन तच श्राद्धं विधीयते ॥ पार्विषेनेति दर्भविधिनेत्यर्थः ।

द्र्यत्राद्धंतु यत् प्रोक्तं पार्व्वणं तत् प्रकीर्त्तितम् । इति भातातपोक्तेः ।

यत्तु, -- कन्यां गते सवितरि यान्यहानि तु घोड्ण ।

कतुभिसानि तुस्थानि तेषु दत्तमयाचयम् ॥

दति ब्रह्मवाक्यं, तत् तिथिवद्धौ वेदितयम् ।

कार्याजिनिः, --

नभस्यस्थापरे पर्चे आद्धं सुर्याद्दिने दिने । नैव नन्दादि वर्धां स्थात् नैव वर्धां चतुर्द्गी ॥ पचआद्धे चतुर्द्ग्यपि न वर्धा । अन्यपचेषु वर्धीव । पचान्तराणि ब्रह्माण्डे,-

श्रश्वयुक्षणपचे तु श्राह्यं कार्यं दिने दिने । चिभागदीनं पचं वा चिभागं दृद्धिमेव वा॥ तच पचश्राद्वाधिकारिणः।

स्ततो, - श्रश्चित्रोत्रि-जितकोध-स्नातक-व्रतचारिणः (१)। पचत्राङ्कं प्रकुर्वन्ति नेतरे तु कदाचन ॥

दिने दिने दित वीष्या सकतः पच देखेकः पचः।

चिभागहीनिमिति पञ्चमीमार्भेलेकः पचः। हतीयो भागः

चिभागः। संख्याप्रव्हस्य हित्तविषये पूरणार्थतमित्यत दित कैयटोकेः। तेन हीनं पचिमात्यर्थः। श्राद्यस्थापि भागस्य हतीयतं चालिनीन्यायेन बोध्यम्। कला तु षोड्ग्रो भाग दत्यादौ तथा दर्भनात्। चिभागमिति द्र्यम्यादिपचः, श्रद्धमित्यष्टमीप्रस्ति-पचः, दित कन्यतहकारादिभिः सर्वैद्यांस्थातम्। एतच "श्रय श्रपर-पचे श्राद्धं पिहभो द्यात् पञ्चम्यादिद्र्यान्तमष्टम्यादिद्यम्यादि सर्वस्थिति" गौतमसूचानुगतं। कात्यायनोऽपि,—"श्रपरपचे श्राद्ध-मूद्धं चतुर्था यद्दः सम्यद्यते सप्तम्या कर्द्धं यददः सम्यद्यते, स्टते चतुर्द्शौ ग्राकेनायपरपचं नातिकमेत्"। दित । श्रच पूर्वं पूर्वं प्रमुनं, श्रद्भस्ता फलस्रमेति सिद्धान्तात्।

नतु चिभागद्दीनमिति पचछ भागचयकरणे षष्ठ्यादिलं प्रती-यते इति चेदुच्यते ।

<sup>(</sup>१) ब्रह्मचारियः।

प्रतिपत्रस्रतिम्बेकां वर्जियला चतुईशीम्। प्रस्तेण तु इता ये वै तेभ्यस्तच प्रदीयते॥ इति योगीयरोकोः।

युवानस्त ग्रन्ते यस्य मृतास्तेषां प्रदापयेत् । चतुर्देश्यां किया कार्या त्रन्येषां तु विगर्हिता॥ -

दति सृत्यन्तराच । चतुर्द्या निषिद्धलानां विना भागत्रय-विधानेन पञ्चन्यादिपचः सुघट एव ।

ा नतः विष्पुधर्मोक्ती पद्याधेकाद्याद्यिची सुयक्ती, ती किमिति नोपत्यसी रति चेत् उचाते।

तथाच विष्णुधमीत्तरे,—

उत्तरात् लयनाच्छाद्धे श्रेष्ठं स्थाद्चिणायनम् । चातुर्मास्यं च तचापि प्रसप्ते केणवे हितम् ॥ प्रौष्ठपद्याः परः पचलचापि च विशेषतः । पश्चम्यूडं च तचापि दणम्यूडं ततोऽयिति ॥ मघायुक्तापि तचापि शस्ता राजंस्तयोदणी ।

दित कमेण प्राप्तस्योक्तिरेव, न तु सर्वया षष्ठ्याद्येकादगादि-पचौ।

नतु चिभागहीनिमित्यादिपचेषु उत्तरोत्तरलघुकालोपदेशात् दशम्यादिपचस्य सिन्नधानाच चयोदग्यादिकः पचोऽस्त नाष्टम्यादि-पचः इति चेत्, उच्यते । श्रादौ पचोपक्रमात्पचस्यैव विभाज्य-लात् श्रद्धभागः पचस्यैव ।

उपक्रमस्त्रश्रुत्यन्रोधेन दुर्वनस्य क्रममाचस्य वाधेऽपि न चितः।

सर्वत्र पचपदानुषङ्गं विनाऽनन्यात् पचस्वैवानन्तरिन्दृष्ट्वं।
त्राई्वे पुनः पचस्य चिभागस्य च त्राई्क्लान्वयौचित्यादुपकमानुरोधेन चिभागान्वयेऽपि मामादिस्यवच्छेदाय पचभागान्वयेन
पचोपस्थितेः पचस्थेव मिनधानम्। पञ्चम्याद्यष्टम्यादिपचौ गौतमादिभिर्यक्रमुक्तौ च। एतेन आद्भविवेकक्षद्भिर्यक्षिखितं, तत् सर्वे
पूतिकुष्राण्डायितमिति मन्तस्यम्।

तैः पुनर्यक्तिखितं क्रणापचम्य पञ्चदग्रतिथ्यात्मकस्य विभाज्यतात् दिने दिने दित वीप्षया पचत्राद्भपचः । ततः पञ्चदग्रत्राद्धानि दिति। एवं तिथिक्रांचे एकसिन्नेव दिने त्राद्धयोग्यतिथिदयसाभे त्राद्धदयमिति द्वेयमेवैतत्। "नैकः याद्धदयं कुर्यात्" दित वाक्या-देव एकदिने समानजातीयस्य त्राद्धान्त्रस्य निषेधात्।

उक्तपवचतुष्टयामकौ पञ्चम्या ऊद्धं जन्मनचचादिवर्जिते किसं-स्थित् एकस्मिन् दिने श्राह्मं कार्य्यम्, ।

तथा च स्कान्दे नागरखण्डे,-

श्राषाळाः पश्चमे पचे कन्यामंखे दिवाकरे।

एकसिमयहोराचे ततः श्राद्धं करोति यः ॥

तस्य संवत्यरं यावत्तृप्ताः स्युः पितरो भुवम् ।

पञ्चम्या जर्द्धमित्यच भविष्ये,—

हंसे वर्षासु कन्यास्थे ग्राकेनापि ग्रहे वसन्। पञ्चम्या उत्तरे दशादुभयोवेंग्रयोर्च्णम्॥

पित्रमातामस्योः कुलयोः ऋणमिव ऋणमित्यवय्यं ग्रोधमित्यर्थः । तत्रैकदिनपचे वर्ज्यमास् गार्ग्यः,— मन्दायां भागंविद्ने चयोद्यां चिजनानि । एषु त्राद्धं न कुर्वीत रहिी पुचधनचयात् ॥ स्रतिममुचये,—

चिजनानि चिपापेषु कविनन्दामघासु च । काम्यश्राद्धं न कुवैति यतीपाते दिनचये ॥ स्टूमार्ग्यः,—

प्राजापत्ये च पौष्णे च पिवर्चे भागवे तथा। यसु श्राद्धं प्रकुर्वीत तस्य पुत्रो विनयः ति॥

नन्दाः प्रतिपत्षष्ठ्यैकादयः भार्गविदिनं शुक्रवारः, विजयानि जन्मदिने जन्मनचने जन्मराभौ च, एतदष्टमचन्द्रनाद्यादेरपस्चणम्। चिपदनचनाणि कृत्तिकापुनर्वसूत्तरफल्गुनीविभाखोत्तराषाद्रापूर्व-भाद्रपदानीति षट्। प्राजापत्यं रोहिणी। पिनचें मघा। पौष्णं रेवती। यतीपात दति विष्टिवैधत्योरुपस्चणम्।

महाभारते,-

नचचेण न कुर्वीत यसिन् जातो भवेन्नरः । न प्रौष्ठपदयोः कार्य्यं तथाग्रेये च भारत ॥ दाक्णेषु च मर्न्वेषु ग्रुक्रवारे च वर्ज्ञयेत् । दाक्णानि च्योतिःगास्त्रे,—

दारुणं चौरगं रौद्रं ऐन्द्रं नैर्स्टतमेव च ॥ इति । श्रौरगं श्रश्लेषा, रौद्रं श्रार्द्रा । ऐन्द्रं च्येष्ठा । नैर्स्टतं मूला । मघायां पिण्डदानेन च्येष्ठपुत्रो विनश्चति । इति भविष्योक्तौ यो निषेधः, स पचश्राद्धसङ्क्येतर्विषयः । तथा च माकर्खियः,-

पचत्राङ्के चयोदयां मिपण्डं त्राङ्किम्यते। संकल्पस्य वग्रादेव मघायां चैव तत्त्रथा॥ संकल्पनामं कुर्वीत संकल्प्य यदि मिक्तमान्। पित्तभिनेरकं यायादेकविंमतिसेव सः॥ इति।

श्राहिताग्निस्त पचादिप्रकार्चत्रष्टयाशकौ सक्रत्कर्णपचे चन्द्र-चयविशिष्टामावास्थायामेव महाजयशाद्धं कुर्यात् ।

न पैल्यिजिको होमो कौ िक के उसी विधीयते।
न दर्शन विना आ इसाहिता मे हिंजनानः ॥ इति मनूकेः।
यसात् पिल्यजाङ्गस्रतो उसी करण होमो कौ िक के उसी न
विधीयते किन्तु दिचिणासी, म तु दर्श एव। तदु इरणस्य विधमानलात्। अपरपचे यद्दः मन्पचेत अमावास्थायां विशेषेण
इति विशिष्ठोत्रोः। यदा निरिमस्त अमावास्थायां महास्यं कुर्य्यात्,
तदा चन्द्रचयविशिष्टायां अमावास्थायां मेव इति तस्य नियमः।
किन्तु महास्थयाद्वस्य इतरपार्वणलात् "महामात् परतः पश्च
मुद्धन्ताः पार्वणस्य इतरस्य तु" इस्युक्षनु सारेण यस्मिन् दिने
तादृ ग्रपार्वणकाले दर्शः स्थात् तिहन एव महास्थयाद्वं कुर्य्यात्।

पार्वणेन विधानेन कुर्यादापरपिकम् । विश्वदेवाः परं चाच विजेयौ धूरिरोचनौ ॥ इति स्नृतेस । श्रचाधिमामपाते इरुद्धमास एव महास्वयश्राद्धं कार्य्यमिति कालाग्रद्धिप्रकरणे लिखितम् ।

महासयश्राद्धे धूरिरोचनयोर्देवतालम्। काम्येन नित्यलिख्देः।

श्रिम् कन्यागतापरपचे दैवाच्छाद्वामभवे ब्रह्माण्डे,— यावच कन्यात् स्योः क्रमादासे दिवाकरः । तावच्छाद्वस्य कासः स्याच्छून्यं प्रेतपुरं तथा ॥ कन्यां गते सवितरि पिटराजान् प्रामनात् । तावग्रेतपुरी श्रन्या यावदृश्विकदर्भनम् ॥ ततो दृश्विकमायाते निराप्ताः पितरो नृप । पुनः स्वभवनं यान्ति ग्रापं दन्ता सुदाहणम् ॥

द्त्यादिवचनात् तुलायां धर्वत्र श्राद्धम् । येथं दीपान्तिति वचनस्य श्रमावास्त्राप्रग्रंमापर्त्तम् । यावदृश्चिकदर्गनं दित वचनात् दिश्चिकेऽपीति केचित् । तस्र श्राचारिविद्धतात् युक्त्यमञ्जाञ्च । तथाचि दिश्चकदर्गनं यावदिति तुलेव प्राप्यते न तु दृश्चिकमामः । श्रतएव यावच कन्यातुलयोरित्येवोक्तम् । ततो दृश्चिकमायाते दृश्चुक्तेनं सर्वथा दृश्चिके श्राद्धप्रमङ्गोऽपि । किं च यावच कन्या-तुलयोरित्यादिवचनेस्तुलायां श्रपर्पचे सर्वच प्राप्तौ

"सामान्यविधिरस्यष्टः संद्वियेत विशेषतः" इतिन्यायेन,

येथं दीपान्तिता राजन् खाता पञ्चदगी भुवि।
तस्यां दद्यात् न चेह्त्तं पितृणां वे महालये॥
दित सुमन्तुवचनेन कार्त्तिकामावास्यैव अनुकस्पलेन विहिता।
अतएवास्य न प्रगंगापरत्मम् फलोक्केखाभावात्।

श्राश्विनसापरे पचे प्रथमे कार्त्तिकस्य तु। यम्तु श्राङ्कं प्रकुर्वीत मोऽश्वमेधक्तनं न्नभेत्॥ दति मार्केण्डेयवचनन्तु केवलकाम्यश्राह्यान्तरं प्रतिपादयति । न तु नित्यश्राह्मम् । मंन्यामिनो महालयश्राह्यं दादम्यामेव । तथाच वायवीयो,—

मंन्यामिनोऽष्याब्दिकादि पुत्रः कुर्यात् यथाविधि ।

महास्रये तु यच्छ्राद्धं दाद्य्यां पार्वणेन तु॥

पार्वणविधिनेत्यर्थः । श्रव यतेर्दाद्गी नियता। न तु दाद्य्यां

यतिनियमः । तत्र श्रन्यश्राद्धस्यानिषेधात् ।

मधात्रयोदगीत्राद्धं, श्रंखः,—

प्रौष्ठपद्यामतौतायां मघायुक्तां चयोदशीम्।
प्राण श्राद्धं हि कर्त्त्रयं मधुना पायसेन च॥
मनुः,—

यत्निं विश्वधुना मित्रं प्रद्धानु चयोदगीम्।
तद्यन्यमेव खादर्षासु च मघासु च ॥
यत्निञ्चिदिति त्रनिषिद्धश्राद्भद्रयविषयमेवेति ग्राह्मम्। न तु
इविष्यद्रयम्। सामान्येन श्राद्धेषु ग्राद्धद्रयखैव उन्नतात्।
विष्युधर्मीत्तरे,—

मघायुका च तचापि ग्रसा राजंखयोदगी। तचाचयं भवेच्छाद्धं मधुना पायसेन च॥

त्राह्मे,-

त्रात्रयुज्यां च क्षणायां चयोदयां मघास च । प्रारुडुतौ यमः प्रेतान् पित्हनय यमालयात्॥ विसर्ज्जयति मानुखे कला ग्रन्यं खकं पुरम्। चुधात्ताः कीर्त्तयनाय दुष्कृतं च खकं कतम् ॥
कांचनाः पुत्रपीचेभ्यः पायमं मधुमंयुतम्।
तस्मात्तांस्तत्र विधिना तर्पयेत् पायमेन तु ॥
मध्याज्यतिष्विभिश्रेण तथा ग्रीतेन चाम्भमा।
ग्राममाचं परग्टहाद्भकं यः प्राप्नुयाचरः ॥
भिचामाचेण यः प्राणान् मन्धारयति वा खयम्।
यो वा मम्बद्धयेद्देषं प्रत्यषं खात्मविक्रयात् ॥
श्राद्धं तेनापि कर्त्त्रयं तैसीर्द्रयोः सुमिश्चतैः ।
चयोद्यां प्रयत्नेन वर्षासु च मघासु च॥
नास्मात् परतरः कात्तः श्राद्धेखन्यन वर्त्तते ।
यन साधानु पितरो ग्रह्मन्यस्तमचयम् ॥

त्रत्र भवंत्र वर्षाग्रब्द त्रापाक्यविधपञ्चमपचपरः। त्राययुज्या-मित्यादिनद्वोत्तिसमानत्वात्। श्रत्र मधुसर्पिषोः दानं त्रचयपस-कामिन एव, न तु सर्वेषां नियतम्।

> यह्दाति गयास्य सर्वमानन्यमञ्जूते। तथा वर्षाचयोद्ग्यां मघासु च विशेषतः॥

दति याज्ञवस्कानेर्मनूकिखारसाच । कन्यागतापरपचाधिकारे,—

तचापि महती पूजा कर्त्त्र पिट्टरैवते। स्टचे पिष्डप्रदानं तु ज्येष्ठपुची विवर्जयेत्॥ इति देवीपुराणोकोः।

मघायां पिण्डदानेन ज्येष्ठः पुत्रो विनग्यति।

दितं स्मृतिममुंचयोक्तेस् , पुनिषा वर्षाचयोद्यां पिष्डर्हितं श्राद्धमेव<sup>(१)</sup> कार्यम् । श्राहिताग्नेः पिचर्चनम्, "पिष्डेरेव ब्राह्मणा—निष भोजयेत्" दित कात्यायनवचनं पिष्डपित्वयज्ञपर्मिति तैरिष युगादिवत् पिष्डर्हितं श्राद्धं कार्यमेव । चेष्ठः प्रथमोत्पन्न दित प्राचीनाः । विद्यमानपुनाणां चेष्ठ दित मदनपारिजाताद्यः ।

क्रण्यपचे चयोदय्यां श्राद्धं यः कुर्ते नरः । पञ्चलं तस्य जानीयात् च्येष्ठपुचस्य निस्चितम्॥ इत्यक्तिरोवचनेन ।

मघासु सुर्वतस्त्रस्य च्येष्ठपुत्रो विनम्यति ।

द्ति वचनेन च श्राद्धनिषेधः पिण्डदाननिषेधपर एव। पूर्वीक्रवचनात्, नेवसमधायां नेवसमयोद्याः च श्राद्धविधानाच। तथाच वायवीये,—

मघास कुर्वन् श्राद्धानि धर्वान् कामानवाप्त्यात्।
प्रत्यचमर्चितास्तेन भवन्ति पितरस्तथा ॥
मघानचवस्य पिट्टवतलात् प्रत्यचिमत्युक्तं।
विष्णुधर्मोत्तरे,—

प्रीष्ठपद्यामतीतायां तथा क्रम्णचयोदशी।

एतांस्त श्राह्मकाचान् वे नित्यानाः प्रजापितः ॥ इति।

तच यद्गौड़ेस्तिथितत्त्वकारैः केवसमघायां केवसचयोदश्यां च

श्राह्मविधायकवचनं विध्यन्तरकस्पनागौरवात् श्रवयुत्यानुवाददत्युक्तम्। तस्र क्चिरम्। नित्यश्रब्दोपादानानुपपत्तेः। श्रमावास्था

<sup>(</sup>१) श्राडम्।

तिस्रोऽष्टका रत्यादि विष्णूक्षादिना केवलचयोद्ग्यां श्राद्धममा-चाराच ।

ननु पितरः सृष्यन्यचमष्टकासु मधासु च । तस्माइद्यात् सदा युक्तो विदत्सु ब्राह्मणेषु च ।

दित शतातपवचने गरा शब्दोक्ताविप केवसमधायां किमिति आहं न क्रियते, दित चेदुच्यते। एतदिप तस्यां चयोदस्यां मधा-योगस्य प्रायः सम्भवात् चयोदशीपरमेवेति बोध्यम्। केवसमधायां यच्छ्राह्ं तत्कास्यम्। तथा मधायुक्तचयोदस्थामि कास्यम्। केवसचयोदशीआहुन्तु नित्यमेवेति सर्वे समञ्जयम्।

गजक्कायायोगे तु फलाधिकाम्, तथाच यमः,—
यदेन्दुः पिह्नदैवत्ये इंग्रेयेव करे खितः ।
याम्या तिथिर्भवेत्वा हि गजक्काया प्रकौर्त्तिता ॥
सृत्यन्तरे,—

कृष्णपचे चयोद्कां मघाखिन्दुः करे रिवः । यदा तदा गजच्छाया श्राद्धे पुष्णैरवायते ॥ पिट्टदैवत्यं मघा, याम्या तिथिः चयोद्भी, करः इस्नानचत्रं। मात्यो,— गयाश्राद्धसमयोगाः,

भरणौ पित्रपचे तु महती परिकीर्त्तिता।
तस्यां त्राद्धं कृतं येन म गयात्राद्धक्रद्भवेत्॥
यदेन्दुः पित्रदैवत्ये हंमश्रेव करे स्थितः।
याम्या तिथिभवेत् मा हि गजक्काया प्रकीर्त्तिता॥
त्राषाद्धाः पञ्चमे पचे गयामधाष्टमी मृता।

चयोदभी गजच्छायां गयातुच्ये तु पैहके ॥ इति महालये योगविशेषफलम्।

ग्रस्तहतस्य महासयश्राद्धविचारः।

ब्राह्म, - तर्पणीयास्तर्द्ग्यां जुप्तिपछोदंकियाः । ग्रस्तेण निइता ये वै तेषां तत्र प्रदीयते॥

वै इति नियमवाचकम्। तथाच "वमनो बाह्मणोऽग्रीना दधीत" दतिवदुभयनियमः। चतुर्द्यां प्रस्नहतस्य एव श्राद्धम्, नान्येषाम्। प्रस्तदतसः चतुर्द्गयां नान्यसां तिथावित्यर्थः।

तच तस्य श्राद्धमेव एंको द्विष्टविधिनैव। तदाइ मरीचिः,-

ममलमागतस्थापि पितुः ग्रस्त्रहतस्य वै। एकोदिष्टन्तु कर्त्तवां पितृणां तु महासंबे॥ यमलमागतस्य कृतमपिण्डनस्यापीत्यर्थः। ग्रस्तहतसंज्ञा पारिभाषिकौ ।

तथाच भगवतीपुराणे,-

पचिमत्यमृगेर्घे तु स्क्रिदं द्रिनखैईताः। पतनानग्रनप्राचैर्वजाग्रिविषवन्धनैः॥ मृता जलप्रवेभेन ते वै भस्तहताः सुताः।

व्ह्यानुः,—

मर्पेईता रणे वाषीः कुमीरैय गर्जेईवैः। जत्यातेन च वर्जीयं श्रांह्रं तेषां चतुर्द्भीम्॥ मरीचि:, - विषप्रस्तयापदादितिर्थग्वाद्यणघातिनाम्। चतुर्द्धां किया कार्या श्रन्येषां तु विगर्हिता॥ घातमेषामकीति घातिनः, तेर्हतानामित्यर्थः। देवीपुराणे,—

त्राहवेषु विपन्नानां जलाग्निस्गुपातिनाम्।
चतुर्द्यां भवेत् पूजा द्वामावास्थां तु कामिकी॥
त्रव कामिकी पूजा च षाट्युक्षिकमपरपचन्नाद्भम्।

श्रपरपचप्रकरणे प्रतिपदादिषु प्रतितिथिपत्रकामना उन्नास्तव एकदिनकरणपचे प्रस्तदतिपत्रकस्य पुचस्य नाधिकारः, कामना-पेचायां चतुर्द्यां श्राद्धं क्रवेद दर्भे काम्यं श्राद्धं कुर्यादित्यर्थः।

त्रमावास्थायां फलन्तु वायवीये,-

सर्वान् कामानवाप्नोति खगैं चानन्यमञ्जुते । इति । एतेन मघानयोद्यां तस्य नाधिकरः । तथाच सृतिरपि,—

मघात्राद्धं न कुर्वीत त्रक्तवा ग्रस्तघातिने ।
कावा त विधिवत्तसी ग्रेषं दर्भे समापयेत् ॥
विधिवदिति षाट्पुरुषिकत्राद्धं कुर्य्यात् रत्यर्थः ।
त्रभ्यस्तेण हताः केचित् यश्चं ग्रस्ते निपातितः ।
तेभ्यः पिण्डवयं देयं कर्त्तव्यमपरेऽहनि ॥

दति ग्रास्तान्तरात्। कर्त्तंत्र्यमिति मातामद्दर्गस्यापीति-ग्रेषः। "पितरो यत्र पूच्यन्ते" दति गौतमोक्तेः। एवं च स्रति "चतुर्द्यां भूतिकाम" दति द्वारीतोक्तिः, चतुर्द्य्यामायुर्द्दनर्द्धि-रित्यापस्तम्बोक्तिः। जातित्रेष्ठ्यं (१) चयोद्ग्यां चतुर्द्ग्यां बक्तप्रजाः ।

प्रीयन्ते पितरसाच ये ग्रस्तेण इता रणे॥

दित मनूक्तिरिप पचत्राद्भमद्भन्यविषयेव । केचिनु दग्रम्यादि

मंद्रस्थिनोऽपि चनुर्द्गी निविद्धैव दत्याक्तः ।

तथाच मनुः,—

कृष्णपचे दशम्यादी वर्ष्णयिला चतुर्दशीम्। श्राद्धे प्रश्रसासिययो ययेता न तयेतरा॥ दति। दति महालयश्राद्धम्॥ श्रयन्तिर्द्धनस्य <sup>(२)</sup>नित्यश्राद्धकर्णाश्रको,

> श्रनेन विधिना श्राद्धं चिरब्द्खेह निर्विपेत् । हेमन्त्रशीश्रवर्षसु पञ्चयश्चिकमन्त्रदं ॥

रित मनुना वर्षमधे श्राद्धचयकरणेऽपि प्रत्यवायाभाव उकः। श्रव चतुत्रये मामखास्जुटलात् स्जुटमाइ मात्ये,— श्रवेन विधिना श्राद्धं चिरव्दस्थेइ निर्वपेत्।

कन्याकुमारुषस्थेऽर्के हृष्णपचेषुं मस्वेदा॥

तंत्र दिनममावास्या इति प्रतिभाति । तत्त्रयाश्रकौ स्कान्दे,—

श्राषाद्याः पञ्चमे पचे कन्यामंखे दिवाकरे।

एकस्मित्रणहोराचे तच श्राद्धं करोति यः॥

तस्य सम्बक्षरं यावनृत्राः स्युः पितरो भुवम्। इति।

कन्यापरपचश्राद्धश्रकारचत्रष्टयात् पृथगेविमिति बोध्यम्॥ इति।

<sup>(</sup>१) ज्ञातिश्रेद्यम्। ... (२) सर्वनिख-।

## श्रय प्रदीपामावास्वाश्राद्भम् ।

तच नित्यं फलाश्रवणात्। किसिंखिदाक्ये फलोकेः काम्यमि । वाक्यरक्षावस्त्राम्,—

तुलां प्रत्यागते सूर्ये त्रमावासाति यिभवेत् ।

उपास्तमये दीपान् पितृन् द्द्याच्कुचिः ग्रुचिः॥

ग्रुचिः ग्रुचिरिति दिवोपोषितः रति स्रतिरक्षमास्तायाम् ।

तुसास्ते भास्तरे दर्गे त्राह्यं ज्ञला परास्तिम् ।

दीपदानं ततः सुर्यादुपास्तमये रतौ ॥

उपास्तमयः चिमुह्रचात्मकः प्रदोषकासः।

तथाच च्योतिषे,—

तुनामंखे महसांशौ प्रदोषे स्तदर्शयोः।

उन्नाहसा नराः कुर्युः पितृणां मार्गदर्शनम्॥ इति।

तन पूर्वेद्युर्दिवा श्रमावास्थायाः श्रभावेऽपि उपास्तमये

तसम्बन्धे प्रदीपदानं तन्वेव। दर्शश्राद्धादिकं तु परदिने।

श्रमा वमति यद्वाचौ तन दीपं प्रदापयत्।

तर्पणं पिष्डदानं च श्राद्धं चैवापरेऽहिन॥ इति सृतेः।

यदोभयदिने प्रदोषचाप्तिः, तदा परदिने दीपदानम्।

दण्डिके रजनीयोगे दर्शस्य स्थात्परेऽहिन।

तदा विहाय पूर्वेद्यः परेद्युः सुखरानिका॥

इति ज्यौतिषवचनात्। उभयदिने प्रदोषचाष्ट्रभावेऽपि पर्च,

भूताहे ये प्रकुर्विना उल्लायहमचेतमः ।

पूर्वीक्रपार्णानुरोधात्।

निरागाः पितरो यान्ति गापं दला सदारूणम् ॥ ः दित च्यौतिषवचनाच । दीपदाने सायंसमागम एव कासः, उपास्तममय दत्युक्तलात् ।

तदिधिय परिणिष्टे,-

तुलाखे भाखते दर्शे उपालममये रवो।

एकेकस्य पितृंस्तींस्तीन् प्रद्यात्पित्यश्चवत्॥

गरत्पक्रवीदिपिष्टैरतु खिक्षेत्त पूपकेः।

श्चाधारैई विषा दीपान् प्रद्याद्गम्थले पितान्॥

रजमालकृते देशे प्रस्तीर्णे तिलदर्भकेः।

श्चामावक्षी जकुसमेर चिंतेर्गम्थ प्रयक्तेः॥

कार्पामवक्तिभिस्तेव प्रान्तस्यक्ति विविज्ञतेः।

वसामेदो विरहितेने विक्षानि कदाचनः।

द्यादान्यच च ग्रदे धूपं गुग्गुलु मर्पिषा॥

ज्योतिले किमवाप्रोति तुलास्ये दीपदर्शिते।

पश्चन् वै दिश्रमाकाशं विश्वदेवपुरः सरम्॥

पितृन् पितामहानन्यान् दर्शयेच प्रयक्ष्यक्।

श्रायुर्वसं धनं प्रचमारोग्यं समनोर्यम्॥

दीष्यमानं प्रदीपं च दला शंचिना दातरि।

पित्रयज्ञवत् तर्पणवत्. "पित्रयज्ञस्त तर्पणिमिति" कात्याय-नोकः। तेन विश्वदेवानां प्रत्येकमेकेकं दीपान् दद्यात्। सनका-दीनां दौ दौ। पित्रृणां चीन् चीन्। विमाचादीनां पुचरिक्तानां पित्रव्यादीनां च एकेकम्। अन प्रमाणमस्रत्कताचारसारे

द्रष्टवम् । श्रव<sup>(१)</sup> पद्भतिः ग्रहाद्विरङ्गणे सामान्यतो वेदीं कला गोमयेनोपलिय सिततण्डुलरजसा चतुरसमण्डलं कता पूर्वस्थां दिशि दंश कोष्ठाः, उत्तरस्थां प्रत्येकं मध्ये एकरेखायुकाः सप्त-को हाः। द्विणसां प्रत्येकं मध्ये दिरेखायुका दाद्यको हाः। विमाद्यपित्याद्यं एकेककोष्ठाः। तच पूर्वसां प्रतिकोष्ठं सयो-स्ता द्चिणत उत्तरमंखं एकैककुग्रखापनं कुर्यात्। उत्तरखां प्रतिकोष्ठं निवीती भूला पश्चिमतः प्रान्धंसं सुग्रदचस्थापनम्। द्विणस्थां प्रतिकोष्ठं श्रपस्यः भूला पश्चिमतः प्राक् संसं मोटकस्यापनम् । पूर्वीत्तरकोष्ठेषु तण्डुक्यामस्तापुष्पादिप्रचेषः। दिचणपार्थे तिस-म्यामलतादिप्रचेपः, ततः तासपाचे जलं पूर्यिला गन्धपुर्यातल-कुममोटकादि प्रचिष विष्णुं सृता भोमित्यु वार्य सहत्वर्वीपकरण-द्रयं प्रोचयेत्। ततः सद्भन्यः, तच विशेषः। सयो भूला देश-कालवाकामुचार्यापमचो द्विणामुखः सन् श्रद कार्त्तिकामावा-खायां जपासममयगे रवौ च्योतिखें कप्राप्तिकामी अभुकसगीवाणां श्रसत्पित्यपितामदप्रपितामदानां श्रमुकासुकासुकगर्मणां, (१) श्रमुक-सगोचाणां श्रस्रकाद्यपितासहीप्रंपितासहीनां श्रसुकासुकासुकदेवीनां <sup>(२)</sup>त्रमुक्सगोत्राणां त्रसानातामस्त्रमातामस्टद्धंप्रमातामसानां त्रमु-कासुकासुकप्रमंणां, श्रसुकसगोत्राणां श्रस्तवातामहीप्रमातामही-रुद्भमातामहीनां श्रमुकामुकामुकदेवीनां क्रलादिदशविश्वेदेवापूर्वक-सनकादिसप्तमनुष्यसहितानां दीपदानमहं करियो। इति। ततः प्राज्ञुखः "विश्वेदेवा स श्रागत प्रमुताम इमं इवम्। एवं विहिनिधी-

<sup>(</sup>१) तत्र । (२) चमुकग्रमंग्राम्। (३) चमुकदेवीनाम्।

दत" इति मन्त्रं पठिला पूर्ववत् पुष्पकुत्राचतानि ग्रहीला प्रथमतो दं चिणकोष्ठे कतोऽत्रागच्छेत्यावादनम्। तदुत्तरकोष्ठे दच अवाग-च्छेति। एवसुत्तरसंस्यं। वसे श्रवागच्छ। सत्य श्रवागच्छ। काल त्रवागक्कः। काम त्रवागक्कः। धूरे<sup>(१)</sup> त्रवागकः। रोचन त्रवागकः। पुरुरवोऽचागक्क। माह्वोऽचागकः। इति विश्वदेवानावाद्य ॐ क्रतो एष ते गन्धः खाद्या, नमः इति गन्धं दला पूर्ववत् इदं म्याम-सतापुष्यं तुभ्यं खादा। एवं धूपं दीपं द्यात्। एवं क्रलादिभ्यो-दद्यात्। तत उत्तरदिक्तोष्ठेषु पश्चिमतः। पूर्वं प्रति प्रतिकोष्टं कुग-दयपुष्पाचतानि ग्रहीता ॐ मनक श्रवागच्छ। मनद श्रवागच्छ। सनातन ऋचागच्छ । कपिल ऋचागच्छ । ऋासुरे अचागच्छ । वोढो श्रवागकः। पञ्चित्रिय श्रवागकः। दति श्रावाद्येत्। सन्तु एए ते गन्धो इन एवं पुष्पधूपदीपानां दद्यात्, एवं सन्दादिभ्यो गन्धपुष्प-धृपदीपानां प्रत्येकं दद्यात्। ततो दचिणदिक्कोष्ठे पश्चिमतः प्रतिपूर्वे प्रतिकोष्ठं तिसकुप्रमोटकपुष्पाणि ग्रहीला "ॐ उप्रनस्ता निधीमद्युवन्त समिधीमहि। उत्रनुत्रत श्रावह पितृन् हिवषे श्रन्तवे", इति मन्तं पठिला ॐ श्रमुक्सगोच श्रसात्पितरमुक्तशर्भन् त्रवागच्छ, इत्यादिक्रमेण पितामहप्रिपतामही माहपितामही-प्रितामहीः मातामहप्रमातामहरुद्धप्रमातामहान् मातामही प्रमातामही टद्धप्रमातामही रावाद्य ॐ त्रमुक्सगोच त्रमुक्तार्मन् एष ते गन्धः खधानमः दलादि क्रमेण दीपान्तं सर्वेभः दद्यात्। ततस्तेनैव क्रमेण ॐ क्रतो एष ते दीपः खाहा नमः इति, वाक्यात्

<sup>(</sup>१) धरे।

सिन्न-पूपमय- हताक्त-द्रस्वर्त्तिनं दीपं प्रत्येक मेक मेकं पूर्व दिगाका गं प्रयम् सर्वेश्यो विश्वेश्यो देवेश्यो द्यात्। ततः सनक एतौ दीपौ हनति उत्तर दिगाका गं प्रयम् सनका दिश्यः प्रत्येकं दौ दौ दीपौ द्यात्। तदनन्तरं त्रमुक्तसगोच त्रसात्पतर मुक्त गर्यान् एते दीपासुश्यं स्वधा नम दित दिखण दिगाका गं प्रयम् पिना दिश्यः प्रत्येकं चौस्तीन् दीपान् द्यात्। ततो विमाद्य-पित्त्या दिश्य-यावा हनमन्तरेण प्रत्येकं एक कं दीपं द्यात्। तत त्राईक नारिके जे हु-सात्रेष ते दीपः स्वधा नम दित द्यात्। तत त्राईक नारिके जे हु-स्वण्ड-त्रसुक स्वण्ड-त्रसामाक स्वता प्रयम्वपत्रिका दीनि सर्वत्र क्रमेण मयत्या निवीतितया त्रपस्यत्या च समर्पयेत्। ब्राह्मण-भोजनम्। त्रिक्त द्रावधारणम्। तत उल्लादर्भनम्।

तच ग्रहणमन्त्रः ब्राह्मे,-

ंत्रस्तमस्तहतानां च भूतानां भूतद्र्ययोः ।

 उज्ज्वनज्योतिषा देचं दहेयं योमवर्त्तिनाम् ॥
दानमन्त्रः,

श्रियदम्धाः ये जीवा येऽणदम्धाः कुले मम। उज्जवन्योतिषा दम्धान्ते यान्तु परमां गतिम्<sup>(१)</sup>॥ विसर्जनमन्त्रः,

पित्रलोकं परित्यन्य त्रागता ये महालये।

<sup>(</sup>१) क्रत्वादिदेवताः सर्वाः पितरस्य महर्षयः । सर्वे ते खपगच्छन्तु स्वनया ज्वालया सह ॥ कसिनंस्वित् एक्तके इदमधिकम् ।

उज्ज्वलाक्योतिषा वर्ता प्रपायन्तो वजन्तु ते ॥
ततो ग्रहदेवताभ्यो जीवज्ञाय बन्धुभ्यो दीपान् द्यात् ।
दति प्रदीपामावास्थात्राद्धम् ॥

.अयनवान्त्र आदुम्।

तच नित्यं। तथाच ग्रातातपः,—

श्रन्यच दोषोक्तिर्वि,— .

नवोदके नवान्ने च ग्रहच्छादन एव च।

पितरः स्पृहयन्थनमष्टकासु मघासु च॥

तस्माद्द्यात् सदा युक्तो विदत्सु बाह्यणेषु च॥

इति सदाग्रब्दप्रयोगात्। नवोदके वर्षीप्रक्रमे।

त्रीहिपाने च कर्त्तवं यवपाने च पार्थिव ।
न तावाद्यी महाराज विना आहुं कथञ्चनन ॥
तथाहि बीहिपानकाले दिश्वने, यवपानकाले मेषे च नवास्नामनाई यस्मिन् कसिंश्विद्विमे नवास्त्रआद्भदयम्। श्रवासाद्देशे
यवगोधूमयोः सर्वेच प्रचाराभावात् नेचित् यवास्त्रआद्भं न सुर्विना ।
तच नवास्तित्यादि, ज्योतिः शास्त्रे,—

भेषू या हि ग्रिवान्येषु. विभौ म ग्रानिवासरे । श्रम्भ प्राग्न वत् सुर्खात् नवा स्रफल भचणम् ॥ नवा सं नैव नन्दायां न च सुप्ते जनाई ने । न स्रष्णपचे धनुषि न तुसायां कदाचन ॥ वृद्धिने ग्रुक्तपचे तु नवास्रं ग्रस्तते बुधैः। यत्कृतं धनुषि श्राद्धं स्थानेचासु राचिषु॥ पितरसन्त्र स्मान्ति नवास्नामिषकांचिणः।

पूर्वभारगुनीपूर्वाषाढ़ापूर्वभाद्रवमघादिजाञ्चेषाद्राविर्जितेषु नचचेषु दत्यर्थः । नन्दाः प्रागुक्ताः ।

म्हगने चारा चयस्तु सूर्यो च्येष्ठापरार्द्धगे।

श्रम्नशाधनवदिति रिक्षाः तिथयो वर्ष्याः । सग्रश्रद्धादिकं च तद्वम्रान्यत् किञ्चित् ।

श्रस्य श्राद्वस्य पार्वणतात् श्रपराषः कर्मकासः। एतच पिण्डादिरहितं सङ्कल्पश्राद्वम् ।

तथाच मार्कछ्यः,-

युगादी पड़िणीतां च ग्रहाच्छादन एव च ॥

युगादी पड़िणीतां च ग्रहाच्छादन एव च ॥

नित्यश्राद्धे च मंकान्यामिषण्डं श्राद्धिमस्यते ॥

तच ग्रिष्टानां मंग्रहकारिकाः,—

मघास्यतीपातिनिण्याकरार्कीपरागमंकािन्तयुगादिकेषु ।

च्चादे ग्रहाणां नवणस्थलाभे श्राद्धे विशेषं प्रवदन्ति घीराः॥

नावाहनं नार्षविधिनं चाग्नौ किथाविकीणां न च चापि पिण्डाः।

नाचस्यदानं न च सौमनस्यं नैव स्वधावाचनदिष्णे च॥

"वर्षीपक्रमश्राह्यन्तु हेमन्त्रशिश्ववर्षासु" इति वचनैः प्राहट्-कालाद्यद्र्भश्राद्धेनैव चरितार्थमिति पृथक्श्राह्यं न कुर्वन्ति। तच श्राद्धकर्णे तु फलाधिक्यमिति।

## त्रय भीषाष्ट्रमीत्राद्धम् ।

भाषमामं प्रकारा धवलमञ्जर्दः,—
श्रष्टम्यां च मिते पने भीयाय च तिलोद्कम्।
श्रन्नं च विधिवद्द्युः सर्वे वर्णा दिजातयः॥
श्रन्नं फलाश्रवणान्नित्यत्वम्।
माघे मासि शिताष्टम्यां मिललं भीयवर्मणे।
श्राद्धं च ये सदा कुर्युस्ते स्युः मन्तिनागिनः॥
दित पुराणान्तरोक्तेः काम्यत्वमि ।
भवियोत्तरे.—

ग्रुक्ताष्टम्यां तु माघस्य द्यात् भीक्याय भोजनम् । संवत्यरक्ततं पापं तत्चणादेव नग्यति ॥ दिजातय दति समोधनम्। सर्वे वर्षा दति जक्ततात् च्छेष्ठवर्ष-स्थापि ब्राह्मणस्थावस्यकतं ग्रुद्रस्थायधिकारो महालयादिस्विव . नित्यकाम्थलात् ।

त्राह्मणो द्यान्यवणस्य यः करोत्यौर्द्धदेश्विकम् ।
तदर्णलमसौ याति दश्लोके परच च ॥
दिति मरीचिवचनम् ।
सवर्णभ्यो जलं देयं नासवर्णे कयंचन ।
दिति वचनं च न भीश्रश्राद्धतपंणयोर्वाधकम् ॥
त्राह्मणाद्यास्त ये वर्णा द्युभीश्राय नोदकम् (१) ।

<sup>(</sup>१) नो जलम्।

संवत्परक्षतं पुष्यं तेषां नम्यति मत्तम ॥

इति सृतेः। भीषास्य वसुलाच।

वस्न् स्ट्रान् तथादित्यान् नमस्कारस्वधान्वितान्।

एते सर्वस्य पितर एष्यायत्ता हि मानुषाः॥

इति वस्नां पिटलस्तृतेः।

तच तर्पणमन्तः,

वैधान्नपद्यगोचाय<sup>(१)</sup> सांक्रतिप्रवराय च । ऋषुचाय ददास्येतत् सिक्कं भीग्नवर्मणे ॥ ऋाग्नंसावचनं तु,

भीगः ग्रान्तनवो वीरः ग्रत्यवादी जितिन्द्रयः।
ग्राभिरद्भिरवाप्नोतं (१) पुत्रपौत्राचितां क्रियाम् ॥
एतच त्रागन्तुकलात् गर्ववर्णानां पित्रतर्पणान्ते कार्य्यम्।
श्रव गौदैश्विणितलकारैर्यदुकं ब्राह्मणस्य वर्णव्येष्ट्यात् त्रन्ते
कार्यं त्रन्येषां त्रादाविति, तद्यक्तिविषद्भम्। भीग्नवर्मणो वस्त्वेन
ब्राह्मणस्यापि पित्रलात्।

त्रतएव हरिभिक्तिविकासे वैष्णवकारिका,—
माघस्य चाष्टमीं ग्रुक्तामार्भ्य दिनपञ्चकम् ।
तर्पयेद्यवाष्टम्यां भीग्रं भागवतोत्तमम् ॥
नित्यतर्पणतः पञ्चात् सिल्लान्त उद्झुखः ।
निवीतितर्पणं कुर्यात् गाङ्गेयस्य महात्मनः । इति ।
त्रस्य श्राद्धस्य एकोदिष्टकाल्लात् एकोदिष्टकालेन व्यवस्था, वैश्व-

<sup>(</sup>१) वैयाद्रपद्यसगोत्राय।

<sup>(</sup>२) चाप्रोति।

देवानन्तरतं च। वैयाप्रपद्यमगोच भीषावर्मन् इदमन्नादिकं तुभ्यं स्वधा नमः इति श्रन्नोत्सर्गः कार्यः। इदं भीषावर्मणे इति त्यागः।

जीवत्पिताऽपि कुर्वीत तर्पणं यमभीषायोः।

द्ति वचनात् जीवित्यत्वेणापि भीग्रत्येणं कार्य्यम्, नित्य-लाच । श्राद्धस्य नित्यलेऽपि जीवित्यत्वकस्य श्राद्धेस्वनिधकारात् नैव श्राद्धं कार्य्यम् ।

जीवत्पिटकस्य श्राद्धनिष्धमात्र कात्यायनः,—
सपितः पिटकत्येषु श्रधिकारो न विद्यते ।
न जीवन्तमतिकस्य किह्दिद्द्यादितिश्रुतिः ॥
सपितः विद्यमानपिटकस्येत्यर्थः ।
कतः,—

त्रष्टकादिषु संकान्तौ मन्वादिषु युगादिषु । किंदि चन्द्रसूर्ययचे पाते खेच्ह्या पूज्ययोगतः ॥ जीवित्यता नैव कुर्यात् त्राद्धं काम्यं तथाखिलम् । न जीवित्यवनः कुर्यात् तिलेः ह्रप्णैय तर्पणम् ॥ स्मत्यन्तरे.—

गयायानं कुद्धश्राद्धं तिलेकासीय तर्पणम् । न जीवत्पिष्टकः कुर्यात् कुर्वेसु पिल्हा भवेत्॥ श्रतएव,

जीवे पितिरि वे पुत्रः श्राद्धकासं विवर्जयेत् । येषां वापि पिता दद्यात् तेषामेके प्रचचते ॥ इति मरीचिवचनेऽपि करणपचानादरः स्फुटएव। एके इत्युक्तः, इति ॥

भय ग्रहणश्राद्भम्।

तच नित्यं काम्यं च। आद्धं प्रक्रत्य कौर्मे,—

नैमित्तिकं तु कर्त्तव्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः।

बान्धवानां च मरणे नारकी स्थादतोऽन्यथा॥

काम्यानि चैव आद्भानि ग्रस्थन्ते ग्रहणादिषु।

महाभारते,—

सर्वस्त्रेनापि कर्त्तकं श्राद्धं वै राज्यदर्शने।

प्रकुर्वाणस्य नास्तिकात् पद्धे गौरिव सीदित ॥

स्व्य्यप्रकृशातातपौ,—

चन्द्रसूर्थ्याहे चैव त्राह्नं विधिवदाचरेत्।
तेनैव सकला प्रथी दत्ता विष्रस्य वै करे॥
विष्णुः,—

राइदर्भनदत्तं हि आद्भाषक्रतारकम्।
गुणवत् भर्वकामीयं पितृणामुपतिष्ठते॥

सर्वखेनापि ग्रुस्कोनापि। नाच काक्यवस्था। ग्रहणकाल एव विधानात्। तच आहुं त्रामेन हेला वा। तच वचनं त्रामआहू-प्रकरणे द्रष्टव्यम्।

एतच प्रशौचेऽिप कार्य्यम्। तत्र प्रमाणमंशौचपकर्णे उक्तम्, दित यहण्याद्विधिः।

## तीर्घश्राद्धं तस्त्रीमित्तिकम् । देवीपुराणे,—

श्रकालेऽयथवा काले तीर्थश्राद्धं तथा नरेः।

प्राप्तरेव घदा काय्यं कर्त्तव्यं पित्तर्पणम् ॥

पिण्डदानं तु तक्कस्तं पित्तणामतिदुर्त्तभम्।

तीर्येषु ब्राह्मणं नैव परीचेत कथञ्चन ॥

श्रक्नार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तं मनुरव्यतेत् ।

सक्युभिः पिण्डदानञ्च मंयावैः पायसेन वा ॥

कर्त्तव्यस्विभिर्दृष्टं पिष्णाकेन गुड़ेन वा ।

देयन्तु तिस्तिपिष्णाकं भित्तमिद्भिनरेः सदा ॥

श्राद्धं तच च कर्त्तव्यमर्घावाद्यनविर्क्ततम् ।

श्रद्धांचग्रथ्रकाकानां नैव दृष्टिष्ठतञ्च यत् ॥

तथाच तर्पणं पृथक् तीर्थप्राप्तिनिमित्तकं कार्यम्।

तत्सानाङ्गं तर्पणन्तु न पृथक् तन्त्रेण तत्सिद्धः। तर्पणश्राद्धयोः तीर्थप्राप्तिनिमत्तकलात् एकदिने श्रनेकतीर्थप्राप्तौ तथोः प्रतितीर्थं करणम्। तीर्थप्राप्तिदिने तर्पणस्य तीर्थप्राप्तिनिमित्तकलात् स्नाना-ग्राप्तस्यापि मन्त्रसानादिपूर्वकं तर्पणमावस्थकम्। श्रत्र न कास-स्थवस्या प्राप्तिकास्य एव तदिधानात्।

विकानो नैव कर्ज्ञ नैव विष्नं समाचरेत्।

इति तद्चनान्तराच। श्रवाकाख इत्युकाविप राचौ तीर्थप्राप्ताविप नैव श्राद्धम्।

त्रासुरीराविरन्यच तस्मात्तां परिवर्ज्ञयेत् ।

द्ति यमगातातपाभ्यां ग्रहणव्यतिरिक्तराची त्राद्धमाचस्य निषिद्धलात् पिष्डदानमाचस्य नित्यत्राद्धासभावे विहितलेन नित्य-काम्ययोक्तदप्राप्ताविष श्रचाकेन पिष्डदानादिविधिना साद्गुष्य-मिति बोध्यम्। तेन ग्रकौ साङ्गत्राद्धकरणमिति सिद्धम्।

द्ति पार्वेणप्रमङ्गात् नित्यनैमित्तिक आद्भानि उक्तानि ।

श्रथ गोष्टीश्राहुम्।

तत्स्वरूपमादौ व्याख्यातं। तत्र कालो श्रमावाक्षेतरपार्वणकालः तीर्यप्राप्ट्यादिकालो वा।

श्रथ ग्रुह्यर्थश्राद्धम् । तच श्रमावास्थेतरपार्वणश्राद्धकासः ।

कर्माङ्गं श्राद्धं तस्य कासो विधिय दृद्धिश्राद्धवदिति पूर्वमुक्रमेव।

श्रथ दैविकत्राद्धम् । तत्र पूर्वाझः कर्मकात्तः ।

पूर्वाझे दैविकां कर्मा श्रपराच्चे तु पैटकम् ।

एको द्दिष्टं तु मध्याच्चे प्रातर्दद्विनिमित्तकम् ॥

द्रित मात्योकोः

पूर्वाचे दैविकं श्राद्धं कार्य्यमभ्युद्यार्थिना । दित ग्रातातपोक्तेस,

त्रय याचाङ्गश्राद्धम् ।

तस्य याचापूर्वकासीनलात् न कासविभेषापेचा । तीर्थप्रमङ्गात् तीर्थयाचादिविधिरयुच्यते ।

महाभारते,-

श्रिष्टोमादिनियमैरिद्दा विपुसदिष्यै:।

न तत्पालमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत् ॥ तथा,—

यथा गरीरसोह्गाः केचिन्नेथतमाः सृताः । तथा प्रथियासुद्गाः केचित्पुष्यतमाः स्रताः ॥ प्रभावादद्वतात् स्रोतेः स्वित्तस्य च तेज्या ।

परिग्रहानुनीनां च तीर्थानां पुछता स्थता ॥ तीर्थपदेन चेत्रसायभिधेयलात् पुरुषोत्तमचेत्रजुरचेत्रगयादिषु तीर्थयात्राफ्जं तदवस्थानदानश्राद्धादिफ्जं च सर्वे साधारणमेव।

तथाच कुरुचेनप्रसावे महाभारते,-

ब्रह्मचेनं महापुष्यमभिगच्छति भारत । मनमायभिकामस कुरुचेनं युधिष्ठिर ॥ पापानि च विनम्यन्ति सूर्यखोकं<sup>(१)</sup> म गुक्कति ।

मास्ये,—

देवेशि सर्वगुद्धानां स्थानं प्रियतमं मम ।

मह्मकास्तव गच्छिन्ति विष्णुभकास्त्रेयेव च ॥

तथा.—

तत्र चेष्टं इतं दत्तं तपस्तप्तं कतं च यत् । सर्वमचयमेवासिन्नविसुके न संग्रयः॥

एवमन्यान्यि विस्तरभयात्र सिखितानि । त्रतएव कन्पतरौ तीर्यकाण्डे वह्ननि चेचाणि सिखितानि । तीर्यादिश्वानाहिषसात् पृथगेव तद्देशयाचायामपि फलम् ।

<sup>(</sup>१) खर्गनोकां।

तथा च गङ्घः,-

तीर्थं प्राप्य प्रसङ्गेन झानं तीर्थं समाचरेत् (१)। सानजं पालमाप्तीति तीर्थयाचाश्रितं न तु॥ इति। श्रतापत्र महाभारते, तीर्थयाचीपकमप्रसङ्गे,—

यस्य पादी च हस्ती च मनश्चेन सुसंयतम्।

विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थपासमञ्जते॥

पाद्हस्तमनः संयमाः क्रमेण श्रगस्यदेश्रगमन निरुत्यद्त्तदानादि-निर्दात्त संकर्णनिरुत्तयः। विद्या तीर्थगुणविधिञ्चानम्। तपः उप-वासतीर्थवासादि। कीत्तिः सम्बर्गतलेन प्रसिद्धः।

तथा, प्रतिग्रहादुपादृत्तः सन्तुष्टो येन केनित्।
श्रदंकार्विसुक्तश्च स तीर्थफलमञ्जुते ॥
श्रकत्काको निरारको लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विसुक्तः सर्वसङ्गिर्यः स तीर्थफलमञ्जुते ॥

श्रवस्काकः दक्षरिहतः। निरारकाः श्रर्थीपार्च्चनादियापार्-रहितः। सर्वसङ्गः श्रविहितासिकः।

तथा,-

कामं क्रोधञ्च कोभञ्च यो जिला तीर्थमावसेत्।
न तेन किञ्चित्र प्राप्तं तीर्थानुगमनाङ्गवेत्॥
तीर्थानि तु यथोक्रेन विधिना सञ्चरन्ति ये।
सर्वदुःखसहा धीरास्ते नरा स्वर्गगामिनः॥
दुःखसहाः ग्रीतातपादिक्षेणसहिष्णवः।

<sup>(</sup>१) समाचरन्।

वाह्रो,— गङ्गादितीर्थेषु वसन्ति मत्यादेवालये पचिसंघास नित्यम् ।
भावोिज्यतास्ते न फलं सभन्ते
तीर्थाच देवायतनाच मुख्यात् ॥
भावं ततो इत्समले निधाय
तीर्थानि सेवेत समाहितात्मा ।
श्रकोपनस राजेन्द्र सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
श्रात्मोपमस स्तेषु स तीर्थफलमस्रुते ॥

पुनः ग्रह्वा न,—

यस्य इस्तो च पादौ च मनश्चेव सुसंयतम् । विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च च तीर्थफलमञ्जते ॥

द्ति यदुकं तत् तीर्थसानाद्यक्षम् याचाप्रकरणमन्तरेणे वोकः। कीर्त्तियुक्षस्य तीर्थयाचायां तीर्थसानादौ चाधिकारकथनात् अभिग्रस्यस्य न तीर्थपसाधिकारः, केवलमभिग्रस्तवदोषनिद्यत्तिः स्थादेव।

तथाच वायवीये-

तीर्थान्यतुमरन् वीर श्रद्धानः समाहितः।
हतपापो विग्रुध्येत कि पुनः ग्रुद्धिकर्महत्॥
तिर्थग्योनि न गच्छेच कुदेशे नैव जायते।
स्वर्गे भवति वै विश्रो मोचोपायं च विन्दति॥
श्रश्रद्धानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिक्संश्रयः।
हेत्निष्ठस्य पद्येते न तीर्थफसभागिनः॥

ग्रङ्खोऽपि, - नृणां पापकतां तीर्थे भवेत् पापस्य मंचयः। यथोक्रपालदं तीर्थं भवेच्छानातानां नृषाम् ॥ ब्रह्मचारिप्रस्तीनां तीर्थयाचायां विशेषोऽस्ति ब्राह्मे,— या तीर्थयाचा कथिता सुनीन्द्रीः, कता प्रयुक्तायनुमोदिता च। तां ब्रह्मचारी विधिवत् करोति सुसंयती गृहणा चानुयुक्तः ॥ सर्वखनामे लथवा नुपस्तु, य ब्राह्मणानयत एव छला। यज्ञाधिकारेऽप्यथवा निवृत्ते, विप्रस्त तीर्थानि परिभ्रमेत॥ तीर्थं फलं यज्ञफलं हि यसात्. प्रोक्तं सुनीन्द्रैरमरप्रभावैः। यद्यस्ति यज्ञेऽपिधिकारितासः, वरं ग्टइं ग्टइधकां स्व सर्वे ॥ एवं ग्टइखात्रमसंखितस्य, तीर्चे गतिः पूर्वतरैर्निषद्धा । मर्वाणि तीर्थान्यपि चाग्निहोत्र-तुच्यानि नैवेति वयं वदामः ॥

रति श्रौताग्रिमतः तीर्थगमने निविद्धेऽपि मपत्नीकतया श्रिशं गृशीला गमने भवत्येव फलम् ।

महाग्रिमान् सपत्नीको गक्केनीर्यानि यत्नतः।

सर्वपापविनिर्मुको यथेष्टां गितमाप्रुयात्॥
दित वचनात् केवलं श्रीतकर्माविरोधेन तीर्यचेत्रयोः स्नानदर्भनादिकं कार्य्यम्, श्रीतकर्मणः सर्वतो वलवन्तात्।
निचिषाग्निं सदारेषु परिकल्पार्लिजं तथा।
प्रवसेत् कार्य्यान् विशेष व्येव न चिरं कचित्॥
दित कात्यायनोक्रेः,

श्रयांची प्रविदेदान् न धर्माची कदाचन । इति ग्रिष्टस्मरणात् । श्रापत्सु प्रोषितोऽग्निवेसायां वाग्यतः प्रतिदिनमग्रीन् मनसा ध्याला मन्त्रतो इतं ज्ञाला व्रतयेत् इति हारीतोक्रेः,

> चुत्खिकीकतवर्गस्य परिश्वतस्य ग्रचुिभः। दर्भद्रयं प्रवासोऽस्ति परतो नाहिताग्निवत्॥

दति प्रमाणिकोकेश प्रवासस्य तीर्यसानाद्ययं ताभावेन यज्ञ-विरोधाभावात्। एवं उत्सन्नाग्नेस्त तीर्ययाचैव कार्य्याः, श्रिग्नहोचा-भावात्। स्नार्त्ताग्रेस्त निरिग्नवत् याचा कार्य्येव। तीर्यसानादेरिप स्नार्त्तवेन समबस्तवात्। धर्मार्थप्रवासो यज्ञाधिकारवत एव निविद्धी-न केवसं स्मार्त्ताग्नेः। तस्य यज्ञाधिकाराभावात् यज्ञपदस्य चेताग्नि-साध्ययज्ञपरत्वात्। श्रन्यया पञ्चयज्ञाधिकारस्य श्रन्थपङ्गादि-साधारस्येन श्रव्यावर्त्तकतापत्तेः। एवं समाचारोऽपि। श्रच यत् केश्विसिखितम् तीर्यस्तानादिषस्त्रसोभेन श्रिग्नं विद्वाय तीर्य-स्नानादिकरसे तत्पासं स्थादेव। केबलमविद्यितप्रवासकरणार्थे वैश्वानरी कार्या दति, तन्तान्दमेव। महाभारते,-

बह्रपकरणा यज्ञा नानासमार् विस्तराः । प्राप्यन्ते पार्थिवैरेव दत्यासुम्मा,

यो दरिद्रैरि विधिः प्रकाः प्राप्तुं नरेश्वर । तुच्चा यज्ञफलैः पुण्णैक्तिक्विध युधावर ॥

द्त्यादिवाक्यपर्यास्तोचने यज्ञस्वैवाधिक्यप्रतीतः, श्रोतकर्मा-पेचया सार्त्तकर्मणो दुर्वस्रताच । तीर्थसानादौ सुचित् यज्ञा-द्याधिक्यसुक्रम्, तत् यज्ञौपम्यगमकमिति ज्ञेयम् । किंचाग्निं परि-त्यच्य प्रवासे तदन्तर्मरणे महानवर्थ श्रापद्येत श्राचार्विरो-धद्य स्थात् ।

श्रय तीर्थयाचाविधिः।

ब्राह्मे,- यो यः कश्चित्तीर्थयनानु गच्छेत्,

सुमंयतः स च पूर्वं खगेहे ।

कतोपवासः प्रयतसुष्टचित्तः,

सम्पूजयेद्गितिनम्री गणेशम्॥

देवान् पित्हन् ब्राह्मणां सैव साधून्

धीमान् संप्रीणयेत् वित्तप्रक्षा प्रयत्नात् ।

प्रत्यागतसापि पुनस्तरीव

ेदेवान् पित्वन् ब्राह्मणान् पूजयेच ॥

श्रव उक्रफलकामनया तीर्थयाचा मंकल्य खग्टहे क्रतीपवासी-गणेशं पूजियलाभिष्टदेवं मंपूज्य श्राद्धं कला ब्राह्मणान् पूजयेत्। "पितृन् विक्तशक्तो"त्यनेन विशेषतो धनवता पितृपूजनं कार्य्यमिति विधीयते प्रत्यागमनानन्तरमपि देवबाह्मणपूजनं श्राद्ध्य । एतच तीर्थयादाङ्गं नित्यम् । येन तीर्थ एव स्थीयते, तेन तु पुनरागम्यते तस्य प्रत्यागमनोक्तदेवतापूजनाद्यभावः ।:

गयायाचायां तु. वायवीये,-

उद्यतस्वेत् गयां गन्तुं श्राद्धं क्वता विधानतः। विधाय कर्पटीवेशं गामं क्वता प्रद्विणम्॥ ततो प्रामान्तरं गवा श्राद्धशेषेण भोजनम्। ततः प्रतिदिनं गच्छेत् प्रतिग्रहविवर्जितः॥

द्त्याद्यधिकमङ्गं नान्यत्र । प्रयागयितिरिक्ततीर्थगमने यान-निषेधे प्रमाणादर्भनात् न तीर्थान्तरे यानगमनेन विरोधः द्रति कन्यत्वकाराः । "गङ्गायां भास्करे चेने" दत्यादिवाक्यात् तीर्थ-प्राष्ट्रप्रवासः ग्रिखावजें केभवपनात्मकमुण्डनञ्च कर्नृषंस्कार्रूष्पं तीर्थस्नानदानश्राद्धादिक्षपकर्माङ्गम् । यन् देवस्ववाक्यं तीर्थान्यन्न-क्रम्य तद्र्थमभिगम्य व्रतोपवासनियमयुक्तस्यद्यस्वगादमानः चिराचं उषिला सर्वपापैर्विमुच्यते स्वस्तिमांश्च भवतीति, तन्तीर्थयाचा-प्रकर्ण्(१) स्नानात् पृथगेव कार्य्यम् । एवम्,

> श्रनुपोख चिराचन्तु तीर्थान्यनभिगम्य च । श्रद्ला काञ्चनं गास दरिद्रो नाम जायते ॥

द्ति महाभारतोक्तौ तीर्थाभिगमनकाञ्चनगादानिहराचापोष-णानि दारिद्र्याभावपत्तानौति ज्ञेयम् । चेत्रतीर्थादिषु परकी-यलाभावात् तच यच कुचापि श्राद्धकरणे न दोषः ।:

<sup>(</sup>१) तत्तीर्थयात्राप्रकरणात् ष्टथगेव कार्य्यम्।

श्रट्यः पर्वताः पुष्णा नद्यसीर्थानि यानि च। भर्वाष्यस्वामिकान्याद्वर्ने चि तेषु परिग्रचः।

इति यमोक्तेः। पुष्णाः पुष्णप्रदेशाः चेचाणि इति यावत्। तेषु परिग्रदः प्रभुत्नं न कस्त्रचिद्पीत्यर्थः। तीर्षे श्राद्धतर्पणयोर्न कालापेचा। श्रकालेऽप्ययवेत्यादि पूर्वीक्रदेवीपुराणोक्तेः।

तीर्थंद्रयोपपत्ती च न कासमवधारयेत्।
दित हारीतोक्तेयः। तीर्थंत्राद्धे जीवत्पित्वस्थायधिकारः।
महानदीषु पर्वासु तीर्थेषु च गयास्तते।
जीवत्पितापि खुर्वीत श्राद्धं पार्वण्धमीवित्॥
दिति मैचेयगृद्धापरिणिष्टोक्तेः।

परार्थतीर्थवाने प्रमङ्गान्तीर्थप्राप्तौ चापि फलमाइ पैठीनिसः,— षोड्यांग्रं स लभते यः परार्थन गच्छति ।

श्रद्धं तीर्थमसं तस्य यः प्रमङ्गेन गच्छति ॥ प्रतिकृतिं कुश्रमयीं तीर्थवारिणि मध्नयेत् । मळ्येनु यमुद्धिः श्रष्टभागं समेत सः ॥

तत्र मन्तः,

कुगोऽिं लं पर्वित्रोऽिं ब्रह्मणा निर्मितः पुरा। लिं साते च च स्नायात् यस्मार्थे प्रन्थिनन्थनम्॥ इति ग्रिष्टाः॥०॥ श्रय पुर्श्वार्थे श्रौपचारिकश्राद्धम्।

तस्य गरीरोपचयनिमित्तर्गायनादिप्रयोगकासीनलात् न स्वतन्तः कासः, इति दादगविधश्राद्धकासाः तत्प्रागाङ्गिकश्राद्ध-काशास्य निरूपिताः। ऋष जीवत्यिहकस्यापि आद्भविशेषेस्वधिकारः।
मैचेयग्रह्मपरिशिष्टे,—

विवाहे पुत्रजनने पित्येद्यां सौमिके मखे। तीर्चे ब्राह्मण श्रायाते षड़ेते जीवतः पितः॥

जीवित्यहकस्य श्राह्मकाला द्रत्यर्थः। पित्र्येष्टिः चातुर्मास्त्रेष्टि-विशेषः श्रच विवाहपदं दितीयविवाहपरम्। श्राचे विवाहे पितुरिधकार दिति पूर्वं निर्णीतलात्।

अव हारीताऽपि,-

श्रीनिष्टिकोऽपि कुर्वीत जन्मादौ श्राह्मकर्मणि।
येश्य एव पिता दद्यात् तानेवे। द्रिया पार्वणम् ॥
दिति मात्मरणे तु तस्य मात्मत्वाहश्राह्मं कार्यमेव।
श्रापद्य महपिण्डलमौर्मो विधिवत् स्तः।
सुर्वीत दर्भवच्छाद्धं मातापिकोर्म्हतेऽहिन ॥
दिति पित्रह्यलेन यमदिमिनोक्तलात्॥०॥

त्रथ त्राह्मवैश्वदेवयोः क्रमविचारः।
भविखे, हता त्राह्मं महावाही ब्राह्मणांश्व विस्रूच्य र ।
वैश्वदेवादिकं कर्मा ततः कुर्यान्नराधिप॥

त्रादित्यपुराणे,-

पितृ सन्तर्थ विधिवत् विश्वं कुर्यात्विधानतः । वैश्वदेवं ततः कुर्यात्पश्चातृबाद्याणभोजनम् ॥

याचाऽपि,-

चदा त्राह्रं पिष्टभ्यसु दातुमि स्ति मानवः।

वैश्वदेवं ततः कुर्यात् निष्टत्ते श्राह्मकर्मणि॥ बहुगौतमः,—

पित्र आद्भारता तु वैश्व देवं करोति यः। श्रक्ततं तद्भवे च्छ्राद्धं पित्वणां ने पितिष्ठते॥ कार्ष्णां जिनिः,—

श्रक्तला पैहकं श्राह्मं वैश्वदेवं करोति यः। श्राम्चरं तद्भवेत् श्राह्मं पिहणां नेरपतिष्ठते ॥ पैठीनसिः,—

पिल्पाकात् धमुद्भृत्य वैश्वदेवं करे। ति यः।
श्रासुरं तद्भवेत् इत्राह्मं पिल्पां नोपतिष्ठते ॥
श्राह्मं निर्वर्त्त्यं विधिवत् वैश्वदेवादिकं ततः।
कुर्य्याद्भिचां ततो दद्याद्धः निर्वत्तं तथा।
मनुः,—

उच्छेषणं तु उत्तिष्ठेत् याविद्या विषर्जिताः ।

ततो गृहविजं द्यादिति धर्मी यवस्थितः ॥

ग्रहविज्ञान्दो भृतयज्ञाभिधायको वैश्वदेवादिनित्यमहायज्ञो
पन्नवणपरः दति कत्यतहकाराः ।

मृत्यनारेऽपि,—

यहाग्रिणिग्रह्देवानां यतीनां ब्रह्मचारिणां । पित्रपाको न दातचो यावत्पिण्डास्र निवंपेत् ॥

<sup>(</sup>१) द्धनाकारादिकं।

द्यादि वज्जवाकायर्थाको चनया पार्वणैको हिष्टक्षोभयपित-श्राद्वानन्तरमेव साग्निकैनिर ग्रिकेरपि वैश्वदेवादिकं कार्ये।

यत् परिशिष्टे,—

संप्राप्ते पार्वणे श्राद्धे एकोदिष्टे तथेव च। श्रयतो वैश्वदेवः स्थात् पञ्चादेकाद्गेऽइनि ॥

इति, तच्छान्दोग्यविषयमेव,—

श्राद्धे प्रागेव कुर्वीत वैश्वदेवं तु माग्निकः। ऐकादगाहिकं मुक्ता तच द्यन्ते विधीयते॥

दति माखकायनोकिरपि पूर्विकिसमानलात् तत्परमेव। एवं,—

याजुषाः सामगाः पूर्वे श्राह्मध्ये तु बहुचाः (१)।
त्रथर्वाः पाकग्रेषेण वैश्वदेवं तु कार्येत्॥
दित गरैनकोकौ यद्यजुर्वेदिनामपि श्राह्मपूर्वत्वं, तत् वाजसनेयीतर्गाखिपरं इति निवन्धकृतः।

यद्पि,-

वैश्वदेवाङ्गतीरग्रावर्शक् ब्राह्मणभोजनात् । जुड्डयात्<sup>(२)</sup> भृतयज्ञादि श्राद्धं कला ततः सृतम् ॥

दति ब्रह्माण्डपुराणाकौ श्रमौकरणानन्तरं वैश्वदेवः, तदनन्तरं श्राद्धबाह्मणभोजनम्। तदुत्तरं भृतयज्ञादि दत्युक्तम्। तदपि श्राखान्तरविषयम्, श्रम्भाष्काखोककर्मक्रमविरोधात्। पितृन् सन्तर्थ दत्यादि बद्धवाकाविरोधात्।

<sup>(</sup>१) बङ्गचः। (२) जुङ्गयात्।

यत्तु,-

पित्रधें निर्वपेत् पाकं वैश्वदेवार्थमेव र । वैश्वदेवं न पित्रधें न दाग्नें वैश्वदेविकम् ॥

रति (१) लोका चिवाक्यम् । तहे प्रविशेषे श्राद्धपाकात् पृथक्पाके वैश्वदेवं कुर्वतामेवादृतम् । दार्घं दर्शममन्धीत्यर्थः दर्भश्राद्धस्य- सर्वश्राद्धप्रकृतिकलात् मर्वश्राद्धपरलमेतस्य रति श्राचार्थाः ।

यद्पि सोकाचिवाक्यम्,--

पचानां कर्म निर्वर्त्त्यं वैश्वदेवं च साग्निकः।
पित्रवज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽत्वाद्यार्यकं नुधः। इति ।
तदपि ग्राखान्तरपरम् ।

पिख्यज्ञं तु निर्वर्त्तः विप्रश्चन्द्रचयेऽग्निमान् । पिष्डान्वाचार्य्यकं श्राद्धं कुर्य्यान्नामानुमामिकम् ॥

दति मनूकिविरोधात्। पचान्तमन्वाधानम्। पिण्डान्वाद्यार्थकं द्र्णश्राद्धं एवमादिषु यत्साग्रिकपदं तत् श्रनुवादमाचं। न तु साग्रिकानग्रिकयोः कमभेदार्थं दति बोधं।

यन्,-

<sup>(</sup>१) जोनाचित्रवाकां।

तथा च जावासिः,-

पार्वणं लिभिनिर्वर्त्तं एके। हिष्टं ममाचरेत्। इति । नित्यत्राद्धमपि पार्वणमिति । तच मर्वग्रब्दोपादानं चिन्यम् । तथाच जावालिना,—

> यदेकच (९)भवेयातामेकाहिष्टं च पार्वणम् । पार्वणं लभिनिर्वर्च्यं एकाहिष्टं चमाचरेत्॥

दत्युक्तम्। तच एकोद्दिष्टपदेन मात्रमाम्बस्रिकादिपरिगद्दो-न पित्रमाम्बस्रिक दति सर्वेर्बाखातम्। श्रम्माभिरिप वच्छते, तस्य पृथगनुष्टानाभावात् दति। तथाच एतदाक्यं न पित्रमाम्बस-रिके प्रमरित। किंच नित्यश्राद्धस्य पार्वणविमिति श्रास्तात् न सभ्यते। मत्यादौ नित्यश्राद्धविधेः पार्वणभिन्नवात् कास्त्रभेदात् वैश्वदेवद्दीनवाच। यदि श्रमावास्याश्राद्धस्य मर्वश्राद्धप्रकृतिवात् पार्वणवं नित्यश्राद्धस्थापि दति। तर्षि एकोद्दिष्टश्राद्धादीनामपि पार्वणवं स्थात्। दत्यसमितिवस्तरेण।

यत्तु,— विप्रमिश्रेरकम्,— विषक्तंनं तु प्रथमं पिल्पैतामरेषु वै । इत्यन्तं पार्वणश्राद्वसुद्धाः,—

ततसु वैश्वदेवाखां सुर्यासित्यक्रियां बुधः ॥

द्ति विष्णुपुराणोक्तौ पार्वणश्राङ्कोक्रेनेंकोहिष्टश्राङ्कोत्तर-काले वैश्वदेव द्रति, तस्र क्चिरम्। तत्र पार्वणश्राङ्कप्चस्वोहिष्ट-

<sup>(</sup>१) समायातां।

लात् तदनन्तरता उक्तेति प्रत्युत वैश्वदेवस्य श्राद्धोत्तरकास्ताविधे-रक्तलात् श्रनेकवास्त्रेषु श्रविशेषेण श्राद्धानन्तरोक्तेसः।

यद्यपि तैरकैरपुक्रम्, पितृन् मन्तर्थ पितृणां ने।पितष्टत इति
बक्ठवचनप्रयोगादेके। दिष्टस्य व्याद्यन्तिरिति तद्पि मन्दम्। तच बक्ठवचनस्याविवचितलात्। प्रत्युत एकवचनोपादाने तु पार्वणो-त्तरलिनिषेधः प्रमक्तः स्थात् बक्ठवचनोपादानादुभयोरपि माधार्णेन प्रतीतिरिति न किखदिरोधः। मर्वमेतत्पर्याकोच्य पट्चिंग्रमात-कारिकायां साधार्णेन श्राद्वपदसुपात्तम्।

प्रातिवासित्के। होमः श्राद्धादौ कियते यदि । देवा इयं न ग्रह्मिन कथानि पितरस्तथा ॥ इति । मात्येऽपि,—

निर्वर्त्य प्रणिपत्याथ पर्युष्वाग्निं समन्त्रवत्। वैश्वदेवं प्रकुर्वित नैत्यकं विसमेव च ॥ दति ६ केवलं मायश्राद्धस्य पार्वणले एकोहियलेऽपि वैश्वदेवानन्तर-

मेवानुष्ठानम् ।

पिचोः श्राद्धे समं प्राप्ते नवे पर्युषितेऽपि वा । पित्रपूर्वे सुतः कुर्याद्न्यचासत्तियोगतः॥

दित कार्णाजिन्युकेर्नित्यश्राद्धस्थापि पित्यममिक्षेत्वेन बस्च-वत्तात्। नवे पञ्चाद्भवे पर्युषिते चिर्त्ताने पूर्वभवे दत्यर्थः। श्रन्यच मातापित्व्यातिरिक्तश्राद्धे, श्रामितः श्रामस्ता श्रन्तरङ्ग-त्वमिति यावत्। एवं च सुतरां पित्व्यादिश्राद्धात् पूर्वमेव वैश्वदेवः कार्यः दिति सिद्धम्। नन्वेवं सित मात्वश्राद्धस्थादौ नित्य- आद्धादी अनुष्ठानं भवत् आद्धानन्तरं वैश्वदेवविषक्तमं कार्य्यमिति चेत्, उच्यते। वैश्वदेवविषक्तमीत्तरत्वमेव नित्यश्राद्धस्थेति सुतरां श्रादौ वैश्वदेवविषक्तमं इति सिद्धं। एतदस्मत्कताचारसारे इष्ट-चम्। इति।

त्रय देवपूजाश्राद्धयोः क्रमः। श्राद्धदिने पाकस्य पिनुद्देशेन क्षतत्वात् सिद्धमस्त्रं रत्यादिश्वतवचन-स्थापि तच विद्यितलात् श्रादौ श्राद्धं कार्य्यमिति प्रतीधते। किञ्च पिण्डदानान्ते,—

यत्किश्चित्पचिते गेहे भच्छं भोज्यमणापि वा।
श्रनिवेद्य न भोक्रव्यं पिष्डमूले कथञ्चन॥
श्राद्धकाले,—

तताऽसं बड्डमंस्कारं नैकयञ्जनभचवत्। चोखपेयमसृद्धं च यथाश्रस्तुपकन्पयेत्॥ दत्यादिवचनैः श्रादौ श्राद्धं कार्य्यमिति प्रतीयते। तथा,—

विष्णूपभुक्तग्रेषेण यष्टयं देवतान्तरम् । तथा,—

पित्रभेषं तु यो दद्याद्धरये परमात्मने । रेतादाः पितरस्तस्य भवन्ति दत्यादि ॥ तथा,—

> इरेनिवेदितं सम्यक् देवेभ्या जुड्डयाद्धविः। पित्रभाषापि तद्द्यात् फसस्यानन्यमाप्रयात्॥

दति वचनैर्विष्णुपूनायाः प्राथम्यं प्रतीयते। एवं मन्देहात् सर्वपकद्वयं दिधा कला आद्वार्थमेकभागं देवार्थमेकभागं च सम-कालमेव परिवेषयन्ति। पिण्डदानसमकालं विष्णुं पूजयन्ति च। केवलं येषामन्यदेवा श्रपि श्रभीष्टाः ते आद्वपरिवेषणसमकालं देवताद्ग्रेन परिवेषणं कला पिण्डदानानन्तरं वैश्वदेवात् पूर्वं पूजयन्ति। पिल्रग्रेषस्य विष्णोरेव निषद्धलात्। प्रतिदिनविहिता-भीष्टदेवतापूजनं वैश्वदेवात् पूर्वमिति निर्णीतलाच ॥०॥ दति।

श्रथ पार्वणैको द्दिष्टयोः क्रमः ॥

जावान्तिः,--

यद्येकच भवेयातामेकादिष्टं च पार्वणम्। पार्वणं लभिनिर्वर्त्यं एकादिष्टं समाचरेत्॥

पार्वणं श्रमावास्यादिविहितं। एकोद्दिष्टं एकोद्दिष्टकुके माह्यसम्बद्धितम्। धर्वेषां पिह्न्यादिसम्बद्धितकं च माचन्तर् सामत्यदिकं च। एकोद्दिष्टकुकेऽपि न पिह्नसाम्बद्धितकम्, तस्य पृथमनुष्टानाभावात्। तच वचनं वस्त्यते। यदिप्रमिश्रेककं माह-सामत्यदिकं च तद्दिने पाकस्य तन्त्रलेऽपि एकोद्दिष्टिभिरमावास्या-श्राद्धानन्तरं कर्त्त्यम्। पार्वणिभिः पुनर्देवताभेदात् प्रागेव श्रमावास्याश्राद्धात् पृथक् कर्त्त्यम्। कालादर्भमते दतरपार्वणस्य कालभेदात् दित। तक क्चिरम्। पिचोः श्राद्धे समं प्राप्ते दिति पिक्षश्राद्धस्य प्रथमत एव वाचनिकलाच।

पित्रोसु पित्रपूर्वलं सर्वत्र श्राह्नकर्मणि । इति कासादर्भप्रामाण्याच । कासभेट इति यो हेतुरुपन्यमाः सेाऽष्यप्रयोजकः। वाचिनिकेऽर्थे युक्तेरनवकाणात्। ऋत्यथा एको-दिष्टस्य कासभेदात् पार्वणोत्तरत्वं तन्मतेऽपि न स्वात्। दति निपुणमितिभिर्विभावनीयम्।

तथाच दर्शाष्टकायुगादिप्रेतपचेषु माहमरणेऽभौचान्तविहितलेन वा माहस्ताहश्राद्धे प्रमक्ते वा दर्शादिश्राद्धानन्तरं माहस्ताहश्राद्धं कार्य्यम्। केवलमन्वष्टकायां माहमरणे श्रन्वष्टकाश्राद्धेन तत्साम्य-त्सरिकश्राद्धस्थापि तन्त्रेण सिद्धिः। एवममावास्यादिश्राद्धदिने तन्त्रसिद्धं।

प्रेतपचे च पित्रमर्णे साम्बत्सरिकश्राहुं भमावास्वादिपार्वणैन श्रमावास्थां चयो यस्य प्रेतपचेऽथवा पुनः। पार्वणं तस्य कर्त्तयं नैकादिष्टं कदाचन॥

र्ति ग्रंखेकिः। श्रमावास्थां रति श्रत्यन्तसंयोगे दितीया। श्रमावास्थायामित्यर्थः। श्रमावास्थापदं श्रष्टकादिसर्वपर्वोपलचणं। तथा च, गार्ग्यः,—

> पर्वकाको मृताइय यदैव तहूयं भवेत् । पार्वणं तत्र कर्त्तयं नैकोद्दिष्टं कदाचन ॥ इति ।

(१) श्रव पार्विणनामि मातामहाद्यधिकदेवताविषयलेन श्रमा-वास्याश्राद्धस्वै तन्त्रलात्पुरूरवोमाद्रवसेरिव देवतालिमिति कर्का-चार्याः। तत्र केषिदाभंकन्ते, स्ताहश्राद्धस्य नैमित्तिकलात् नित्यात् नैमित्तिकस्य वस्त्वत्वात्कासकामयोर्दैवतालिमिति, तस्र न्याय्यम्। नैमित्तिकसः तन्त्रते मातामहादीनां प्रवेशाभावः प्रक्रमतः। किञ्च एकाहिएकुके विश्वदेवाभावेऽपि श्रमायास्यादिवक्रेनेव पुक्रवो-माद्रवधोर्देवतालं, पार्वणिनां स्ताहस्य वक्रवत्तात् कासकामयो-देवतालंमित धर्वानुगतो न्यायो न स्यात्। तस्यासानः कासकामयो-देवतालं. यहाद्गुष्ठतमनेकानुगतं तन्त्रम् दति यामान्यतन्त्र-स्वणम्। यदा तः एकोहिष्टिनामपि श्रशौचादिनाऽमावास्यादिषु पिद्यमान्यदिककरणम्। तदाऽमावास्यापावंणेन एकोहिष्टं प्रयङ्ग-सिद्धम्। ननु एकोहिष्टपावंणयोः कासभेदात्कथं प्रयङ्गसिद्धि-दिति चेदुस्यते। इविःस्वासादितेषु (१)प्रवन्तौ (१)प्रयाजनस्थान्-ष्ठानिष्ठनं पग्रदे प्रयञ्जन्तौति पग्रौ कासभेदेऽपिः प्रयङ्गवत्। श्रन्थोदेशेनानुष्ठितस्थान्यचोपकारसंपादनं प्रयङ्ग दति प्रयङ्गक्षचणम्। श्रमावास्यादिषु षाटपुक्षिकश्राद्धे क्रतेऽपि षाटपुक्षिकं नित्यश्राद्धं पुनः कार्यमेव।

तथा च त्राह्मेतरकर्माधिकारे मार्कण्डेयपुराणे,—
नित्यिकियां पित्वणां त केचिदिच्छन्ति सत्तमाः।
न पित्वणां तथैवान्ये पृथक् पूर्ववदाचरेत्।
पृथक्पाके न वेत्यन्ये केचित्यर्वमपूर्ववत्।

द्ति वहवः पचा उक्ताः । तच प्रथमपचसैवासाद्गे आदृतलात् । तसात् विश्रमिश्रेरमावास्त्राश्चदिने तदहविहितं षाट्पुरुषिक-नित्यश्चाद्वं श्रमावास्त्राश्चदैनैव तन्त्रसिद्धलात् न कर्त्तस्यं द्वति

<sup>(</sup>१) कती।

<sup>(</sup>२) प्रयाजस्य।

यिक्षितं । तदत्यनाचारिवरोधात् मार्कण्डेयपुराषैकपचाश्रयणा-चानादरणीयमेव । इति ॥

श्रय एकदिने बद्धश्राद्धनिर्धयः।

दचः,—

नैकः श्राद्धदयं कुर्य्यात् समानेऽहनि कस्वचित् । न यज्ञं न विश्वं चैव देविषिपिष्टतर्पणम् ॥ देखेतत् काम्यश्राद्धपरमिति वचनान्तरात् । तथाच जावाज्ञिः,—

श्राह्यं क्रता तु तस्यैव पुनः श्राह्यं न तिह्ने । नैमित्तिकं तु कर्त्तयं निमित्तानुकमोदये<sup>(९)</sup> ॥ कतुः,—

श्राह्मं हता पुनःश्राह्मं न कुर्यादेकवासरे । यदि नैमित्तिकं न स्थादेकोहेग्यं<sup>(२)</sup> भवेद्यदि ॥ मंघातमर्षे श्राह्मकमः । श्रहस्यतिः,—

एकाइनि विनष्टानां बह्रनामथवा दयोः । तन्त्रेण अपणं क्रला पृथक्पचं प्रकच्ययेत् ॥ केला पूर्वम्हतस्यादौ दितीयस्य ततः परम् । हतीयस्य ततः कार्य्यं सम्मिपाते लयं क्रमः ॥ बह्रनामेकोदिष्टानां समिपाते इति प्रेषः ।

<sup>(</sup>१) क्रमोदयात्।

<sup>(</sup>२) खादैकोहेशं।

क्रमज्ञानाभावे तु,-

भवेद्यदि सपिष्डानां युगपन्मर्णं तदा । सम्बन्धासत्तिमालोच्य तत्कमाच्छ्राद्धमाचरेत् ॥ इति ।

सविष्डपदोपादानात् इदं सर्वं मातापित्वयतिरिक्तविषयम् ।
युगपन्मरणं च जस्ने वा ग्टइदाहादिना वा दति ज्ञेयम् ।

मातापिचोस्त सहगमनेऽत्यप्रकारेण युगपन्मरणे वा एकदैव ब्राह्मणभेदेन पूर्वमध्यमात्तररूपाणां चिविधानामपि कियाणां करणम्।

तथाच देवसः,-

पिनोस्परमे पुनाः क्रियां सुयुर्दयोरपि । श्रनुम्हतौ च नान्येषां संघातमर्णेऽपि च॥

श्रनुस्तौ महगमने श्र्ट्रस्तीणं दशाहमध्येऽनुगमने च।
महाभारतादिषूभयचापि श्रनुमरणादिपदप्रयोगात् पिष्टश्राद्धयोयुंगपत् करणेऽपि श्रादौ पिष्टकर्म कला ततो माष्टकर्म क्रियते,
इति । पिष्टपूर्वलमपि संगतम् । सहाग्निप्रवेशे तिथिभेदे तु
माष्ट्रसाम्बस्तरिकं यथातिय्येव । सिप्छनान्तिव्यायामेव मातुः
तिथिरक्रोऽप्यनादरात् । एतदशौचप्रकर्णे लिखितम् ।

एवं मपद्ममाहणां बह्रनामणि ग्रिप्रवेशे वोधं। तच यसाः पुची विद्येत तस्य विभक्तले मामलारिकस्य तथाविधिकरणे ऋधिकारः। एवमपुचिपत्यपत्याद्यग्रिप्रवेशेऽपि। वैश्वदेवस्य स्वचन्त्रमाहमामला-रिके पूर्वातुष्ठाने सिद्धेऽपि ऋग्निप्रवेशे तु माहमामलारिकस्य पिह-सामलारिकाधीनलात् अन्वष्टकायामिव पश्चादनुष्ठानमविसद्भम्। श्रमावास्त्रादिनित्यश्राद्वाश्रक्तौ संकत्त्रश्राद्धं कार्य्यम्,—
श्रम्भवा पार्वणश्राद्धं यथावत्कर्त्तुमचमः ।
पिष्डार्षादिविद्दीनं तु संकस्पश्राद्धमाचरेत्॥
श्रमौकरणमधं चावाद्दनं चावनेजनम्।
पिष्डश्राद्धे प्रकुर्वीत पिष्डहीने विवर्क्षयेत्॥
स्वधावाचनकोपोऽस्ति विकिरसैव सुष्यते।
श्रचय्यदिषणस्वित्तसौमनस्यं तथापि च॥

दति वाक्यात्।

श्रथ वा पिष्डमाचं देवम्,—

पिण्डमाचं प्रदातसमभावे द्रस्यविष्रयोः । स्राद्धाइनि तु संपाते भवेक्तिर्यनाऽपि वा ॥

इति धर्मोक्तेः। श्रमावास्त्रायां तु तत्रोक्तविधिना षट् पिष्डाः। श्रष्टकायामपि तथा। श्रन्तष्टकायां तु इत्रान्दोग्ययतिरिक्तानां नव पिष्डाः। इत्रान्दोग्यानां षट् पिष्डाः। जीवन्माद्यकाषां च तथा। इति पिष्डमाचदानपचे यवस्था। ।।

पिण्डविलपन्ने,— भच्चं भोज्यं तथा पेयं यत्किञ्चित् पच्चते रहे। न भोक्रयं पितृणां तदनिवेद्य कथञ्चन॥

दति श्राद्धप्रकरणे यमेनोक्तलात् नवभाण्डे पिष्टकादिकं कला ददतीति समाचारः । पिण्डमाचदानासमावे उपवासः । सर्वक्रणपचाणां श्राद्धकाललं वैजवापः,— क्रण्णपचे श्राद्धं प्रकुर्वीत श्रमं संस्कृत्य पक्का,—

क्रणपचे दशमादौ वर्ज्ज थिला चतुईशीम्।

श्राद्धे प्रश्नखासिथयो यथेता न तथेतराः॥ यथा चैवापरः पचः कृष्णपचादिशियते। तथा श्राद्धस्य पूर्वाकादपराक्षे विशियते॥

हारीतः, सम्बद्धरः प्रजापितः तस्योदगयनं ग्रुक्कोऽहः पूर्वा-इस देवानां दिखणायनं तिमिश्रः राचिपरपराइस तिपद्धणां दित । ग्रुक्कः ग्रुक्कपचः । तिमिश्रः कृष्णपचः ।

त्राह्ये,-

पयोमूलफ्लै: ग्राकै: कृष्णपचे च धर्वहा ।

पराधीन: प्रवासी च निर्धनो वापि मानवः ॥

मनसा भावग्रद्धेन श्राद्धे द्याक्तिकोदकम् ।

नाश्रन्ति पितरखेति कृता मनसि यो नरः ॥

श्राद्धं न कुर्दते भक्त्या तहेशाद्रुधिरं च ते ।

पिवन्ति धर्वनाग्रं च कुर्वनग्रथ पदे पदे ॥

तसात्भयेन (१)स्विपित्वन् तर्पयेत् सततं बुधः ।

पचान्ते निर्वपत्तिभयो द्यापराचे च वेदवित् ॥

श्रचोक्रं तिस्तर्पणं श्रह्यन्तासभवविषयमेव ।

तथा विष्णुपुराणे,—

श्रक्षेन वा यथाश्रक्षा कालेऽसिन् भिक्तनसधीः । भोजयेताच विप्राय्यान् भक्ष्या विभवतो नरः॥ श्रक्षमधीऽसदानस्य धान्यदानं स्वश्रक्तितः । प्रदास्ति दिजाय्येभ्यः स्वन्यां वा पिट्टद्विणाम्॥

<sup>(</sup>१) च पितृन्।

तचाषमामर्थं युतः (९)कराम्यात्रस्थितां सिसान् । प्रणिपत्य दिजाग्याय नसीचित् प्रदास्ति॥ तिनैः सप्ताष्टिभवंपि समवेतान् जनाञ्चलीन्। भिकतिनयः समुद्दिग्य भुव्यसानं प्रदास्यति ॥ यतः कुतिखत् संप्राप्य गोभ्या वापि गवाक्रिकम् । श्रभावे प्रीणयनसान् श्रद्धापूतः प्रदास्ति ॥ सर्वाभावे वनं गला कचम्लप्रदर्भकः। सूर्यादिनोकपानानामिद्युचैः पठिखति॥

न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्यक्ताद्भोपयोग्यं खिपत्स्मतोऽसि। व्ययन्तु भक्त्वा पितरो मयैती भुजी कृतौ वर्त्मान मारूतस्य॥ तचायनावु सर्गः पिनुदोन्नेन कार्यः, प्रसाकं ससु हि के ख्रकेः।

सातानारे,-

हणानी ह गवे दद्यात् पिण्डान् वाऽयय निवंपेत्। तिसदर्भेः पितृन् वापि तर्पयेदिधिपूर्वंकम् ॥ त्रिया वा दहेलाचं श्राह्मकाले समागते। तिसंखीपवसेदाक्ति जपेदा श्राद्धसंहिताः(१) ॥

श्रन्यच,-

किश्चिद्चाद्यक्षस उद्कुभादिकं दिने। मर्वेच<sup>(१)</sup> योऽयममानासादिकालनियम छकः। म प्रक्रस्य द्रवादिवृत्रसारोगिणः । त्रमामर्थौ तु विभवः, - त्रावसायादा-

<sup>(</sup>१) कुश्चायसिहतान्। (२) संहितां। (३) सर्वः।

यण्रोस अन्वष्टकास च पित्रभो दद्यात् निगमा आहिताग्नेः पित्रक्षेतं पिण्डेरेव ब्राह्मणानिप वा भोजयेत् पूर्वश्रुतेः। अपरपचे यददः सम्पर्धेतः, अमावास्थायां तु विभेषेण अष्टकातीर्थतिथि- ब्राह्मणद्रव्यसम्पत्सु चिकीर्थेत । द्रित सर्वत्र कृष्णपचस्य यस्यां कस्यांचित्तियौ यच्छाद्भमुकं तचाहिताग्रेनीधिकारः। न दर्भेन विनेत्यादिनान्यदिने निषेधात्। दचिणाम्युद्भरणस्य दर्भे विद्य-मानलाचेति पूर्वसुकं। निरग्नेरिप दर्भे करणं तस्य सर्वेद्येभेन उन्नलात्।

: देवलेन तु,-

त्रनेन विधिना त्राङ्कं कुर्यात् सम्बक्षरं सङ्गत्। दिश्वतुर्वा यथान्यायं मासि मासि दिने दिने ॥

द्रति सभावासभावतार्तम्येन बहवः पचा उक्ताः। तत्र सहत्-करणपचः कन्यायामेव। तस्यां श्राद्धेऽतिभ्रम्तलात्, द्रति निबन्धकतः।

त्रच ग्टइपाकपरित्यागकालाः।

प्रचेताः,--

काम्ये व्रते च यज्ञे च पितृषां चैव वत्सरे । महोत्सवे व्यतीपाते पूर्वपानं परित्यजेत् ॥ स्मृतिसारे,—

विवाहोत्सवयश्चेषु मातापित्रोर्म्हतेऽहिन ।

ग्रहे मृते प्रसूते च पूर्वपानं परित्यच्येत् ॥

मृतिसमुचये,—

कास्ये व्रते तथा यज्ञे भावदुष्टं यदा भवेत्।

स्तके स्तके चैव पूर्वपानं परित्य खेत्॥ शिष्टाः प्रेतकत्ये,--

चिपचेऽवाऽच षएमासे सपिण्डीकर्णे तथा।

पूर्वपाकः परित्याच्यो सताचात्दाद्गेऽचनि ॥

श्रयामावास्यादिश्राद्धप्रकर्षे देवलः,--

तथैवामित्वतो दानाः स्नाला प्रातः महासरः।

श्रार्भेत नवैः पाचैरवारकं सवान्धवः ॥

त्रज्ञारकं पाकारक्षमित्यर्थः । सहाम्बर रत्यनेन वस्तदय-धारणमुक्तम् । एकवस्ताभावे नग्नलप्रस्त्रा वस्तपरिधाने सिद्धेऽपि सवस्त्रलोक्तेर्वेयर्थात् । सवान्धव रत्यनेन सपिण्डानामपि पाका-धिकार छकः । त्रामन्त्रितमामन्त्रणमस्यासीति त्रामन्त्रितः स्तत्रज्ञातिनिमन्त्रण रत्यर्थः । त्रच तिथितनकारैः त्रामन्त्रितो निमन्त्रितः सुद्धद्धिः स्वजनैश्चेति यद्यास्थानं तन्न चाद । सुद्धद्दीनां यजमानकामन्त्रणस्थासंत्रग्रलात् । त्रच वाक्ये पाकत्यागानुकोर्द्गा-दित्राद्धेषु नवभाण्डेषु पक्षा त्राद्धं सुर्वीत तद्भाष्डानि पूर्वपाके च मित्रयन्ति न तु पूर्वपाकं त्यजन्ति ।

श्रय नित्यविहिततिसतर्पणनिषिद्धकासाः।

ब्रह्माण्डपुराणे,—

पिल्लश्राद्धे रवी शुक्ते सप्तम्यां निश्चि सन्ध्ययोः । संकान्यां जन्मदिवसे न कुर्य्यात्तास्तर्पणम् ॥

पुनस्तचेवापवादः,--

श्रयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

खपाकर्मणि चोत्सर्गे युगादौ पित्रवासरे ॥ रविश्रक्रदिने वापि न दुय्येत्तिसतर्पणम् । तीर्चे तिथिविशेषे च गङ्गायां प्रेतपचके । निषद्धेऽपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिस्तमिश्रितम् ॥

एवमर्थकानि मरीचादिवाकानि विस्तरभयात् न सिख्यन्ते । पित्रवासर दत्यच स्तवासर दति मास्ये पाठः। त्रयमे मकरकर्वट-संक्राच्यां । युगादौ तचतुष्ट्ये । पित्रवासरे पित्रमात्रसाम्बर्धार-कयोः । तिथिविग्रेषे सप्तम्यां । तस्या एव तिथः पूर्वमुक्तलात् । प्रेत-पचो महास्वयपः । तथाच यथायोग्यं श्रयनादिप्रेतपचान्तेषु रिविग्रक्रवासरादियोगेऽपि तिस्तपंणं कार्य्यमेव । चन्द्रग्रहणे राजा-विप तिस्तपंणं कार्य्यम् । तद्रहणस्य तचैव प्रस्तेः (१) । श्रन्यच राचि-सन्ध्ययोनैव तिस्तपंणं, श्रयवादाभावात् । श्रयनादियोगाभावे तु रिववारादिजन्मदिनान्तेषु नैव तिस्तपंणम् । एतेन संकान्ति-निषेधोऽयनविषुवयितिकार्धमं कान्तिविषयः । पित्रश्राद्धनिषेधः काम्यश्राद्धादिविषयः । केचित्तु श्रष्टकान्वष्टकाद्र्यश्राद्धानां श्रयवादोक्रावनुपादानात् तदिषयेऽपीति (१) तन्न ।

खपन्नवे चन्द्रमसो रवेश्व निष्वष्टकाखण्यने द्वे च । पानीयमण्यन तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पिहम्यः प्रयतो मनुखः॥ श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं रहस्रमेतित्पतरो नृपोतुः। द्वि विष्णुपुराणोन्नौ श्रष्टकासु तिलत्पणस्य विहितलात्।

<sup>(</sup>१) प्रसक्तेः।

<sup>(</sup>२) तदिषयोऽपौति।

नीलषण्डप्रमोचेण श्रमावास्थां तिलोदकैः। वर्षासु दीपनैसैव पितृणामनृणा भवेत्।

दित महाभारतमात्स्ययोर्द्शे तिद्धानात् पारम्पर्याचाराच । यच प्राचीनैस्तं त्रथने विषुवे चैवेति वाकास्य प्रामाण्ये पिद्ध-साम्बत्सरिके विकस्प दित तम् । तिस्त्रभेव ब्रह्माण्डे मात्स्ये च एतदाकादर्शनादप्रामाण्यगंकाया श्रनुद्यात् ।

> उपाकर्मरुषोत्सर्गरुगादौ म्हतवासरे । गुक्रसूर्य्यदिने चैव न दुय्येत्तिसतर्पणम् ॥

दति मरी चुकेश्व।

निषिद्धदिने तिसतर्पणे दोषः सृतौ,-

निषिद्धं दिनमासाद्य थः कुर्य्यात्तिसतर्पणं। रुधिरं तद्भवेत्तीयं दाता च नरकं व्रजेत्॥

एतत्तीर्थातिरिक्तविषयं।

तीर्थमाचे तु कर्त्तव्यं तर्पणं सतिले।दकैः।

श्रन्थणा कार्येन्सूडः श्वविष्ठायां भवेत्क्षिमः ॥ इति सृतेः।

त्रय दन्तधावननिषिद्धकालाः ।

नार्सिंहे,-

प्रतिपद्यर्भषष्ठीषु नवस्यां चैव सत्तमाः । दन्तानां काष्ठसंयोगो दह्यासप्तमं कुलम् ॥ महाभारते,—

भचयेच्हास्तदृष्टानि पर्वस्विपि च वर्ज्ययेत् । ग्रास्तदृष्टानि काष्टानीति सम्बन्धः । पर्वाणि चतुर्दग्यष्टम्यमा- वास्यार्विमंकान्तयः। श्रन नित्यद्नाधावने काष्टिनिषेधात् काष्टे-नापि सुखार्थद्नाधावने भोजनोत्तरादृष्टार्थद्नाधावने वा न किस्दिदिरोधः।

सृत्यनारे,-

श्राद्धे जन्मदिने चैव विवाहे सुखदूषिते । इते चैवोपवासे च वर्ज्ययेद्दनाधावनम् ॥ तथा,—

न भचयेद्दनाकाष्ठमेकादकां नरेश्वर । श्रादित्यदिवसे चैव तस्त्रादेनो मस्द्रवेत् ॥

द्ति । केचिद्च दीचाकर्माङ्गलेन दानहोमप्रतिषेधवत् श्राद्धा-द्यङ्गलेन काष्ठकरणकं दन्नधावनं यदि प्रतिषिद्धाते<sup>(१)</sup> । तर्हि प्रमा-वाज्यभागयोरिव विहितप्रतिषेधात् विकस्प श्रापद्येत दति भयेन सुखार्थदन्तधावननिषेधः<sup>(१)</sup> कस्पनीय दति, तन्न ।

त्रतोपवासदिवसे खादिला दन्तधावनम् । गायत्याः प्रतप्तः पूता श्रपः प्राप्य विग्रध्यति ॥ दति कर्माङ्गभंग्रप्रायश्चित्तविधानस्य वैयर्थापत्तेः ।

नतु तर्षि श्राद्धदिनेषु सुखार्थद्नाधावनं पूर्ववत् कार्य्यमिति चेत्र । सर्वभोगविविर्व्णितः दति वाक्यात् श्राद्धे भोगलेन एव तस्य निषेधात् । भोजनोत्तरदन्तधावनस्यायत्र निषेधः । विश्विष्य पूर्व-प्रायश्चित्तोक्तेः ।

<sup>(</sup>१) प्रतिबेधते।

<sup>(</sup>२) दन्त्रधावनविश्रेषः।

निषिद्धदिनेव्यपि प्रकारान्तरमाइपैठीनसिः,— त्रसाभे वा निषेधे<sup>(१)</sup> वा काष्ठानां दक्तधावनम्। पर्णैन वा विश्रद्भेन जिङ्गोलेखं समाचरेत्॥ सुत्यनारे,-

कुह्रषष्ठ्योर्नवस्यां च पचादौ दन्तधावनम् । पर्णरन्यच काष्ट्रेसु जिक्कोक्केखः सदैव हि॥

व्यामः,—

श्रकाभे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धे<sup>(१)</sup> दिने तथा। श्रपां दाद्गगगडूषैर्विद्धाइन्तधावनम् ॥

तथाच दन्तकाष्ठनिषेधे दाद्यजनगण्डूषाणां ग्र्दूपर्णसः च ममो विकलाः, श्रतएवासाद्गे सर्वदा श्रामपनैरेव दन्तधावनं कुर्वन्ति इति समाचारः । श्रंय<sup>(१)</sup> गण्डूवपचे श्रायुर्म्बनिमिति मन्त्रेण वनस्रते द्त्यच जलगण्डूष द्त्यूइः कार्यः। धान्यमि द्त्यादि मन्त्रेषु तरममि दत्याद्यूरः कार्यः दति तरममयाधिकरणन्यायात्। पर्णपचे तु नो इः। तस्थापि काष्टवत् वनस्यति अत्वात्। निषिद्धदिने-स्विप जिक्कोक्षेखः कार्य्य एव, जिक्कोक्षेखः सदैव हि दत्युकेः।

त्रय प्रमङ्गात् आद्वपूर्वदिनकत्यआद्वदिनकत्यनिर्षयः। तच निमन्त्रणैकभक्तादिविचारः देवलः,—

त्रहरूरो निस्तः खस्यः श्रद्धावानलरः ग्रुचिः। समाहितमनाञ्चाच क्रियायामसक्रत् सदा॥ यः कर्त्तास्त्रीति निश्चित्य दाता विप्रान्निमन्त्रयेत्।

<sup>(</sup>१) निषिद्धे। (२) प्रतिषिद्धदिने। (३) तत्र।

निरामिषं सङ्ग्रुका सर्वभुक्तदिने(१) ग्रहे ॥ असभवे परेद्युर्वा ब्राह्मणांस्तान् निमन्त्रयेत्। त्रज्ञाती न समानार्षी न युग्मानात्मगन्तितः॥ निरामिषमित्यनेन इविष्यभोजनं।

सर्वकर्मध्वपि हारीतः,-

योश्वते दैविपित्ये श्रीपवस्यमश्राति इति । उपवस्तं उपवासः तसी हितं श्रीपवस्यं इतभ्रयिष्ठं हिनः ।

पूर्वेधुर्निमन्त्रणाशकाविप कर्त्तः पूर्वेधुईवियभोजनमेव साधारणं इति कल्पतक्काराः। सर्वे भुक्ता भुक्तवन्ती यिसान् तथा। ऋसमावे कुतिञ्चित् कार्णात् निमन्त्रणासमावे । श्रार्षाः प्रवराः।

वारा हे, - वस्त्र भौचोदक कर्तास्मीति जानता, -म्बानोदलेपनं भूमिं कला विशाविमन्त्रयेत्। दन्तकाष्ठं च विस्चेत् ब्रह्मचारी ग्रुचिर्भवेत् ॥

भूमिं कलिति द्विणाश्रवणाद्दिगुणोपेतामिति ग्रेषः। विस्जेद्राह्मणादिभ्धेः दद्यात् इति कच्यतस्काराः।

श्रव तद्यायिभिरप्राचीनैर्यद्नतकाष्ठदानं लिखितं, तत् कत्य-तहकाराणां किमभिप्रायमिति यत् लिखितं, तस्र समीचीनं। निमन्त्रितबाद्वाणार्थं दन्तकाष्ठदानस्य वच्छमाणलेन पूर्वदिननिम-न्त्रणपचे श्राद्धकनृदन्तकाष्ठेनैव तद्दनधावनस्थोचितलमिति तद्भि-प्रायात्। प्रातरेव दन्तधावनस्य काल दति पूर्वेद्युर्दन्तकाष्ठदानं उचितमेव इति सुष्टूकं कस्पतस्कारै:।

<sup>(</sup>१) जने।

## मार्कछ्यपुराखे,-

निमन्तयेत पूर्वेद्युः पूर्वेक्तान् दिजसत्तमान्।
श्रमाप्ती तिहने वापि हिला योषित्रमङ्किनः॥
भौचार्थमागतान् वापि काले संयमिने। यतीन्।
भोजयेत् पाणिपाचाद्यैः प्रसाद्य यतमानमः॥
निमन्त्रणं प्रक्रत्योग्रनाः,— चतुर्वरान् दति। दौ दैव एकैकं
वा पित्रमातामहवर्गयोः श्रपरेद्युः प्रातःकाले चामन्त्रणमिति।
मन्तवौधायनगातातपाः,—

दौ दैने पित्रकत्ये चीन् एकैकसुभयत्र वा ।
भोजयेत् सुसम्द्रोऽपि न प्रसच्चेत विस्तरे ॥
सित्तायां देणकासौ च ग्रीचं ब्राह्मणसम्पदः ।
पद्मैतान् विस्तरे। इन्ति तस्मास्नेहेत विस्तरे ॥
ब्राह्मो.—

देशकालधनाभावादेकेकसुभयत्र वा ।
शेषान् वित्तानुसारेण भोजयेदन्यवेश्वानि ॥
यस्माद्ब्राह्मणवाज्ञस्याद्दोषो बज्जतरो भवेत् ।
ज्ञीवनाशे मौननाशः श्राद्धतन्त्रस्य विस्तिः ॥
उच्चिष्टोच्छिष्टमंस्पर्शः द्रत्यादि ।
याज्ञवस्त्रः,—

मातामहानामणेवं तन्तं (१)च वैश्वदेविकम् ।

श्रतएव सपिण्डीकरणयितिरिक्तश्राद्धेषु एकैकपच एवाद्रियते। राजग्रहे तु महाखायादौ माचाङ्काद्वाणाभावेन ष्ट्रीवनाश्रादि-दोषाभावात् धनाधिकााच देवे पनदय पिव्वर्गे पननयं मातामह-वर्गेऽपि पननयं कुर्वुन्ति।

मात्यो, - यः बाधुिभः संनिमक्तयेत् इत्यनक्तरम्, -तस्य ते पितरः श्रुला श्राद्धकालसुपस्थितम् । श्रन्योऽन्यं मनसा थाला समतिक्त मने। जवाः ॥

तथा,-

वाद्यभ्रता न दृश्यने भुक्षा यानि परां गतिम् ॥

साधुभिः सन्त्रिमन्त्रयेदित्यादि<sup>(१)</sup> खयं <sup>(१)</sup>निमन्त्रणासभावे ।

भवितयं भविद्वयं मया च त्राद्धकर्मणि ।

दित चिद्वेन खनिमन्त्रणस्य मुख्यलात् ।

यमः,—

निमन्त्रितो दिजः पित्र्ये नियतात्मा भवेत्सदा ।

न च इन्दांस्यधीयीत यस्य त्राह्वं च तद्भवेत् ॥

सेऽपि नाधीयीत इत्यर्थः ।

हारीतः,—

(ह) पूर्वेद्युर्मन्त्रितान् विप्रान् पितरः संविधान्ति वै। यजमानं च तां राचिं वसेयुर्नियतास्ततः॥

<sup>(</sup>१) संनिमन्त्रयेदिति । (२) खयं निमन्त्रणसः । (३) पूर्वेद्युरामन्त्रितान् ।

कात्यायनस्त्रं,— तद्दः ग्रिचिरकोधनाऽलिरिता अप्रमन्तः सत्य-वादो स्थात् अध्यमेयुनश्रमस्राध्यायान् वर्जयेत्। श्रा आवादनात् आ उपस्पर्भनात् श्रामन्त्रितस्त्रेवम्। श्रा उपस्पर्भनात् भोकृषां अन्याचमनपर्धान्तम्। तथा अनिन्धेः।मन्त्रितो नापक्रमेदामन्त्रितो— उन्यद्भं न रहित्रोयात्।

चम:,--

केतितस्त यथान्यायं ब्राह्मणे ह्यक्ययेः । कथि सद्यद् (१) तिकामेत् पापः स्करतां व्रजेत् ॥ ब्राह्मणं तु सुखं कता देवताः पितृभिः सह । तद्वं ससुपन्नित्त तसात्तव व्यतिक्रमेत् ॥ केतनं कार्यिता तु योऽतिपात्यते दिजः । (१) ब्रह्मवध्यामवाप्ताति श्द्रयोनौ च जायते ॥ श्रामन्त्रितस्त यः श्राद्धे श्रन्यस्य कुरते चंस्म् । सम्बस्ट्यतं पूष्णं तस्य नस्रति दुर्भतेः ॥

श्रामित्तत इति प्रायक्षमिणि निष्ठाप्रत्ययः। तथाचामक्त्रणेन प्राप्तः खीकतामक्तण इति यावत्। चणं श्रामक्त्रणं सुइते खीकरोति, एतेन कतिमक्त्रणखीकारस्य तद्विक्षमे देशः। न तु प्रथमते।ऽखीकतिनमक्त्रणस्थ इति श्रीयं।

नाद्ये,—

श्रामन्त्रित खरं नैव कुर्य्याद्विषः कदारन । देवतानां पितृषां च दातुरन्यस्य चैव हि ॥

<sup>(</sup>१) यो उनतिकामेत्।

<sup>(</sup>२) ब्रह्मच्यामवात्रोति ।

चिरकारी भवेद्रोगी पचाते नरकाशिना ।

पुनर्यमः,—श्रामन्त्र्य ब्राह्मणान् यसु यथान्यायं न पूज्येत् ।

श्रतिघारास बच्छास तिर्यग्योनिषु जायते ॥

श्रह्मः,— निमन्त्रितस्तु यः श्राह्मे मैयुनं सेवते दिजः ।

श्राह्मं दला च सुक्षा च दुन्नः स्वास्महतेनसा ॥

श्रतएव देवसवाको द्रवसी यदि गच्छति इति स्तीमाचोप-सचणम्। श्रत्यनिमन्त्रणपचे बाह्मणाये ग्रहेण सर्वया न निमन्त्र-णीयम्। ग्रहार्थं बाह्मणेनापि न निमन्त्रणीयम्।

तथा च यमग्रातातपौ,-

श्रभोत्यं ब्राह्मणकासं व्यक्तेन निमन्तितम् । तथैव व्यक्तकासं ब्राह्मणेन निमन्तितम् ॥ ब्राह्मणानां श्राद्धयोग्यतस्य प्रायोऽभावात् पश्चादनुकत्पपसं मतुराह,—

एव वे प्रथमः पद्यः प्रदाने इत्यक्तव्ययोः ।
श्रमुकत्त्रपस्तयं ज्ञेयः सदा सङ्गिरमुष्टितः ॥
मातामदं मातुः च स्वसीयं श्रग्धरं गृदम् ।
दौदिः विद्पतिं वन्धुम्हित्याच्यो च भोजयेत् ॥
एतेषां श्राद्धयोग्यलगुणराहित्येऽपि निमन्त्रणीयलिमत्यर्थः ।
तच नियोगकमे हारीतः,—

विद्यातपोऽधिकानां वे प्रथमाधनसुच्यते ।

ब्राह्मणाभावे विष्ठरब्राह्मणकत्राह्मं, तथा च त्राह्मसूचभायो,—

ब्राह्मणानामसम्पत्तौ स्वा दर्भमयान् दिजान् ।

श्राद्धं कला विधानेन पश्चाद्विप्रेषु दापयेत्॥

सत्यवतोऽपि,— निधाय दर्भविष्टरानासनेषु समाहितः(१)।

प्रैषानुप्रैषसंयुक्तं विधानं प्रतिपाद्येत्॥

एतेषां श्राद्धयोग्यलगुणराहित्येऽपि निमन्त्रणीयलमित्यर्थः।

सालगामशिलाबाद्यणकश्राद्धं।

तच सृति:,—

मास्त्रामित्राणं पुष्यं सभतेऽसौ न संग्रयः ॥
गयायास्त्रिगुणं पुष्यं सभतेऽसौ न संग्रयः ॥
सिङ्गे,— सास्त्रामित्रास्त्रोतं तु यच्छाद्धं क्रियते नृभिः ।
तस्य ब्रह्मान्तिकं स्थानं व्यप्ताय पितरो दिवि ॥
एतयोब्रीह्मणलपचे श्राद्धकास एव निमन्त्रणं, न तत्पूर्वेद्यः,
तेषां नियमाद्यभावात् ।

यत्तु विप्रसिन्धैः ऋनिन्दोनासन्तितो नापकासेदित्यनक्रमणार्थलेन ऋषेतनेऽपक्रमणाभावालिमन्त्रणं न कार्यम् । निमन्त्रणस्य तु प्रेयला-भावेऽपि यदुत्कलदेशे तद्तुष्ठानं, तत् किंनिवन्धनिमिति न जानीमः, दति लिखितं । तत्र विचारचाद । प्रेयानुप्रेषणंयुकं विधानमिति सर्वश्राद्धितिकर्त्तस्यतायां कार्यलेनोक्तलात् । ऋषेतने प्रेयानुप्रेषयोः (१) करणग्रद्धायां तद्युक्तलसुक्रमिति तैनेव निमन्त्रणस्थायुपलचणात् । भवन्तो मया निमन्त्रणीयाः निमन्त्रिताः स्म दति प्रेयानुप्रेष-सद्भाव।च । दति ।

<sup>(</sup>१) एतत् वचनं प्रस्तकान्तरे न दृश्यते ।

<sup>(</sup>२) प्रेषानुप्रेषयोरकरणप्रश्चयां तद्यक्तत्विमिति तेनैव।

श्रय श्राद्धसानिकारः।

याज्ञवस्त्यः,— परिश्रिते ग्रुचौ देशे दिचणाप्रवणे तथा।

यमः,— ध्वं क्रमियुतं क्तिवं स्कीर्णानिष्टगन्थकम्।

देशं चानिष्टगन्द्ञ वजंयेच्ह्राद्धकर्मणि॥

दिचणाप्रवणं स्त्रिग्धं विविक्तं ग्रुभस्त्वणम्।

ग्रुचिदेशं परीद्याश्र गोमयेनोपलेपयेत्॥

दगारेषु विविक्तेषु तीर्येषु च नदीषु च।

विक्तिषु च देशेषु त्यान्त पितरः सदा॥

पारको भूमिभागे तु पित्वणं निवंपेन् यः।

तङ्क्षमिखामिपिष्टिभिः आङ्कर्म विष्यते ॥ तस्माच्छाङ्कानि देयानि पुष्येध्वायतनेषु च । नहीतौरेषु तीर्षेषु सम्मौ च प्रयव्नतः ॥

उपक्ररे नितम्बेषु तथा पर्वतमानुषु॥ गोमयेनोपलिप्तेषु विविक्तेषु ग्टडेषु च।

कित्रं पिक्किं। उपकरं पर्वतान्तिकं। एतेन पुष्यायतनादी न परकीयलग्रद्धा। एतच तीर्थश्राद्धप्रमङ्गिखितायामटवीत्युक्ती स्कुटमेव।

भ्रतग्रद्धेरावयकता, ब्राह्मी,-

जधान दानेवी विश्वाः पूर्वं त मधुकैटभी। हतं महेन्द्रय ततः प्रस्थी तन्मेद्रग्राहता॥ ततोऽथं मेदिनी मा च क्षोके विगीयते जनैः। तसान्क्राद्धे पञ्चगबैर्लेखा ग्रोध्या तथोल्युकैः॥ गौरम्हित्तकयाच्छन्ना प्रकीर्णतिसम्बेषा । उक्तव्यानामसभावे परग्रहे आद्धे बाह्ये,— परकीयग्रहे यस खान् पितृन् तर्पयेक्जड़ः । तद्भिक्यामिनसस्य हरन्ति पितरो वसात् ॥ अयभागं ततस्रोभो द्यान्यूखं च जीवताम् ।

श्राभागो श्रव श्राह्मीयद्रव्यस्य । तेभः तद्भृमिस्नामिभः तद्भृमिस्नामिषु श्रीवस् श्रानितकरं कि हिट्ट्यं तेभ्यो दद्यादित्यर्थः । जीवतामिष दूरस्थानां श्रयभागदानं कार्यम् । मूस्यदानाग्रभाग-दानयोर्श्वरणिवर्त्तकलेन वैकस्पिकलात् । श्राद्धविघातिनवर्त्तकलेन तद्भन्तात् ।

श्राद्धेऽपराक्रतिचादीनां प्रायख्यम् मनुः,—
श्रपराचितचा दभी वाम्यसम्यादनं तथा।
स्पष्ठिः सृष्टिर्दिजाद्याय्याः श्राद्धकर्मस् सम्पदः॥
दभीः पविचं पूर्वोक्ते चिव्याणि च सर्वेशः।
पविचं पञ्च पूर्वोक्तं विज्ञेया च्यमम्पदः॥

वासुममादनं दिचणाश्रवणताद्युपत्तेपनादिकरणम् । स्वष्टिः त्रकार्पछेन श्रव्यञ्चनमम्पादनम् । सृष्टिः श्रवादेः खादुत्वममा-दनं । प्रथमपविचपदं मन्त्रपरम् दितीयं ग्रज्याचारादिपरम् । इयमच वैदिकं कर्म ।

दर्भाः तिसा गजच्छाया दौहिनं मधुमर्पिषी । सुतपो नीसकण्डय पवित्राखास पैत्रके ॥ नीसकण्डो नीसत्वः, सोऽत्र पैत्रककर्मप्रसङ्गादुन्तः। महाभारते,— वर्द्धमानितिलं श्राद्धमचयं मनुरवित्। वर्द्धमानितिलं तिलवक्कलं।

पैठीनिसः, — तिसा दौहिनसुतपा इति पविचाणि श्राद्धे मत्यं चाकोधं गौचं चालराञ्च प्रगंपन्ति ।

विष्णुः, - कुतपः कष्णाजिनतिससिद्धार्थकाचतानि पवित्राणि रचोन्नानि च दद्यात्।

वायुपुराणे, - क्रणाजिनस्य सामिधं दर्शनं दानसेव च । रचोग्नं ब्रह्मवर्शसं पश्न् पुनांस दावयेत्॥

बारीतः, — दंभैरिद्धिषाचैर्द्तां सृष्णीमयाप्रुते दिवम् । विधिना लानुपूर्वीण त्रचयं परिकस्यते ॥ काञ्चनादिषु दर्भाद्यैभन्तवत् प्रतिपादिताः । पितृणामचयं यान्यस्तं स्वा महोर्मिभः ॥

हणीं त्राद्धमन्त्रवर्णितं । इयं च दर्भादीनां विध्वानुपूर्थादि-सिंदतानां स्तृतिः । काञ्चनादिषु पाचेषु इति ग्रेषः । प्रतिपादिता-त्राप इति ग्रेषः । इति कन्यतस्त्रद्वाख्यानं ।

हारीतः, - तिला रचिना दैतेयान् दर्भा रचिना राचमान्।

रचिन्त श्रोचियाः पिक्किं स्नातके दत्तमचयम् ॥ यमः, — वेदविद्रचिति लग्नं यतये दत्तमचयम् । विष्णुः, — तिस्वेद्य सर्पपैर्वापि यातुधानान् विवर्जयेत् । उग्रनाः, — कुगा दर्भाः समाख्याताः कृतपा दृषयस्वया ।

दुहितुर्खेन ये षुत्रास्ते दौहित्राः प्रकीर्त्तिताः॥

रुषिः शासनविशेषः।

ग्रातातपः, — दौ हिनं खङ्गमित्याङ्ग्बंबाटाच्यद्ध जायते ।
तस्य ग्रह्मस्य यत्पानं दौ हिनमपि तदिदुः ॥
दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभवित भास्करः ।
स कालः सुतपो नाम पितृषां दत्तमचयम् ॥
पैठीनसिः, — सुतोऽपि श्राद्धवेत्वायां श्रो नियो यदि दृष्यते ।
श्राद्धं पुनाति वै तस्मात् सुतपक्षेन संज्ञितः ॥

श्रव च दौहिवकुतपयोरनेकार्थलात् एकतमोपाद।नेऽपि श्राद्ध-मष्टद्धिर्भवतीति कच्चतस्काराः ।

हाह्ने,— यतिस्तिद्धः कर्षी राजतं पाचमेव च । दौद्दिचं कुतपः कालम्कागः क्षणाजिनं तथा॥ गौराः क्षणास्त्रथारप्यास्त्रथेवं चिविधास्तिलाः। पितृषां तृप्तये सृष्टा द्भैते ब्रह्मणा स्वयम्॥

तथा, - दर्भेर्मन्त्रेसिसेईमा रजतेन विना जसम्। दत्तं इरन्ति रचांसि तसाद्दान्न नेवसम्॥

मात्ये, मधाक्रः खङ्गपावस्य यय नेपालकम्बतः ।
ह्रष्यं दर्भास्तिनाम्हागो दौहिवश्वाष्टमः स्टतः ॥
पापं कुत्सितमित्याङ्गस्य मन्तापकारिणः ।
श्रष्टावेते यतस्तसात् कुतपा दति विश्रुताः ॥ दति ।
श्रष्य श्राङ्काले श्रातिश्यविचारः ।

यमः,— भिचुको ब्रह्मचारी च भोजनार्धमुपस्थितः । उपविष्टेयनुप्राप्तः कामं तमपि भोजयेत् ॥ यस्य वै यजमानस्य नागे भुङ्गे यतिस्राधा । श्रनिष्टमहुतं तस्य इरते रचसाङ्गणः ॥ कागलेयः;—

> पूजयेक्चाद्धकालेऽपि यति समहाचारिणम्। विप्रानुद्धरते पापात् पितृन् मात्रगणानपि । भुञ्जते यत्र यत्रापि यतयो ब्रह्मचारिणः ॥ ग्रक्तिनि पितरो देवाः स याति परमाकृतिम्। ऋर्चयिन्त च दातारं पुचान् दारान् पितृंसाया ॥ तसात्सर्वप्रयञ्जेन ऋर्चयेद्यमागतम्। त्रलाभे (१)धानिभिचूणां भोजवेद्बद्वाचारिणम् ॥ तदभावेऽणुदाधीमं ग्टइस्यमपि भोजयेत्। ब्रह्मचारिमश्सेस वानप्रस्थमतेरपि॥ ग्टइखानां सहस्रेषु यतिरेको विशियते। गन्धमान्यक्रनेखेव भोजनैः चीर्षंक्रतैः॥ संपूजवेत् यतिं श्राद्धे पितृषां तुष्टिकारकम्। ब्रह्मचारी तपस्वी च पूजनीयो हि नित्यग्नः॥ तलतं सक्ततं यसात्तसात्यङ्भागमाप्र्यात् । नाषं योगस यज्ञस यतस्त्रसिंख्यं स्थितम् ॥ तस्य प्रणामः पूजा च दत्तं भवति चाचयम् । ग्टइख्खात्रमं गच्छेद्ब्रद्वाचारी यतिस्तया॥ खाद्यं पानं फलं पुष्पमात्मानमपि वेद्येत्। यन्ततं योगयुक्तानां वीतरागतपिखनाम्॥

<sup>(</sup>१) थानभित्त्यां।

सर्वारमनिष्टत्तानां यतीनां दत्तमस्यम् ।
यतये वीतरागाय दत्तमस्रं सुपूजितम् ॥
न स्रीयते श्रद्धयापि कस्पकोटिश्रतेरपि ॥
ब्रह्मचारी यतिस्रेव पक्तान्नस्वामिनावुभौ ।
पवमानाः पुनन्येते नागरः पवते पुनः ॥
धोगिनं समितिकस्य गृहस्थं यदि भोजयेत् ।
न तत्पत्तमवाप्नोति गोत्रं सर्वं प्रतापयेत् ॥
योगिनं समितिकस्य पूजयन्ति परस्परम् ।
दाता भोका च नरकं गक्कन्ति सह वान्धवैः ॥
श्रपरस्परदानानि स्रोक्याचा न धर्मतः ।
तस्ताद्यनेन दातस्थमन्यया पतितो भवेत् ॥

सन्ञाचारिणं ब्रह्मचारिसहितं, वेदयेत् निवेदयेत्, गोचं सुलं प्रतापयेत्, श्रतिकान्तो यतिरिति ग्रेषः। न धर्मतः न धर्म इत्यर्थः। प्रथमान्तात्तिभिल्प्रत्ययः।

ग्रातातपः,—त्रितिथिर्धस नामाति तच्छाद्धं न प्रशस्ति । स्रुतरुत्तिथिषीनैस भुक्तमशोवियेस यत्॥

तथा,— त्रातियारहिते श्राह्वे भुत्रते न वुधा दिजाः। द्या तेनात्रपानेन काकयोनिं वजन्ति ते॥

भनुः,— ब्राह्मणं भिचुकं वापि भोजनार्धमुपस्थितम् ।

ब्राह्मणैरभ्यनुजातः ग्राक्तितः प्रतिपूजयेत् ॥

ऋष ऋदि निरमनीयाः।

मनुः,- चण्डालयः वराह्य सुद्धुटय तथैव च ।

रजसलाय<sup>(१)</sup> षण्डय नेचेरलयतो दिजान् ॥ होमप्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिनीचितम् । दैवं कर्मणि पित्र्ये च तद्गच्छत्ययणयथम् ॥ घाणेन स्करो हिन पचवातेन कुक्कुटः । या तु दृष्टिनिपातेन स्पर्येनावरजस्त्या ॥

श्रयणायणं। यद्णें क्रियते तदिपरीतं। कुक्कुटः पचवातेनेत्या-द्रिर्णः, यावति देशे कुक्कुटादीनां पचवातादि सभाव्यते। तावतो द्रिशादपनेय<sup>(२)</sup> दत्यर्णः। श्रवरणः श्रद्रः।

त्राद्धकाले वर्जीषु यमः,-

कुकुटो विद्वराश्य काकः श्वा च विदासकः ।

एषलीपित्य एषलः षण्डो नारी रजखला ॥

कुकुटः पचवातेन इन्ति श्राह्मसंग्रतम् ।

प्राणेन विद्वराश्य वायस्य इतेन तु ॥

श्वा तु दृष्टिनिपातेन मार्जारः श्रवणेन तु ।

एषलीपितः प्रदानेन चचुभ्यां एषलस्प्रणा(२) ॥

कायया इन्ति वे षण्डः स्पर्येन तु रजखका ।

खन्नः काणः कुणिः श्विची राजप्रेयकरो भवेत् ॥

जनाङ्गो नातिरिक्ताङ्गलमाग्र न नयेत्ततः ।

देवलः,— हीनाङ्गः पिततः कुष्टी ब्रणी पुक्कसनास्तिकौ ।

कुकुटः ग्रुकरः श्वानो वन्त्राः श्राह्मे तु दूरतः ॥

वीभत्युमग्रुचिं नग्नं मत्तं धूर्त्वे रजखलाम् ।

<sup>(</sup>१) रजसलाच। (२) दपनेया इत्यर्थः। . (३) दवली।

नी सक्त षायव भनं कि सक्त शंतु वर्जयेत्॥ ग्रस्तं का सायमं भी संगित नाम रवासमम्। स्रमं पर्युषितं वापि स्राद्धेषु परिवर्जयेत्॥

वीभसुरदेगकरः। मिलनामरं वस्ते श्राच्छाद्यतीति मिल-नामरवासाः तं।

महाभारते, -- रजखला च या नारी यङ्गिता कन्यकास्तथा (१) । निवापेनोपतिष्ठेत संग्राह्मा नान्यवंत्रजा ॥

निवापे श्राद्धकर्मपाकारको। श्रन्यवंश्रशा मातापित्ववंशासम्बन्धा। न संग्राह्मा न व्यापार्थितव्या इत्यर्थः।

विष्णुः, समृते श्राद्धं कुर्यात् रजस्नकां न पश्चेत् न श्वानं न विड्वराष्टं न गामकुकुटं प्रयक्षाच्छ्राद्धमजय दर्शयेत् ।

पुनर्विष्णुः,-न हीनाङ्गाः श्राद्धं पछोयुः न श्रुद्रा न पतिता न सहारोगिणः ।

उप्रनाः,-विड्वराइनकुलमार्जारकुक्कटश्रृद्ररजखलाश्रुद्रीभक्तारस्य दूरमपनेतव्याः ।

हारीतः, - दैवे वा यदि वा पिद्ये सुरापी यनु संस्पृणेत्। रजखना पुंचली वा रचमां गच्छते हि तत्॥ वायुपुराणे, - नग्नादयो न पग्नेयुः आद्भीवं व्यवस्थितम्।

गच्छिनि तैस्त दृष्टानि न पितृन् न पितामहान्॥
सर्वेवामेव भूतानां चपासंवरणं(१) सृतम्।
तां त्यजन्ति तु ये मोहात्ते वै नग्नाद्यो दिजाः॥

<sup>(</sup>१) कन्यकातथा। (२) तपसां वर्षाः

ष्ट्रद्रत्रावकके<sup>(९)</sup> यन्याः गाक्यभीवककापिखाः । चे धर्मान्नानुवर्त्तने ते वै नग्नादयो जनाः॥ रुषात्रटी रुषामुखी रुषानग्राय ये नराः। महापातिकारी ये च ते वै नग्नाद्यो जनाः॥ कुललमानिकाः गाच्या याधा सुष्टिकमहकाः । कुकर्ममंत्रितासे ते कुपथाः परिकीर्त्तिताः॥ एभिर्निर्द्भृतदृष्टं वे आहुं गच्छति दानवान्। देवतानामृषीणाञ्च पापवादरताञ्च ये॥ असुरान् यात्रधानां य दृष्टमेतेर्त्रजत्यात । श्रपुमानपविद्वय कुकुटो यामस्करः॥ या चैव इन्ति श्राद्धानि दर्शनादेव सर्वशः। श्वविट्श्करषंसृष्टं दीर्घरोगिभिरेव च ॥ पितिवैर्भिलिनैसैव न द्रष्टयं कयञ्चन । त्रसं प्रकेषरेते यत्तस्याद्वयत्ययोः॥ **उत्स्ष्ट्य** प्रधानार्थे संस्कार्यापविसृतः । इविषां मंछतानां तु पूर्वमेव हि मार्जनम् ॥ मृत्यंयुकाभिरद्भिन्त प्रोचणन्तु विधीयते । चिद्वार्थकेः कष्णतिकेः कार्यद्वैवादकीरणम् ॥ गुरुस्योग्निवस्वाणां दर्भनं वापि यह्नतः।

रुखतः, — खपानवण्डपिततयानः सूनरनुकुटाः । रजखना च चण्डानः श्राद्धे नार्यास्तदर्भनाः॥

<sup>(</sup>१) रहें यावन के ग्रीयाः।

परिश्रिते प्रद्याच तिलेवी विकिरेनाहीम् । प्रमयेचोपविष्टस्त तं दोषं पङ्किपावनः ॥

कुत्रतमानिकाः सत्कुलाभिमानेन त्यक्ताचाराः दृद्धश्रावकादयः।
पाषण्डविशेषाः । सृष्टिकमक्को मागधः।
श्रपविद्वस्तु,— मातापिद्यभ्यासुत्मृष्टस्तयोर्न्यतरेण वा ।
यं पुत्रं प्रतिग्रश्लीयादपविद्वः स उच्यते ॥

रित मनूक्रसचणपुचिशेषः । वस्तः हागः । श्रम्मवे उक्तदोष-दुष्टमपि श्राद्वीयद्रयं स्ट्युक्तजसमार्जनादिहागदर्भनानां हता नियोज्यमिति समुदायार्थः । प्रधानार्थं श्राद्वार्थं । खपाकः श्रन्य-जजातिविशेषः ॥ ॥

## श्रय विश्वेदेवाः।

रुष्यतिः,— कतुर्देचो वसः षत्यः काषः कामस्ययेव च ।

(१)धिरिय रोचनयेव तथा चैव पुरूरवाः ॥

माद्रवाय तथेते तु विश्वेदेवा प्रकीर्त्तिताः ।

रिष्टिश्राद्धे कतुर्देचः मत्यो नान्दीमुखे वसः ॥

नैमित्तिके कासकामौ काम्ये च धुरिरोचनौ ।

पुरूरवा माद्रवाय पार्वणे ममुदाइतौ ॥

उत्पत्तिं नाम वै तेषां ये विदुर्न दिजातयः ।

श्रयमुद्धारणीयसैः श्लोकः श्रद्धाममन्वितैः ॥

श्रामच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा वरप्रदाः ।

ये यव(१) विद्विताः श्राद्धे मावधाना भवन्तु ते ॥

द्षित्राद्भमं द्रवाहाष्य्रणसम्बत्ताविष्क्या यित्रायते तदेव। प्रातातपः,— बदङ्मुखसु देवानां पितृषां दिचणामुखः। प्रद्धात् पार्वणश्राद्धे दैवपूर्वं विधानतः ॥ गातातपः, — नित्यत्राद्धमदैवं खादेकोहिष्टं तथैव च। मादत्राद्धन्तु युगीः साददैवं प्राङ्मुखैः प्रथम् ॥ योजधेदैवपूर्वाणि श्राद्धान्यन्यानि यह्नतः । स दैवं भोजयेच्छ्राद्धं तत्पूर्वञ्च प्रवर्त्तयेत्॥ श्रनाथा लवसुमानि सदैत्यासुर्राचमाः । तत्पूर्वं देवपूर्वं। वायुपुराखे,- नाप्रोच्य सार्भयेत् किश्चिच्छा द्वे दैवेऽथवा पुनः । उत्तरेणाइरेडेचा द्विणेन विसर्जयेत्॥ "वेदिरच दिषणापवणादिश्राद्धदेशः । दैवे दैवश्राद्धे । मनुः, - दैवकार्याद्विजातीनां पिलकार्यं विशिष्यते । दैवं हि पिल्कार्थेख पूर्वमाणायनं स्रतम् ॥ तेषामारचभूतन्तु पूर्वे देवं नियोजयेत्। रचांमि हि विजुत्मिन याद्भमारचवर्जितम् ॥

श्राणायनं पितृश्राद्वप्रधानभूतस्य समृद्धिकरं श्रङ्गभूतं न तु स्वतः प्रधानम् । श्रारचभूतं न तु सर्वतो रचाकरम् । दैवाद्यन्तं दैवे श्राद्यन्तौ श्रारक्षावसाने यस्य तत्त्रयोक्तम् । एतेनैतदुकं भवति, निमन्त्रणादि दैवपूर्वं विसर्जनं विपरीतं कार्यम् ।

दैवाद्यनं तदीहेत पित्राचनं न तद्भवेत्।

पित्राद्यन्तं लीहमानः शीन्नं नम्मति सालयः॥

देवलः, - यद्व कियते कर्म पैत्रके ब्राह्मणान् प्रति । तत्सवें तच कर्त्तयं वैश्वदैवत्यपूर्वकम् ॥ इति । श्रय विधिपरिभाषा ।

मतुः, - प्राचीनावौतिना सम्यगपसयमतिम्लणा। पित्रमानिधनात् कार्ये विधिवद्र्भपाणिना॥

श्रतन्त्रिणा त्रनलयेन। त्रपमयं वामपार्थै। त्रानिधनात् त्राममाप्तेः।

कात्यायनः,— दिचेषं पातयेक्वातुं देवान् परिचरन् मदा । पातयेदितरं जातुं पित्वन् परिचरन् मदा ॥

श्राद्वस्त्रम् कात्यायनः, न श्रावाहनादिवाग्यत उपसर्थनादामन्त्रिणस्वेवं (१) श्राद्वं पिण्डपिर्ह्यश्रवदुपचारः । पित्ये दिगुणांस् दर्भान् पवित्रपाणिर्द्धादामीनः सर्वत्र प्रश्ने पिङ्क्षमूर्द्धन्यं एक्क्रति, सर्वान् वा पित्र्ये दित वचनात् तर्पणाद्यपि पित्र्ये दिग्रणैः कुग्नैरेव समाचरन्ति न तु हजुभिरेव ।

## त्रथ कुगाः।

वायुपुराणे, रित्निप्रमाणाः प्रस्ता वै पित्नतीर्थन मंत्रुताः । उपमूखे तथा जूना प्रस्तरार्थे कुगोत्तमाः ॥ तथा, - ग्रुभाः श्राद्धे चीरकुगा वच्चत्राः चार्थकी तथा । वीरणाञ्चोलपाञ्चेव लम्बा वर्ज्याञ्च नित्यगः ॥

संयुताः संस्पृष्टाः, प्रसरोऽच पिण्डप्रस्तरः । प्रस्तरः सुग्रसृष्टिः । प्रद्रमाः भद्रमुस्तकः । चौरंसुगाः प्रत्ययजाताः । चार्यकौ चार्योहणं ।

<sup>(</sup>१) व्यामन्तितस्य।

उत्तपः कुश्रमदृशः हणंविशेषः। सम्नाः उत्तप्रमाणाद्धिताः। हारीतः। योश्रते द्विणां दिशं गला द्विणाग्रायतान् मम्सान् दर्भान् श्राहरेत्। श्रापस्तम्यः,— मम्सस्त भनेद्भः पित्रणां श्राद्धकर्मणि। मृत्तेन स्नोकान् जयित शक्ष्य च महात्मनः॥ श्राह्मी,— गोकणंदीर्घाञ्च कुशाः स्टाच्हिकाः समूस्तकाः। पिह्नतीर्थेन देयाञ्च दुर्वाः ग्यामस्तमेचकाः॥

काधाः कुषा वद्यजास तथा से तीच्एाशूककाः।
मौञ्जलं(१) प्रादसञ्चेव षड्दर्भाः परिकीत्तिंताः॥

श्राद्धे वर्चाः प्रयक्षेन श्चनूपाः सगवेधृकाः ॥ दूर्वाचाः कुगाभावे प्रतिनिधिलेनोकाः ।

तथाच गोभिखः,—

तेषामभावे श्कात्रणगर्गीर्षवत्यजस्तवनल् (रः गुण्डवर्जं सर्वद्यणानि श्कारणं श्कायुक्तधान्यद्यणं । भीर्षस्तवणवा जातिविभेषास्तत्तद्देश-प्रसिद्धाः । पिञ्जनः पविचम् तत्समाः प्रादेशमाचाः सागा दति यावत् । समाहिताः निदेशिः ।

श्रय मण्डनार्थं चूर्षविश्वेषाः ।

ब्राह्मे, मण्डलानि च कार्याणि नैवारे यूर्नकेः ग्रुमेः ।

गौरम्हित्तकया वापि प्रशीतिनाय भस्नना ॥

पाषाणचूर्षमङ्गीर्षमाद्यतं तत्र वर्जयेत् ।

<sup>(</sup>१) मोञ्जलाः ग्रादनासैव।

त्रय आहे अर्घादिपात्राणि। बाह्म, - श्रस्भाण्डानि वर्ज्याणि पित्रदैवतकर्मणि । सुवर्षतासरौषामस्माटिकगङ्खग्रह्मयः॥ भिन्नान्यपि हि योज्यानि पाचाणि पिव्नकर्मणि। ष्टियी पिलिभिर्दुम्धा पाने रौषमचे पुरा॥ खधास्तञ्च तस्रात्तत्त्रेभ्यः प्रियतरं भदा । रौषपाचेऽर्घपादादि (९) तसात् (१) सूचोऽपि कारयेत् ॥ दला हेममये पाचे भगवान् छात् स मानवः। दला रत्नमये पाने सर्वरत्नाधिपो भवेत्॥ पनागे ब्रह्मवर्चसी श्राथत्ये राज्यमाप्नुयात्। पाने श्रौदुम्बरे दला सर्वसृताधिपो भवेत्॥ दला न्यगोधपाचे तु प्रज्ञा पुष्टिं श्रियं सभेत्। रचोच्ने कायारीपाचे दला पुष्यं समेत सः॥ मौगाग्यं वाय वाधूके फलगुपाचे च सम्पदम्। श्वेतार्कमन्दारमये दला च मितमान् भवेत्॥ विन्तपाने धनं बुद्धं दीर्घमायुरवाप्नुयात् । त्रय पदापुटे दला सुनीनां बक्षभो भवेत्। सिनो मधुष्टताभ्यां च चयासमावसेव वा ॥ ग्रम्तभाष्डं विग्रीर्णभाष्डं। फर्गुपात्रं काकोदुम्बर्पात्रम्। वायुपुराणे,— तथापि<sup>(२)</sup> पिण्डभोज्येषु पित्वणां रजतं मतम् ।

श्रमङ्गनं प्रयक्षेत्र देवकार्येषु वर्ज्जयेत्॥

<sup>(</sup>१) प्राचादि । (२) सुद्धापि । (३) तथार्घपिस्डभोज्येषु ।

श्रय चन्दनादि विचार्यते।

त्रन्यत्र, - श्वेतचन्दनकर्पूरकुंकुमानि ग्रुभानि च।

विखेपनार्थं दश्चानु यज्ञान्यत् पिखवक्षभम् ॥

विश्युः,— चन्दनकपूर्ं खंखुमाग्रहपञ्चकाष्टानि श्रन्तेपनानि इति ।

श्राद्धे देवादेयपुष्पविचारः।

बाह्मे,— ग्रुक्ताः सुमनसः श्रेष्ठास्त्रणा पद्मोत्पत्तानि च।
गन्धक्षोपपत्रानि यानि चान्यानि कत्स्त्रणः ॥
जवादिसुसमें भाष्डी क्षिका<sup>(१)</sup> च सुक्षिद्धका<sup>(१)</sup> ।
पुष्पाणि वर्जनीयानि श्राद्धे कर्मणि नित्यणः ॥

जवादीत्यादिमञ्दादेवं रक्तकुसमम्। रूपिका अर्ककुसुमं,

कु दण्डका पीतझिण्डीति कच्पतदकाराः।

वर्ज्येषु बाह्मे,— उपगन्धीन्यगन्धीनि दुष्टानि च विवर्क्कयेत्।

प्रज्ञः,— उपगन्धीत्यगन्धीनि चैत्यवचोद्भवानि च।

पुष्पाणि वर्ळानीयानि रक्तवणीन्यसारिणः॥

रक्तेऽपवादः तेनैवोक्तः,-

जलोद्भवानि देथानि रक्तान्यपि विशेषत:।

वर्जयेदित्यनु वत्तौ विष्णुः उग्रगन्थान्यगन्थानि कष्टिकिजातानि

रक्रपुष्पाणि च। सितानि सुगन्धीनि कष्टिकजातान्यपि।

जलजानि रक्तान्यपि द्द्यात्।

श्रन्यत्र, श्राह्मे जात्यः प्रश्नमाः खुर्मिका श्रेतपुव्यिका । जलोद्भवानि धर्वाणि कुसुमानि च चम्यकम् ॥

<sup>(</sup>१) राधिका।

तुलसीगन्धमात्राय पितरस्तृष्टमान्साः । प्रयान्ति गर्डारूढास्तत्पदं चक्रपाणिनः । त्राद्धे च तुलसीदानात् पिदृणां वृत्तिरचया ॥

जातीयुष्पस्य सामान्यतो विशेषतस्य साह्ये विश्वितलात् "जाती-दर्भनमार्त्रेण निरागाः पितरो गताः" इति वाक्यस्य प्रामाण्येऽपि पीतजातिपरलमेव ॥०॥

घ्पः ।

ब्राह्मे,— चन्दनाग्रहणी चोभे तथैवोशीरपद्मकम्। तुहम्कं ग्रग्गुबुं चैव छताकं युगपद्देत्॥ छतं न केवसं दद्याद्यष्टं वा ल्लग्रग्गुबुम्।

विष्णुः,- मध्यतमंयुक्तं गुग्गुखुं दद्यात् । तर्द्यकं सिक्नकरमः हण-गुग्गुकं गुग्गुक्तभेदः॥

श्रथ दीपः।

ग्रह्म, एतेन दीपो दातस्य सिस्तेलेन वा प्रनः।
वशासेदोद्भवं दीपं प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥
विष्णुः, वशा मन्त्राद्यं दीपार्थं न दद्यात्।
श्रथ वस्त्रदानस्यावस्यक्रता।

ब्राह्मे,— त्रनङ्गलग्नं यदस्तं वितरेत्तयुगं ग्रुभम् । वायपुराणे,—

> वामो हि मर्बंदैवत्यं मर्बंदेवेस्त्रभिष्टुतम् । वस्त्राभावे किया नास्ति यज्ञा विद्यासापांसि च ॥ तसादस्त्राणि देयानि श्राह्मकास्त्रे विशेषतः ।

## श्रथ नानाद्रव्यदानपतानि।

वायुपुराणे,-

कोंके श्रेष्ठतमं सर्व्यमातानयापि यत्पियम् । मन्त्रं पितृणां दातयं तदेवाचयमि स्कृता ॥ जाम्नुनद्मयं दिखं विमानं सूर्यंसिक्सम्। दियासरोभिः संपूर्णमञ्जदो सभते चयम् ॥ श्राच्छादनं च यो दद्यादहतं श्राद्धकर्मणि। श्रायुः प्राकायामैश्रयीं रूपं च सभते सखम् ॥ यज्ञोपवीतं यो द्याच्छाद्भकाले तु धर्मवित्। पावनं सर्वेविपाणां बद्धादानस्य तत्पसम् ॥ कते विपाय यो दद्याच्छाद्धकाले कमण्डलुम्। मधुचीरश्रवा<sup>(१)</sup> धेनुद्ातारमनुगक्कति ॥ चक्रवर्द्धनं(१) योदद्याच्हाद्भकाले कमण्डसुम्। धेतं स सभते दियां घण्टापदतदोहनाम् ॥ ह्रलपूर्णे तु यो दद्यात् पादुके श्राह्मकर्मि । जोभनं सभते यानं पाद्योः सुखमेव च ॥ यजनं तालहन्तं च दला विपाय मंस्कृतम्। पाप्रुयात् सार्ययुक्तानि प्रदानानि स्टूनि च॥ त्राद्धेषूपानही दद्यात्नाद्वाणेभ्यः सदा नुधः। दियं म सभते चवुर्वाजियुक्तांसाया रयान्॥

श्रेष्ठं ऋतं च यो दद्यात् पुष्पमानाविभूषितम्। प्रासादो श्रुत्तमो भूला गक्कतमनुगक्ति॥ गरणं रत्न मंपूर्णं सुगय्या धनभोजनम्। श्राद्धे दला यतिभ्यसु नाकपृष्ठे महीयते॥ सुकावेद्रयंवासांसि रह्मानि विविधानि च। वाइनानि च मुख्यानि ऋयुतान्धर्वदानि च॥ विमानं पुष्पंतप्रखां सर्वेतामसमन्वितम् । चन्द्रसूर्यप्रभं दिव्यं विमन्नं नभतेऽचयम् ॥ श्रप्रोभिः परिष्टतं कामगन्तु मनोजवम् । मगन्धवैविमानाय्यैः ख्यमानः समन्ततः॥ दियोः पुष्पैः प्रसिञ्चन्ति जन्नदृष्टिभिरेव च। गत्भवीप्रसम्बन् गायनयो वादयनित च॥ कन्यायुवितमधास्या इसिताभरणस्त्रनैः। सुखरैसी विवोधनी सततं हि मनोरमैः॥ श्रयदानमञ्जलेष र्यदानग्रतेन च। दिन्तनां च मइसेण यत्पालं लभते नरः॥ द्यात्पविचं योगिम्यो जन्तु (१)वारणमण्यसः। खर्णनिष्कषदस्य फलं प्राप्तोति मानवः॥ जीवितस्य प्रदानाद्धि नान्वं<sup>(२)</sup> दानं विशियते । तसात् चर्वप्रयक्नेन देयं दानाभिरचणम् ॥

<sup>(</sup>१) तन्तुवार्यामस्भतः।

प्रहिंसा सर्वदैवत्यं पविषं सोमपायिमाम्। दानं हि जीवितस्वाद्धदीमानां परमं बुधाः ॥ स्वरोन सुपूर्णीन आहे पाचाणि दापयेत्। रमास्तमुपतिष्ठन्ति भच्छं मौभाम्यमेव च ॥ तिसानिचुंस्तया भोज्यं श्राद्धे सत्कृत्य दापयेत्। मित्राणि सभते सोने स्तीषु सीभाग्यमेव च ॥ पाचं च तेजमं दद्याकानोज्ञं आद्धभोजने । पार्व भवति कामानां विद्यानां च धनस्य च॥ रजतं काञ्चनं चैव दशान्क्राद्वेषु यः पुमान्। दला स सभते दानात् प्राकान्यं भननेव च ॥ धेनुं आद्भेष यो दद्यात्गृष्टिं कुभोयदोइनास् । गावसामुपतिष्ठन्ति गर्वा पुष्टिसायैव च ॥ द्यात् यः ग्रिखरेम्बग्निं बक्तकाष्टं प्रयक्षतः । कामाग्निदीशं प्राकाम्यं सीभाग्यं इपसेव च ॥ द्रस्थनानि चयो इद्यात् द्रिजेभ्यः प्रिप्रिरागमे । नित्यं जयितं भंगासे श्रिया युक्तस दीयते ॥ पुरभी खि(१) तु स्नानानि यन्धवन्ति तथैव च। पूर्यिता तु पाचाणि श्राद्धे मन्क्रत्य दापयेत्॥ गन्धवाहा महानद्यः सुखानि विविधानि च। दातारसुपतिष्ठन्ति युवत्यस पतिन्नताः॥

<sup>(</sup>१) सुरसानि।

गयनासमदानानि भूमयो बाह्नानि च। श्राद्धेस्वेतानि यो द्धात् सोऽधमेधपानं लभेत् ॥ गोसवमञ्जते । तिसान् लोने वसन् मोदित् खन्दनेस्त सवाहनैः॥ राजिभः पूज्यते वापि धमैद्वांन्येश बर्द्धते । वर्णकौ ग्रेयपत्रोर्ण(१) तथा प्रावारकम्बन्तम् ॥ श्रजिनं चौमजं पट्टं प्रवेशीं स्टगलोमिकाम् । दला चैतानि विप्रेभ्यो भोजयिला यथाविधि ॥ प्राप्नोति अद्धानस्त वाजपेयसः यत्पसम् । बच्चो नार्थः सुरूपासु पुत्रम्खाञ्च किङ्कराः ॥ वंग्रे तिष्ठन्ति भूतानि श्रिसंसोने लनामयम्। चौमकौगेयकार्पासं द्कूलमहतं तथा॥ श्राद्धेस्वेतानि यो द्धात् कामानाप्रीत्यनुत्तमान् । त्रबन्धीं नागयत्याग्र तमः सूर्यीदयो यथा॥ भाजते च विमानाय्ये नचचे व्यव चन्द्रमाः।

प्राकाम्यं ऐश्वर्यविशेषः, ग्रद्धिः प्रथमप्रस्ता गौः, वर्षकौशेयं पीतवर्षादि<sup>(२)</sup>रिश्चतकौशेयं, प्रावारकम्बलं श्राच्छादनयोग्यः सूझ-कम्बलः। श्रिजनं किट<sup>(२)</sup>सूचं, चौमजं श्रतिस्चापद्दनिर्मितं श्रिमि<sup>(४)</sup> दिति प्रसिद्धं। प्रवेशी गजास्तरणकम्बलः। तथा,— राजतं रजतान्नं वा पित्वशां पाचमुच्यते।

<sup>(</sup>१) पर्यो च।

<sup>(</sup>२) पीतवर्णादिको भ्रयं।

<sup>(</sup>३) कटित्रं।

<sup>(8)</sup> चर्म।

रजतस्य कथा वापि दर्भनं दानमेव च। श्रननामचयं खार्यं राजतं दानसुचाते ॥ एवमन्यान्यपि पालान्युकानि विल्राभयादिरस्यते । इति । श्रथ श्राद्धे देयद्रथविचारः। ग्रज्ज जिखितौ, - धर्मेण वित्तमादाय पित्रभ्यो द्धात्। मनुः, च ब्रुविख्रिकालाय यशानन्याय कस्पते । पिष्टभ्यो विधिवद्क्तं तत्प्रवच्छाम्यभेषतः ॥ तिसेनि इयने मां परितम्सफलेन वा। दत्तेन मासं शीयन्ते विधिवत्पितरो नृणाम् ॥ दौ मासौ मत्यमांसेन चीन् मासान् शरिणेन तु। श्रीरश्रेणाय चतुरः गाकुनेनाय पञ्च वै॥ ष्यासान् भाग<sup>(१)</sup>मांसेन पार्वतेनाथ सप्त तु । श्रष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवेव तु॥ दशमासांसु दयन्ति वराइमहिषामिषै:। ग्राज्यक्षयोसु मांसेन मासानेकाद्गीव तु॥ सम्बत्सरं तु गछीन पयसा पायसेन वा। बद्धीणम्य मांचेन द्वप्तिदाद्यवार्षिकी॥ कालगाकं महाग्रन्तं खङ्गं गोधामिषं मध्। त्रानन्यायैव कत्पन्ते मुन्यनानि च मर्ज्याः ॥

श्रीरश्रं मेषमांसं । पृषतः चित्रस्याः । एणः क्रष्णमारः । ६६ः ग्रम्बरः । गन्यपदं पयःपायमयोर्पि विग्रेषणम् ।

<sup>(</sup>१) काग।

वाद्धीणयस्य सचणं निगमे,-

निपिवं लिन्द्रियचीणं येतं रुद्धमजापतिम् । वाद्वीणमं तु तं प्राक्तर्याजिकाः पित्रकर्मणि ॥ कृष्णयीको रक्तणिराः येतपचो विच्क्रमः । म वै वाद्वीणमः प्रोक्त दत्योषा नैगमी स्रतिः ॥

चिभ्यां मुखेन कर्णाभ्यां च जलं पिवतीति चिपिवः। जलपान काले मुखवत् दृद्धलेन विलु जितकर्णयोरिप जलमध्ये प्रवेशान्तया कथनम्। महाश्रन्ता रोहिताकारा मत्यविशेषाः। दृहच्छ्न्ताः कामक्षेषु प्रसिद्धाः पामराणामिप महाश्राना इति व्यवहार्थाः। "महाश्रन्ता मत्या" इति यमोक्तेः।

यमः, — गावयं स्ट्रमंमितान् । त्रानन्याय प्रकल्पेत खङ्गमां पिल्वये।

पित्वचयो गया चिया तच दत्तं महाफलम्॥

तथा - यत्किंचिन्नधुना युक्तं तदानन्याय कच्यते ।

उपाक्तं तु विधिना मन्त्रेणान्नं तथाक्तम् ॥ गावयम् । गवयमां गं रहमंमितान् एकादशमासानित्यर्थः । उपा-कतं मन्त्रविहितं मंख्रतं ऋतं । तथाकृतं उपाक्तमेव ।

कात्यायनसूत्रम्, न्त्रय त्रियांम्याभिरौषधीभिर्माषं त्रिः, तदभावे मूलप्रजैरिद्भवां सहाजेनोत्तरास्तर्पयन्ति हागोत्त्व्यमेषा त्रास्त्रयाः ग्रेषाणि कीला वा खयं स्तानाहत्य परेत । उत्तराः तिसः प्रसमूलादयः उत्त्याः त्रनह्वान् (१) त्रास्त्रयाः हतास्त्रभाः ।

<sup>(</sup>१) खनड्इः।

विष्णुः,— प्राक्तैः स्थामाकैः प्रियङ्गुनीवारै मुंहिर्गिधू मैश्च मासं
प्रीयन्ते । तथा कालप्राकं महाप्रस्काः, वाद्वीणसमांसं खड्गमांसमित्यचयाय ।

पैठीनिसः,— ष्टतेन मामं प्रीणाति कालगाकेन दिमामं चवागूप्प-क्रगरेण विमामं इत्यादि।

उप्रनाः, — चतुरीमामान् क्रव्यवारक्नेण ।

ग्रज्ञः, — त्रामान् पारेवतानिचून् मंदीकाभखदाड़िमान् । विदार्थां स भार (१) एडां स त्राह्यकालेऽपि दापयेत् ॥ काजान् मधुष्टतान् दद्यात् सक्ष्यून् ग्रर्करचा सह । दद्याच्छा द्वे प्रयत्नेन ग्रङ्काटिविश्वकेतुकान् (१) ॥

पारेवतं जम्भीराकारं पत्नं, कायमीरदेशे तु त्राउ<sup>(१)</sup> त्राउ द्वित प्रसिद्धं, मृदीका द्वाचा भव्यपदस्य कर्मरङ्गपत्नवाचकलात्, उत्राउ द्वि प्रसिद्धपत्नवाचकलाच, श्रविरोधात् ममाचाराचो भवमपि याद्यं द्वि बङ्गिवन्धकतः। विदार्याद्य जनप्रभवाः कन्दविशेषाः। भारुण्डो जनप्रभवः कन्दविशेषः। केवुकं तदत् जनप्रभवः कन्दविशेषः।

मतुः, — मुन्यन्नानि पयः मोमो मां चचातुपसृतम् । त्रचार् जवणं चैव प्रहत्या इविक्चते ॥

देवलः, - धानास मधुमंयुक्ता दहूं सैव मगोरमान्।

गर्कराः फलमूलञ्च मर्वे दद्याद्मत्सरः॥

गोरसपदोपादानात् श्रामिचासारप्रस्तीनां गव्यानासेव देशलं

<sup>(</sup>१) भरखांच। (२) परक्राटकसकीवकान्। (३) उ इति

## महाभारते,-

सर्वकामीः स यजते यस्तिसैर्धजते पित्हन्। वायुपुराणे,—

> यामाकैरिचुभिस्वैव पितृषां मार्वकामिकम्। कुर्यादाश्रयणं यस्त स भी प्रं सिद्धिमाप्न्यात् ॥ म्यामाका इस्तिनामानी वर्डितान् यज्ञनिः स्तान्। प्रसीतिका प्रियङ्गुख ग्राद्धाः खुः श्राद्धकर्मणि । एतान्यपि समानि खुः य्यामाकानां सदा ग्राणैः॥ कष्णा मापासिकार्येव श्रेष्ठाः खुर्ववज्ञालयः । मरायवा बीहियवास्त्रचैव च मधू सिकाः॥ कच्णाः श्वेता लोहिताय याच्चाः सुः श्राह्म कर्मणि । विष्वामंत्रकम्दीकापनमामातदाङ्गिम् ॥ भव्यपारेवताचोडं खर्जूराम्रफलानि च। क्रमेर्कोविदार्यस तालकन्दं तथा विषम्(१)॥ तमालुं गतकन्दञ्च मधालुं गीतकन्दकम्। कालेयं कालगाकञ्च सुनिवर्णं सुवर्चला ॥ मांसं ग्राकं दिध चीरं चेझुर्वेचाङ्करस्राया। कट्फलं कद्भणी द्राचा लकुचं मोचमेव च॥ कर्कन्दुत्रावकं वारं तिन्दुकं मधुशक्रयम्। वैकद्भतं नारीकेलं ग्ट्रङ्गाटककटीपलम् ॥ पिप्पली मरीचं चैव पटोलं वहतीफलम्।

<sup>(</sup>१) विसं।

सुगत्थिमत्यमांसञ्च कत्तायाः सर्वएव च ॥ एवमादौनि चान्यानि खादूनि मधुराणि च। नागरं चाच वे देयं दौर्घमूलकमेव च॥

प्रसीतिका मध्यदेगप्रसिद्धं धान्यं, महायवा वेणुयवाः, मधू सिका धान्यविग्रेषः, योनालभेदो देवधान्यमिति गौड़ाः। ऋष्येव विश्रेषणं कृष्णाः येता लोहितास्ति । श्राचोडं काम्मीरप्रसिद्ध पत्नं । कोवि-दारः योतकास्त्वारसदृगः। तालकन्दः तालमूकीति प्रसिद्धं। ग्रातकन्दं ग्रात्ववरी। ग्रीतकन्दं ग्राष्ट्यकं। कालेयं तिकः ग्राकविग्रेषः, कालाखं ग्राकं करालाखंमिति गोविन्दराजः। सुनिषणं चाङ्गेरी (१)-सदृगं जलप्रभवं ग्राकं। सुवर्चला सूर्यभक्तग्राकं, सूर्यावक्तां दिति गौड़ाः। चेश्चः चञ्च दित प्रसिद्धं ग्राकं मण्डग्राकमिति गौड़ाः। कर्यक्तं कर्पलटचपलमेव। कद्मणी द्राचा श्रम्लरमा द्राचा। मोचः कदलीपलं। कर्वन्दुः वदरीविग्रेषः। नागरं सूण्टी, सूण्टी श्रार्द्रकप्रकृतिकलादार्द्रकस्थापि देयलं। मूलकं दिविधं, पिण्ड-मूलकं दीर्घमूलकं चिति।

तच वच्छमाणग्रङ्कोक्या पिण्डमूलकस्त्रैव निषेधात् । वायुपुराणे,— दीर्घमूलकस्य देयलेनोपादानाद्दीर्घमूलकं देयमेव । मार्कण्डेयपुराणे,—

यवत्री हिसगोधूमी तिलसुद्गाः समर्वपाः । प्रियङ्गवः कोविदाराः निष्पावासात्र ग्रोभनाः ॥

<sup>(</sup>१) गङ्गेरीसदृश्ं।

निव्यावा सिम्नीसदृशा द्विणापयप्रसिद्धाः । तत्सादृश्यात्सिम्बस्य दानसमाचारः स्वादुमधुरलाञ्च ।

(१) त्रादिपुराणे,—

मधुकं रामठं चैव कर्पूरं मरीचं ग्रभम्। आद्धकर्मणि श्रसानि मैन्थवं चपुषं तथा॥

रामठं हिङ्गं। चपुषं सुखासिकापरनामिका कर्कटी मधूरता-त्तव्यातीयताचान्यकर्कटीनां दानसमाचारः। श्रतसदसाभे फलमूसै-रिद्विरिति कात्यायनस्त्रे, श्रापोम्सफलानि चेत्यापसम्बोक्षा, शद्ध-र्मूलफलेन चेति मनूत्र्या च निषिद्धेतरस्वादुमधुरम्सफलमाचस्य सामान्यतो विहिततादासुप्रस्तीनां दानसमाचारः।

श्रय वर्चाणि।

हारीतः, — विषक्य इतं मां याधितिर्यगातं च यत्।

न प्रशंसन्ति वै श्राद्धे यच मन्त्रविवर्जितम् ॥

वायुपुराणे, — वर्जनीयानि वच्छामि श्राद्धकर्मणि नित्यशः।

करमाधान्यान्यन्यानि हीनानि रसगन्धतः॥

श्रवेदोक्तास्य निर्यासा खवणान्युषराणि च।

दुर्गन्धि फेनिकं चैव तथा वै पत्न्वकोदकम्॥

न समेद्यत्र गौसृप्तिं नकं यचैव यद्यति।

श्राविकं मार्गमौद्रं च धर्वमेकश्रफस्य यत्॥

माहिषं चामरं चैव प्रायो वर्ज्यं विजानता।

पन्वलं ऋत्पसरः।

<sup>(</sup>१) चादित्यप्रागे।

मार्क खेयपुराणे,-

पित्रधं से प्रयक्कस्तेत्युक्ता यद्यायुपाइतम्।
वर्जनीयं सदा मिद्गस्तत्पयः श्राद्धकर्मणि ॥
दुर्गन्धि फेनिसं चामु तथा न प्रदरोदकम्(१)।
यन्न सर्वार्थमुत्सृष्टं यद्याभोज्यनिपानजम् ॥
तद्दच्यं सिससं तात सदैव पिष्टकर्मणि।

श्रभोश्यं निपानजं पतितादिकारितपुष्करिष्यादिजलं।

मात्यं, नसूर्षणनियावा राजमाषाः कुलव्यकाः।

पद्मविक्वकधूस्त्र्रपारिभद्राटक्ष्पकाः ॥ न देयाः पित्रकार्येषु पयम्कात्राविकं तथः कोद्रवो दारविवरं किष्ट्यं मधुकातमी ॥ एतान्यपि न देयानि पित्रभ्यः प्रियमिक्कता ।

पारिभद्रं पात्रिहर दति प्रसिद्धं।

बाह्मे,— द्धिगाकं तथा भच्छं मूखं वावधि (१)वर्जितम् । वर्जये चेत्तथा चान्यान् सर्वानभिषवानि ॥

द्धिमानं मानविमेषो द्दिद्दिश्रा इति प्रसिद्धम् । हारीतः, — पालङ्ग्या<sup>(९)</sup>नालिकापोतिकामिगुंस्मुकवात्तांकुश्रुमृण्क-फेलुमाषमस्रकतस्वणानि च श्राद्धे न दद्यात् ।

ना लिका जलपीति मगधादी प्रसिद्धः ग्राक विशेषः । स्युकं वीजपूरं । स्रस्तृषं रामकपूरं कफेनु जलप्रभवं ग्राकं । दारीतभाष्यकारसु,—स्रमृणकफेनू याम्यारण्यो ग्राक विशेषौ काम्मीर-

<sup>(</sup>१) प्रसरोदक। (२) दिधवर्जितं। (३) पन्नस्का।

प्रसिद्धावित्युक्तवान्। माषनिषेधोऽत्र गौरमाषपरः क्रव्यामाषाणां देयलेनोक्तलात्।

विष्णुः, - पिष्पजीस्मुकश्रसृणास्ररीमर्घपस्रसकुषाण्डासावुवार्त्ताकी-पासद्भातण्डुसीयककुसुक्षपिण्डमूसकमहिषीचीराणि वर्जयेत्। राजमाषमस्ररपर्युषितद्यतसवणानि च।

श्रास्रीमर्षपो राजमर्षपः। सुरमं तुलगीगाकम्। महाभारते,—

श्रश्राद्धेयानि धान्यानि कोंद्रवाः पुलकालया।
चित्रुद्रवेषु सर्वेषु श्रलावु लस्तनं तथा॥
पलाण्डुश्रोभाञ्चनको तथा ग्रञ्जनकादयः।
खुखुण्डकान्यलावूनि(१) कृष्णं लवणमेव च॥
ग्राम्यं वराष्ट्रमांसं यत् यसेवाशोचितं(१) भवेत्।
कृष्णाजीनी विद्रश्चेव शीतपाली तथेव च॥
श्रद्धुरार्थास्तथा वन्धां दच ग्रद्धाटकानि च।
वर्जयेक्षवणं सर्वे तथा जम्बूफलानि च॥
श्रवचुतश्च हितं तथा श्राद्धेषु वर्जयेत्।

त्रव हिङ्गोर्निषेधः स्वरूपेण दीयमानसः। द्रयान्तरमंस्कार-कलेन तस्य पूर्वे विहितलात्। ग्रञ्जनं गाजर दित पश्चिमदेशप्रसिद्धन्न मूलभेदः। खुखुण्डकानि क्वाक्तममानप्रक्रतिकद्रव्याणि पिण्डोप-मानि। क्रयास्त्रवणं सुवर्षेला। क्रय्णा<sup>(१)</sup>जीनी क्रय्णाजीरकं। गीतपासी काकजङ्गा। सर्वश्रब्दोपादानात् मैन्धवस्त्रवणसासुद्रस्रवणयोर्हविय्ययो-

<sup>(</sup>१) खुखुखुकानि। (२) यचैव प्रोधितं। (३) कृष्णजीरकं।

रिष न सक्षेण दानम्। यसाम्रयम्भादेः समीपे चुतं कतं तदवचुतं। चुतं किका। एवं रिदितं बोध्यं।
प्रक्षुः,— ऋसूणं सुरमं भिगु पालद्भ्या समुखं तथा।
कुमाण्डालावुवार्त्ताकीकोविदारां वर्षयेत्॥
पिष्पत्ती मरीचं चैव तथा वै पिण्डमूलकम्।
कृतस्य लवणं मवें वंभागस्य विवर्णयेत्॥
राजमाषान् मसूरां व कोद्रवान् कोरदूषकान्।
सोदितान् दचनिर्यासान् श्राद्धकर्मणि वर्णयेत्॥

मरीचादिनिषेधोऽपि हिङ्गुक्तस्वरूपेण दीयमानस्वेति बोधं। वंश्रागं वंश्रकरीरं। कोरदूषको वनकोद्रवः। राजमाषो शुडुङ्ग दति गौड़ाः। पिण्डमूलकशब्दस्य पिण्डमार इति प्रसिद्धमूलपरलं केचिददन्ति। कोचित्तु स्ररणपरलं। तदुभयमपि विचाराधरं तथोर्मूक्षश्रब्देन व्यवहाराभावात्। तथा कोषाद्यभावाद्य। वर्त्तृल-मूलकदीर्घमूलकयोरेव मूलकशब्दप्रसिद्धेश्व। श्रव कस्पतस्काराः,—

ततोऽत्रं वक्षमंस्कारं दित वच्यमाण्यक्षानेक्या विहितस्यायव
(१) हरणीयद्रयस्य यथालाभमुपकित्तितस्य श्राह्मस्रूष्पमम्पादकलं, तदभावे तु श्रविहिताप्रतिसिद्धं विहितसदृश्यमुपादातयं। यन्तु श्राद्धप्रकरण एव प्रतिषिद्धं तत् प्रतिनिधिलेनापि नोपादेयं। यत्र तु
पास्तविशेषसंयोगः तस्य श्राद्धस्रूष्पमम्पादकले सित तत्पास्तविशेषसम्पादकलमपि। यत्र न पास्तविशेषसंयोगः तेषां नित्यवदङ्गलानीविना श्राद्धाङ्गानिष्यक्तिरेव। यन्तु निषिद्धं गोमहिषमांसादिपास-

<sup>(</sup>१) चभ्यवद्वरणीयद्वयस्य।

विशेषार्थं विहितं, तत् तत्मसार्थिनैवोपादेयं, न तु श्राद्धस्य-भगादकलेन। यनु यसिन्नेव द्रये पित्तत्तिकालास्पीयस्तं भूयस्तं वा<sup>(१)</sup>। तत्तस्यैव द्रयस्यावस्याविशेषापेचया वोद्धयमिति।

त्रालुफलकद्खीसुसमहरितकादीनां कषायवज्ञललाद्दानाभाव-एव। कोमलतालफलस्य मधुरलाद्देयलमिति केचित्। तदन्ये न सहन्ते।

पालं तालंतरूणान्तु भुद्धा नरतम् च्छति ।

दति वचने पकापक्षमाधारखेन निषेधात्। हिड्मोचाग्राकादे-र्हवियालेऽपि तिक्तलाददेयलमेव। (१)चाङ्गेरिग्राकं, श्रीद्रदेगप्रसिद्ध-नामकटभालेम्व्<sup>(२)</sup>जम्भीरवीजपूरनागरङ्गप्रस्तयोऽस्तरसलाझ देयाः। पक्ततिन्तिङ्गेनां(४) माधुर्यमाहित्याद्दानसमाचारः। स्वण्लात् ससुद्र जसप्रस्तयो न देयाः।

त्रथ परिवेषणविचारः ।

परिवेशस्त श्रसः स्थात् भार्यया पित्रहत्रये ।

पित्रदेवमनुष्याणां साहाय्ये सा यतः स्थिता ॥

मनुदृहस्पती,—

पाणिभ्यां त्र्पसंग्रह्म खयमत्रस्य वर्द्धितम् । विप्रान्तिके पित्तन् ध्यायन् गनकैरपनिचिपेत् ॥ सुक्तं ह्युभाभ्यां हस्ताभ्यां यदत्रसुपनीयते । तदिप्र जुम्पन्त्यसुराः सहसा दृष्टचेतसः॥ गुणानपूपगाकाद्यान् पयो दिध हतं मधु ।

<sup>(</sup>१) च।

<sup>(</sup>२) गा।

<sup>(</sup>३) लेम्बाडरेलेम्बाड।

<sup>(</sup>४) तिन्तिडीपालस्य।

विन्यस्य प्रयतः सम्यक् भूमावेव समाहितः ॥ भद्यं भोज्यञ्च विविधं मूलानि च फलानि च। इद्यानि चैव मांसानि पानानि सुरभीणि च॥ उपनीय तु तत्स्वें ग्रनकेः सुममाहितः। परिवेषयेनु परितो गुणान् सर्वान् प्रचोदयन् ॥ यद्यहोचेत विप्रेभासत्तद्याद्मस्यरः।

... ब्रह्मोद्यास कथाः कुर्य्यात् पितृणामेतदीपितम् ॥ श्रमस्येति द्वतीयार्थे षष्टी । वर्द्धितं पूरितं । उभाभ्यां सुक्तं इज्ञदयेनासम्बद्धम् । गुणान् अप्रधानानि दत्यपूपादिविशेषणं, भोजनेऽस्रखेव प्राधान्यात् अपूरादीनां गुणलं । दितीयगुणानीत्यव माध्यादिगुणान् कथयनित्यर्थः ।

देवनः,- खिलैव निस्तः कत्तां सुदितः सादरः ग्रुचिः। ततो विषद्मानीय भोजयेखयतो दिजान् ॥ विषदं विमलं।

गङ्खाः, - उष्णमनं दिजातिभाः श्रद्धवा विनिवेदयेत् । श्रन्यत्र फलमूलेभ्यः पानकेभ्यश्च पण्डितः ॥ भोजयेदिधिवत् पञ्चात् गन्धमाच्योज्ज्वलान् दिजान् । भन्यनेति उक्तफलमूलान्येवानुष्णानि देयानि। (१)वच्यमाणं याज्ञवलकाः,—

त्रनमुणं हवियञ्च दद्यादक्रोधनोऽलरः। त्रापसम्बः, - नैयामिकनु (१) यच्छाद्धं से हवदेव दद्यात्।

<sup>(</sup>१) देयवच्यमायां। (२) नैयामिकं च।

मिर्पमांसमिति प्रथमः कन्यः, श्रभावे तैनं शाकमिति। मघासु
चाधिकं श्राह्मकन्येन सिर्पः ब्राह्मणान् भोजयेत्। मासिकश्राह्मे तिन्नानां द्रोणं येनोपायेन श्रमुयात् तेन भोजयेत्। ससुदितान् सम्भोजयेत्। श्रस्यार्थः, नैयामिकं श्रमावास्यादि श्राह्मं। तत् स्नेष्ठं विना न दद्यात्। श्रधिकं मिर्थ्वाह्मणान् भोजयेत् श्राह्मकन्येनेत्य-न्वयः। श्राह्मे वैकन्यिकमि तैनं न देयिमिति तात्पर्यं। तिन्नानां द्रोणसुपयोजयेदिति ब्राह्मणस्यस्वपन्ने। येनोपायेन श्रमुयादिति मोदकादिप्रकारेण ससुदितान् गुणवत दति। ब्राह्मे,— उप्णान्नं परिद्रधञ्च तथैवाग्रावनोहितम्।

गर्करीकीटपाषाणैः केग्रेर्यचाप्युपट्रतम् ॥

पिष्पाक<sup>(१)</sup>मिथतञ्चेव तथातिजवणञ्च यत् ।

सिद्धाः कताञ्च ये भच्छाः प्रत्यचं जवणीकताः ॥

वाग्दुष्टा भावद्ष्टाञ्च दुष्टैश्चोपहतास्त्रया ।

वासमा वाऽवधृतानि वर्च्याणि श्राङ्ककमिणि ॥

उणास्त्रमित्यच श्रत्युणास्त्रमित्यर्थः । उणास्त्रदानस्य बद्धवास्त्री-षूक्रतात् । ग्रीतलास्त्रदानस्य बद्धमाणनिषेधाच । श्रग्रावलोहितं (२) उपयुक्ताग्रभागं । सिद्धाः कृता दत्यादेर्थः, येषु सिद्धेषु उत्तर-कालं प्रत्यचलवणप्रचेपः कृतः ।

मार्कण्डेयपुराणे,-

भच्यात्रानि करभाय दष्टका घतपूरकाः। कन्नरं दिध मर्पिय पयः पायममेव च॥

<sup>(</sup>१) पिण्याकं मियतं।

<sup>(</sup>२) तषयुक्तायभागं।

स्विग्धमुणाञ्च यो द्वादिग्निष्टोमफलं लभेत्।
दिधगव्यमसंस्टष्टं लेखान्नानाविधानिप ॥
दला न ग्रोचित त्राद्धे वर्षास च मघास च।
ष्टतेन भोजयेदिप्रान् ष्टतं भूमौ समुत्र्यत् ॥
प्रकराः चीरसंयुक्ताः पृथुका नित्यमचयाः।
स्युच सम्त्रसरं प्रीता त्रीरभैमेषकेणकेः॥
सक्यून् लाजान् तथा पूपान् कल्माषान् बाज्यनेः सह।
सिर्देशनि सर्वाणि दक्षा संक्रत्य भोजयेत्॥

करमो दिधिमित्रिताः सक्यवः । दृष्टकाः कासारखण्डाः । इतं भुमौ समुत्वृजेत् तथा इतेन पाचं पूरणीयं यथा इतं चरतीत्यर्थः । पृथुकाः चिपिटकाः ।

विष्णुः, - न प्रत्यचलवणं द्दात्।

गातातपविशिष्ठहरूकातातपाः,—

इस्तद्तासु ये होश लवणयञ्जनानि च।
सैन्थवं लवणं यच तथा मानससम्भवम् ॥
पविचे परमे ह्येते प्रत्यचमपि नित्यगः।
दातारं नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुञ्जीत किल्लिषम् ॥
तस्मादन्तरितं देयं पर्णनेव त्रणेन वा।
प्रद्धान्न तु इस्तेन नायसेन कदाचन ॥
वृद्धभातातपलघुशरीतौ,—

श्रायसेन तु पाचेण यदनं सम्मदीयते। भोक्ता विष्ठासमं भुक्ते दाता तु नरकं वजेत्॥ यमगातातपौ,-

सुतं नखेँ खतुर्भिश्च यो दद्यात् प्राणिना एतम्।
दाता पुण्यं न चाप्नोति भोक्ता पापगतिं ब्रजेत् ॥
तथाः,— माचिकं फाणितं ग्राकं गोरमं खवणं एतम्।
इस्तदत्तानि भुक्ता च दला मान्तपनं चरेत् ॥
इस्तदत्ता च या भिचा मिल्लायञ्जनानि च।
भुक्ता लग्रचितां याति दला खगैं न गच्कति ॥
मनुः,— राजतैर्भाजनैरेषामथवा रजतान्तिः।
वार्यपि श्रद्धया दत्तमचयायोपपद्यते॥
इारीतः,— काञ्चनेन तु पात्रेण राजतौदुम्बरेण वा।
दत्तमचयतां याति खड्गेनार्यक्रतेन च॥

त्रार्थकतमः चैवर्णिकनिर्मितमन्यद्पि पाचमिमन्तम् । विष्णुः,— घतादिदाने तैजमानि पाचाणि फल्गुपाचाणि प्रशास्तानि वा ।

रुद्धशातातपः, — पाचे तु स्ट एसये यस्तु श्राद्धे भोजयते पितृन्। तच दाता पुरोधाञ्च भोक्ता च नरंकं वजेत्॥

श्रयज्ञीयं प्रक्रत्य पेठीनसिः, — लोहानां सिसकायसपाषाणहीन-पाचाणि तीग्मपाचाणि वा। लोहानामपि सीसकायसापेचया निर्द्धारणं। हीनं श्रतिचुद्दं।

मनुः,— नास्तमा (१)पातयेक्जातु न कुष्येन्नानृतं वदेत् । न पादेन स्पृत्रेदस्रं न चैतदवधूनयेत्॥

<sup>(</sup>१) मीडयेत्।

त्रसं<sup>(१)</sup> गमयति प्रेतान् कोपोऽरीननृतं ग्रःनः । पादस्पर्यसः रचांसि दुष्कृतानवधूननम् ॥ दुष्कृतान् पापकारिणः ।

देवनः, — श्रश्रु न पातयेत् श्राद्धे न जन्पेन हरेक्मिथः।

न विश्वनेत्र च क्रूथ्येत् नो ब्दिजेचाच कुचित्॥

प्राप्ते हि कारणे श्राद्धे नैव क्रोधं ममुत्सृजेत्।

श्राश्रितः खिन्नगाचो वा न तिष्ठेत् पित्तमन्त्रिधौ॥

न चाच ग्रेनकाकादीन् पचिणः प्रतिषेधयेत्।

तद्रूपाः पितरस्तच ममायान्तीति वैदिकाः॥

कारणे कोधस्थेति ग्रेषः। ससुत्मृजेत् श्रभियञ्ज्यात्। श्राश्रितः उपाश्रितः। विष्णुः, — नास्तमासनमारोपयेत् न पदा सृश्रेत् न वा युतं कुर्यात्।

द्रष्टं निवेदितं तन्नं भुक्तं जप्तं तपः श्रुतम् ।

यातुधानाः प्रमुग्यन्ति गौषभष्टदिजन्मनः ॥

यया क्रोधेन यद्दत्तं भुक्तं यत्त्ररया पुनः ।

उभयं तदिमुग्यन्ति यातुधानाः सराचमाः ॥

पितृन्नावाद्यत्वा तु नायुक्तप्रभवो भवेत् ।

तस्यां नियम्य वाच्च श्रद्धया श्राद्धमाचरेत् ॥

तथा, श्रकुद्धपरिविष्टं हि श्राद्धं प्रीणयते पितृन् ।

त्रयुक्तप्रभवः त्रयुक्तस्य त्रसम्बन्धप्रलापादेः प्रभवः कार्णं तन्न भवेदित्यर्थः ।

<sup>(</sup>१) चखं।

## बौधायनः,--

श्रश्रद्धाः परमः पामा पामा तज्ञानमुखते।
श्रज्ञानो लुप्तधर्मः स्थालू प्रधर्मीऽधमः स्थतः॥
श्रद्धया श्रोध्यते<sup>(१)</sup> वृद्धिः श्रद्धया श्रोध्यते<sup>(१)</sup> मितः।
श्रद्धया प्रायते बद्धा श्रद्धा पापप्रमोचिनौ।
तस्रादश्रद्धानस्य इविनांश्रन्ति देवताः॥

मतिरचेच्छा । बुद्धेः पृथगुपादानात् ।

मनु:, चद्यद्द्राति विधिवत् सम्यक् अद्भासमन्वितः । तत्तत्पितृणां भवति परत्रानन्तमचयम् ॥

यमः, चया धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तया श्राद्धेषु मिष्टाचं मन्तः श्रीणयते पितृन् ॥
हर्षयेदृत्राद्माणांस्तृष्टौ भोजयेत् त्राद्माणांस्कृनैः ।
श्रत्नाद्येनासकृत् चैतान् गुणैश्च परिवेदयेत् ॥
भद्धभोच्यगुणानुक्का भोजयेत् त्राद्माणान् ग्रनैः ।
श्राख्यानैः सेतिहासैश्च पूर्ववृत्तीश्च हर्षयेत् ॥

त्रापस्तम्यः,— प्रयतः प्रमन्तमनाः सृष्टो भोजयेद् ब्राह्मणान्। सृष्ट जत्माहयुक्तः।

यमगातातपौ,-

यावद्भवियं भवति याविष्ण्यः प्रदीयते । तावद्भक्ति पितरो यावन्नाहं (ह)द्दाम्यहम् ॥

<sup>(</sup>१) ग्रोधते।

<sup>(</sup>२) श्रोधते।

<sup>(</sup>३) वदाम्बहं।

ब्राह्मणानं ददच्हुद्रः ग्रहानं ब्राह्मणो ददत्। तयोरममभच्छं छात् भुक्का चान्द्रायणं चरेत्॥ इस्तेन यद्भतं चौद्रं तत्किमानीयतामिति।

तद्पि गौद्रं भीतलं ऋतं गौद्रम् । ग्रुद्रैः परिवेष्टितं भवति गौद्रं । गौद्रं ग्रुद्रस्थेव श्रद्धायोग्यमित्यर्थः । किमानीयतामिति पृक्षा यदानीतमन्नादिकं तद्पि गौद्रं ।

हारीतः, -पंत्रा(१) चैवोपविष्टेभ्यः समं गन्धादि भोजनम् ।

न पंत्रवा विषमं द्दान्न याचेन्न च दापयेत्। याचिता दापिता दाता न ते खर्मस्य भागिनः। रुच्छादा दग्रराचेण सुच्यते कर्मणस्ततः॥ तसादिदान् नैव दद्यात् नाभियाचेत् न दापयेत्। एकपंत्रवृपविष्यानां विषमं यः प्रयच्कति॥ दुष्कृतं हरते पंत्रवा श्रन्नं ग्रहाति यस तत्। कुनदीचेतुकारस्य कृत्याविष्नकरस्य च॥

कुनदी खल्पजला। सेतुना तत्प्रवाहस्य विच्छेदात्तदुपजीविनां बह्ननां पीड़ा जायते।

पंत्रा विषमकारस्य निक्तिनीपपद्यते ॥

हारौतः,— यस्तेकपङ्क्या कुहते विशेषम्, स्रेहाङ्गयादा यदि वार्थहेतोः । इधिप्रणौतस्मृतिवेददृष्टाम्, तां ब्रह्महत्यास्वयो वदन्ति ॥

<sup>(</sup>१) पङ्गयां।

याज्ञवस्काः,-

निरङ्गुष्ठञ्च यच्छ्राद्धं विद्यानु च यस्त्रतम् । विद्यानु च यहुकं सर्वमेवासुरं वजेत् ॥ मनुदारीतविष्णुगातातपोग्रानसः,—

श्रत्युष्णं मर्वमनं स्वाहुश्लीरंसेऽपि वाग्यताः । न च दिजातयो ब्रूयुर्दाता<sup>(१)</sup> षृष्टा हविर्मुणान् ॥

वाग्यता दत्युकाविष पुनर्हविर्गुणानिभधानोकिर्हस्तमंज्ञादिना-ऽपि हिवर्गुणप्रतिपादनिषेधपरा ।

देवलः,—त्राञ्चणय तथा ग्रद्धः प्रमन्नेन्द्रियमानसः ।

पैत्वकात्रसुपाश्रीयाद्मंक्रान्तः प्रमन्नवान्॥

प्रसन्नवान् प्रसन्धः।

तथा,- अन्नपानकणीतोट्विधिम्यो ज्ञवलोकितः।

वक्तव्ये कारणे मंजां कुर्वन् भुद्धीत पाणिना ॥ श्रुश्नादिदानायें दाताऽवलोकितः मंजां हमादिना मद्भेतं कुर्यात्। एवं वक्तव्ये कारणे स्वीकारे(ह) हेतो श्रृष्ट्वा खितौ,—

बाह्मणा त्रस्नं गुणदोषेरभिवदेयुरन्योऽन्यं न प्रशंसेयुः त्रस्तदानं न प्रभ्रतमिति ब्रूयुः त्रन्यच इस्तमंत्रया यावद्वमौ यावद्प्रश्रस्तं यावत् सोग्न तावदत्रभित पितरो त्रन्यच पत्तमूलेभ्यः । त्रप्रश्रसं त्रक्षतप्रशंमं । यावद्वमौ भ्रमौ भोजनपाचं यावित्तष्ठतीति शेषः । तेन भोजनपाचं नोद्धर्त्तथं ।

वाराक्ते,-उद्धरेश्वदिपाचन्तु ब्राह्मणो जानदुर्वलः ।

<sup>(</sup>१) दात्रा।

<sup>(</sup>२) खीकाग्हितौ।

हरिन राचमास्तस्य भुज्ञानोऽत्रं च सन्दरि ।

यमः — यस्तु पाणितस्ते भुद्धे यः सवायुं तथात्रुते ।

न तस्य पितरोऽत्रन्ति यस्वेवाये प्रगंसति ॥

श्राद्धे नियुत्रो भुज्ञानो न प्रच्छेस्रवणादिषु ।

उच्छिष्टाः पितरो यान्ति प्रच्छतो नाच मंग्रयः ॥

दातुस्र पतते बार्ज्ञां भोत्रुस्त भिद्यते ।

सवायुं फुत्कारसहितं ।

विष्णुः, -श्रश्नीयु ब्राह्मणाय वाग्यताः न वेष्टितिशिर्धो न घोपानत्काः न पीठोपहितपाणयः।

मनुशातातपौ,-

यदेष्टितिशिरा भुक्के यङ्गुक्के दिचिणामुखः। भोपानत्कश्च यङ्गुक्के तदे रचांचि भुज्जते॥ देवनः,—

योऽप्रमन्नमना भुद्धों बोपानत्कोऽपि वा पुनः।
प्रसापगीसः मुद्धो वा म विप्रः पित्तदूषकः॥
प्रसमन्निप यो भुद्धों स च नाष्यायते पित्तन्।
यो वेष्टितिश्वरा भुद्धों यो वा भुद्धों विगर्हितान्॥

यमः,-

यदेष्ठितिशिरा भुक्के यहुक्के स्थलीपतिः । भोपानत्कस यहुक्के यत्तु दत्तं तिरस्कृतम् ॥ तत्सवे दानवेष्ट्राय ब्रह्मभागमकस्पयत् । उद्धृत्य पाणि विद्यम्सकोधविषयान्वितः ॥ श्राद्धकालेषु यद्भुक्कि न तत् प्रीणाति वै पितृन्। श्रासुरं विक्रयानं स्थात् कोधान्नं राचमं विदुः॥ श्रमत्कतमविज्ञातं पैग्राचं परिचचते॥

गातातपः,-

उपवीतं कटौ क्रला कुर्याद्गाचानुक्तेपनम्।

एकवासाय योऽश्रीयाविरागाः पितरो गताः॥

उपवीती ततः कुर्याद्भृतः श्राद्धेऽनुक्तेपनम्।

न निष्काः ग्रिखावनें मास्यं ग्रिरिंग धारयेत्॥

सव्यादंसात्परिश्रष्टं नाभिदेशे व्यवस्थितम्।

एकवस्तं तु तं विद्याद्गदैवेपित्ये विवर्जयेत्॥

यमः,— श्र्यासनोपविष्टसु यो भुद्गः प्रथमं दिजः।

बह्ननां पण्यतां सोऽत्रं पङ्क्त्यां हरति किस्तिषम्॥

श्र्यासनोपविष्टः पङ्किः मूर्द्धन्युपविष्टः।

ग्रातातपः,—

हतं प्रचाच्य यद्यापः पिवेहुक्का दिजः मदा।
तदन्नमसुरैर्भुतं निरागाः पितरो गताः॥
भुक्का भोजनं समाय । श्रापोऽत्र भोजनान्तचनुकगताः।
यद्य भुतं पुनभुति यद्य तैनाभिघारितम्।
रजखनाभिर्यहष्टं तदे रचांसि गच्छति॥
केग्रकीटविपन्नच चृतं यभिरवेचितम्।
हचितं चावधूतच तदे रचांसि गच्छति॥

हतसभवे तैनाभिघारितं दुष्टं। श्रवधूतं वाससेति गषः।

उग्रनाः,—

नियुक्तस्वैव यः त्राद्धे यत्किञ्चित्परिवर्जयेत् । पितरस्तस्य तं मासं नैराध्यं प्रतिपेदिरे॥

यत्किञ्चत्परिविष्टमरोत्तमानमपि यथाग्रित किञ्चिद्पि भच-णीयमित्यर्थः ।

भय नियुक्तस्य मांसभवणाभवणविचारः,— चतुर्दक्यादिपर्वस्विव दैवात् कतिभक्तपस्त्रीकारेण मांसं भवणीयं। पर्वसु मांसभवण-दोषापेचया आद्भीयमांसत्यागे दोषगौरवात्। तथा च मतुः,—

यथाविश्वि नियुक्तस्त यो मांसं नात्ति मानवः । स प्रेत्य पश्चतां याति सभवानेकविंगतिम् ॥ यमहारीतौ च,—

नियुक्तस्त यदा त्राद्धे यस्त मांसं न खादति । यावन्ति पग्ररोमाणि तावन्नरकमत्रुते ॥ दति । किन्तु,—वर्षिनां हि वधो यत्र तत्र सास्थनृतं वदेत् । तत्पावनाय निर्वाणसुदः सारस्वतो दिनैः ॥

रत्यच यथा सत्योक्ती वर्णिवधे दोषभ्यस्तात् कूटमाचिलम् इत्ता पञ्चात् प्राथश्चित्तं, तथाचापि वैदिकप्रायश्चित्तं कार्यम्।

ननु त्रहचादिप्राप्तमांसवर्जनप्रतिषेधोऽयं, न तु पर्वविहित-मांसवर्जनप्रतिषेधविधिः,

विश्तिप्रतिषेधे विकल्पापत्ति (१)रिति चेन्न । यथा हि दौचि-

<sup>(</sup>१) विकल्पायत्तेरिति।

तस्य कलर्थदानहोमपाकप्रतिषेधः पुरुषार्थसौकिकवैदिकसर्वहोमा-दिप्रतिषेधकः मोमाङ्गलेन विधीयते ।

तदलालर्थमांसभचणस्य च पुरुषार्थमांसनिषेधवाधकलात् । यथा वा वैधमवैधं च मांसादि पर्वाङ्गलेन न निषिध्यते, एतदेवाभिष्रेत्य-कन्पतरुष्ठाङ्गिरुक्तम् ।

यत् मांमवर्जनात् फलं तद्विपिवर्चनग्रेषमां सस्य । न तु नियु-क्रस्य श्राद्वीयमां सविषयं । तवाभवणे दोषश्रवणात् दति । श्रव ब्रह्मच।रियतिब्राह्मणकश्राद्धे तु मांमं मधु च सर्वथा न देयं।

विना मांनेन मधुना विना द्विणयाणिषा।

ममूर्षे श्राद्धकर्म स्थात् यतिषु श्राद्धभोजिषु ॥ इति सृतेः।

नतु एतदुकेः कत्यतहकारादिभिरनादृतलात् यन्धिमधप्रामाण्यक-मिति चेदुच्यते । मधुमांषयोः आद्धे दानाभावे दोषप्रतिपादकवचनं नैवास्ति । किन्तु फलार्थमेवोक्तम् । यत्यादिबाह्मण्कश्राद्धेऽपि यद्धफलप्राप्तिहका दति, तक्षोभेन मधुमांषयोरदानमेव ।

योगीयरेण,-

ब्राह्मणः काममन्त्रीयाच्छाद्धे ब्रतमणीड्यन् । इति मांसभोजनं यत्यादिनिषद्धसेव ।

पाने पतितमश्रीयानाधुमांमविवर्जितम् ।

यतिधर्मेषुक्रमित्यलं प्रपञ्चेन । नतु क्रतनित्यमां भवर्जनमञ्जल्पेन निमन्त्रितेन ग्रइस्केन मां भादिकं भच्चं न वेति चेत्, उच्चते । कच्छ्रचान्द्रायणादिकर्तुं रिव क्रतनित्यमां भवर्जनमञ्जल्पस्य निमन्त्रणा-नङ्गीकरणमेव श्रेयः । स्वीकारानन्तरमपक्रमण एव दोवस्य निर्णी- तलात्। यदि कतिनत्यमां सवर्जनसङ्क्षेन ग्रह्हे नापि भान्यादिना निमन्त्रणं स्वीकतं। तदा यतिबाद्याणकश्राद्धवत् मां सर्हितं श्राद्धं यजमानेन कार्यम्।

नन् यतेः प्रायश्चित्ताधिकाराभावात् तद्बाद्वाणकत्राद्धे फला-धिक्याच तथा निणीतं। कतिनत्यमां पवर्जनेन ग्रद्धने तु भचणस्य क्रत्वर्थतात् भचणनिरुत्तिनियमस्य पुरुषार्थतात् प्राय्येत वा यज्ञार्थ-लात् इति न्यायेन भचयिता पद्मात् प्रायश्चित्तं कार्यम्, यथा सन्ने दीचितानामेव इत्तिजां पृष्ठ्यषड्ह्ममाशौ संस्थिते पृष्ठ्यषड्हे मध्यात्रयेत् इति कर्माङ्गं मधु श्रिशता पद्मात् प्रायश्चित्तं तददिति चेत् न।

भचयेत् प्राचितं मांसं मक्तद्त्राह्मणकाम्यया ।
देवे नियुक्तः आद्धे वा नियमे तु विवर्जयेत् ॥
दित यमोक्तेर्वर्जनीयमेव मांसम् । वर्जनदोषस्य लनियमपरलात् मधुमांसयोः फलसम्बद्धेन विदितलात् ।

इविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वसारम्।

दति योगियाज्ञविक्योतेः कांस्थभोजिन्यायेन मांसर्हितश्रा-द्वस्थायङ्गीकरणात्। ग्रास्त्रामिश्रास्त्रास्त्रास्त्रास्त्रं तु मांसं देय-मिति केचिददन्ति। युक्तिं चाजः। सास्त्रामिश्रास्त्रस्य भन्नण-प्रमङ्गाभावात् विष्णवे मत्स्या न देया दति वाक्याभावाच दति, तदसाभ्यं न रोचते भन्नणाभावादिति यदुक्तं स हेतुः पूजायामिष वक्तस्यः स्वात्। तथापि तैर्यदुक्तं ग्रिस्ताचकस्याहवनीयवत् प्रति-पत्तिस्थानीयलं न देवलमिति तदिष न मारम्, श्राद्भस्य याग- लसुक्का ब्राह्मणास्ताहतनीयस्थानीया दति तैरेवोक्तम् । तथा च सति यतिब्रह्मचारिब्राह्मण्कत्रग्रद्धे तयोरिप प्रतिपत्तिस्थानलेन सन्यासिलाद्यभावात् मांमदानं प्रसक्तं, किसिति तैनांक्वीकृतम् । किस त्रसान्यते त्राह्मस्य नैत यागरूपलिस्युक्तं । वाक्याभावादिति यो हेतुर्दत्तः सोऽपि नादरणीयः ।

> ब्रह्मविष्णुजिवानाञ्च कस्त्रौ मांसेन चार्चनम् । राज्ञः त्रियं कुसं इन्ति तस्नात् तत्परिवर्जयेत् ॥

एवं यत्यादिबाद्धाणस्याद्ध द्व गासग्रामग्रिसाचकवाद्धाणक-याद्धे गयाधिकपसोक्तर्मांसाभावे दोषानुकेश्च प्रसम्बद्धविहितमां-सदानमनुचितं दत्यसाकं सिद्धान्तः । कर्त्तुः पवेमांसाग्रनादिकं प्रतिपत्तिकमांवसरेण<sup>(१)</sup> सेखं॥ ॥

श्रय श्राद्धोच्छिष्टदानविचारः।

त्रापसम्बः,— न चातहुकायोक्किष्टं द्युः। त्रतहुकाय त्राहु-भोकृगुणरिहताय।

मनुः, स्राद्धं क्षता य उच्छिष्टं रुषकाय प्रयच्छति ।

म मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्षिराः ॥

श्राद्धभोजी खमुच्छिष्टं रुषकाय ददादि चेत् ।

म मूढोऽनिष्कृतिः प्राच्च प्रायश्चित्तेन ग्रुध्यति ॥

प्रायश्चित्तं विना तस्य निष्कृतिनांक्तीति प्राच्च रत्यर्थः ।

ब्रह्माण्डे, स्तीग्रह्रायानुपेताय आद्भोच्छिष्टं न दापयेत् ।

यो दद्याद्रागममोहान तद्गच्हति वै पितृ ॥

<sup>(</sup>१) •क्रमविसरे।

तसानदेयमुच्छिष्टमन्नादं<sup>(१)</sup> त्राद्धकर्मणि । त्रत्यच द्धिसर्पिभी शिखाय च सुताय च ॥

श्रन्यच द्धिसर्पिर्धामिति द्धिमर्पिर्यतिरिक्तं उच्छिष्टं न कसौचिद्पि दातन्यम्। द्धिमर्पिषोस्तु शिष्यपुचयोरपि श्राद्धभोकृ-गुणोपेतयोरभ्यनुज्ञां द्ति कन्यतक्काराः॥०॥

ऋषं जपविधि:।

कात्यायनः,-

"त्रश्रंस<sup>(२)</sup> जपेत् याइतिपूर्विकां गायत्रीं सप्तणवां समातिर्वा। रचोन्नान् पित्यमन्त्रान् पुरुषसूक्तमन्यानि च पविचाणि च"। रचोन्नाः क्रणुष्यपाद दत्याद्या रूचः, पित्यमन्त्रा उदीरितामवर-द्याद्यः, पविचाणि गतरुद्दीयादीनि ।

बोधायनः,---

रचोन्नानि च मामानि खधावन्ति यजूंषि च । मध्योचेत्य<sup>(२)</sup>पविचाणि श्राह्मकाले पठेक्कनैः ॥

मनुः,—खाध्यायं श्रावयेतिपत्ये धर्मगास्त्राणि चैव हि । श्राख्यानानीतिहायां युराणानि खिलानि च ॥

खिलानि इरिवंशादीनि।

मात्ये, - ब्रह्मविष्यवर्षस्ट्राणां सोत्राणि विविधानि च।
दन्द्रेशमोमस्कानि पावनानि खशकितः॥
वह्रयन्तरे तद्यक्त्येष्टमामस्रौवरः।

<sup>(</sup>१) खद्राद्यं। , (२) खद्रास्मुजपेत्। (३) सध्यर्षाधा

तयैव ग्रान्तिकाधाय मधुन्नाद्मणमेव च ॥ मण्डलनाद्मणं तदत् प्रीतिकारि च यंत्पुनः। विप्राणामात्मनस्वैव तत्मवे मसुदीरयेत्॥

नाह्ये,—

वीणावेणुध्वनिं वाच विप्रेभ्यस्त निवेदयेत् ॥०॥
त्रच पिण्डविधिः ।

त्राह्मे,— तच दिचिणपूर्वस्यां कार्या वेदिस्तथा दिणि । स्त्रिमाचा (१) श्राद्धभूमिश्चतुरङ्गुलमुच्छिता ॥

तथा,—

मध्याज्यस्वालिमंयुक्तं सर्वयंजनसंयुतम् । उणामादाय पिण्डन्तु कला विन्तपत्तोपमम् । दद्यात्पितामहादिभ्यो दर्भमूलाद्ययाक्रमम् ।

तथा,-

दद्यात् क्रमेण वामां सि श्वेतवस्त्रभवा द्रगाः।

गते वयि छद्धानि स्त्रानि स्त्रों मान्यथापि वा ॥
स्त्रीमं सूषं नवं दद्यात् चीणं (१) कार्पाममेव च.।
क्रयणानि नीसरकाक्रको ग्रेयानि विवर्क्येत्॥

वायवीये,-

पत्रोर्णपट्टस्त्रञ्च कौ ग्रेयञ्च विवर्ज्ञयेत् । . वर्ज्जयेच द्रगां प्राज्ञो यदापाहतजा<sup>(१)</sup> भवेत्॥

<sup>(</sup>१) इक्तमात्रार्द्धभूमिख। (२) घार्य। (३) यदायहतना।

श्वन द्यावर्ञ्जनं श्वेतवस्तद्यास्यतिरिक्तविषयम् । "श्वेतवस्त्रभवा" इति—देयलेन ब्राह्मोकोः ।

पित्रादिखरूपश्च मंतुः,-

वस्न् वदिनां च पितृन् बद्रांसैव पितामसान्।
प्रिपतामसान् तथादित्यान् श्रुतिरेवा सनातनी॥
थाजवस्काः,—

वसुरुद्रादितिस्ताः पितरः त्राङ्कदेवताः । त्रीषयन्ति मनुष्याणां पितृन् त्राङ्केन तर्पिताः ॥

द्यादिवाक्येभ्यो यद्यपि श्राद्धे वखादीनां देवतालं प्रतीयते । तथापि "श्रमुक्तमगोत्र एतत्तुभ्यमंद्ध" दंखादिवाक्येभ्यः पित्रे पिता-महाय प्रपितामहाय द्यादि श्रुतेश्च गोत्रनामसबन्धवित्रयकीर्त्तनेन खजनकादीनां चतुर्थ्यन्तेन श्रवणात् देवतालमिति श्रतएव वखादि-रूपेण थेयाः। "य एवं विद्वान् पितृन् यजते" द्रित पैठीनस्कृतेः।

मनुविष्णू,-

त्रमंक्षतप्रमीतानां त्यागिनां कुसयोविताम् । उच्छिष्टं भागधेयं सार्ह्मेषु विकिर्य यः ॥ उच्छेषणं भूमिगतमजिद्धास्त्राप्रदश्च च । दासवर्गस्य तत्पित्ये भागधेयं प्रचचते ॥

पित्ये पिटकर्मणि। कुलयोषितां त्यागिनामकरणेऽपि कुलस्वीत्यागवतां। (१)पनस्यमनं श्रमंक्वतप्रमीतानां। भ्रगतमुच्छिष्टं दासवर्गस्य।

<sup>(</sup>१) पात्रस्थमनं।

## शरीतः,-

त्रायुर्दः प्रथमः पिछो दितीयः पुत्रदः सृतः । ऋद्विप्रद्सृतीयो वै तस्नामाध्यममाप्रयेत् ॥ या पत्नी पुत्रकामा स्थात् मध्यमं पिछमत्रीयात् । प्राजापत्थेन विधिना स तस्नात् पुत्रदः स्थतः ॥ "प्राजापत्थोविधिरपां लोषधीनां रसं प्राक्षायनीभृतं गभें धत्स्व" दित मध्यमं पिछं पत्न्ये प्रयक्कति ।

श्राधत्त पितरो गर्भे कुमारं पुष्करस्रत्रम् । यथेर पुरुषोऽपदिति तं पत्नी प्राश्नाति इति श्रापस्तम्बोत्तेः । मतः एवं निर्वपणं कता पिष्डांस्तास्त्रंदनन्तरम् ।

गां विप्रमजमिश्नं वा प्राध्ययेद्धुः वाः चिपेत् ॥ :
पिण्डनिर्वपणं केचित् पुरस्तादेव कुर्वते । : : : : : वयोभिः खादयन्येतान् प्रचिपन्यनिष्ठेऽपु वा ॥ ः

पतित्रता धर्मपत्नी पित्रपूजनतत्परा।

मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात् सम्यक्सुतार्थिनौ ॥

श्रायुश्चनं सतं विद्यात् यशोविद्यासमन्तितम् ।

धनवनां प्रजावनां धार्मिकं सालिकं तथा ॥

प्रचिपन्तीत्यादि पूर्वाक्षजनानिनयोरनुवादः पनिष्यादिविधानार्थः। रहस्यतिः,—

श्रन्थदेशगता पत्नी गर्भिणीः रोगिणी तथा। तथा तं जीर्णहदभम्दागो वा भोकुमईति॥ तं मध्यमं पिण्डं। वायवीये,-प्रार्थयन् दीर्घमायुष वायसेम्यः प्रयक्कति । दत्युक्ततात् मनुक्रपचिपदं वायसरम् । दिचणा ब्राह्मे,-

सुवर्णह्णपाचाणिः मनोज्ञानि ग्रुभानि च ।
इस्ययर्थयानानि सम्द्वानि ग्रहाणि च ॥
उपानद्पादुकाक् चर्चामराण्यिजनानि च ।
यज्ञेषु दिचणां पूष्णामिति सिंचन्त्रयन् चिद् ॥
दिर्द्रोऽपि यथामिति द्वादिपेषु देविणाम् ।

° रुइस्रतिः,—

हतमश्री वियं ग्राहुं हता यज्ञास्तद विणाः ।

तसात्पणं का किनी वा फलं पुष्पमणि वा ॥

प्रद्यात् दिविणां यज्ञे तया समफलो भवेत् ॥

ननु, यित बाद्याणकश्राह्रे कणं दिविणादानं,

वेवं गावो हिर्ण्यस्च प्रतेषंख प्रतिग्रहः ।

तादृगं कल्मषं दृद्या प्रेतागौषं समाचरेत् ॥

इति यतेः प्रतिग्रहाधिकाराभावात् इति चेत् मत्यं ।

श्राद्धदिचणायां स्वणें रजतं वा न नियम्यते। तसात् पालादिदानस्य श्रमाद्गुष्यसमादकलात् हरीतकादिपालमात्रस्य श्राद्रं कमूलस्य कौपीनयोग्यवस्तस्य वा दाने प्रतिग्रहे च न किस्तृ विरोधः। "श्रघोराः पितरो नः सन्तु, दातारो नो हि वद्धेतां," द्याग्रीवांदास्तु नियमेन श्राद्धाङ्गलेन श्रामन्त्रणस्त्रीकारविधिनैव तेयां स्तीकता दति। श्राग्रीवांदाकरणस्य पुरुषार्थलेन दुर्वस्तात्

श्राभीवांदस्य कलर्थलेन वलवन्तात् नियुक्तेर्थतिभिरपि नियमेना-भीवांदाः कार्य्या एव । इति साम्प्रदायिकाः । इति ॥ श्रथ श्राद्धोत्तरकर्मा ।

देवनः, निव्ने विव्नेधे त दीपं प्रकाद पाणिना।
श्राचम्य इस्तौ प्रचान्य ज्ञातीन् ग्रेपेण भोजयेत्॥
ततो ज्ञातिषु व्रिषु स्वान् स्त्यान् प्रतिपूजयेत्।
एकोहिष्टे त ग्रेषं तत् ब्राह्मणेश्यः समुत्रुवेत्॥
ततः स्वयं तहुन्नीत पुनर्भोजनवर्जनम्॥

प्रच्हाद्य, निर्वाय ।

यमः,— ज्ञातिभ्यः सलतं दला बान्धवानिष भोजयेत्। यस्मतिः,—

> एवं देवान् पितृन् तांचाः तपैशिकाः विधानतः । पुचमत्यादिष्टितो ग्रह्मां भोतुमहिति ॥ श्रोचिया भोजनीयाः स्यु नव मप्तः चयोद्गः । श्रातयो बान्धवा निःस्वास्त्रयैवातिषयः परे ॥ प्रद्यात् दिच्णां तेषां सर्वेषामनुह्रपतः ।

श्रातातपः, जोषमश्रमनुज्ञातं सुद्धीत तद्नन्तरम् । दृष्टैः साङ्कें तु विधिवत् वृद्धिमान् सुसमाहितः ॥

श्रापस्तम्बः,—

"सर्वतः समुपादाय ग्रामावराईं प्राश्नीयात् यथोकं"। ग्रामा-वराईं ग्रमादन्यूनं। यथोकं ग्रम्भोकं। चतुर्यादिनवश्राद्धादिषु न ग्रोपभोजनम्। न च श्राद्धेषु यच्छिष्ठं ग्रन्डे पर्युषितम्ब यत्॥ दम्मत्योर्भुकाग्रिष्टम्ब न भुद्भीत कदाचन॥

इति विद्यानेयरोङ्ग्तोकः।

विज्ञिष्ठः, स्वाद्धे नोदाषनीयानि उष्किष्टान्यादिनचयात् । श्वोतनो वै स्वधाधारासाः पिवन्यस्तोदकाः ॥ उष्किष्टं न प्रमञ्ज्ञाद्धि यावन्यस्तिमेतो रविः । चौरधारास्तो यान्यचयाः मञ्चरभागिनः ॥

थोतन्ते चरन्ति । नोदायनीयानि भूमिष्ठोच्छिष्टानि द्रव्यर्थः । "यश्चरभागिनोऽन्यसेदत्तमसं यश्चरति यत् तत् यश्चरः, तत् ये भुञ्जते दासादयः" दति कष्णतस्काराः ।

ब्राह्मे, असं याते ततः सूर्ये विप्रः (१) पाचाणि चामसि । निचिपेत् प्रयतो भूला सर्वाद्यक्षेमुखान्यपि ॥ दितीयेऽइनि सर्वेषां भाष्डानां चालनं तथा । अनना जायते दृप्तिः पितृषां येन सर्वदा ॥ अय यजमानस्य ब्राह्मणानां च नियमाः ।

मनुदेवलष्टहस्यतयः,—

तां निशां ब्रह्मचारी स्थात्त्राद्धभान्ना तथैव च।

<sup>(</sup>१) विप्रं।

श्रन्थथा वर्त्तमानी तौ खातां नरकगामिनौ॥ तथा,—

तसात् प्रदाता भोका च त्राह्ने नियमितो भवेत्। त्रर्चकद्याचितद्योभौ भवेतां नाकगामिनौ॥ विशिष्टस्ट्रगातातपौ,—

श्राद्धं दता च भुक्षा च मैयुनं यः प्रयच्छित ।
भवन्ति पितरस्तस्य तं मासं रेतसो भुजः ॥
यस्ततो जायते गर्भी दता भुक्षा च पैद्यकम् ।
न च विद्यामवाप्नोति चीषायुर्येव जायते ॥
मास्ये.—

पुनभेजिनमध्यानं द्यूतमायासमैयुनम् । श्राद्धकत् श्राद्धभोत्रीव सर्वमेतत् विवर्ष्णयेत् ॥ खाध्यायं कत्तरस्थीव दिवाखप्रश्च सर्वदा ।

श्रध्वगमनमाक्रोग्रोपरि न कार्य्यम् । "श्रध्वगमनमाक्रोग्रपूर्णं" इति द्वारीतोक्तेः । ऋतुकासप्राप्तमपि मेथुनं न कार्य्यम् । "ऋतु-स्नातामदोरात्रं परिदरेत्" इति ग्रङ्कास्त्रिक्षितोक्तेः ।

निगमः,— "न कुधेयात्" इति ॥ ० ॥

श्राद्धकर्त्तुः परग्टइभोजनादिनिषेधः ।

दन्तधावनताम्नूषं चौराम्यक्रमभोजनम् ।

रत्यौषधपराष्ट्रश्र श्राद्धकर्त्ता विवर्क्षयेत् ॥

श्राद्धं कता परश्राद्धे भुद्धते ये च विक्रचाः ।

पतन्ति पितर्स्तेषां कृप्तपिष्डोदकिषयाः ॥

नतु "मर्वतः ममुपादाय" रित श्राद्धश्रेषपकद्रयमात्रस्य कर्तृ-भोजनं प्रतिपत्तिलेनोकम् ।

प्रदिचणमनुष्रच्य भुज्जीत पित्रसंवितम् ।

दित या प्रवस्त्वेनायुक्तं । तंत्र श्राङ्क्रगेषस्य काकादिस्पर्गे ग्रेष-भचणं कार्यं न वेति चेत्? उच्यते । "पुरोष्ठाभक्तवर्थकपालेन तुष्टानुपिवति" दतिवत् परप्रयुक्तद्रयोपजीविलेन श्रप्रयोजकलात् दितीयानिर्देशेन प्रतिपत्तिलाचं काकादिस्पृष्टभेषस्य भचणकोप एव। तदेंगुष्यसमाधानार्थं विष्णुस्तरणमेव कार्यम् ।

नत् श्रमावासादिपर्वस मिमोजनस निषिद्धतात् सर्वशिष-भचणस प्रतिपत्तिलेनावस्थकलात् कर्त्ता भच्छं वा न वेति? सन्देश-प्रतिपत्तिकर्मापेचया "श्रथंकर्मणोवस्ववत्त्वमिति" वसावलाधिकरणे निर्णयात् । श्राद्धश्रेषमांमभचणस्य प्रतिपत्तिकर्मलेन दुर्वस्रलात् सर्वमांमभचणनिषेधस्य श्रथंकर्मलेन वस्रवत्त्वमिति श्रेषमांमभचणं न कार्ये, इति प्राप्ते ब्रूमः,—

पर्वनिषेधस्य पुरुषार्थनात् श्रेषभचणविधेस्य क्रन्तर्थनात् पुरुषार्थकन्नर्थयोः क्रन्तर्थस्य वस्त्वन्तात् त्राद्धश्रेषमांसं साग्निकै निरिग्निकैस्य
भचणीयमेव। "मा सिस्तात् सर्वाणि भूतानि" दत्यादिनिषेधस्य
"श्रीप्रधोमीयं पग्रमास्रभेत" दत्यादिना विस्तितर्तवषयनेन
निर्णयवत् "(१)केवलपिण्डदाना मांसं न भचणीयं" मांसदानाभावात्, दति सम्बदायविदः।

<sup>(</sup>१) "नेवलिपछदानविधच्चे तु मांसं न भद्मशौयं"।

नत् तर्षि महालयपचत्राद्वादौ सर्वत्राद्वपूर्वदिनेषु "निरामिषं-महद्भुद्धा" दत्युक्तस्य निरामिषभोजनस्य त्राद्वाकृणेषमांसभचणस्य च कयं स्वस्थिति चेत्? उच्यते ।

> उपयुक्तस्य संस्कारादुपयोक्तयसंस्क्रिया । गरीयसी प्रशान्तिस्त्र(१) तेन दृष्टं प्रयोजन्म् ॥

दित मैचावद्णद्णाधिकरणन्यायेन निरामिषभोजनमेव कार्यं, विदित्तिरामिषभोजनात् कर्नृषंस्कारात् (१) वा अपयोद्ध्यमाणसंस्कारात् श्राद्व्ययभचणस्य अपयुक्तसंस्कारतेन दुर्वस्रतात् । इतनित्यमांसवर्ञ्यनसङ्ख्येन कर्चा प्रेषमांसं भद्धं न वेति चेत्? अद्यते ।
श्राद्धे मांसदानं काम्यमेवेति इतमांसवर्ञनसङ्ख्येन मांसं न देयम् ।
यदि श्रान्यादिना श्राद्धे मांसं दत्तं स्वात् तदा (१) "पुष्पार्यसमासत्तेः काम्यं नित्यस्य वाधकं" दति न्यायेन कल्यंमवाधेन गोद्रोहप्रवेप्रवत् सङ्ख्यस्य बस्तवन्ताच मांसं वर्ष्यम् । किञ्च श्राद्धप्रेषमांसं
भचयेत् दत्याद्यविधिर्ण नास्ति ।

नतु "सर्वतः समुपादाय" इति सर्वपदस्य का गतिरिति चेत्? उच्यते । सर्वपदस्य सर्वनामलेन विग्रेषक्षेण उपस्थापकलेऽपि मांसस्य काम्यलेन नियतवृद्धाक्ढलाभावात् मांसातिरिक्तइविः-प्राप्तने प्रतिपत्तिसकावात् ।

"जातिप्रायं प्रकृत्यवेत्" इति सनूत्र्या मांयस्य जातिभोजनादौ

<sup>(</sup>१) प्रशास्त्रय। (१) कर्त्तृ संस्काराधीत्। (३) प्रथार्थे समाधते।

प्रतिमत्तर्यथाकयश्चिमिर्वाहात् इतमां सवर्जनसङ्क्येन मां सं वर्ष्णमेव। स्रत एवं विज्ञाने सरे:,— "यजमानस्य मांसे तु यथाक्षि" द्रति यदुकं, तेनैव ज्ञायते इतवर्जनसङ्क्येन त्यास्यं त्रन्येन भच्छमिति।

एकाद्युपवासादौ तु "उपवासो यदेति" एकाद्यीप्रकरण सिखितवचनादाऽर्जनग्रेषवदान्नाणमाचप्रतिपत्ति ॥ ०॥
प्रश्न श्रव श्राद्धादौ (१) गोचनामपदाद्युचारणविचारः ।
प्रारस्करभ्रेतसी,—

गोत्रसम्भनामानि यथावत् प्रतिपाद्येत्॥ विष्णुः,— "नामगोत्राभ्यासुदङ्सुखेषु" इति । ब्राह्मे,— प्रद्विणञ्च निर्म्ब्यात् गोवनामानुमन्तितम् । क्रन्दोगपरिशिष्टे,—

गोजनामिभरामन्त्र पितृनधे प्रदापयेत्।
ग्रङ्कालिखितौ, — सयेन पाणिना दिचणं पाणिसुपसमाधाय एकैकं
चिभिरामन्त्र धमावेतत् इति । चिभिः गोचसन्त्रभनामभिरिति।
एवमन्यान्यपि बह्ननि वाक्यानि सन्तीति। श्रादौ नामप्रयोगो यदा
गोजप्रयोग इति सन्देहे,

<sup>(</sup>१) श्राद्धादिष् ।

<sup>(</sup>२) उन्नसंकल्पे।

<sup>(</sup>३) वष्टवस्त ।

विशेषे बुद्धिरिति न्यायेन विशेषणस्य पूर्वपाठिसद्धेः गात्रस्थादौ प्रयोग एवेति, समाचारसेवमेव बह्ननां।

विन्तु,

सम्बोध्य नामगोत्राभ्यां प्रेतक्रत्यं दशाहिकम्। शेषं समापयेत् सर्वं गोत्रसम्बन्धपूर्वकम्॥

द्ति सृतेः, प्रेतक्कत्ये पश्चात् गोत्रप्रयोगः। सर्वेषां द्रगाहिकमिति पिपछीकरणान्तियोपस्चणम्। श्रत्र "सन्तर्तिर्गात्रजननकुसानि" द्रित पर्य्यायपाठात् सा च विग्रेषर्हितेति विग्रेषसाभाय
तदादिभृतपुरुषेण कुणिकादिना स्थिणाविस्त्रभो गोत्रग्रब्दार्थः।
यद्ययनादिसंस्कारे स्ट्याद्यभावपचे श्रनादिपुरुषसभावः। तथापि
कौणिकस्य ये पिनाद्यः पूर्वे, ये च तत्पुत्राद्योऽवीञ्चः ते सर्वे
कौणिकस्य ये पिनाद्यः पूर्वे, ये च तत्पुत्राद्योऽवीञ्चः ते सर्वे
कौणिकस्य गोत्रान्तरेभ्यो व्याद्यनाः कौणिकोपस्रितपुत्रपौत्रप्रस्थातिन गोत्रान्तरेभ्यो व्याद्यनाः कौणिकोपस्रितपुत्रपौत्रपरस्थातिन गोत्रग्रब्दाभिधेयाः। एवं च गोत्रग्रब्दस्य परम्बराह्यपधर्म्भवाचितात् (१) तद्वर्मविणिष्टयिक्तसाभाय सगोत्र दति। तेनावस्थेदकपुत्रपस्रमानपुत्रपौत्रपर्याक दत्येव विग्रेषणविग्रेष्यभावात्
कौणिकसगोत्र दत्यादिनिर्देशो भवति।

ं श्रत एव सृतिः,—

सगोत्रां मात्र्योते नेक्क्न्युदाइकर्षणि।"
"त्रमगोत्रा च या पितः" इत्योदि।
महाभारते,— पराग्ररमगोत्रस्य दृद्धस्य समहात्मनः।
दत्यादिनिर्देगः।

<sup>(</sup>१) परास्परारूपधर्मविप्रिष्टचित्रानामाय।

त्रसु, च प्रसुकासुकगोवितत्तुभ्यमञ् स्वधा नमः ।

द्यादि बद्यावयनं, "वैद्याप्तपद्यगोषाय" द्यादि वयनद्य कथं सङ्गच्छत दति चेत्, उच्यते । तत्र धर्मवाचिगोषपदस्य स्वकौ सच्चा । वदा मध्यपदलोपिसमासेन सकारस्य परित्यागः । तथा दति देशान्तरीयसकाररहितप्रयोगोऽपि कथश्चित् सङ्गच्छते ।

गोभिस:,-

गोवं सरानां सर्वेष गोवशास्यकर्मणि।

गोवस्त तर्पणे प्रोक्तः कर्णा वैवं म सुणाति ॥

पित्रचय्यकाले तु श्रवयां दिप्तिमण्डता ॥

प्रमंश्रवीदिके कार्यं प्रमा तर्पणकर्मणि।

प्रमंश्रवीदिके कार्यं प्रमा तर्पणकर्मणि।

प्रमंश्रवीदिके कार्यं प्रमा तर्पणकर्मणि।

प्रमंश्रवीदिके कार्यं प्रमा तर्पणकर्मणि।

प्रमंश्रीऽचयकास्तेऽिप पिद्धणां दत्तमचयम् ॥

तत्र ब्राह्मणादिचतुर्वर्णानां प्रमान्तवादिविचारः।

यमः: - प्रमी देवस विप्रस वर्षा राजा प भूसतः । ग्रप्तो दत्तस वैद्यास दासः श्रद्रस कार्येत्॥

तथा च ब्राह्मणस्यः नामान्ते धर्मपद्प्रयोगो देवपद्प्रयोगो वा इति विकस्यः। एवं चनियस्य वर्षा राजेति । वैद्यस्य ग्रुप्तो दन्त-इति । शुद्रस्य दास इत्येव । नाच विकस्यः,

> धर्मानां ब्राह्मण्योकं वर्मानां चित्रयस वै । वैयास ग्रप्तसंयुकं दासानां श्रुद्रजनानः ॥

रित वाक्यान्तरादिति केचित्। वस्ततस्त ब्राह्मणानां पुरुषनाषः प्रसानालं, स्तीनाको देयनालं। एवं चित्रयवैद्यायोर्पि स्ववस्थितो- विकत्यः । तथा च बाह्मणस्य अभुकग्रमां अभुका देवीति प्रयोगः । चित्रस्य अभुकामां अभुकराज्ञीति प्रयोगः । वेद्यस्य अभुकाम्प्रो-ऽभुका दत्तीति प्रयोगः । शृद्रस्य तु अभुको दाघोऽभुका दांघीति स्वत्रस्थेति वदामः ।

यत्तु असुकदासममां इति ब्राह्मणैरिप प्रयुक्यते, तच दास-इति दानपाचलस्रिका कौकिक्येव संज्ञा, न मास्तीया। "दासो-स्रत्ये दानपाचे" इत्यादिविश्वप्रकामादिकोषात्। एवं कर्रय-धरादिसंज्ञाः कुलविभेषेषु जीयाः। एवं च देवममां इति यत् कुलविभेषे प्रयुक्यते। तच देवपदस्य देवतुस्थलप्रतिपादकलेन सौकिकसंज्ञालमिति न कश्चिदिरोधः।

इति तिथिनिर्णयः ।

त्रय नचनाणां तनं कर्त्तयंविग्रेषाणां च निर्णयः । समूर्णतिथिवत् समूर्णनचने न सन्देशः । खण्डनचने तु विष्णुधर्मीत्तरे,—

खपोषितव्यं नचनं यसिम्बस्तिमतो(१) रवि:।

युक्यते यच वा राम निशीय शिशना मह ॥ रति

श्रासमययोगो निशीययोगस रत्युभयसुकः । तन श्रासमय-योगोसुख्यः कस्यः । निशीययोगोऽनुकस्यः । तन्त्रोभयन योगोऽति-प्रश्रासः । यदा तु पूर्वेषुः केवस्तिशीययोगः, परेषुः केवसासमय-योगः, तदा परेषुरेवोपवासः । श्रासमययोगस्य सुख्यतात् प्रातः-

<sup>ें (</sup>१) ज्ञस्तमियाद्रविः।

सेक्क्यंकाले नचनमत्ताच । यदा दिनद्देश्यसमययोगाभावः, पूर्वेद्युः नेवलनिजीययोगः, तदा पूर्वेद्युरपनामः । निजीययोगस्य त्रनुकत्त्वलेगापि ग्राह्यलात् ।

यवार्द्धराचादवांक् तु नचचं प्राप्यते तिथौ।
तम्चचन्नतं कुर्यादतीते पारणं भवेत्॥
इति स्रतेः, नतमच उपवासः। इति नचचेपरासनिर्णयः॥०॥
प्रयं नचचेकभक्तनक्तिवचारः।

नाच तिथिवनाधाक्रप्रदोषयाप्तियंवस्या, किन्तु पूर्वाक्रोपवास-

तथां च स्कान्दे,—

तनेवोपवसेदृचे यनिश्रीषाद्धोःभवेत् । उपवासे यदृचं स्थान्तद्धि नन्नेकभक्तयोः ॥ इति नचनेकभक्तनिर्णयः ॥०॥

श्रय तच वतनिर्णय:।

त्रतादौ त्रद्ययाष्ट्रीव यवस्या। तथा च तिष्णुधर्मोत्तरे,—

> सा तिथिसच नचपं यसामभ्यदितो रिवः। तया कर्माणि सुर्वीत च्चासटङ्की न कारणम्॥

श्वव यद्यपि सूर्योद्यंकाल एव प्रतीयते, न तु परिमाण-विश्रेषः, तथापि तिथिवत् चिमुह्नर्त्त्याप्तिरचापि ग्राह्मा । तस्याः सर्वमाधार्योन प्रदत्तलात् ।

नतु, तर्हि नचनैकभक्तनकोपवासेव्यपि स न्यायो ग्राह्म इति

चेत्<sup>(१)</sup>। तेषु कास्तविभेषस्य प्रातिस्तिकतेनोक्षः । यदोभयदिने नचनस्रोदये निमुह्नक्तंयाप्तिः, तदा वतदानयोः पूर्वदिनेऽनुष्ठानम् । मर्वकर्मकास्त्रयाप्तिः । स्वनचनपूजायाः वतान्तर्गततात् वतदद्वावस्या ।

या तु कालमाधवीये उपाकमंविषये,-

श्रवणं त्र्त्तरं याद्यं उपाकरणकर्भणि। इति कारिका। सा बङ्ग्चविषयैवेति पूर्वसेव निर्णितम्।

तच विचारान्तरं। कर्म दिविधं। श्रहोरावसाधं दिनसाधं चिति। तचोपवासोऽहोरावसाध दित न तचानुपपितः। एक-भक्तनक्रयोरिप श्रन्धकालनिष्पाद्यभोजनहृपलेऽपि तिसाबहोरावे भोजनान्तरपरित्यागमहितभोजनस्य एकभकादिहृपलात् श्रहोराव-साध्यतमुपपन्नं। दानवतश्राद्धानां श्रह्नेव कार्यंताहिनमाध्यतं। तच नचने कथमहोरावसाध्यतं, कथं वा दिनसाध्यतं दिति चेतृ? उच्यते। तम्रावणं पारिभाषिकं। तथा च मार्कण्डेयः,—

तस्रचनमहोरानं यसिस्ससितो रविः। यसिस्देति मविता तस्रचनं दिनं भवेत्॥

तथा च उपवासादी नाचनाहोराची याद्यः। ऋहोराचस्य नाचनलं सूर्यास्तमयकासे नचनयाया भवति। दिनस्य त नाचनलं सूर्योदययाय्रीति निर्णयः ॥०॥

नचने श्राद्धकालनिर्णयः।

बौधायंनः,-

मा तिथिमाच नचनं यसामभुदितो रविः।

<sup>(</sup>१) इति चेत्, न।

# ्रजीर्डुमां । स्थ पचस हानी लस्तमयं प्रति ॥ इति । तथा च तिथिवसचनत्राङ्कववस्ता ॥ • ॥

### श्रय योगनिष्यः।

विष्णुक्षादियोगानां उभयदिनयाप्तिले उपवासादिकं पूर्वेशुः । योगो यदा निशीयमात्रं याप्तुयात् तदा तदनापेश्वायां पारणस्था-सक्षवात्, रात्रौ च पारणस्थ निषिद्धलात्, "ततोऽइन्येव पारणं" रति पूर्वेशुरेवोपवासः । दाननतयोख उदयनिसुहर्त्तयाप्तिर्याद्या । श्राद्धे तु कर्मकाक्याप्तिर्योद्या ॥ ॥

## त्रय करणिणयः।

ववादिकरणानां तिष्यर्क्षपरिमितलेन दिनद्वययाप्तिमन्देशोऽपि नासि । तसादुद्येऽसमये वा यसिन् दिने करणमद्भावः तसिन्नेव दिने कर्मानुष्ठानं। यदा तु पूर्वेशुः मायंगन्धामार्भ्य परेशुः उदयात् प्रागेव करणं ममायते । तदा कथमिति चेत्? उचाते । करणेषु निर्णयस्थानुक्रलेऽपि भद्रान्यायो योज्यः ।

तथा च भद्राविषये भविष्योत्तरे,—

यिसन् दिने भवेद् भद्रा तिसामधिन भारत । उपवासस्य नियमं कुर्यास्त्रारी नरोऽपि वा ॥ यदि राचौ भवेदिष्टिरेकभक्तं दिनदये । कार्यं येनोपवासः स्थादिति पौराणिको विधिः ॥ प्रहरस्थोपरि यदा स्थादिष्टिः प्रहरदयम् । उपवासस्तदा कार्यमेकभक्तं ततोऽन्यथा ॥ भद्रेति विष्टेः मंज्ञान्तरं। उदयादारम्य धावद्रस्थायं ृष्टि-मत्तायां नास्युपवासे सन्देहः। यदा त प्रहरमानं विष्टिनंस्ति। तस्योपिर प्रहर्नयं विष्टिभेवति। तदा क्रत्सदिनव्यापिविष्टेरभावे ऽयेकदेणव्याप्तेः सद्भावात् तस्मिन्नेवदिने उपवासः। श्रन्ययेत्यनेन एकदेशव्याप्तरभावो विचितः। तस्मिन् पच्चे समनन्तरातीतव्याक्योक्तं कार्ये। यसु भद्रावतं सङ्गल्य श्रहोरात्रसुपोषितुं न श्रक्षुयात्। श्रमौ भद्रायुक्तघटिकासु न भुद्भीत।

तथा च भविखोत्तरे,-

प्रातः संपूज्य तानेव ब्राह्मणञ्च खग्नितः।
ततो भुज्जीत राजेन्द्र यावद्भद्रा न जायते॥
त्रियवान्तेऽपि भद्रायाः काम्यतोवाग्यतः ग्रुचिः।
न किञ्चित् भचयेत् प्राज्ञो यावज्ञद्रा प्रवर्त्तते॥ दति।

श्रक्तः चरमभागे यदा भद्राप्रवेगः। तदानी एकदेशभद्रा-योगिनोदिनस्य पूजाद्यनर्छतात् श्रग्रक्तस्य भद्राप्रवेगात् प्रागेव भोजने प्राप्ते सित श्रभुक्तेन पूजादेरनुष्ठेयत्वात् भद्रारहितेऽपि काले पूजा-दिकं न विरुध्यते। यदा तु भद्राया श्रन्ते भुङ्के। तदा कर्षः-कालव्यापिशास्त्रात् भद्रोपेतकाल एव पूजादिकं कर्षः काय्ये। पल-द्येऽपि यदि घटिकासु न किंचित् भच्येत्; तावत् भद्रोपवामः पूर्यत-दति यदि ववादिकरणेषु कस्यापि विशेषस्य शास्त्रेणानादृ-तत्वात् भद्रायां क्षृप्तस्य न्यायस्यातिक्रमे कारणाभावाद्यायं निर्णय-प्रकारः सर्वोऽपि योज्यः। एवं तियिनचत्रयोगकरणानां काल-निर्णयः कतः। र्विवारादीनां सप्तानां श्रहोराचपरिमितलनिर्खयेन सन्देहा-भावत्तद्व्यवस्था न कता । इति ।

त्रय र्विमङ्कान्तिकालनिर्णयः।

व्योतिः शास्त्रे,—

मेषो द्रषञ्च मियुनं कर्कटः सिंह देरितः । कन्या तुला दृश्चिकञ्च धनुर्मकरकुभको ॥ मीनश्चेति दादग्रैवं रविमंकान्तयो मताः। तच विग्रेषानारं वा,

श्रयने विषुवे दे च चतसः षडभीतयः।

चतस्रो विष्णुपद्यस्य संक्रान्यो दादम् स्रताः॥

स्रगकर्कटसंक्रान्तो दे त्रद्ग्द्चिणायने।
विषुवती तुन्नामेषौ<sup>(१)</sup> गोन्नमध्ये ततोऽपराः॥
धनुर्मिषुनकन्यास् मीने च पडभीतयः।

स्वस्यिककुभेषु सिंहे विष्णुपदी स्रता॥

तासां नैमित्तिकतात् स्नानदानादिकमवस्रं कार्यः।

तथा च भातातपः,—

संक्रान्तो यानि दत्तानि इत्यक्तव्यानि दाहिभिः।
तानि नित्यं ददात्यर्कः पुनर्जन्मिन जन्मिनि॥
रिविषंक्रमणे पुण्ये न स्नायात् यदि मानवः।
सप्तजन्मन्यसौ रोगी दुःखभागी च जायते॥

<sup>(</sup>१) तुल्यामेवे।

मंक्रान्तिकालसु देवीपुराणे,-

खखे नरे सखामीने यावत् खन्दति कोचनम्।
तस्य चिंग्रत्तमो भागसत्परः परिकीर्त्तितः॥
तत्पराष्क्रतभागम् चुटिरित्यभिधीयते।
चुटेः सहस्रभागो यः स कालो रविसंक्रमः॥
तत्र विग्रेषमाह देवलः,—

संक्रान्तिसमयः सूच्यो दुर्लचः पिणितेचणैः । तद्योगतोऽयधयोडीं चिंग्रनाद्यः पवित्रिताः॥

द्दं मंकान्तिपूर्वापरकाकीनषष्टिद्खात्मकतदुपस्विताहोराय-परि<sup>(१)</sup>मिततद्दिन एव उपवासक्तीसस्त्रीमांमचौरादिवर्ष्णनं च ।

स्नानदानयोस्त विग्रेषः, तत्र रहूविश्रष्ठः,—

त्रतीतानागते पुष्ये दे ह्रद्रग्द्चिणायने। चिंग्रत् कर्कटके नाड्यो मकरे विंग्रतिः स्राताः॥

वृहस्पितिदेवलभातातपाः,-

श्रयने विंग्रतिः पूर्वा मकरे विंग्रतिः परा । वर्त्तमाने तुलामेषे नाब्यस्त्रभयतो द्ग्र ॥ पुनर्देवलगातातपौ,—

षडगीत्यामतीतायां षष्टिरकान्त नाङ्किताः ।

पुष्पायां विष्णुपद्याञ्च गाक्पसादपि षोडग्र॥
वर्त्तमाने रवाविति भेषः। एतत् धर्वेच सम्बधते । तेन

<sup>(</sup>१) पर।

कर्कटके रवौ (१) वर्त्तमाने पूर्वा विंग्रतिर्नाब्यः पूष्या दत्यर्थः । उभय-चेति तुलामेषयोरित्यर्थः, न तु पार्श्वदये दति क्रत्यकौ सुदीकाराः । विग्रष्ठः,— त्रर्द्वराचादधस्तस्मिन् मधा इस्सोपरि क्रिया ।

उर्डे मंक्रमणे चोर्ड्डमुद्यात् प्रहरद्वयं ॥ तथा,— संपूर्णे चेदर्हुराचे रविषंक्रमणं भवेत् । प्राक्कर्दिनद्वयं पुष्यं मुक्का मकरकर्कटौ ॥

यसिन् दिने श्रर्द्धराचादधः संकान्तिः, तिह्न दत्यर्थः । दिन-दयं दिनार्द्धदयं पूर्वदिनस्य उत्तरार्द्धे परिष्ठनस्य पूर्वार्द्धिमत्यर्थः । श्रद्धराचादित्यादि पूर्ववाक्यात् ।

देवीपुराणे,-

त्रादौ पुष्णं विजानीयात् यदभिन्ना तिथिभवेत् । ऋर्द्वराचे व्यतौते तु विज्ञेयञ्चापरेऽहनि ॥

तथा च मंक्रान्तिकालीनितिथिर्यदा श्रभिक्वा पूर्वदिनगामिनी।
तर्षि श्रादौ पूर्वदिने पुष्धं विज्ञानीयात्। श्रर्थात् तिथिभेदे
उत्तरदिने पुष्धं विज्ञानीयात्। एवं मंपूर्णार्द्वराचे मंक्रमणे
तत्कालीनितिथिर्यदि पूर्वदिनगामिनी अभयदिनगामिनी वा,
उभयाथापि पूर्वदिनमध्याक्तादूर्द्धं पुष्धं विज्ञानीयात्। मंक्रान्तिकालीनितिथिर्यदि परदिनगामिनी, तर्ष्ट् परदिनार्द्धमेव पुष्धं।
श्रादौ पुष्पमिति वाक्यस्य दिनदययापितिथिकेऽपि प्रवृत्त्यविशेषात्।
श्रद्धराचे यतीते तु संक्रान्तौ यदि तिथिरेकैव, तदापरेऽश्वि पुष्धं
विज्ञानीयात् दत्यर्थः।

<sup>(</sup>१) चर्के।

## **बद्धगार्ग्धः**,—

ननु,-

यद्यस्तमनवेत्तायां मतरं याति भास्तरः ।
प्रदोषे वार्द्वराचे वा स्नानं दानं परेऽइनि ॥
प्रद्वराचे तदूर्द्धं वा संकान्तौ दित्तणायने ।
पूर्वमेव दिनं ग्राह्मं यावनाम्युदितो रविः ॥
भवियोत्तरेऽपि,—

मिथुनात्कर्तिमंक्तान्तिर्यदि स्थादंग्रुमा लिनः ।
प्रभाते वा निशीये वा कुर्याद्द्रनि पूर्वतः ॥
यद्यययमाचारः कन्यतक्कारैने लिखितः, तथापि मर्वदेशीयशिष्टपरिग्टहीतलात् श्रसादेशीयैः मर्वेर्यादृत एव ।

श्रक्ति संक्रमणे पुष्यमद्दः क्षच्चं प्रकीर्त्तितम् ।

दति वृद्धविशिष्ठेन सर्वस्थाक्तः पुष्यलसुक्तं । "श्रयने विंगतिः
पूर्वाः" दत्यादिषु कालविशेषाणां पुष्यलसुक्तं ।
देवलेन तुः—

या याः मित्रिहिता नाद्यः ताम्ताः पुष्यतमाः स्वताः।
दित मित्रिहितनाडीनां पुष्यतमुक्तं। तत्क्यमिदं मर्वे मङ्गक्रिते? दित चेदुच्यते। मित्रिहितनाडीनां पुष्यतमतं, व्यवहितनाडीनां पुष्यतरतं, क्रत्नस्थाकः पुष्यतमिति, वृद्धविष्ठवेदन्तवाक्ययोः पुष्यतमतस्य स्वष्टतात्। श्रर्थात् "श्रयने विंग्रतिः पूर्वाः"
दित तद्व्यवहितनाडीनां पुष्यतरतं मिद्धं। यथोक्तदादशमंकान्तीनां
यथोक्तपुष्यकालेषु मन्वादिनामिनः प्रत्येकं मप्तधा।

विशेषो देवीपुराणेऽनुसन्धेयः,—
श्रयने कोटिग्रणितं लचं विष्णुपदीफलम् ।

षडग्रीति महस्रन्तु षडग्रीत्यां स्ततं वृधेः ॥

विषुवे ग्रतमाहस्रमिति ।

श्राह्में,— नित्यं दयोर्यनयोनित्यं विषुवतोर्दयोः ।

षद्रार्कयोर्पहणयोर्व्यतिपातेषु पर्वसु ॥

श्रहोराचोषितं<sup>(१)</sup> स्नानं श्राद्धं दानं तथा जपम् ।

यः करोति प्रसन्नात्मा तस्र स्वाद्ययं फलम् ॥

दिति य उपवास एकः, स ग्रहस्थेतरेषां ।

त्रादित्येऽहिन संकान्यां ग्रहणे चन्द्रसूर्य्योः। उपवासो न कर्त्त्यो ग्रहिणा पुनिणा तथा॥ विश्रापुराणे,—

विशाखायां यदा सूर्यश्चरत्यं हतीयकम् ।
तदा चण्डं विजानीयात् कृत्तिकाशिरिष स्थितम् ॥
कृत्तिकायां यदा सूर्यः प्रथमां प्रश्च गच्छित ।
विशाखायां हतीयां प्रे तदा ज्ञेयो दिवाकरः ॥
तदैव विषुवाख्यायां (२) पुष्णकाला विधीयते ।
तदा दानानि देयानि विष्रेभः प्रयतात्मभिः ॥

तथा च सातिमीमांसायां,-

<sup>(</sup>१) बङ्गोरात्रोवितः।

<sup>(</sup>२) विष्वां भार्यं।

इति पारिभाषिकोऽन्यः पुष्यकातः। नतु सेवतुत्तापरनाम-कविषुवकाताः।

देवीपुराणे, — संकान्तिषु स्नानविशेषा लिखिताः। तादृगकाम्यकर्माणि तत्र तत्र दृष्टा कार्य्याणि। मेषसंकान्ती विशेषः, विष्णुधर्मोत्तरे, — मेषसंक्रमणे भानोर्मेषदानं महाफलं।

तचा,—

यथा तथा प्रपां दला नागलोंके महीयते ।

दत्यादी प्रपास्थान (१) तद्पलेपनर ज्जुवारिधानी कुमागरावदानपरिचारक जननियोजनेषु फलान्युकानि ।

भविखोत्तरे,-

प्रपां दातुमग्रको च विशेषाद्धर्ममाप्रुयात् (१) । प्रत्य इं धर्मघटकंः कर्पटीवेष्टिताननः ॥ श्राह्मणस्य ग्रहे देयः ग्रीतामकजनः ग्रुचिः । तस्यैवोद्यापनं कार्य्यं मापि मापि नरोत्तम ॥ मण्डलेरिष्टकाभिय पकान्तेः पर्वकामिकः । उद्दिश्य ग्रह्मरं विष्णुं ब्रह्माणं वामवं तथा । प्रक्षिणं शेचियता तु मन्त्रेणानेन मानवः ॥ एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्माविष्णुग्रिवात्मकः । श्रस्य प्रदानात्मकला सम सन्तु सनोर्थाः ॥

<sup>(</sup>१) प्रयास्तान।

<sup>(</sup>२) प्रमां दातु मश्रक्तें च विश्रेषाद्धम्मीमश्रुभिः।

<sup>(</sup>३) सतिलं।

तद्यक्षवे त्रश्वत्यत्रमूलसेचनं मासचतुष्टयपर्य्यन्तं तचेव लिखितं। नन्दीपुराणे,— केवलजलदानमणुक्तम्,

> योऽपि कश्चित्तृषार्त्ताय जनपानं प्रयच्छति। स नित्यव्हप्तो भवति खर्गे युगग्रतं नरः॥ इति।

समन्तः,—

विश्रेभाः पादुके<sup>(१)</sup> इन् पित्तभ्यो विषुवे पुमान् । सक्यूंख गर्करामित्रान् दद्यात् सजसकर्करीम् ॥ गरास्तापूर्य्य<sup>(१)</sup> पानीयं स्नानं दद्यात् प्रपासु च । मस्नीणनाय मासांस्तीन् मम स्नोके महीयते ॥

द्व्यादि। ग्रामनगरमार्गादिषु प्रपादाने कपिकाकोटिदानादि-फर्ल सिखितं। विकारभयात् न सिख्यते।

इति संक्रान्तिनिर्णयः।

पृथ्वीरजखलालकानः।

ग्रातानन्दमंग्रहे।

सगर्चेऽर्के निदाघस तन्त्रधेऽपि दिनत्रयम्। रजसना स्थात् प्रथिवी क्रषिकर्माविगर्हिता॥

निदाघस ग्रीमर्त्ताः मीरसैविति विज्ञये । सूर्ये म्हगर्चे म्हग-णिरोनचनगते द्वान्ते मिथुनादौ चेत्वर्थः । म्हगणिरोनचनस्य द्वय-मिथुनोभयराणिभोग्यतात् । तथा च द्वान्तदिनं मिथुनमंकान्ति-दिनं तत्परदिनं चेति दिननयमित्यर्थः । योग्यतात् ।

व्याने मियुनसादौ तनाधेऽपि दिनचयम्।

<sup>(</sup>१) पादुकं।

दति वाक्यानारात्। तनाधे मिथुनमधे मिथुनदितीयदिन इत्यर्थः । सतौ दिमत्रयस्य निरन्तरत्नात् ॥ ।।।

### श्रयागस्यार्घविचारः ।

त्रगस्य छ दिचणामा सिंतिसुपक्रमः श्रीभगवदचनम् विष्णु-रइस्रे,-

ये तां तत्र स्थितं भक्ता नार्चिययन्तिं मीनिवाः । तेषां पामतारं पुषां मतापादाद्ववेत्तव.॥ ये लां: महाविधानेन पूजियास्त वाह्यो । 🗆 श्वेतदीपं गमिव्यन्ति ते नरा मत्रमादतः॥ 💥 द्रत्यगस्यार्घस नित्यकाम्यनेऽपि,

त्रप्राप्ते भारकरे कन्यां मित्रभागै स्विभिर्दिनैः। . . . . : श्रर्धं दशुरमस्याय ये च मिन महोदये॥ इति वाक्यानारात्।

महोदयस्थानमुपक्रम्य,

यसु भाद्रपदस्थाने उदिते कलभोद्भवे। ऋर्षं दद्यादगस्याय सर्वान् कामान् क्रमेत सः॥ ् इति भीमपराक्रमोक्तेय नासादेगे तत्समाचारः। सर्विभागैः

विभिर्दिनैः वयोदगदिनैः नूने मिंह दत्यर्थः।

महोद्ये तन्नामकखानविग्रेषे भाद्रपृद्गब्दोऽपि सौर्मास-विषय: ।

इतकम्बलं विष्णुधर्मी,—

श्रा लिङ्गदेवपर्यन्तं यो द्वाद्षतकम् लम्।

जाग्रं नृत्यगीताचै: सक्त कता च पर्वणि॥

मन्त्रसद्द्वाणि भिवलोके मद्दीयते।

पर्वणि मक्तरसंकान्तौ "स्रगं यच रिवर्वजेत्" इति वाक्या
न्तरात्। स्रगं मक्तरं "मकरो स्रगासः" इति च्योतिः भास्तात्॥०॥

नदीनां रशस्त्रकात्विचारः।

बन्दोगपरित्रिष्टे,-

यथदयं त्रावणादि सर्वा नद्यो रजखलाः।
तासु सानं न कुर्वीत वर्ष्णियला समुद्रगाः॥
धनुःसहस्राद्यष्टौ प(१) गतिर्यासां न विद्यते।
न ता नदीप्रस्वदा गर्सासे परिकीर्त्तिताः॥

तद्यवादः पुनस्तचैव,—
उपानर्मणि चोत्धर्गे प्रेतस्वाने तथैव च।
चन्द्रसूर्यपदे चैव रजोदोषो न विद्यते ॥
यथोमाधः। धमुद्रगाः धाचात् समुद्रप्रविष्टाः।

त्रन्यथा,

यथा नदी नदाः सर्वे ससुद्रं यान्ति संस्थितिम् । इति मनूत्रोः, सर्वासां नदीनां परम्परयाऽस्थिपवेशात् दोषा-भावः प्रसच्येत ।

धनुः परिमाणं विष्णुधर्मीत्तरे,— दादगाङ्गुलिकः गङ्गुसद्दयञ्च ग्रयः स्रतः ।

<sup>(</sup>१) चरौ तु।

तचतुष्कं धतुः प्रोक्तं क्षोशो धतुःसहस्तिकः ॥

श्रयो इसः। श्रयं दोषाभावो जन्नान्तरासभाव एव। एवं "नदूर्येत्तीरवासिनां" दति मदनपारिजातधतायां सृताविप बोध्यम्।
श्रत एव ध्यान्नपादः,—

श्रभावे क्रूपवापीनामन्येनापि समुद्धृते ।
रजोदुष्टेऽपि पयसि ग्रान्यभोगो न दुखित ॥
श्रन्येनापि घटादिना, श्रावणादिदयं सौरमासविषयम् ।
तथा च कर्कटमिथुनयो रजोदोषः,—

श्रादी कर्कटके नद्यः सर्वा एव रजखनाः । चिदिनन्तु चतुर्चेऽक्ति ग्रुद्धाः खुर्जाक्रवी यथा॥

द्ति स्रतौ सौरमाचे एवकारेण ससुद्रगानां नदीनामणि (१) द्रुद्धिलकचनात्। दिनचचेऽपि गङ्गायां दोषः, श्रस्या दृष्टान्तले-नोपादानात्।

श्रत एव देवलः,—

गङ्गा च यमुना चैव अचजाता सरस्वती ।

रजसा नाभिभूयन्ते ये चान्ये नद्मंज्ञकाः ॥

अचजाता सरस्वती कुद्वेचगता सरस्वती । नदाः जोणाद्यः ।
ते च,—

ग्रोणः सिन्धुर्हिरण्याख्यकातकाहीतपर्पराः । ग्रतद्रुख नदाः सप्तपावना ब्रह्मणः सुताः ॥

<sup>(</sup>१) ग्रचित्वकयनेन चक्ती सततात्।

यत्त्,

भागीरथी च कालिन्दी नर्भदा च मरखती। विश्वोका च वितसा च गौतमी कृष्णवेणिका। तुङ्गभद्रा भीमरथी (१) तापी चैव पयोष्णिका। दादशैता महानद्यः पापिनः पावधन्ति ताः (१)॥

इति वाकात् ससुद्रगापदं महानदीपरिमिति प्राचीनाः। तस्र, ससुद्रगापदस्य यौगिकार्घत्यागेन श्रप्रसिद्धक्रुढकस्पनायां मनाभावात्। इति सौरमासकार्य्याणि ॥०॥

### ः अय ग्रहणं।

तच द्युगार्ग्यः,—

पूर्णिमाप्रतिपत्मन्थी राज्ञः समूर्णमण्डलम् ।

यसते चन्द्रमर्कञ्च दर्गप्रतिपदन्तरा ॥

पूर्वान्तिमभागः स्वर्गकालः । प्रतिपदाद्यभागो मोचकालः ।

तद्कां ब्रह्मसिद्धान्ते,—

यावत्कालः पर्वणोऽन्ते तावत् प्रतिपदादिमः ।
रवौन्दुयद्दणानेद्दाः चम्पूर्णे मित्रितो भवेत् ॥
. प्रनेद्दाः कालः । विग्रेषोऽन्यो च्योतिःग्रास्ते द्रष्टवः ।
जावालिग्रातातपौ,—

संकान्तेः पुर्वकालस्य घोडश्रोभयतः कलाः । चन्द्रसूर्योपरागे च यावद्रभनगोचरः॥

<sup>(</sup>१) भीमस्था।

<sup>(</sup>२) माः।

तत्र । "चल्रस्र्यंगहे स्नायात्" रत्यादौ स्नानादौ नैमित्तिने चल्रस्र्योपरागमाचस्य निमित्तत्वश्रवणेऽपि वाक्यान्नरेण यावद्र्यन्न गोचर दित निमित्तस्य विशेषणान्तरसुपादौयते । "यावच्जीव-मग्निहोत्रं जुड्यात्" दित जीवनस्य निमित्तत्वश्रुताविष सायं प्रातर्जुहोति दित वाक्यान्नरेण सायं प्रातःकास्नाविक्षस्रजीवनस्य निमित्तत्वत् संक्रान्तिपुष्णकासभाह्ययादिवमेवं निर्णयः । द्र्यनं चाचुषज्ञानं दिनिचणस्यायितासस्वरूपेण निमित्तविशेणं, द्र्यन-काले स्नानश्राद्वादेरसम्भवात्।

त्रत एव बक्षीधरः,— "चाचुषज्ञानविषयस्वै निमित्तता। चाचुष एव ज्ञाने दर्भनपदस्य मुख्यलात्। तेन मेघा इस्तायां न स्वानादिकं कार्यं दति। तेन चाचुषज्ञानविषयस्य मनुस्थाधिकारं त्रास्तं दति स्वपरमाधारस्थेन निमित्तलादन्धादेरिषं स्वानादा-विधिकारः।

एवं,

जनाभे जनानचरे सप्तमे चाष्टमे तथा ।

चतुर्य दादग्रे चैव न क्रूयांद्राइदर्गनम् ॥

दति निषद्धनचरेषु दर्गनाभावेऽपि सामादिकरणमावश्वकम् ।
ननु,

नेचेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यान्तं कदाचन । नोपरकं न वारिस्थं नो मध्यं नममोगतम् ॥

दित मनूकौ राज्यसे सूर्यदर्भनस निषिद्धतात् कथं राज्ज-ग्रहणं चनुर्गाद्यं स्थात्, दित चेत्, मत्यं। सूर्यग्रहणे जातेऽपि बद्परं दर्शनं प्राप्तं तदेवानेन निषिद्धं। न तु प्रथमदर्शनं। श्रतो न किस्तृ विरोधः।

दर्भनसन्देशे विश्व :,-

यासदर्शनमाचेण यदि दानि (१) मंदद्गयम् । जायते यदि सन्देदसस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ स्रायानारे —

चन्द्रक्ष्य इते चेव यो न स्नाती ह मानवः।

स सप्तजना कुटी स्नाहुःसभागी च सर्वदा॥

स्यासः

महातीये तु संप्राप्ते द्रन्दोः कोटी रवेर्द्रण॥
गङ्गातीये तु संप्राप्ते द्रन्दोः कोटी रवेर्द्रण॥
गवां कोटिसइसस्य यत् पत्तं सभते नरः।
तत्पत्तं जाझवीतीये राज्यपत्ते निप्राकरे॥
दिवाकरे तु स्नानस्य द्रणसङ्ख्यसुदाइतम्।
चन्द्रसूर्यंग्रङे चैव योऽवगाहेत जाझवीम्॥
स स्नातः सर्वतीर्यंषु किमर्थमटते महीम्॥

श्रन्यकासमानादिन्दुगर्षे सचगुणं। सूर्यगर्षे तद्गगुण्-मित्यर्थः।

मात्ये,-

गङ्गाकनस्त्रज्ञे पुष्णे प्रयागः पुष्करं गया । कुरुचेनं तथा पुष्णं राज्ययसे दिवाकरे ॥

<sup>(</sup>१) चार्थदानिः।

कोटिजनाकतं पापं पुरुषोत्तमसिक्षधौ ।
काला सूर्य्यपदे सानं विसुद्यति महोदधौ ॥
दश्रजनाकतं पापं धानासम्यति पुष्करे ।
श्रतजनाकतं पापं गङ्गासागरसङ्गमे ॥
जन्मान्तरसङ्खेण यत्पापं समुपार्जितम् ।
तत्सवं सिम्हत्यायां राष्ट्रपत्ते दिवाकरे ॥
सिम्हत्या कुरुचेने तीर्यविशेषः ।
महाभारते,—

महानदीषु चान्यासु स्नानं कुर्यात् यथाविधि । यथाविध्युकेः साङ्गं स्नानमदृष्टार्थमिति बोध्यम् । ब्राह्यासुक-महानद्योऽसात्कताचारसारे द्रष्टव्याः ।

त्रमभवे प्रह्नः,—

नदीकूपतज़ागेषु नदप्रस्वर्णेषु च । नद्यां नदे देवखाते सरसीयूडूताम्नुनि ॥ उष्णोदकेऽपि वा स्नायात् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥

उप्णादकमातुरस्वैव ।

श्रादित्यकिर्णैः पूर्त पुनः पूर्तं च विक्रमा । श्रतो (१)व्याधातुरः स्नायाद्यहणे (१)चन्द्रसूर्ययोः ॥

इति व्याच्रोकः।

<sup>(</sup>१) वाधातुरः।

<sup>(</sup>२) ऽप्युष्णवारिया।

एवञ्च,-

मृते जन्मनि संकान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। त्रसृष्यसूर्याने चैव न स्नायादुष्णवारिणा॥ इति निषेधो नातुरविषयः।

एतसर्वमिभिष्य व्यामः,-

मवं गङ्गाममं तोयं सर्वे मद्यासमा दिजाः ।
सर्वे अमिसमं दानं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥
श्रीतसुर्णोदकात्पूष्णं त्रपारका परोदकात् ।
दत्यादिसार्केष्डयोक्तिनित्यसानेऽसात्कताचारसारे द्रष्टया ।
सद्वीपुराणे,—

कार्त्तिके ग्रहणं श्रेष्ठं गङ्गायसुनसङ्गमे ॥ इति तत्सर्वे गङ्गासमित्यानेनेव चरितार्थमिति विक्तरभयात् न लिखितं । ग्रहणे नदीषु रजोदोषाभावः पूर्वं लिखितः ।

यासः चूड़ामणियोगमाइ।

रिविग्रहे सूर्य्यवारे मोमे मोमग्रहे तथा।
चूड़ामणिरितिखातमानानन्तफलं भवेत्॥
वारेख्ययेषु यत्पुष्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः।
तत्पुष्यं कोटिग्रणितं ग्रस्ते चूड़ामणौ स्मृतम्॥
ग्रहणिनिमत्तकं श्राद्धं नित्यं काम्यमिति दर्शादिश्राद्धप्रकर्णे
लिखितम्।

यमग्रातातपौ,-

स्नानं दानं तपः श्राद्धमननं राष्ट्रदर्भने ।

त्रासुरी राचिरन्यच तसात्तां परिवर्जयेत् ॥ देवलः,—

यथा स्नानञ्च दानञ्च सूर्यास्य धहेणे दिवा।
सोमस्तापि तथा राचौ स्नानं दानं विधीयते॥
कौर्यां,—काम्यानि चैव श्राद्धानि ग्रस्थन्ते ग्रहणादिषु।

यहणदिनपतितवार्षिकश्राद्धादीनि यहणनिमित्तकश्राद्धं च हेमा श्रामद्रव्येण वेति पूर्वसुक्तं। यहणे श्रामश्राद्धपचे पिण्डवर्ष्णनिम-त्यपि चिखितं। नवश्राद्धादिसपिण्डान्तप्रेतक्कश्रानि पकान्नेनैव दति मपिण्डीकरणप्रकरणेऽणुकं।

ब्रह्माख्युराणे,-

श्रुगोचं जायते नृषां ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । वान्धवानां च मर्णे राइस्पर्गे विगापते ॥ रवेरपि ततः स्नाला दानादौ कस्पते नरः । ग्रहणे ग्रावमाग्रौचं विमुक्तौ सूतकं स्ततम् ॥ इति ग्राममुक्तोरपि स्नाननिमित्तलमुकं।

षट्चिंग्रनाते,—

सर्वेषामेव वर्णानां स्ततकं राज्यदर्भने । स्वात्वा कमाणि कुर्वेति ग्रहतमन्त्रं परित्यजेत् ॥ ग्रहतं पूर्वपकं।

मुक्तावपि स्नानं, सृत्यनारे, 🛨

(१) ग्रममाने भवेत् स्नानं यस्ते होमो विधीयते।

<sup>(</sup>१) याखमाने।

मुच्यमाने भवेदानं मुक्ती (१) होमो विधीयते ॥ ब्रह्मवैवर्त्ते,—

म्नानं स्वादुपरागानो मध्ये होमः सुरार्चनम् । गिवरहस्ये,—

सूर्येन्द्रग्रहणं यावत्तावत् कुर्याक्रपादिकम् । न खपेत्र च भुञ्जीत खाला भुञ्जीत सुक्रयोः ॥ यद्भविष्ठः,—

सर्वेषामेव वर्णानां निमित्तं राष्ट्रदर्शने ।

सपेलं च भवेत्सानं स्ततकासं च वर्ज्ययेत् ॥

यहणकाले ततः पूर्वं यावत् पकं, तत्सवें स्ततकान्नं, तत्तु

पञ्चादिष न सुञ्जीतेत्यर्थः दित माधवाचार्याः ।

बाह्ये,-

उपमई लचगुणं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥
पुष्यं कोटिगुणं मध्ये (१) मुक्तिकाले लनन्तकम्।
वौधायनः—

श्रोजियोऽश्रोजियो वापि पात्रं वापात्रमेव वा। विप्रमुवो वा विष्रो वा ग्रहणे दानमईति॥ दचः,—

सममनाद्वाणे दानं दिगुणं नाद्वाणज्ञवे । श्रोचिये जतसाहस्रं पाचे लानन्यमञ्जते ॥

<sup>(</sup>र) सारं।

पाचलचणं याज्ञवस्यः,-

न विद्यया नेवलया तपसा वापि पात्रता । यत्र हत्तमिमे चोभे तद्धि पाचं प्रचवते ॥ महाभारते,—

स्तिगांवः सुवर्णे वा धान्यं वा यद्यदिष्यितम् । तस्यवं ग्रहणे देयमात्मनः श्रेय दृक्कता ॥ चन्द्रसूर्य्ययो राचिदिवसविषयांसेन घट्ग्रहणम् । तत्र स्नाना-दिकं न कार्य्यम् ।

तदुक्तं निगमे,—

सूर्य्याहो यदा राघौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा। तच स्नानं न कुवैति तदा दानं न कुचित्॥ ग्रहणे भोजनाभावमाह मनु:—

चन्द्रस्र्यंग्रहे नाद्याद्यात् स्नाला विसुक्तयोः।
त्रमुक्तयोरस्तगयोर्दृद्वा स्नाला परेऽहिन ॥
ग्रहे ग्रहणे, स्पर्मकासमारभ्य मोचकालपर्यमां ग्रहणकास दति
माधवाचार्याः।

यहणात् पूर्वमिप भोजनाभावमाह व्यासः,—
नाद्यात्सूर्व्ययहात्पूर्वमिक्त सायं प्रशिवहात् ।

यहकाले च नाश्रीयात्साला<sup>(१)</sup> यहविसुक्तयोः ॥

सुक्ते प्रशिनि भुद्धीत यदि न खान्महानिप्रा ॥

श्रमुक्तयोरस्तगयोरदाहृद्वा परेऽहनि ॥

<sup>(</sup>१) खाला स्नायात्।

सार्द्धप्रथमयामादूर्द्धं मुह्न्त्तंचतुष्ट्यं महानिभेति खस्भीधरः।
पूर्वकाले भोजनविधेविभेषमाह दृद्धविष्ठः,—

यहणं चेद्भवेदिन्दोः प्रथमादिधयामतः । भुज्जीतावर्त्तनात्पूर्वे पश्चिमे प्रथमादधः ॥ रवेद्यावर्त्तनादूर्ज्जमर्वागेव निश्रीयतः । चतुर्थप्रहरे चेत्याचतुर्थप्रहरादधः ॥

म्पूर्वं असीत । राजो पश्चिमे चेत्, राजिप्रथमधामादर्वाक् असीत दिता स्थिमे चेत्, राजिप्रथमधामादर्वाक् असीत दिता क्षिणे स्थाने विक्रा स्थाने स्थ

तथा च सृतिः —

सूर्यग्रहे त नाश्चीयात् पूर्वं यामचत्रष्टयम् । चन्द्रग्रहे त यामांस्तीन् वालरङ्कात्ररैर्विना ॥ वालरङ्कात्ररविषये त मात्ये,— श्रपराचे न मधाक्ने सधाक्ने न त सङ्गवे । सुज्जीत सङ्गवे चेत्यास पूर्वे सुक्रिसाचरेत् ॥

प्रियाहे सस्तोद्ये बद्धविष्ठाः,—

यस्तोद्ये विधोः पूर्वं नाहभीजनमाचरेत् ।

उभयोर्यसास्त्रमये सगुः—

यसावेवास्तमानं तु रवीन्दू प्राप्नुतो यदि ।

तयोः परेद्यु इदये स्नालाभ्यवहरे झरः ॥

समर्थस ग्रहण्निषेधकाले भोजने प्रायसित्तमाइ कात्यायनः,-

चन्द्रसूर्व्यग्रहे भुद्धा प्राजापत्येन ग्रध्यति।

तिसिनेव दिने भुक्ता चिराचेणैव ग्रध्यति॥

नतु सुक्तिं दृद्वापरेऽन्दि सुझीते लुक्तं , सेघा द्याच्छके भोकव-मिति चेन ।

चन्द्रसूर्य्ययहे नाद्यात्तसिन्नहनि पूर्वतः।

राहोर्विमुितां विज्ञाय स्नाला कुर्वीत भोजनम्॥

दति रुद्धगौतमस्य वचने प्रास्त्रज्ञानस्य विवचितलात्।

त्रतएव क्रत्यमहार्णवधते कृत्यनारे,—

मेघमालादिदोषेण मुक्तयोरनवेचणे।

त्राक्तस्य ततः कालं भुज्जीत सानपूर्वकम् ॥

एवं तर्हि परेद्युब्दयात् प्रागिष ग्राम्बज्ञानसभावात् तदैव भोजनं प्रसच्चेत दित चेत्र । तयोः परेद्युब्दये स्नालाभावहरेदहोराचं न भोक्तयं दित वचनदयेन तदप्रसङ्गात् ।

नन्त्रीचान्तरे सर्वस्नार्त्तकर्म निषिद्धं, श्रव तत्कार्ये न वा? इति सन्देहे व्याप्रपादः,—

स्मार्त्तकर्मणितियागी राहोरन्यष स्तके। श्रीते कर्मणि तत्कालं स्नातः श्रद्धिमवाप्रयात्॥ द्यः,—श्रयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्ययस्थे तथा। श्रहोराचोषितः स्नातः मर्वपापैः प्रमुखते ॥ श्रत <sup>(९)</sup>एव सेङ्गादौ यदुपवासचयमुक्तं, तत्मवें पुचिणा न कार्यें। सङ्गान्यामुपवासञ्च कृष्णेकादशीवासरे । चन्द्रसूर्य्यग्रहे चैव न कुर्यात् पुचवान् स्टही ॥

दित नारदोकोः । यहणस्नानत्राङ्कादिकं<sup>(२)</sup> स्ततकस्तताग्रीच-योरपि कार्य्यं दत्यग्रीचप्रकरणे लिखितं । किन्तु खेङ्गोक्रो स्नतक-स्तकयोदपादानात् त्रार्त्तवाग्रीचिक्रयाकर्त्रग्रीचेषु स्नानादीनामभाव-समाचारः । यहणे स्नानमन्त्रः,

खखानं गम्यतां राहो त्यच्यतां चन्द्रसङ्गमः।
परमचण्डालयोने लं मम पापचयं कुरु ॥
ग्रहणकाले तीर्यसानमन्त्रं वाधिलास्वेव प्रवेगः।
वैश्वदेवनिमित्तपाञ्चदम्यवन्नीमित्तिकलान्त्रिरवकामलाच ।
सुक्तिसानमन्त्रः,—

यथापदो विमुक्तोऽधिराहोर्वदनसङ्कटात्। तथा लं रोहिणीनाय श्रापदो मां विमोचय॥ सूर्यग्रहे तु प्रथममन्त्रे सूर्यग्रङ्गम द्रायूहः।

मुक्तिमन्ते मजाया नायेत्यू इञ्च । यहणयोरिप दिनचयमन-धाय इति श्रनधायशकरणे जिखितम् ।

यच्णविषयेऽसात्कतग्रुद्धिमारकारिकाः,-

पूर्वं खात्यामयामादनग्रनमघमणुषारयोशतुष्कं, यामानां गीतरसोस्त्रितयमभिहितं ग्रामयामाद्धसात्।

<sup>(</sup>१) एवं।

दन्त्री यसोदितलं गतवित च चतुर्यामकान् पूर्वतोऽपि,

यसावसं गतौ तौ यदि परदिवसे ह्रद्यान्तं तयोसत्॥

श्रौतसार्त्तादिकमीष्ण्यपि रिविश्वश्चिनोः स्पूर्यहागौचमध्ये,

नेष्ठाग्यं स्पृष्टमन्नं ग्रहतमपि तदितोऽहानि न चौष्णधीतिः।

श्राद्धं यदार्षिकाब्दं यहणसमयजं वा तदामैः पदार्थे,

ईम्नावास्याद्यानेः परमिह निखिन्नं प्रेतकत्यं तु पक्तैः॥

चन्द्रे ग्रस्तास्त एतत्परदिनपतितं वार्षिकं श्राद्धमामे,

ईम्ना वा पूर्ववत्यादिति क्रतिविदित्तेर्विप्रमिश्चरस्तेष्वि।

हेमामैः श्राद्धसिद्धर्भवित न हि पुनभोजनं यन्तिषद्धं,

तत्त्राद्धवाद्यारः।

इति ग्रहणविचारः।

श्रयालभययोगाः ।

तच सामान्यतो गार्ग्यः,-

माममंत्रे यदा ऋचे चन्द्रः ममूर्णमण्डलः।

गुरुणा याति संयोगं सा तिथिर्महती स्रता॥

गुरुगीतायाम्,—

एकराशिगतौ खातां यदा गुरुनिशाकरौ।

सा पौर्णमासी महती सर्वपापहरा सृता ॥

महती तिथिः महाचैत्रादिनामीत्यर्थः ।

महामाध्यादियोगेषु तीर्थविशेषेषु फलाधिकामाह गार्ग्यः,—

महामाघी प्रयागेषु नैमिषे फाल्गुनी तथा ।

सालगामे महाचैत्री कताः पुष्णस्य हेतवः ॥

गङ्गादारे च वैभाखी च्येष्टी च पुरुषोत्तमे । त्राषाढी वै कनखन्ने केदारे त्रावणी तथा ॥ वद्यां च प्रौष्ठपदी कुझाद्रौ च महाश्विनी । पुष्करे कार्त्तिकौ काखकु मार्गभीषी तथा ॥ त्रयोधायां महापौषी कता च सुमहाफ्सा ।

विशेषतो मश्वेशाखी, स्कान्दे,-

मेषेऽर्क कार्मुके जीवे मकरखेऽथवा दिज ।
पूर्णिमा रिववारेण तुसाखे च ग्रनैश्चरे ॥
वरीयोयोगयुक्ते च विभाखर्च यदा ग्रगी ।
महाग्रव्दा तदा ज्ञेया कोटिसूर्य्यपदाधिका ॥
कोटिजनाहतं पापं दृष्टा श्रीपुरुषोत्तमम् ।
महावैशाख्यां मुझन्ति खानं हाला महोद्धी ॥
महावैशाख्यां सुझन्ति खानं हाला महोद्धी ॥
महावैशी, कौर्म,—

ऐन्द्रे गुदः प्राभी चैव प्राजापत्यगते रवी ।

पौर्णमासी ग्ररी चौष्ठी महाचौष्ठीति सा स्थता ॥

महाचौष्ठ्यां च यो गच्छेत् चेचं श्रीपुद्द्योत्तमम् ।

ब्रजेत् पदानि यावन्ति क्रतुतुःख्यानि तानि तु ॥

तच गला हरेधीनि गला श्रीपुद्द्योत्तमम् ।

विश्रम्य विधिवत् स्वायात् प्रतितीर्थेषु वै क्रमात् ॥

प्राजापत्यं रोहिणीनचवं। प्रकारान्तरं तु फस्वान्यविद्यते।

श्रयं योगो गङ्गायामपि ।

तथा च त्राह्मे,-महाज्येष्ठ्यां तु यः पर्यत् पुरुषः पुरुषोत्तमम्।

विष्णुकोकमवाप्नोति मोचं गङ्गामुमञ्जनात् ॥ चिचारुष्णचतुर्दशी, पुष्करपुराणे,—

कार्त्तिके भीमवारे तु यदा क्रण्णचतुर्द्गी।
तस्यामाराधितः स्याणुनयेत् ग्रिवपुरं भुवम्॥
यां काञ्चित्परितं प्राप्य क्रण्णपचे चतुर्द्गीम्।
यमुनायां विश्वेषेण नियतं तर्पयेद्यमान्॥
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्नकाय च।
श्रीदुम्बराय दध्याय नीलाय परमेष्ठिने॥
वकोदराय चित्राय चित्रग्रप्ताय वे नमः।
एकैकस्य तिकैर्मिश्रान् चीस्तु दद्याच्चलाञ्चलीन्।
मस्त्यरक्ततं पापं तत्चणादेव नश्यति॥
महाकार्त्तिकी, विष्णुपुराणे,—

विशाखायां यदा सूर्य्यथरत्यं हतीयकम्।
तदा चन्द्रं (१) विजानीयात् क्रितंकाशिरिष स्थितम्॥
कित्तिकायां यदा चन्द्रः प्रथमाङ्गी भवेत् कितित्।
महती मा तिथिज्ञेया स्नानदानेषु चोत्तमा॥
यदा याम्यान्तु भवित तिथौ तस्थान्तु कुचित्।
तिथिः सापि महापुष्णा ऋषिभिः परिकीर्त्तिताः॥
गाजापत्यं यदा स्टचं तिथौ तस्थां नराधिप।
मा महाकार्त्तिकी प्रोक्ता देवानामिप दुर्चभा॥

मन्दे चार्क गुरौ वापि वारे खेतेषु च चिषु । चौष्णेतानि च ऋचाणि खयं प्रोक्तानि ब्रह्मणा ॥ तचाथ मेधिकं पूष्णं स्नातस्य च भवेश्वप । दानमचयतां याति पित्वणां तपेणं तथा ॥ रोडिणीप्रतिपत्, श्राग्नेये,—

त्रतमत्यामतीतायां प्रतिपद्गे हिणी ग्रगी।
यदा भवति संयोगः कार्त्तिकाको विग्रेषतः।
सुद्र्त्तमप्यहोराचे यस्मिन् युक्तोऽपि स्वभ्यते॥
रोहिणी प्रतिपचन्द्रे श्रर्थ्यदानं महापस्तम्।
वृश्चिकस्यो यदा भानुः पचादौ च प्रजापितः॥
पष्टिमिन्निहितं पुष्णं भौमे वा यदि वा रवौ।
तिस्मिन् काले नृपश्रेष्ठ सुरूचेचाधिकं पत्नम्॥
दगानामश्वमेधानां पत्नं प्राप्नोत्यसंग्रयम्।
एवं ज्ञाला विग्रेषेण गन्तयं पुरुषोत्तमम्॥
कोटिमिन्निहितं पुष्णं स्नाला चैव महोद्धौ।

तचानुमतिस्बरूपं कठणाखायां,—"या पूर्वा पौर्णमासी मानु-मतिः योत्तरा मा राकेति"।

राका चानुमितिश्वैव पौर्णमासी दिधा मता।
श्रनुमितराकाश्रन्थी मात्यत्रह्माण्डयोः,—
यसात्तामनुमन्यन्ते पितरो दैवतैः सह।
तस्मादत्तमितर्गम पूर्णिमा प्रथमा स्नृता॥

श्रव विधिर्सात्कतनतमारे द्रष्ट्यः।

त्रत्यर्थं राजते यसात्योर्णमास्थां निशाकरः। रञ्जनाचैव चन्द्रस्थ राकेति कवयो विदुः॥ दृद्धविशिष्ठः,—

राका चानुमितिश्वेव पौर्णमामीदयं विदुः। राका मंपूर्णचन्द्रा स्थात् कलोन। तुमितः स्मृता॥ राचिदृष्टे पुनक्तस्मिन् मैव राकेति कीर्त्तिता॥

श्रन्यच,—

पूर्वोदिते कलाहोने पौर्णमास्यां निशाकरे।
पूर्णिमानुमतिर्जीया पश्चादसमितार्कका(१)॥
यच लल्तिमयात् सूर्य्यः पूर्णश्चेन्द्रस्पागमत्।
युगपत् सोत्तरा राका तदा भवति पूर्णिमा॥
महोदधमावास्या।

कोर्म, मार्गमासि ग्रिनीवास्यां सागरे यत्र कुत्रचित्। स्नालायमेधावस्यसानस्य सभते फलम्॥ तथा, सागरस्रोदकं पीला प्रतिगण्डूषसङ्ख्या। सोमपानसमं पुर्णं वारिणा इद्गतेन तु॥

तथा, - मागरस्थोत्तरे तौरे भुखर्गस्य च दक्ति ।

तत्र स्नाला तु भन्तर्थ कला त्राङ्कादिकाः<sup>(२)</sup> कियाः॥

द्रत्यादि ।

तथा तचैव,—

विशाखायासरीयां भ भन्द्रे च गते रवौ।

<sup>(</sup>१) पञ्चास्तमितभास्तरा।

<sup>(</sup>२) पूजादिकाः।

तथा मैत्रगते भानी षड्गुणं पत्तमश्रुते ॥

तथैवात्र गते सूर्ये षड्गुणात् षड्गुणं फलम् ।

सोमवारे विशेषेण माचय्यपत्तदा कुहः ॥

तथा,—तस्रां मोचोत्तमे चेत्रे देशे श्रीपुरुषोत्तमे ।

दत्यादि ।

प्रविद्य मन्दिरं रामं सुभद्रां च सुरारणीम् (१)।
कृष्णं च पूर्वविक्तप्ता प्रणवं च प्रणम्य च ॥
दिखादि पुरुषोत्तमेऽधिको विधिः कौमें द्रष्टयः।
तथा,—महान्येष्ठ्यां तु यत्पुष्यमस्यामेव हि तत्समम्।
तच ग्रिनीवानीनचणम्, दृद्धविग्रष्टः,—
दृष्टचन्द्राममावास्यां ग्रिनीवानीं प्रचनते।
एतामेव कुह्नमार्क्तनेष्टचन्द्रां महर्षयः॥
तथा चतुर्देशीमिश्रा ग्रिनीवानी । प्रतिपन्तिश्र कुहः।
मात्स्यत्रद्वाण्डयोः,—

कुङिति कोकिलेनोको यावत्कालः समायते । तत्कालसंजिता चैषा श्रमावास्या कुडः स्रता ॥ श्रद्धीद्यामावास्या ।

महाभारते,-

श्रमार्कपातश्रवणेथुं त्रा चेत् पुरुमाघयोः। श्रद्धौदयः म विज्ञेयः कोटिमस्त्रिचितं फलम्॥

<sup>(</sup>१) सरार्थिं।

तिसान् काले तु राजेन्द्र गन्तयं पुरुषोत्तमम् ।
सागरे विधिवत् स्नाला दृष्टा नारायणं प्रभुम् ॥
कोटिजन्मार्क्कितं पापं नामयेत् तत्चणाद्ध्रुवम् ।
स्नानं दानं तथा जष्यमचय्यप्रस्नभाग्भवेत् ॥
व्यतीपातयोगः, स्कान्देः,—

माघ रन्दुचये पाते वारेऽर्के श्रवणं यदि । श्रद्धींद्यः स विज्ञेयः कोटिसूर्य्यग्रहैः(१) समः॥ दिवैव योगः प्रस्तोऽयं न तु राजौ षडानन । नान्यः पुष्यतमः कालो योऽङ्कींदयममो भवेत्॥ तावत् गर्जन्ति पापानि सुबह्ननि मद्दान्यपि । यावदद्वीदयोऽभ्येति मर्वपापप्रणामनः ॥ त्रदला चिंतो येन प्राह्मताभ्यद्यस हि। श्रद्धें हरत्यतः प्राक्तरद्धीदयिममं वुधाः ॥ ऋद्वीदये च संप्राप्ते सुनिदेवगणार्चिते । पापान्धकारान्युच्चन्ते भवेयुर्विमला नराः ॥ श्रद्धींद्ये महापुष्ये सर्वे गङ्गासमं जलम् । यत्किञ्चित् कुरते दानं तद्दानं मेर्सियतम् ॥ द्रत्यादि । पातो व्यतीपातः । विधिरसात्कतवतमारे द्रष्टवः । त्रय भद्राष्ट्रमीयोगः।

प्रतानन्दसङ्ग्रहे,— पौषे मामि यदा विष्र ग्रुङ्गाष्टम्यां बुधो भवेत् ।

<sup>(</sup>१) सइस्रार्भग्रहेः।

तस्यां तस्यां महापुष्या श्रहो भद्रेति कीर्त्तिता॥
तस्यां दानं तथा स्नानं तर्पणं दिजभोजनम्।
मन्नीतये कतं देवि दगमाहस्तिनं भवेत्॥
महामाची, वायुपुराणे,—
नेषपृष्ठे यदा गौरिगुंदः सिंहे च चन्द्रमाः।
भास्करे श्रवणामध्ये महामाघीति सा सृता॥
राजमार्नेष्डे,—

पौर्णमास्यो भवन्यन्याः कामं नचचयोगतः।
माघ एव तु माघी स्थात् मकरस्थे दिवाकरे॥
वायवीये,—

पान्त्रंगि पापनाशिन्येकादशी।

त्रद्धाण्डे, पुनर्वभी देवगुरी निशाकरे,

निशेशवारेऽमरपूज्यकेऽथवा।

कुभी रवी मत्यगते वृद्दस्तती,

एकादशी स्वात् खन्नु पापनाशिनी॥

जयञ्च तयञ्च तपोऽर्चितं(१) इतम्,

यत्किञ्चिदस्यां किन्न धर्ममञ्चितम्।

श्रनन्तपुष्णानि भवन्ति तस्य वै,

सूर्य्यप्रदात् कोव्यधिकं पन्नं तथा॥

चीरोदके वा द्यवगाद्य यो नरः,

संपूज्य कृष्णं रजनीसुपोषितः।

<sup>(</sup>१) ऽजितं।

एतेन पापं द्यजन्मिः कतम् जेब्रीयते तस्य महस्रमाद्य तत्॥

वायवीये,--

कुमो वा यदि वा मीने फाल्गुनैकादगी भिता।
पुष्यर्चगुक्संयुका महापापप्रणाभिनी॥
बाराहे,—

एकाद्यां शिते पचे पुथ्वं यत्र मत्तम ।
तियौ भवति सा प्रोक्ता विष्णुना पापनाशिनी ॥
तस्थामाराध्य गोविन्दं जगतामीत्रारं परम् ।
सप्तजन्मकतात् पापान्मुच्यते नाच संश्रयः ॥
यञ्चोपवासं कुरुते तिथौ तस्यां दिजोत्तम ।
सर्वपापविनिर्मुको विष्णुकोके महौयते ॥
दानं यद्दीयते किञ्चित् ससुद्ग्य जनाईनम् ।
होमो वा क्रियते तस्थामचयं कथितं पत्तम् ॥
गौविन्ददाद्शी ।

तार्चपुराणे,-

फाल्गुनस्थामले पचे कुम्भस्थे दिवसाधिषे ।
जीवे धनुषि योगे च ग्रोभने रिववासरे ॥
पुर्ख्यं यदि संपूर्णा गोविन्ददादगी स्थता ।
गोविन्ददादगीं प्राय्य गच्छेत् श्रीपुर्षात्तमम् ॥
वतमापूर्य्य तचेव विष्णुसायुज्यमाप्रयात् ।
महान्येष्ठ्याद्दग्रगुणं फलमाप्रोति मानवः॥

प्रकारान्तरं ब्रह्माख्डे,-

कुम्भस्ये भास्तरे राजन् मकरे चाङ्गिरः जनी। दादशी ग्रुक्तपचस्य पुर्याचे जायते यदि॥ गोविन्ददादशी नाम महापातकनाशिनी। तस्यां क्रतोदधिस्नानं दृद्धा श्रीपुरुषोत्तमम्॥ (१)श्रेतपन्निहिते गङ्गामवगाद्य विधानतः। चयोदश्रमहाञ्येष्ठ्याः फल्लमाप्नोति मानवः॥

श्रव प्रकारदये योगतारतम्यात् फलतारतम्यं। एतत्प्रकार-दयं श्रीपुरुषोत्तमचेच एव।

यनु, - यन कुत्र हरे: खाने यः कुर्यात् व्रतमीदृशम् ।

दति, तत्वेचे यन कुनापि दति ज्ञेयं। श्रन्यथा "पञ्चतीर्थं(र)

नरः कुर्यात्" दत्याद्यसङ्गतं खात् । सामर्थे उपवासः, श्रमामर्थे

हिवयं।

तथाच तार्च,—

वालदृद्धातुराः कन्या येऽसमर्था उपोिषतुम् । इविष्यभोजनं क्रता विष्णुपूजनतत्पराः ॥ पुनः प्रकारान्तरं विष्णुधर्मी,—

फाल्गुनामलपचस्य पुर्व्व दादगी यदि । गोविन्ददादगी नाम महापातकनाग्रिनी ॥ तस्त्रासुपोष्य विधिवत् नरः प्रचीणकत्त्राषः । प्राप्नोत्यनुत्तमां सिद्धं पुनरावृत्तिद्र्वभाम्॥

<sup>(</sup>१) ग्रावसिविचिते।

विष्णुधर्मोत्तरोत्रे तु न पुरुषोत्तमचेत्रगमनियमः, तदानुत्त-लात्। राजमार्त्तं खोक्तप्रकारचयेऽपि एवं बोधं।

तथा च,-

मंयोगो दादगीपुर्यः कुभसंस्थे दिवाकरे। तथा,—

कुभे तीयमयूखमालिनि निणानाथोपयूढे गुरी।
दादण्यां विधिवत् विधाय विविधां पूजां हरेः श्रद्ध्या।
पूपं प्राण्य हविष्यमच्युतकथां ग्रट्णान् व्यपोहत्यधम्।
दादण्यां विधिरेष पुष्यविगमे कार्यो बुधैः श्रद्ध्या॥
दादण्यां ग्रुक्षपचे गणिनि गुरुयुते कुभ्भमंख्ये खरांगौ,
पूजां हाला मुरारेविधिविहितहविः प्राण्ययेत् मन्त्रपूतम्।
पुष्यां ह्युचं (१) न चेत्यात्तद्पि विधिममुं वासुदेवस्य हत्स्त्रम्,
दादण्यामेवकुर्यान् हि विहितविधिदांदणीमन्तरेण॥
पुरुषोत्तमस्यतिरिक्तस्यलेऽपि योग उक्तः। तथा च, गोविन्ददादणीयोगो गङ्गायामणुकः।

महापातक षंज्ञानि थानि पापानि मन्ति मे ।
गोविन्ददाद्गीं प्राप्य तानि मे हर जाक्ववि॥
दिति पद्मपुराषीयमन्त्रलिङ्गात्।

श्रिष्टाः,--

पुनर्वसुबुधोपेता चैंचे मासि शिताष्टमी । तस्यां नदीषु स्नानेन वाजपेयपसं सभेत्॥

<sup>(</sup>१) पुछा ऋदां।

सप्तमी रिववारेण बुधवारेण चाष्टमी।
त्रक्षारकदिने प्राप्ते चतुर्थी वा चतुर्देशी॥
सोमवारे लमावास्था सूर्य्यपर्वश्रताधिका॥
वेशाखमासमधिकत्यादित्यपुराणे,—
गुरुवारेऽप्यमावास्थामश्रत्यक्कायवारिणा।
स्वानं प्रयागस्वानेन समं पातकनाशनम्॥
त्रथ व्यतिपातयोगः।

वहनानु:,—

श्रवणायिधनिष्ठाद्गीनागदैवतमस्तके । यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उचाते ॥ नागदैवतं श्रव्लेषाः । मस्तकं स्वगित्रराः । भगवतीपुराणे,—

स्तानं दानं तथा होमं आहुं देवार्चनम् तथा। बातीपातेषु यत्पुष्धं कोटिमन्निहिताधिकम्॥ द्राद्यादिविधिस्तेचेव द्रष्टवः।

श्रय व्यहस्मृत् ।

तिथिस्तिस्मृगहोराचं दिनचयमुदाइतम् ।

व्यहस्मृशि तच दिने सानञ्च जप एव च ॥

सहस्मगुणितं प्राक्तिरिसेव दिनचयम् ।

प्रथमे वाजिनो यान्ति दितीये मार्थिस्तथा ॥

हतीये सविता तेन पुर्णं तत् स्थात् दिनचयम् ।

एवमादियोगेषु न तीर्थविशोधनियमः ।

### करतोयायां योगः।

### स्रति:,-

करतोयाजनं प्राप्य यदि सोमयुता कुझः । श्रहणोद्यवेनायां सूर्य्ययहणतेः समाः ॥ तत्र सानमन्त्रः.—

करतोये मदानौरे मरित्श्रेष्ठे सुविस्तरे। पुष्णान् भावयमे नित्यं पापं हरकरोद्भवे॥ पुष्णान् देशविशेषान्।

गङ्गायां योगः।

### व्यामः,—

श्रमावाद्यां भवेदारो यदि भूमिसुतस्य वै।
गोसहस्रफलं दद्यात् स्नानमात्रेण जाक्ववै॥
श्रिनीवाली कुह्रविपि यदि सोमदिने भवेत्।
गोसहस्रफलं द्यात् स्नानं यसौनिना कृतम्॥
वाक्ष्यादियोगाः।

### स्तान्दे,—

वार्णेन ममायुक्ता मधुक्रण्यचयोदभी।
गङ्गायां यदि लम्येत कोटिसूर्य्यग्रहेः ममा॥
भनिवारममायुक्ता सा महावार्ष्णी स्नृता।
ग्रभयोगसमायुक्ता भनौ भतिभवा यदि।
महामहिति विख्याता चिकोटिकुलमुद्धरेत्॥
वार्षं भतिभवा। मधुः चैचमासः। कुलं पुरुषः।

श्रव प्राचीनगौडै:,-

स्नानं कुर्विन्त या नार्थ्यस्त्रे ग्रतिभवाङ्गते । सप्तजना भवेयुसा विधवा दुर्भगा धुवम् ॥ चयोदग्यां व्यतीयायां दग्रम्यास्र विशेषतः । श्द्रविट्विचयाः स्नानं नाचरेयुः कथश्चन ॥

द्ति प्रचेतोत्रावास्तिवाक्याभ्यां स्तीश्र्द्राणां वाष्ट्रणादौ स्नानं निषद्धं, स्तीणां तु महादोषश्रवणादकरणे प्रत्यवायाभावाचेत्युक्रम्, तस्र। तादृश्यवाक्यानां यादृष्ट्यकस्नानपरतात्, केवसनस्त्रपरताचेति सिद्धान्त दत्येके।

श्रव यत्तिथितत्त्वकारैः रावाविष वाक्छादिस्नानम् । दिवारात्रौ च गङ्गायां सन्धायाञ्च विशेषतः । स्नातात्रमेधजं पुष्णं ग्रहेऽप्युद्धततः ज्ञन्तेः ॥ रति ब्रह्माण्डपुराणे । गन्धवेवाकाञ्च,—

श्रतो रात्रौ प्राप्नुवता जलं ब्रह्मविदो जनाः । गर्धयन्ति जनान् सर्वान् वनस्यात्रृपतीनिष ॥ श्रवार्जुनस्य प्रतिवाक्यम्,—

समुद्रे हिमवत्पार्थे नद्यामस्यां च दुर्मते । राचावहिन मन्ध्यायां कस्य गुप्तः परिग्रहः ॥ श्रमम्बाधा देवनदी स्वर्भमम्पादिनी तथा । कथिमस्किमि<sup>(१)</sup> तां रोद्धं नैष धर्मः सनातनः ॥ श्रमितार्थमसम्बाधं तव वाचा कथं वयम् ।

न स्पृत्रोम यथाकामं पुष्यं भागीरयौजन्तम् ॥

दित राचिंचराधिकारसुपक्रम्यादिपर्वणि ।

सर्व एव ग्रुभः कालः मर्वो देशस्त्रथा ग्रुभः ।

सर्वे जनस्त्रथा पाचं स्नानादौ जाक्रवीजले ॥

दित भविष्यपुराणे च सामान्यतः प्रतिप्रस्वात्। पाचमधिकारी।
देवसः,—

महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं प्रहरदयम् ।
तस्यां स्नानं न कुर्जीत काम्यनैमित्तिकादृते ॥
त्रव महानिश्रायामपि काम्यनैमित्तिकस्नानं प्रतीयत इति
सिखितं । तस्र विचारचारु, प्राचीनाचार्विरुद्धं च ।

तयाहि, यदि दिवाराची चिति सामान्यं वाकः काम्ययोगेऽपि
प्रवर्त्तते । तर्षि तदाक्यैकदेशोक्रोद्धृतज्ञले न वाक्ष्णादिम्हानमपि
दुर्निवारं । यदि तु त्रादिपर्विक्रमामान्यवाक्याधोगेऽपि गङ्गाम्हानं
कार्यः, तर्षि समुद्रेऽपि सर्वयोगे राचौ म्हानं केन वार्यते । यद्यो—
दाद्दतं सर्व एव ग्रुभ रत्यादि तच सर्व एव ग्रुभः काम्न रत्यादौ
स्वस्य स्वारसं मामान्यत दत्यादिना तैरेव स्वितं। तथाहि,
मामान्यवाक्यादिशिष्य मर्वकामस्य यदि म्हानार्ष्टलं, तर्षि पिचादि—
मरणकालेऽपि योगम्हानमनिवार्यम् । नापि तथाचारो दृष्यते ।
यदि महानिशेति देवस्ववाक्यमुपात्तम् । तच काम्यपदं काम्यवत—
परं न तु सर्वकाम्यपरं । नैमित्तिकपदं चन्द्रग्रहणादिपरं । तथा—
चैतदाक्यस्य व्यास्थानार्थं देवस्थैव वाक्यान्तरम् ।

राइदर्शनसंकान्तिविवाहात्ययदृद्धिषु ।
नद्यां स्नानदिकं कुर्युर्निशि काम्यव्रतेषु च ॥ दति ॥
तस्नात् सर्वेषा न राचौ योगस्नानम्। दिवैव योगः ग्रस दति
स्कान्देश्कौ स्फुटमेव । सङ्कल्पवाको तिथ्युक्केखानन्तरं वाक्षीयोगदत्याद्यक्केख्यं "निमित्तानां च सर्वग्रः" दत्याद्यकेः॥ ० ॥

श्रीनीसाम्बरराजगुर्वभिधया खातो हरेक्कणास्नाय-प्राप्तगजातपत्र उदस्यो याजयूकः सधीः।

श्रीमान् राजगुर्गदाधरसधीसाखातातः कौणिको-पत्रं संगयनागकं रिकतवान् श्रीकाससाराभिधम् ॥

इति कालसारः समाप्तः।

(547)

# कालसार्ध्वप्रमाणयन्यानां यन्यकताच्च अनुक्रमणी।

नामानि

पनेष

चाम्त्य संदिता २०, ११६, ११०, ११८।

चिक्किराः ११६, १३८, २५७, २६६, २०३, २०४, २०७, २८२, २८२,

२८८, ३०१, ३०३, ३००, ३१०, ३२०, ३२६, ११८, १६३।

खिनः २९१, ४०५।

चामेयपुराणं ७०, १२६, १८८, २८५, ३०५, ३२२, १२६, ३५१, ३५०,

80ई, 800, ६०२।

चाचार्यः १२८, २१६।

चाचचैग श्रुतिः २०४।

कादित्यग्रहार्यां प्रव, प्रथ, ६७, १०४, २५४, २५८, २०१, २०२, १६१,

8 ce, \$ 2 0 1

चादिप्राणं २६६, ३०६, ३६२, ५४१।

खायस्तम्बः १८, ५०, ६०, ६८, १५८, २००, २०२, २१३, २२४, २६८,

२०२, २०४, इरह, इ६३, ३००, ३०८, ३८४, ४४६, ४१८,

पृष्ठ , प्रथ्र, प्रप्ट, प्रद्र ।

चाश्वनायनः ४०२, ४१६, ४२०।

ईप्रागसंदिता १६०, १६१, १६8।

उत्तरसौरं २३०।

उपदारसंदारः ०१।

उग्रनाः ६६, ६०६, ३२८, ४१६, ४२७, ४२८, ४३०, ५१८, ५२३, ५३८,

पुष्क, पुष्द् ।

यदेव

ऋषाऋषः २४२, २६४, ३५४, ३८८, ४१२, ४२८, ४०८। एकामप्रतार्वः १९६, १८१, १८२, १८३।

कार्यः १२७, ३७८, ४१२।

ककीचार्यः ३६६, ३००।

कत्यतकः २२, २०, १५२, १८०, १६०, २११, २१८, २२३, २२३, २६६, २०५, २०६, २६०, ३५३, ३००, ३८३, ३८६, ४०१, ४०२, ४१६, ४३६, ४३६, ४४५, ५५०, ५४४, ५५०, ५६०, ५६०, ५६६।

कारामः २२२, २२६, २३०।

काठकारहां २३४, २३८, २३६, २४३।

कात्यायमः प्र, १०१, १२६, १३१, १३२, १३३, १८८, २२६, २८८, २५८, २८६, २८२, ३११, ४००, ४१०, ४२८, ४३१, ४३६, ४३७, ४४१, ४४२, ४५५, ४६३, ४००, ४८५, ५१३, ५२०, ५३०, ५६०।

कामिकः १६२।

कार्षाजितिः २०६, इट्६, इट॰, ४२॰, ४१०, ४५०, ४८०, ४८०। कालमाध्वीयं ५०५।

कालादर्भः ४२, ०४, ९५३, २६३, ३८८, ४१८, ४४८, ४८६। कालादर्भीय संग्रहकारिका २४१, २४३, ३२५।

कालिकापुरायं १०८।

कालिदास चयनी २६०, २००, ३११, ३१८।

काग्रीखच्डं २६।

कुमीप्राणं ३, ५४, ८४, ११५, १२०, १२८, १३२, १४०, १४१, २०४, २१०, २१४, २८४, २८६, २८०, ३११, ४०४, ४०४, ५८३, ६००, ६०३।

क्रत्यकीमुदी १३३, २००, २००, ५००। क्रत्यमञ्चार्थवः ५६०।

पनेष

सम्बाषात्रः १०१, १२३, २०८।

कैयटः ४५५।

कोषः ४३१।

कौधुमिः २४२।

ब्रातुः ४००, ४६६।

गभक्तिः ४११।

गर्रुप्राणं वा तार्च्यप्राणं ५५, ८८, १००, ११०, १२६, १८०, १८६,

२६६, इरह, ६००, ६०८।

मार्ग्यः ३५, ४४, ४५, ४०, २०३, २३८, ४५३, ४५७, ४६०, ५६६।

गालवः ३६८, ३८६, ४०४, ४१७, ४२६।

ग्रज्ञपरिभिष्टं २३३, २३८।

ग्रह्मप्रायस्वतं ३२५।

ग्रह्मसूचभाष्यं २०८।

मोभिनः ४८, १३४, १७२, १८८, इ८२, ३८७, इ८८, ४००, ४०४, ४०५, ४०८, ४१८, ४२०, ४१८, ४३४, ४२८, ४३४, ४२८, ४०२।

गौड़ः १२१, ६२१, ६१२।

गोड्संबत्सरप्रदीपः प्र, २६२।

गौड़ीय चिन्तामियाः ४४३।

मौतमः २००, २०१, २१२, २४०, २८८, ३१६, ३५०, ३०४, ४००, ४४८, ४५०, ४६६ ।

क्राग्लेयः ५२०।

क्रन्दोगपरिणिखं २०, २०८, २५८, २६६, २००, ३१०, ३१३, ३१६, ३३६, ३५५, ३६६, ३०१, ३६५, ३६८, ४००, ४०१, ४०४, ४०५, ४१३, ४१०, ४२४, ५७०, ५८६।

जातूकर्याः २५७, २०८, २८६, इ२४, ४०४, ४०५, ४१०।

पचेषु

जाबात्तिः ६०, १००, २३६, २४२, २६०, २६४, २००, २०८, २८०, ३०८, ४१४, ४२३, ४४४, ४८३, ४८६, ४८८, ५८८ ।

जैमिनिः ११२, १३२, २५८, २००, ३०८, ३८१।

जैमिनीय रामाययं ३२१।

च्योतिः पितामदः २३४।

न्योतिः ग्रास्तं ३, ६, १२, ८८, ८७, ६८, १२३, २०६, २१७, २१८, २२७, २२८, २२८, २३१, २३३, २३५, २३६, २३८, ८३८, ८६८, ८६८, ६६८, ८७१, ५०८, ५८६।

च्योतिःसागरः रेप्8ा

च्योतिःसिद्धान्तः २३५।

तिथितत्त्वकारः १०४, १०६, १०७, ११८, २२४, ४६३, ४७६, ५०६, ५०५, ६१२।

तित्तिरीयभाखा नारायगीयं ५

रक्तः २६६, १०७, ११८, २०१, ८६६, ५६८, ५६०।

दाच्चियात्यसंयहकारिका '२२४'।

दुर्गाकल्यः १०३।

देवलः प्रे, प्र, प्०, ६४, घर, १२२, १३०, १३८, १६१, २८७, २८४, २५४, २८२, ३०३, ४१३, ५००, ५०४, ५०५, ५२२, ५२०, ५६८, ५४६, ५४०, ५५३, ५५४, ५६६, ५०८, ५८०, ५८०, ५८३, ६८३।

देवीप्रहार्या च, च॰, च३, चच, १०३,१०४,१०४,११२,११३, १५७, २०३, २३०, २८४, ४६२, ४६६, ४७८, ४८८, ५८२, ५८०, ५८२, ५८३, ५८२।

धर्माः ५०१।

धनतसंग्रहः ६२, ८२, १५३, १८२, १८२, ८८६, ८०५ ।

पचेय

धौम्यः २७३।

नन्दिप्रागां २६, ५८।

नरसिंइपुरायां १८५, ३२३, ५००।

नागरखयं २८६।

नारदः १०२, १२७, १३०, १३३, १३६, १६१, २२६, ३३०, ३३१, ५६८ ।

नारदोयप्ररायं २८, २५, २६, ३३, ३८, ८०, ८५, ८८, ७०, ६८, ८८, १२६, १२०, १९८, १२८, १३०, १८८, १८५, ३८२, ८३८। नाराययाभाष्यम् ३६१, ३६६, ८०१, ८०३, ८२५, ४२६, ४२०, ८३२, ४३०।

निगमः ८८, ८८, १२८, १५२, १५८, ५२०, ५६०, ५८५। निबन्धक्कत् २०१, २२८, २८८, २५८, ३०६, ४०८, ४१५, ५०८। निर्धायासतं २०२।

नीतिरत्नाकरः ८०, १०१, १२३।

न्टसिंइतापनीयं २१ 8 !

पञ्चाननः ३००, ३०२।

पद्मप्राणं १३, १६, १७, १८, ३७, ३८, ३८, ४६, ६७, ०६, ८०, १२५, १३५, १८३, १८८, १५१, १६५, १६०, १७०, ४१५, ६०८।

पराग्ररः ४६, १६२, १६६, २२१, २८८, ३१४, ३१६, ३३८, ३८८।

परिणिष्टं ४६६, ४६१. ४६२।

पारस्तरः १७२, २१४, २१४, २१६, २१६, २२१, २६०, २०३, २०६, २७८, २८२, २६३, ३०१, ३०५, ३२२, ३२३, ३२६, ३०१, ३०४, ४२६, ४४७, ५००।

पितामद्यः ३२, १8१।

पित्रचरणाः १६, २८८, २६०।

पनेष

पुरायं ६८, ८१, ८४, १६२, १६४, १८१, ३१८, ४०५। पुरुषोत्तमपुरायं १८४।

पुलस्यः १३२, २६०।

प्रव्यारप्राणं ६०१।

पूर्व्याचार्याः २८।

प्रचेताः व्रथ्, व्रट, व्यट, व्रट॰, ८२६, ८व्ह, ८व्६, ८८०, प्०८,

प्रजामतिः १७३, २४६,२६०, २७६।

बङ्गचपरिश्रिष्टं १०२,।

ग्रहमार्ग्यः ६, २३, ३५, २०२, २०४, २४१, २५८, ५८८।

बद्धगौतमः ३८०, ४८०, ५८०।

बद्रमनुः २०३, २८६, ३०४।

बर्झमिहिरः १८५।

रद्भयाच्याच्याः ६५।

रहणातातपः २१७, ८४१, ५४८, ५४६, ५६०।

रद्वाचिः ३०३।

रहत्प्रचेताः १८२, २८४।

**रहदणिष्ठः** वा स्क्रविष्ठिः प्र, पूष्ट, पूष्ठ, पूर्व, पूर्व, ६०३, ६०४।

ब्हन्दिकेश्वरपुरायां १५१।

बहन्मतुः २८५, २०८, २८०, २८३, २८४, ३०३, ३२५, ३८८, ३८०, ४५३, ४६५, ६९०। वामानि

पवेष

बहस्पतिः ५८, ६३, ८४, २३८, १८१, २५३, २५५, २५८, २८०, २८८, ३११, ३२२, ३५८, ३५८, ३८०, ३८१, ४०८, ४९८, ४८८, ५२८, ५२५, ५८४, ५६४, ५६४, ५६४, ५६४, ५८८।

बीधायनः ४२, ५७, ६५, १५४, १६८, २१०, २२५, ३२०, ३०६, ३८०, ३८०, ३८३, ३८७, ४८५, ४४१, ५६०, ५७५, ५८४।

ब्रह्मवैबर्तप्रराणं प्रथ, ६८, ७२, ७८, ८७, ८७, ८०, १००, ११६, १३०, १८४, १४२, १६८, १८२, ३८२, ४८४।

ब्रह्मसिद्धान्तः १०, ११, २३२, २३४, २५८, ५८८।

ब्रह्माखप्रामं ३०, ३८, १३८, १३८, १५०, १७८, १८५, १८०, ४५५, ४६०, ४८१, ५०५, ५१६, ५१०, ५५८, ५८३, ६०२, ६०६, ६०८, ६१२।

भगवतीप्रराणं १०३, १०८, ४६५, ६१०।

भगवदुक्तिः १६५, ३१६।

भगवद्गीता १।

भट्टः ३०२।

पचेव

भरदाजः ३८८, ४११, ४१५, ४२३।

भविष्योत्तरप्रराखं ७, २०, ३१, ३७, ६४, ७१, ८१, ८२, ८४, १०१, १०४, १०६, १०७, ११२, ११३, १२८, १२८, १४४, १४८, १४०, १५६, १५७, १७०, १८२, ४०६, ४००, ४०५, ५०६, ५००, ५८१, ५८१।

भागवतं १ • ५ १६६।

भगः वा भगस्यतिः ६०, १८८, ५६०।

भोजराजग्रेवागमसंयद्यः १।

मखनाचार्यः इप्र।

मत्यप्रामं १६, २०, २०, ३३, ४१, ८६, १३२, १३३, १४४, १४६, १४८, २१०, २१४, २३८, २४२, २४८, २५६, २६३, २६८, २८५, ३५४, ३००, ३८१, ३८३, ३८४, ४००, ४०१, ४०८, ४३०, ४३१, ४३२, ४५२, ४५३, ४६७, ४६०, ४८६, ६०२, ६०४।

मदनपारिजातः २२४, ४६३।

मतः ३०, ५२, ५८, १०१, १८४, १८४, २०१, २०४, २०४, २०४, २००, २१०, २१८, २१८, २२०, २२२, २२३, २२०, २५६, २००, २०२, २०८, २८०, २८२, २८४, २४८, २४८, ३०१, ३०३, ३००, ३१३, ३१०, ३२०, ३२४, ३२४, ३५१, ३५३, ३५६, ३६३, ३६६, ३६०, ३०२,

पचेष

३०८, ३०६, ३८०, ३८२, ३८८, ३८५, ४२६, ४२८, ४३६, ४५४, ४५८, ४६६, ४६७, ४६०, ४८०, ४८२, ५१४, ५१७, ५१०, ५२४, ५२४, ५२६, ५२७, ५३६, ५३८, ५७४, ५७८, ५५१, ५५६, ५५६, ५५८, ५६०, ५६२, ५६६, ५८६, ५८६, ५८६, ५८५ ।

### मन्त्रविरसंहिता १२३॥

मरोचिः ४६, २४६, २४२, २४४, ३५५, ३५८, ३६८, ३८३, ३८६, ३८३, ४.८, ४१२, ४६५, ४०५, ४७८, ५००।

मशाभारतं १इ, १५, १८, २०, २३, २४, इंड, इंड, इ०, ४१, इ८, १६६, १६१, २०१, २८६, ३०६, ३१०, ३२०, १५६, ६६४, ३६४; ४८४, ४८४, ४८४, ४८४, ४८४, ४८४, ६०४, ६१२।

### महारमीपद्धतिकारः १०७।

माधवाचार्यः ६, ४२, ५२, ५६, ६२, ६५, ६०, ६८, ०२, ६८, १०६, १९६, ११६, १३२, १३३, १३०, १३८, १६०, १०३, २३५, २३०, २३३, २४६, २६६, २८१, ३८३, ३८४, ३८४, ४८४, ४२०, ४२३, ५८४, १८४, १८४,

में नेयार स्परिणियं ४८८, ४८६।

मेथिकः ३६५।

यमः १५०, १६६, १८६, २२१, २२६, २६०, २६०, २६८, २०२, २८८, २८६, २८०, २६८, ३६१, ३६३, ३०६, ४०६, ४००, ४२४, ४६४, ४०८, ४८८, ५०१, ५१२, ५१३, ५१४, ५१६, ५१८, ५२२, ५३०, ५४६, ५५१, ५५४, ५५४, ५५६, ५५८, ५६२। यमदिमः ३७६, ४८८।

याज्ञिकाः २५१।

योगीत्रारः ८५, ४५६, ५५०।

रत्नमाना २२८।

राघवभट्टः २६०।

राजमात्तीखः २८, ८३, १०२, १६८, २०२, २५३, ८०६, ६०६।

रामायवां १३०, १६८, ३०४, ३०६, ४०५।

रहधरः २८८।

बद्रयामकातन्तं १०६, १०७।

बद्योधरः ३६८, ५८८।

नमुक्रारीतः १९, २३८, २८८, ३१४, ३५१, ३८८, ४८४, ५८८।

निङ्गप्ररागं ६७, ७३, ८४, ८८, १५५, १६०, १७६, १७७, १८२, २६०,

रहम, रहट, प्रम्

लोकाच्चिः ४६२।

नोपाचिः १६६, ३८६, ४२२, ४२८।

वटेश्वरसिद्धान्तः २३७।

वत्सः ६०।

वराहप्रायां १४, २३, ७४, १३२, १५८, २११, २६४, २६७, इ२६, ६८८,

प्र., प्रह, ६००।

वराइसंहिता ४०८।

पवेषु

विश्वास्तः ६, ६६, ६३, ६६, १५२, १६७, २२३, २६१, ३११, ३१४, ३५७, इटच, ४२८, ४५८, ५४८, ५६६, ५६७, ५८०, ५८०।

वित्रपुरायां १८८, ४००, ४५६।

वाक्यरत्नावकी ४६८।

वाचुनः १११।

वामगप्रशायं ३।

वागुपुरायां १८०, १५५, १६१, १८५, २८५, ३०८, इटट, ४८६, ४८८, ४६१, ४६३, ४६६, ४८३, ४८०, ५१८, ५२३, ५२६, ५२०, ५२८, ५३१, ५३२, ५३८, ५८०, ५८१, ५६१, ५६, ६०६, ६००।

वाल्गीकिः १२१, १२३।

वाणिखरामायणं ।।

विज्ञानेश्वरः २२, २०६, २१२, २२४, २५७, २६३, २८४, ३०१, ३०६ ३०६, ३०७, ३१४, १६५, ३००, ३८२, ४२६, ५६६, ५००।

विप्रसिश्राः २८०, ४०१, ४५०, ४५२, ४६३, ५१५।

विकाससंराष्ट्रकारिका १३८, १४०, १४३।

विश्वनायमिश्रः ३८०।

विश्वरूपनिवन्धः १०५।

विश्वामित्रः १२०, १२१, २२०, २८४, २६४।

विक्षाः २०, ४०, ४२, १२६, १०६, २१३, २६८, २६८, २०१, २८८, २०८, ३१५, ३३०, ३५८, ३६१, ३८१, ४०१, ४२८, ४३०, ४६६, ४०८, ५१८, ५२३, ५३०, ५३९, ५३८, ५४६, ५४८, ५५६, ५५४, ५६२, ५००।

विष्याधमाः १८६, ४५६, ५८५, ६०८।

विधाधमीत्तरं ७, ८, १०, १२, २१, ३०, ४६, ४८, ५४, ६५, ७०, ८२, ८०, ८५, ८७, ८८, १२४, १२६, १३२, १३४, १४४, १४७, १५०,

पनेषु

१ पूर्, २३३, २६६, ४०६, ४०८, ४२१, ४३४, ४४६, ४६१, ४६३, ४५३, पूर्व ।

विषापुरामं ११, ८४, ६१, १३६, २०८, २२२, २५६, ३१६, ३५२, ३५०, ३६५, ३६७, ३६६, ३६५, ३६६, ४०२, ५८२।

विषारहस्यं १५, २५, ३२, ३३, ३४, ८१, ८६, १२८, १३१, १३३, १३८ १३८, १८४, ५८४, ६०१।

विमास्त्रतिः १७, ३०३, ४००, ४४०, ४५१।

वैश्रास्पासनः ३०%।

वैद्यानरसंहिता । ,

बान्नपादः २०८, २८५, ३०८, ३२०, ३५०, ३८१, ५८०, ५८१, ५८०। बासः १३, ८०, ८८, ५८, ६१, १५३, १०८, २९१, २२३, २६०, ३९५, ३२६, ३०८, २८२, ३८८, ८०४, ८२८, ८८८, ५८०, ५८०, ५८२, ५८५, ६११।

व्रतसारः १०१, ६०२।

प्रक्रियोता ५०, ५८६।

प्रश्वः वा प्रश्विति वह, ८०, २१४, २१६, २१० २१८, २१६, २६१, २६३, २०६, २८०, २८८, २८१, २८४, २८५, ३८८, ३०२, ३१६, ३१७, ८११, ६२८, ४६१, ८८२, ८८३, ४८७, ४१८, ५३०, ४३१, ५३६, ५३८, ५८४, ५४६, ५५३, ५६०, ५००, ५८३।

ग्रतानन्दः २२२, २३०, २४०, २४६, २५१, २५३।

भ्रवानन्दसंग्रहः ३१, ७२, ७३, ८०, १९१, १५६, १६०, १७३, १७४, १७६, १७८, १८०, २१५, २५४, ३०६, ५८४, ६०५।

श्वरखामी १७१।

म्रातातमः २२५, २३६, २५१, २८४, ३१५, ३१८ ३०४, ३६६, ३८०, ३८६, ३८१, ४०२, ४०३, ४१४, ४१४, ४१६, ४२०, ४२१,

पनेष

४२४, ४२६, ४४८, ४४६, ४५१, ५५३, ५५४, ५६५ ५०८, ५८१, ५८२।

भाम्बप्राणं १२५।

श्रास्त्रं २०१, ४६६।

प्रिवपुराणं ३५, ३६, १५६, १७०, १६१, १६२, १६३, २०३।

शिवरहस्यं ४६, ११२, १६०, १६२, १६३, १६४, ३८२।

श्रिष्ठवाकां वा श्रियाः २०४, २३०, २६५, ३८८, ३३०, ३०६, ३८१,

इट्ट, ४०२, ५०५, ६०६।

श्रुद्धिगुक्कारः ३००।

श्रुद्धिसारः २८८।

श्रुद्धिसारकारिका २२६, ५६८।

मुनःपुच्छः ३५६।

श्रुक्षपाधिः ४१८।

भीनकः २५१, ४४०, ४८१।

श्राद्धविवेक्छत् २१३, ४१६, ४५०।

श्राद्वस्त्रभाष्यम् ५१८।

श्रुतिः ५, ६, ७, ८, १, १३७, १५१ २०४, २८१, ३२८, १६६, ३०५, ३८०, ४०७, ४११, ४१७, ४३१, ४३२, ४३३, ४३०, ४४०, ४४५,

पूर्र।

श्रीधरखामी ३१३।

षट्चिंग्रन्मतं २८, ४२, २७१, २०२, ३०३, ५८३।

संग्रहकारः ११२, १६०, २२५, २४२।

संग्रहकारिका १८२, १६६, १८३, ४३२, ४०४।

सत्यत्याः २०३।

पनेन

सत्यव्रतः ७, ४६, ८३, २१५, २४४, ४०५, ५१५।

सत्याचार्यः २३१।

सनत्कुमारसंदिता १२६, १२७, १३०, १३२।

संवर्त्तः १५६, २१६, २२२, २०६, २८१, ३५८।

साञ्चायनः ३४६, ४४८, ४५३।

सानकायनः ४८१।

सिद्धान्तिश्रिरोमिशः १०, ४२।

समेनुः ५६, ५७, ६२, २२८, २०६, ३१२, ३१६, ३५६, ३०६, ४१८, ४२८, ४६०, ५८४।

सौरप्राणं ५१ ३८२।

सौरधमीः १२८।

स्रुतिः ६, १८, ६०, ६२, ६४, १६०, १८२, २०२, २०२, २०८, २१६, २२०, २३७, २३८, २६२, २६४, २८३, ३०६, ३०८, ३२३, ३४१, ३६४, ३८३, ३६२, ३६८, ४०६, ४१६, ४२४, ४३१, ४३०, ४४४, ४८६, ६११।

स्मितिमीमांसा ५८२।

स्रुतिरत्नमाना ४६८।

स्मृतिमञ्चार्यं १७१।

पचेष

स्रतिसंग्रहः २८०, २०८, ४१८।

स्मृतिसमुचयः ८०, ८५, ४५८, ४६३, ५०४।

स्मृतिसारः ५ १ ।

ग्रुत्वाचारः २८८।

मृत्वन्तरं भ्रत्, भ्रह्, भ्रह, इह, ६३, ७०, १२८, १८४, १६१, १६८, १०१, २१३, २१८, २३८, २८४, २६०, २००, २०८, २८१, २८५, २८०, ३०६, ३१६, ३२२, ३३०, ३०२, ३८६, ३८०, ८०२, ४५६, ८६८, ४००, ४८०, ५०३, ५०८, ५८८, ५८८०, ५८३।

विश्वीर्थमस्त्र रहा।

रिमितिविचासः ११८, १८०, १६५, १७६।

हरिवंधः १५०, १५१।

्रिसमुचयः ३७६।

चिताकत् १०३।

हेमातिः ४१६, ४२१, ४२२।

## कालसारस्य विषयानुकमणी।

#### श्र ।

| चत्रयहतीया ६६, १६०             | चमावास्थादिपावेशस्त्राद्धं ४३१     |
|--------------------------------|------------------------------------|
| धगस्यार्घविचारः ५८५            | च्यवनिर्याच: ।                     |
| च्यघोराख्याचतुर्दभ्री १५७      | चयनयोःकमीविशेषेषु<br>उपयोगिता      |
| खङ्गाश्रीचिवचारः २:१           | उपयोगिता ।                         |
| चज्ञातस्ताह।दिनिर्धयः इटं॰     | अयाचितिनर्थायः ६३                  |
| च्यवनानिर्द्धनपचित्राडचमा ४६०  | चर्डीदयामावास्था ६०४               |
| खिमासपातेसपिग्छनविचारः ४२०     | चनभ्ययोगाः र                       |
| चनक्रवयोदभी १५३                | बाधक्रौसङ्गस्यश्राद्धं प्          |
| चनन्तवर्वं १५६                 | चर्राद्वकालेषु कमीकरणा-            |
| खनध्ययनकालाः १ ६ अ             | करणविचारः रश्ट                     |
| चनुपनीवाविवास्तियोर्दास-       | बाग्रोकासमी                        |
| विचारः स्वह                    | खग्रीचप्रकर्गं २५8                 |
| चन्तर्जवादेरनन्तरं प्रनर्जीवने | चारीचे चाध्यवननिषेषः सह            |
| प्रायस्त्रतं ३२६               | बागीचे गुरुवध्विचारः ३             |
| व्यन्नप्राग्रनं २१८            | खभौचाद्गादिग्रहगाविचारः २००        |
| चपक्रथ्यसियाउन,नन्तरं          | खग्रीचेकर्त्तव्याकर्तव्यविचारः २५६ |
| कर्त्तव्यविचारः ४२ट            | खग्रौचेसात्तीदिकमैविचारः २०५       |
| व्यपराजितादश्रमी १२१           | चयकान्वयकामाइं ११६                 |
| चपुत्रस्यापिसपिग्छनं ४२२       | चाष्टमी ५५                         |
| चमावास्था १७६                  | चसंखातप्रेतक्रत्यं ३३९             |

| श्रा ।                        | रकादभौदेधे निर्मायः १३३  |
|-------------------------------|--|
| च्याकामा वै पौर्यमास्यः १६८   | एकादग्रीविचारः १२६   |
|                               | एकादग्र्यवासाधिकारि-   |
| खामश्राद्धनिरूपग्रं २८६       | निर्मायः १२६   |
| चारण्यकषठी ८३                 | एकारग्राहादिश्रादं ४०३   |
| चावायककार्येषु सदाःग्रीचं ३१८ | The state of the s |
| चाश्विनमासक्वयं २८            | रकाब्दमध्ये पुचदुव्विज्ञोन्नेत-  |
|                               | विवाह्यविचारः २२०  |
| वाषादमासक्तयं २३              | रकोहिस्याद्रकालाः ३७०  |
| द्र।                          |  |
| 200                           | वा।  |
| र्द्भपौर्धमासी १८६            | 20.00  |
| ं उ।                          | बन्धाया गौरीत्वादिविचारः २२२   |
| 1                             | करते।यायां योगः ६११  |
| उत्तरायमं १८६                 | कर्मानिर्यायः ५०६  |
| अज्ञाभिदाइःं स्८€             | कर्मकालव्याप्तिविचारः 84   |
| प्रापनेकादधी १८८              | कर्माङ्गश्राइं ॥ ८०  |
| उपनयनकालः २२०                 | कामदेवचयोदग्री १५२   |
| उपवासनियोयः ५.                | काम्यश्रादकालः स्टर्   |
| उपक्रमेंकालः १००              | कार्त्तिकमासक्रत्यं २३ - ३१  |
| <b>₹</b> ₹!                   | कुक्कटोव्रतं प्  |
| . निर्णयः =                   | कुग्रानिर्धायः ५२७   |
| ऋतुप्रस्टितकालाः २०५          | कुबारखदश्रमी १२५   |
| ऋिषपञ्चमौ ८०                  | क्रयात्रकारमी ६०   |
| 15(44 441(                    | कोगार्कचेत्रे माधसप्तम्यां   |
| ए ।                           | विद्येषमार्च ८७  |
| एकदिने बहुआद्धविचारः १६६      |  |
| एकभक्तविचारः ५६               |  |
|                               |  |

l

| ग।   |                | च।  | 1                 |
|--|----------------|---|-------------------|
| गङ्गायां योगः  | ६११            | चतुर्थीं  | 99                |
| गङ्गायामस्यिच्चेपविचारः  |                | चन्दनधूपदीपबस्तादि-   |                   |
| गजक्सायाश्राद्धविचारः  | 8€8            |   | 430               |
| गयाश्राद्धसमयोगाः  | 8€8            | चम्पकदादशी  | . 3               |
| गर्भसावाद्यश्रीचविचारः   | २६२            | चतुर्दभी  | 28                |
| गर्भाधानकातः   | २०५            | चातुर्मास्यव्रतं<br>चातुर्मास्यकर्त्तयाकर्त्तव्य-   |                   |
| गर्भिग्रीदाद्यः  | इह्य           | विचारः  |                   |
| गर्भिगौपतेःचौरनिषेधादि   |                | चूड़ाकर्मकालः   | 33                |
| विचारः   |                | चैत्रस्याचतुर्दश्री   | 3.6               |
| ग्रुव्हिचायाचा   |                | चैत्रमासद्यत्यं   | 128               |
| गुर्वादित्येवच्यीं बच्चे विचारः  |                | चैत्रश्रक्तप्रतिपत्रियायः   | 6                 |
| गोचनामपदायुचारणविचा  |                | ज।  |                   |
| गोनिन्ददादधी   | €••            | जपविधिः   | <b>!</b> {•       |
| •  |                | जन्ममरणयोःश्रवणाबध्येव-   | 20                |
| गोष्ठायमौ  | ११५            | जन्मस्यापाञ्चपवाष्यवः   | -                 |
| गोष्ठीत्राडं   |                |   | T 1 1 15          |
|  | 8⊂∘            | अग्रीचनिमिक्तं र<br>अग्रीचनिमिक्तं र  | 88                |
| गोष्ठीत्राद्धं   | 95             | खग्रीचिनिमिक्तं व<br>अयन्तीपारणे विश्वेषनियमः<br>जासदगौरीपश्वमो   | 48                |
| गोष्ठीश्राद्धं<br>गौरीगग्रेभचतुर्घौ  | 95<br>95<br>97 | खग्रीचिनिमिक्तं व<br>अयन्तीपारणे विश्वेषनियमः<br>जासदगौरीपश्वमो   | 88                |
| गोष्ठीश्राद्धं<br>गौरीगगोप्रचतुर्थौं<br>गौरीवतं  | 95<br>95<br>97 | खग्रीचिनिमिक्तं व<br>अयन्तीपारणे विश्वेषनियमः<br>जासदगौरीपश्वमो   | 48                |
| गोषीत्राडं गोरीगयेप्रचतुर्थी<br>गोरीवर्तं<br>ग्रह्मं<br>ग्रह्मां   | 95<br>95<br>97 | खग्रीचिनिसक्तं र<br>शयन्तीपारणे विशेषनियमः<br>शायद्गीरीपश्वमी<br>शावकर्मकाचः र<br>शीवत्पिद्यकस्थापि श्राद्धा-<br>धिकारिता ह                             | 48<br>ee          |
| गोषीश्राद्धं गौरीगवेश्रचतुर्थौं गौरीवर्तं यहणं यहणं यहणं यहण्याद्धं यहण्याद्धं याद्यतिथिनिर्णयं याद्यतिथिनिर्णयं | 95<br>95<br>95 | खग्रीचिनिसक्तं र<br>शयन्तीपारणे विशेषनियमः<br>शायद्गीरीपश्वमी<br>शावकर्मकाकः<br>शीवत्पिद्यकस्थापि श्राद्धा-<br>धिकारिता ६<br>व्येखपुनदुष्टिशोन्येखेमासि | 188<br>284<br>184 |
| गोषीत्राडं गोरीगयोप्रचतुर्थी यहर्षं  | 95<br>95<br>95 | खग्रीचिनिसक्तं र<br>शयन्तीपारणे विशेषनियमः<br>शायद्गीरीपश्वमी<br>शावकर्मकाचः र<br>शीवत्पिद्यकस्थापि श्राद्धा-<br>धिकारिता ह                             | 188<br>284<br>184 |

"A book that is shut is but a block"

ARCHAEOLOGICAL

BROWN OF INDIA

Department of Archaeology

DELHI.

Please help us to keep the book clean and moving.

By 148. N. DELHI.